श्रीः

श्रीवात्स्यायनमहर्षिप्रणीतं

कामसूत्रम्

भाग :२

श्रीयशोधविरचितया जयमङ्गलाख्य-
व्याख्यया सहितम्

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-रिसर्चस्कालर-पण्डित माधवाचार्यनिर्मितया
पुरुषार्थप्रभाख्यभाषाटीकया टिप्पणीभिश्च विभूषितम्

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई - ४

श्रीः

श्रीवात्स्यायनमहर्षिप्रणीतं

कामसूत्रम्

द्वितीय भाग : २

श्रीयशोधविरचितया जयमङ्गलाख्य-
व्याख्यया सहितम्

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-रिसर्चस्कालर-पण्डित माधवाचार्यनिर्मितया
पुरुषार्थप्रभाख्यभाषाटीकया टिप्पणीभिश्च विभूषितम्

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई - ४

संस्करण : फरवरी २०१५, संवत् २०७१

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

श्रीः ।

कामसूत्रकी-विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ट.
भार्याधिकारिकं चतुर्थमधिकरणम् ।	
प्रथमोऽध्यायः।	
एकचारिणीवृत्त प्रकरण ।	
इसे पहिले कहनेका कारण	६९३
कुटुम्ब सँभालना	६९४
घरकी सफाई, देवपूजा और बलि	„
इसपर गोनर्दीय	६९६
सास, सुसर आदिके साथ औचित्य	„
उपयोगी वृक्षोंकी वाटिका	६९७
सङ्ग न करनेयोग्य स्त्रियां	६९८
पतिको भोजन करानेकी विधि	६९९
आवाज सुनते ही	„
पैर धुलाना, एकान्तमें सिंगरी दीखे	७००
अनुचित खर्चमें समझाना	„
देवदर्शन भी आज्ञासे करे	७०१
उत्सवके खेलोंमें भी आज्ञा	„
रसोई घर गुप्त	७०२
अचारपर भी अधिक नहीं	„
जादूटोनाका त्याग	„
वर्जित कार्य्य	७०३
शरीरकी सफाई और शृंगार	७०४
व्रतोपवास	७०५
उपयोगी वस्तुओंका संग्रह	७०६
गुप्तको प्रकट न करना	७०७
बराबरवालियोंमें आधिक्य	„
संग्रहकी व्यवस्था	७०८
उतरे वस्त्रोंकी व्यवस्था, पेयकी सँभाल	७१०
पतिके मित्रोंसे व्यवहार	„
सास सुसरादिसे बातें	७११
परिवार व भृत्योंके साथ वर्तन	७११
प्रवासचर्य्या प्रकरण	७१२
नियतवृत्ति व व्रतोपवास	„
सास ससुरके समीप शयन	७१३
कथित व्यय	„
मा बापोंके यहां साथ जाना व शीघ्र आना	७१४
गुरुजनाज्ञापित उपवास व व्यापार	„
प्रोषितपतिकाकी स्थितिमें ही प्रथमदर्शन	७१५
उपसंहार	„
द्वितीयोऽध्यायः ।	
सौतोंके साथ बड़ीके बर्तावका प्रकरण।	
सौतें होनेका कारण	७१७
विज्ञ बड़ी स्त्रीका कर्तव्य	„
अपनी स्थिति बढ़ाये	७१८
बड़ीका छोटीके साथ वर्ताव	„
प्रमादिनीकी उपेक्षा व सँभलतीको संभालना	७१९
विशेष दिखाना	७२०
सौतकी सन्तानोंपर प्यार	„
बहुतोंमें छोटीके साथ	७२१
परस्पर कलह योजना	„
अधिकाको गिराना	„
मालिकसे कलहिताको धैर्य देना	७२२
लड़ाई बढ़ाना	„
शान्त करना	७२३
छोटीके बर्तावका प्रकरण ।	
मातृवद्भाव व स्वात्मसमर्पण	„
बड़ीकी बातें न कहना व सन्तानपर प्यार	७२४

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
एकान्तमें उपचार व सौतोंकी अनिन्दा	७२४	रँगरेली आदिके निवेदन	७३९
पतिसे मान	७२५	सम सम्मानके स्थल, आना जाना बन्द	७४०
मानको न करना व कथनके दोष	,,	एक पुरुषका अनेक स्त्रियोंके साथ वर्तावका प्रकरण	७४१
दुर्भगा आदिपर दया	७२६	सामान्य व्यवहार	,,
बुरीको अच्छी बनाना	,,	एककी बात एकसे न कहे	७४२
पुनर्भूवृत्त प्रकरण ।		लडनेका मौका न दे	,,
पुनर्भूका लक्षण	७२७	हर एकसे वर्ताव	७४३
पहिले घरोंके छोड़नेकी रीति	७२८	अनुकूल वृत्तिसे सबकी प्रसन्नता	,,
इसपर गोनर्दीय	,,	अधिकरणके अनुष्ठानका फल	,,
वात्स्यायनका मत	७२९	पारदारिकं पञ्चममधिकरणम् ।	
उत्तम पुनर्भूकी लिप्सा	७३०	पारदारिकविमर्श प्रकरण ।	
मध्यमाधमकी इच्छा	,,	इसपर वैद्यकशास्त्रके वाक्य	७४६
जातीवार प्रीतिदायके विना सब दे पर निकालनेपर नहीं	७३१	स्वयंवरार्थिनी कन्याओंके विषयमें यह है	७४७
मालिकिनीकी तरह बैठे	,,	आज कलके चुनावोंमें आवश्यकता	७४८
थेरेजेकी स्त्रीका धर्मपत्नीयोंसे व्यवहार	,,	यह पाश्चात्योंको अधिक हितकर है	,,
नायकके मित्रोंसे हँसते हुए व्यवहार	७३२	प्रथमोऽध्यायः ।	
कलहेके स्थानोंमें उपालम्भ	,,	स्त्रीपुरुषशीलावस्थापन प्रकरण ।	
मालिककी और सौतोंकी सेवाका ढंग	,,	प्रकरण शुद्धिका स्मरण	७४९
दुर्भगावृत्त प्रकरण ।		परनारीमें प्रथम देखनेकी बातें	७५०
अधिकका आसरा व प्रकटकला दिखाना	७३३	मुख्य कारण	,,
बच्चोंकी धायका काम	७३४	कामकी दशाएँ ये सर्वसाधारण हैं	७५१
धर्मकृत्योंमें अग्रगामिनी	,,	इनका क्रमपूर्वक वर्णन	७५२
परिजनोंकी अनुकूलता व अपनेमें छुटाई	७३५	साहित्यमें दशों दशाएँ	७५३
भीतरके वर्ताव, फिर प्रेम पाना	,,	उर्दू फारसीमें उलटा ढंग	,,
वामता न दिखाना	,,	आकृति और लक्षणोंसे शीलादिकी परीक्षा	,,
अनुकूल करनेके उपाय	७३६	लक्षणोंसे व्यभिचारिणीकी पहिचान	७५४
राजमहलोंके बर्ताव	,,	परीक्षापर वात्स्यायन	७५५
महलोंमें बड़ी छोटियोंके बर्ताव	७३७	दोनोंका उज्वलकामित्व शील है	७५६
राजाका बर्ताव	,,	स्त्रीमें पुरुषसे विशेषता	,,
मानादिकी व्यवस्था	७३८		
क्रमशः पुनर्भू, वेश्या, नाटकीओंके स्थानावलोकन	७३९		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
धर्माधर्म नहीं देखतीं; पर कार्यस नहीं मिलतीं	७५७	स्वाभाविक और प्रायत्निक दर्शन	७८०
चाहती हुई भी आप हट जाती है	,,	परिचयके बाह्य कारण	७८१
बारबारके प्रयत्नसे सिद्धि	,,	आभ्यन्तर परिचयके कारण	७८४
धर्माधर्म और शिष्टाचारके कारण नहीं	७५८	संकेतके कुछ ढंग, भाषासंकेत	७८७
विचार शीलकी प्रयत्नसे भी सिद्धि नहीं	,,	अंगसंकेत, पुष्पमाला संकेत	७८८
विना शोचे उपाय व सिद्ध होनेपर उदासीन	,,	ताम्बूल संकेत	,,
दुर्लभाकी चाह व सुलभाका अनादर	७५९	वस्त्रसंकेत, पोटली संकेत	७८९
व्यावर्तनके कारणोंका प्रकरण।		**अभियोग प्रकरण।**	
अनादर, दुष्प्राप्यताकी शंका	७६०	इशारोंपर एक दृष्टि	७९०
हाथसे निकल जाने व भंडाफोटकी शंका	७६१	भीतरके अभियोग	७९२
मित्रोंसे कहने और खाली अभियोगोंकी०	,,	न मिलनेकी जगह, घरवाली रँगाली बुड्ढीको रँगना, व्यभिचारके स्थानोंपर साहित्य	७९३
प्रभावी, नागर व मृगी व मैत्रीकी शंका	७६२	ध्यान देने योग्य बात	७९४
अज्ञ, अनादर, मूढ व छोटा व अनिष्टकी शंका	७६३	न मिलने योग्य स्त्रियें	७९५
अपने दोष व स्वजनोंका भय	७६४	**तृतीयोऽध्यायः।**	
बुड्ढा व पतिप्रेषितकी शंका	,,	**भावपरीक्षा प्रकरण।**	
धर्माधर्मकी शंकासे	,,	अभियोग करते हुए ही देखे	७९६
कारणोंके प्रतीकार, प्रतीकारके उपाय	७६५	भाव न दिखानेवाली दूतीसे	,,
आर्यपनेसे युक्तोंको राग बढाकर	,,	दुविधामें फँसी	,,
अशक्तिसे होनेवालोंका उपाय	,,	जबरदस्तीवाली	७९७
नुकसानसे उत्पन्न होनेवालोंका उपाय	७६६	अत्यन्त परिचयसे साध्य	,,
परिभवसे उत्पन्न हुओंका निवारण	,,	मनुष्यके चित्तकी अनित्यता	७९८
भय-निवारण	७६७	चित्तकी चंचलतापर दृष्टान्त	,,
स्त्रियोंके विषयमें सिद्ध पुरुषोंका प्रकरण		चतुर दूती योग्य	७९९
सूत्रका श्लोकानुवाद	७७०	उपेक्षणीया, इसमें भी विशेष	८००
विनाविशेष प्रयत्नके सिद्ध होनेवाली स्त्रियोंका प्रकरण।		सहनसे सिद्ध होनेवाली	८०१
		अधिककांक्षिणीकी पहिचान	,,
उक्त प्रकरणका श्लोकोंमें संग्रह	७७५	सुप्तालिङ्गन, प्रगल्भा	८०२
उपसंहार	७७६	चाहनेवाली	८०३
द्वितीयोऽध्यायः।		चाहनेवालीका पैर दाबना	,,
परिचयकारण प्रकरण।		मर्मज्ञा दूती योग्य, थोथे चोंचले	८०६
दूतीसाध्य व स्वयं साध्य	७७७	द्वितीय और तृतीय अध्यायका उपसंहार	,,

विषय.	पृष्ठ.
चतुर्थोऽध्यायः।	
दूतियोंके कारनामोंका प्रकरण।	
दूती साध्य, निसृष्टार्था, परिमितार्था और सन्देशहारीके सामान्य कार्य	८०८
पतिसे द्वेष गहाना	८०९
इसका संग्रह	८११
इसपर गोणिकापुत्र	८१२
नायकको ओर झुकानेका ढंग	,,
इसका संग्रह	८१४
दुबाराका कार्य	८१५
इसका सामान्य संग्रह	८१६
इन बातोंमें आकारकी पहिचान	८१७
भावको बतानेवाले व्यापार	,,
विषयका संग्रह	८२०
आकारके पहिचाननेका फल	८२१
दूतीकर्मपर आचार्य्योंका मतभेद	८२२
वस्तुओंका भेजना	८२३
सूत्रार्थ-संग्रह	८२४
संग्रह, दूतीके घर मिलना	८२६
दूतियोंपर एक दृष्टि	,,
दूतियोंके भेद, निसृष्टार्था दूती	८२८
इसका विषय	८२९
परिमितार्था दूती, इसका विषय	८३०
पत्रहारी दूती, इसका विषय	८३१
स्वयंदूती	८३२
स्वयंदूतीसे मिलनेका स्थल	८३३
दूसरी तरहकी स्वयंदूती, स्वयंदूत	,,
मूढ दूती	८३४
इसका उत्तर इसी द्वारा	८३५
मूकदूती	८३६
वातदूती	८३७
साहित्यमें दूती	८३९
निसृष्टार्था, परिमितार्था, स्थान	८४०
तीनों तरहकी दूती कौन	८४१
दूतीके कार्योंका संक्षेप	,,
पञ्चमोऽध्यायः।	
ईश्वरोंकी रँगरेलीका प्रकरण।	
समर्थोंके परवर न जानेका कारण	८४४
ईर्सापर सूर्यका दृष्टान्त	,,
दृष्टान्तका समन्वय	८४५
आवश्यकतापर योग	८४६
छोटे अधिकारियोंकी बातें	,,
गवाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, नागर और चौधरी	८४८
बडे २ अधिकारियोंकी रँगरेलियाँ	८४९
साहित्यमें यक्षरात्रि आदि	,,
महलादि दिखानेका बहाना	८५१
एकान्तमें राजप्रेम प्रगट करना	८५३
स्वयंकी उपस्थिति प्रेम करना	,,
रानियों द्वारा प्रेम	८५४
विज्ञान दिखानेके बहाने महल बुलाना	,,
पीडित व स्वार्थियोंकी भार्याओंको बुलानेका ढंग	८५५
घरमें डालनेकी रीति	८५७
दूसरेके घर जानेमें दोष	८५८
कोट्टराजकी धोबीसे व जयसेनकी दरोगासे हत्या	८५९
राजाओंकी खुली रँगरेलियाँ	,,
आन्ध्रकी रीति, वातसगुल्मककी रीति	८६०
विदर्भकी रीति	,,
अपरान्तकी रीति, सौराष्ट्रकी रीति	८६१
अन्ययोग	,,
राजधर्म व्यभिचारका नहीं	८६२
जयाकांक्षीके लिये नहीं	८६३

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
षष्ठोऽध्यायः।		प्रेमके समय लोभ न दिखाना	८९२
अन्तःपुरिकावृत्त प्रकरण।		उपायोंसे धन निकालना	८९३
राजमहलमें जाना तथा रानी आदिकोंकी लीलाएँ	८६४	उसकी रहन सहन	,,
महलकी स्त्रियोंकी लीलाएँ	,,	वेश्याओंके सहायक	,,
प्रयोग विधि	८६५	धनके लिये मिलने योग्य	८९५
प्राच्योंमें अपद्रव्योंका प्रयोग	८६६	गुणके कारण मिलनेयोग्य या नायकोंके गुण	८९७
विना स्त्रियोंवाले पुरुषोंकी कामशान्ति	८६७	नायकोंके गुण	,,
भीतर घुसाना	८६८	नायिकाके गुण	८९९
विना प्रबन्धके न ले जायँ	८६९	दोनोंके साधारण गुण	९०१
इसपर वात्स्यायनका निषेध	,,	नायक नायिकाओंका दोष	९०२
महल न घुसनेके कारण	८७०	न मिलने योग्य	,,
ध्यानमें रखने योग्य	८७१	मिलनेके कारण	९०३
साधारणोंका महल जाना	८७६	रागका प्रावल्य	९०५
रानीयोंकी लीलाएँ	८७८	इसपर वात्स्यायन	९०६
प्रकरणोंका उपयोग	८८२	**योग्यको अपनी ओर झुकानेका प्रकरण।**	
अपनी स्त्रियोंकी रक्षाका प्रकरण।		सहसा न मिलना	९०८
स्त्रियोंकी रक्षाका उपाय	८८४	भाव जानना	,,
रक्षणका उपाय परीक्षण माननेवालेका खण्डन	८८५	चाहनेवालेसे प्रीति	९०९
विनाशके कारण	८८७	प्रीति लगानेके उपाय	९१०
स्त्रियोंके भ्रष्ट होनेके कारणोंपर कामशास्त्र	८८८	घरआयेका सत्कार	,,
उपसंहार	,,	मजलिशका आदर	९११
वैशिकं षष्ठमधिकरणम्।		इसका आजके नाटकोंमें उपयोग	,,
प्रथमोऽध्यायः।		प्रीतिको मजबूत करनेके उपाय	९१२
सहायगम्यागम्यगमनकारणचिन्ता प्रकरण।		स्वयं जाना, उपसंहार	९१३
वैशिककी प्रयोक्त्री	८९१	लेन देन,	९१४
रति और जीविकाके लिये वेश्याकी सृष्टि	,,	आ आकर जानेवालेपर रंग जमाना	,,
स्वाभाविक और कृत्रिम प्रवृत्ति	८९२	**द्वितीयोऽध्यायः।**	
नकलीको असली दिखाना, इसका कारण	,,	**कान्तानुवृत्त प्रकरण।**	
		एकचारिणीका बर्ताव	९१५
		बहुचारिणीका संक्षेपसे कान्तानुवृत्त	९१६
		उसीका विस्तारसे कान्तानुवृत्त	,,

विषय.	पृष्ठ.
पारतन्त्रकी पीडा	११६
माकी आडके कार्य	११७
माकी कारगुजारी	११८
माकी आज्ञाका मान	११९
तकलीफका बहाना	,,
बहानेका फल, इसकी रीति	१२०
मोहक मिलन	१२१
इसपर साहित्य	१२२
मनोरथोंका मायाजाल	१२३
देखनेके हाव भाव	१२४
शत्रु मित्रसे बर्ताव	१२५
तबीयत चलानेका उपाय	१२६
इशारे एवं मुँहसे कहने और न कहनेका समय	,,
बात सुननेका ढंग	१२७
सहानुभूतिके समय	१२८
अन्यकी बुराई, बडाई	१२९
शृङ्गार, उसका त्याग और रोनेका समय	,,
साथ भगना	१३०
जीवन सफल मानना, देवपूजा, भोजन, अलङ्कार, गान और नींद आदिका ढंग	१३१
उससे सन्तानकी चाह	१३२
आवश्यकीय शिक्षा	१३३
घनघोर घटामें भी अभिचार	१३५
अभिसारिका गणिकापर साहित्य	,,
मरनेके बाद भी तू	१३६
मोहिनीकी आशंका, मासे लडाई	१३७
आत्मघातसे भयभीत करना	१३८
नायकके यहां सफाई	,,
मिलनेवालेसे न लडे, सब बातोंमें मा	१३९
दोस्तकी विदेश जानेकी तयारी	१४०
इसकी साहित्यमें छटा	१४०
जानेके बाद	१४१
दोस्तके विदेशसे आनेपर	१४३
साथ मरनेके इरादे	१४४
इसपर ऐतिहासिक दृष्टि	,,
आसक्तकी पहिचान	१४५
न कही बातको दुनियाँसे जाने	१४६
वेश्याके दीवानोंका शिक्षा	,,

तृतीयोऽध्यायः ।

अर्थागमोपाय प्रकरण ।

विषय.	पृष्ठ.
धन प्राप्तिके भेद	१४९
आचार्योंके मत	,,
आसक्तपर भी उपाय	,,
धन खींचनेके उपाय	१५०
धनप्रशंसा व धर्मकार्यका बहाना	१५१
लुट गई व आगसे नष्ट	१५२
स्वागत सत्कारका खर्च	१५३
उसका कर्ज	,,
उत्सवकी सजावट व देना	१५४
दुखित दिखाना	१५५
वैद्यआदिके उपचार व मित्रोंकी सहायता	,,
घर निर्माणका बहाना व जेवर बेचना	१५६
अच्छी चीजकी बिक्री व घेलमेलस बचना	,,
कृतज्ञता व प्रतिस्पर्धिनियोंके अधिक लाभ	१५७
खुलीमने व त्यागी रकीबोंका दिखाना	१५८
बच्चोंकी तरह माँगना	१५९

विरक्तप्रतिपत्ति प्रकरण ।

विषय.	पृष्ठ.
विरक्तकी पहिचान	१६०
मनबदले हुएके कार्य	,,
उससे वेश्याकी हुशियारी	१६२

विषय.	पृष्ठ.
निकलनेके क्रमका प्रकरण ।	
न कुछ देनेवालेका निष्कासन	९६४
इसपर साहित्य	,,
निकालनेके प्रकट काम	९६५
सहवासके समयकी खटपट	९६७
बातोंमें धता बतानेकी क्रिया	९६९
आखिरको धक्के	९७०
कथित पदार्थोंका साहित्यमें उपयोग	९७१
वेश्याकी शिक्षा	९७४
इससे अधिक बाभ्रव्यका वैशिक है	९७५
दत्तकाचार्य्यका इतनाही क्यों	,,
चतुर्थोऽध्यायः ।	
बिछुड़े हुएको मिलानेका प्रकरण ।	
छोड़नेसे पहिले पुरानेसे मेल	९७७
मिलानेका अवसर	९७८
पुराने बिछुरे हुएके छः भेद	९७९
दोनोंका स्वयंत्यागी	,,
दोनोंके धक्के खाया हुआ	९८०
यहांसे आप व वहांका निकाला	,,
स्वयं हटकर वहां स्थिर हुआ	,,
यहांसे धक्के वहांसे आप	,,
यहांसे धक्के वहां स्थिरता	९८१
इनमें मिलाने लायक	,,
उभयोंका स्वयंत्यागी योग्य नहीं	,,
दोनोंका ठुकराया अधिक लाभपर	९८२
ऐसा निर्धन व दुष्ट योग्य नहीं	,,
तीसरा आतिरिक्त धनपर	९८३
चौथेके मिलानेका मौका, मिलानेके वि०	९८४
न मिलनेके विचार, पाँचवेंका विचार	९८५
छठेका विचार, स्वयं बात चलाने योग्य	९८८
इसमें कारण	९८९
जाने आनेकी सफाई	९९२

विषय.	पृष्ठ.
पूर्व उपकारोंसे प्रेमाभिज्ञान	९९३
अपूर्वसे पूर्वका अच्छा, इसपर वात्स्यायन	९९४
पूर्वसंसृष्टके भेद, इसपर वात्स्यायन	९९५
प्रतिमन्धानके तीन कारणोंका उल्लेख	९९६
विशीर्णगत कारण	,,
वर्तमानगत कारण	९९७
असंसृष्ट समथके आनेपर बिछुड़े हुए असमर्थको न छोडे	९७९
इस परिस्थितिमें वेश्याकी चतुराई	९९८
समर्थ वश्यसे कहकर कहीं जाय	९९९
मिलातीबार ध्यान रखनेकी बात	१०००
पञ्चमोऽध्यायः ।	
लाभविशेष प्रकरण ।	
अपरिग्रहका कारण	१००१
एक रातमें अनेक	१००२
रातकी फीस	१००३
एकरातके पचीस रुपये,	१००४
दूत भेजनेका ढंग	,,
पहिलीमें न मिलनेपर और रातें	१००५
एक साथ आयोमें अधिक लाभ	,,
सोनेका सिक्का	१००६
सौ सुवर्णोंकी फीसवाली सुगन्धा	१००७
चार दण्डके पाँचसौ रुपये	,,
फीसकी चीजें, बराबरमें विशेष	१००८
रागीसे त्यागी अच्छा है	१००९
रागी त्यागी बनाया जा सकता है	,,
बनानेकी रीति	१०१०
इनमें भी धनी, इनसे भी प्रयोजनकर्ता	,,
इसीपर वात्स्यायन	,,
अतिसे निर्धारण कृतज्ञ और त्यागी	१०११
त्यागियोंगा स्वभाव, कृतज्ञ	१०१२
इनमें विशेष, मित्रवाक्य, धनमें धनको	१०१३
मित्रोंका मनाना	१०१४

विषय.	पृष्ठ.
अर्थप्राप्ति और अनर्थवारण	१०१५
इसपर वात्स्यायन, व्यवस्थामें विचार	,,
इसमें सिद्धान्त	१०१६
उत्तम गणिकाओंका लाभ	,,
पुराणोंकी उत्तमा गणिकाएँ	१०१८
रंगनाथका साक्षात् गिरिणी वारमुखी	१०१९
अन्धे आसक्तको हरिका उपदेश	,,
उत्तम रूपाजीवाओंके लाभ	१०२०
कालिदासकी विलासवती	१०२१
कुम्भदासियोंके लाभ	,,
आज ये ही बीमारीका घर हैं	,,
सांख्यदर्शनकी पिङ्गला	१०२३
लाभोंपर वात्स्यायन	,,
लाभमें देशकाल आदि देखे	१०२४
थोड़ा लाभ लेनेके स्थान	,,
लाभ न लेनेके स्थान	१०२६
उसी समय लेनेकी जगह	,,
भविष्यमें लाभ ले	१०२७
अग्राह्य पुरुष	१०२८
ग्राह्य पुरुष, अर्थप्रयोजनवाले	१०२९
षष्ठोऽध्यायः।	
अर्थ, अनर्थ, अनुबन्ध और इनके संशयोंके विचारका प्रकरण।	
उत्पत्तिके कारण	१०३२
उपाय करनेका समय, अर्थ त्रिवर्ग	१०३४
अनर्थत्रिवर्ग, अनुबन्धस्वरूप	१०३५
शुद्धसंदेह	,,
संकीर्णसंदेह, दोनों ओरका योग	१०३६
सब ओरके योग	,,
दोनों त्रिवर्ग	१०३७
अर्थके साथ अर्थका अनुबन्ध	,,
अनुबन्ध रहित अर्थ	१०३८
अर्थके साथ अनर्थका अनुबन्ध	,,
अनर्थके साथ अनर्थ	१०३९
अनुबन्धहीन अनर्थ	१०४०
अनर्थानुबन्धी अनर्थ	,,
धर्मकामोंकी अनुबन्धयोजना	१०४१
अनुबन्धोंको संकीर्ण बनानेकी रीति	१०४२
शुद्ध संशय, अर्थ संशय	१०४३
धर्मसंशय	१०४४
कामसंशय, अनर्थसंशय	,,
अधर्मसंशय, द्वेषसंशय	१०४५
संकीर्णनिरूपण, विरुद्ध संकीर्ण	१०४६
अर्थ और अनर्थोंकी संकीर्णता	,,
धर्माधर्मका संकीर्ण संदेह	१०४७
काम व द्वेषका संकीर्ण संशय	१०४८
इन्हें देखनेकी रीति	,,
श्वेतकेतुके उभयतो योग	,,
दोनों ओरसे अर्थयोग	१०४९
दोनों ओरसे अनर्थ	,,
दोनों ओरसे अर्थ संशय	१०५०
दोनों ओरसे अनर्थ संदेह	,,
बाभ्रवीयोंके उभयतोयोग	१०५१
उभयतोऽर्थ योग	,,
उभयतोऽनर्थ	१०५२
दोनों ओरसे अर्थ संदेह	१०५३
उभयतोऽनर्थ संदेह	१०५४
संकीर्ण उभयतो योग	,,
इन विचारोंका प्रयोजन	१०५६
अवशिष्टोंके शुद्ध संकीर्ण और व्यतिषक्त	,,
बाभ्रवीयोंके यहां भी	१०५८
धर्म और कामके संकीर्ण उभयतोयोग	,,
इनमें भी परामर्श	१०५९
व्यतिषक्त उभयतोयोग	,,
उभयतोयोगोंका समष्टि विचार	१०६१
समन्ततोयोग, गोष्ठी परिग्रह	,,

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
समन्ततो योगवाली वेश्या	१०६२	रंगाजीवियोंकी कन्याओंका विवाह	,,
विटोंमें स्पर्धाका कारण	१०६३	इनके योग्य पुरुष,	१०९४
लाभ निर्देश	१०६४	वशीकरण प्रकरण ।	
इसमें अनुबन्ध नहीं है संशय है	१०६५	वशीकरण साधन लेप	१०९४
वेश्याविशेष प्रकरण		वशीकरण बुरकी	१०९५
वेश्याओंके भेद	१०६६	लान, दूसरा साधन लेप	१०९६
स्वैरिणी, कुलटा और प्रकाशविनष्टा		दूसरे २ साधनलेप	१०९७
वेश्या कैसे	१०६७	सोनेका चाँद	१०९८
दुराचारिणियोंकी प्रकृति	१०७०	कन्या व्याहनेकी दूसरी बुरकी	,,
स्त्रियोंके विभाग	१०७७	दोनोंकी बुरकियां	१०९९
औपनिषदिकं नाम सप्तम- मधिकरणम् । प्रथमोऽध्यायः । सुभगंकरण प्रकरण ।		वशीकरण तिलक	११००
		देवकान्त अनुलेपन	११०१
		गन्धर्वकान्त अनुलेपन	,,
		नागकांत अनुलेपन	११०२
		वशीकारमें सत्त्वादिका उपयोग	,,
अधिकरणके कहनेका कारण	१०८१	देवसत्त्वा, यक्षसत्वा	,,
सौभाग्यशाली बनानेवाले	१०८२	नरसत्त्वा, नागसत्त्वा,गन्धर्वसत्त्वा	११०३
सौन्दर्यादिकारक	,,	पिशाचसत्त्वा, काकसत्त्वा, वानरसत्त्वा	,,
मुखशोभा बढानेवाले	१०८३	खरसत्त्वा, मुनिसत्वा प्रेतसत्वा,	
मुहाँसे, दाग और झांई	,,	भूतसत्त्वा, रक्षसत्त्वा	,,
सौन्दर्यकर उबटन	१०८४	कफप्रकृति, पित्त प्रकृति	११०४
सुभगंकारी तेल	१०८५	वातप्रकृति, पुण्य अंजन	,,
सुभगमाला, चटनी	,,	इसी तरह दूसरे अंजन	११०५
लेप, गण्डा, बादर और शंखमणि	१०८६	वशीकरण मन्त्र	,,
परिचारिकाके विवाहकी विधि	१०८८	कामके जप व ध्यान	११०६
वेश्याकी बेटीके विवाहकी विधि	,,	बीजन्यास	११०७
बेटीकी कारगुजारी	१०८९	वृष्य वा (वाजीकरण) योग प्रकरण ।	
छैलोंका दर्शन, पाणिग्रहण	१०९०	उचटा और मुरहटीके योग	११०८
बिना मिले भी मिलेकी प्रसिद्धि	१०९१	उचटाका निर्णय, मुलहटीका उपयोग	११०९
धन ऐंठनेके लिये राजदरबार	,,	वाजीकरणका दूध	१११०
प्राच्य देशकी वेश्याओंकी रीति	१०९२	मेंढा और बकरेके अण्डकोषोंका उपयोग	,,
व्याहेके साथ एकसाल	,,	विदारीकन्द वंशलोचन और कौंच	११११
निमन्त्रणपर अवश्य जाना	१०९३	विदारीकन्द	,,

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
कौंचके बीज, वंशलोचन	११११२	शूक्रयोगोंपर वैद्यकशास्त्र	११३५
चिरौंजी, मुहार और श्वेतविदारी	११११३	चक्रदत्तने कामशास्त्रसे शूक्रयोगोंको लिया	११३६
क्षीरकाकोली, सिंघाडे, कसेरु और महुओंके साथ	,,	वैद्योंके यहां और भी	११३७
उडदकी दालकी खीर	,,	कामशास्त्रके दूसरे आचार्योंके यहां जल शूकके योग	११३८
विदारीकन्द और कौंचकी पूड़ियाँ	१११४	अश्वगन्धादि तैल	,,
चटकाण्डरस—भावित चावलोंकी खीर	१११५	आयुर्वेदका असगन्ध तैल	११३९
उक्तरीतिसे भावित हुए तिलोंकी खीर	,,	असगन्धका उपयोग	११४०
मुरहटी आदि छः अंगोंवाला अमृत	१११६	जलशूक और अश्वगन्धाका स्तनवृद्धिमें उपयोग	,,
शतावरी और गोखरू	,,	दोनोंका चूर्ण साधनपर	११४१
शतावरी, गोखरू और श्रीपर्णी	१११७	बाहु, स्तन, कर्ण और साधनवर्धक योग	,,
गोखरू और जौ	,,	अनारादि तेल	११४२
बाकियोंको जाननेके साधन	१११८	अन्ययोगोंकी ओर इशारा	११४३
ध्यान लायक बात	,,	क्लैब्यहर तैल	,,
करनेयोग्य प्रयोग	१११९	कुप्रयोग अथवा व्यतिक्रमके क्लीबका उपाय	११४४
द्वितीयोऽध्यायः ।		**चित्रयोग प्रकरण ।**	
नष्टरागप्रत्यानयन प्रकरण ।		कन्यामोहन	११४६
चण्डवेगको प्रसन्न करना	११२०	वशीकरणकी अन्य युक्तियाँ	११४७
द्रावण स्तम्भनपर वात्स्यायन	,,	कुछ वशीकरण खानपान आदि	११४८
द्रावणके उपाय	११२१	रागनाशक लेप	११४९
इसपर वैद्यक शास्त्र	११२३	दौर्भाग्य करण	११५०
स्तम्भन योग	,,	योनि संकोचन विधि	११५२
इसपर वैद्यक शास्त्र	११२४	कुचुमारके तालमखाने मिश्रित योग	११५३
औपरिष्टकोंको हितकारी उपदेश	११२५	कुचुमारके कहे तेल व तिल	११५४
अपद्रव्यनिर्माण	११२६	दूसरे योग	,,
दाक्षिणात्योंके यहां अपद्रव्य	११२९	वैद्यक शास्त्रके आचार्य	११५६
शोधन	११३०	प्रसूताका संकोचन	,,
अपद्रव्योंकारूप	११३१	प्रसूताका योनिकष्टनिवारण	११५७
वर्धन योग प्रकरण ।			
बड़ा करनेकी विधि या क्लीबका इलाज	११३२		
केवल शूकका या जलशूक	११३३		
अन्योंके साथ जलशूक	११३४		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
सौभाग्यदायक वरांगलेप	,,	बांझ बननेकी दवा	११८४
लोमशातन, लोम उड़ाना	११५८	फिर जैसेका तैसा	११८५
वरांगका बढ़ाना	११६०	मोहन वंशी, पागल करना	११८६
गर्भनाशक	११६१	अच्छा करना, अदृश्योकरण	११८०
व्यर्थमें करनेसे महापाप है	११६३	पानीका दूध, लोहेका तांबा	११८९
कामीको खींचना	,,	साँप दिखाना, आयुका बढाना	११९०
बाल सफेद करना	११६४	आशीर्वादोंमें भी यह बल है	११९१
इसपर दूसरे आचार्य	,,	वात्स्यायनका तात्पर्य	११९३
बाल काले	११६५	श्रीमहर्षि वात्स्यायनके उपदेश	,,
वैसाही तेल	११६७	कामशास्त्रके सचे ज्ञाता ही ज्ञानी होते हैं	११९४
होठ सफेद	११६८	रागवृद्धिका उपदेश वैसोंके कल्याणके लिये है	११९६
केशोंके यूका आदिकोंको मिटाना	११६९	यथाधिकार प्रयोग	११९७
मदनमंदिर–संस्कार	,,	यह भी आर्ष है	११९८
योनिके रोगोंका इलाज	११७३	वात्स्यायनने इसके योगोंको कैसे देखा	,,
रजचिकित्सा	११७६	मुख्य प्रयोजन	११९९
शरीरादिकी दुर्गन्धिका दूर करना	११७८		
गर्भ रहनेके उपाय	११८२		



इति

कामसूत्रकी–विषयानुक्रमणिका

समाप्ता ।

भार्याधिकारिकं चतुर्थमधिकरणम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

एकचारिणीवृत्त प्रकरण ।

कन्या पुरुषेण संप्रवृत्ता तया पुंसि कथं वर्तितव्यमित्यतो भार्याधिकारिक-मुच्यते । तच्च कन्यासंप्रयुक्तकशेषभूतम् । अन्यथा विशेषाधिकाननुष्ठानात्संयु-क्ताप्यसंप्रयुक्तकैव स्यात् ।

जिस कन्याका पुरुषके साथ विधिविधानपूर्वक विवाह हो गया हो उसे उस अपने पतिदेवके प्रति क्या व्यवहार करना चाहिये, इस बातको बतानेके लिये 'भार्य्याऽधिकारिक' अधिकरणको कहते हैं । यह जिसने पति वरा है उसको अगाड़ीके व्यवहार बताता है, इस कारण यह कन्यासंप्रयुक्तकका ही एक भाग है । यदि विवाहिता वालाके लिये विवाहके बादके वर्तन न बतायें तो पतिके साथ उचितमात्रासे कम ज्यादा व्यवहार कर बैठेगी तो इससे किसी दिन संयुक्ता भी निश्चय ही सहवासविहीन हो जायगी । इस कारण इसे बता देना परमावश्यक है ।

इसे पहिले कहनेका कारण।

भार्या च द्विविधा—एकचारिणी सपत्निका च । तत्र प्राधान्येनैकचारि-णीवृत्तमुच्यते—

भार्य्या दो तरहकी होती हैं—एक तो ऐसी होती है जो पतिकी अकेली ही स्त्री होती है, दूसरी वह होती है जिसकी बहुतसी सौतें होती हैं । इन दोनोंमें सौतोंवाली तो पतिके साथ बर्ताव करनेमें पूरी स्वतन्त्र नहीं है, किन्तु जो एकचारिणी है वह मुख्य है । उसे सौतोंका खटका नहीं है, इस कारण उसीका वृत्त बताते हैं कि—

भार्यैकचारिणी गूढविश्रम्भा देववत्पतिमानुकूल्येन वर्तेत ॥ १ ॥

पतिव्रता भार्य्याको पतिकी परम विश्वासपात्र बनकर पतिके साथ देव-ताओंकी तरह अनुकूलतासे बर्ताव करना चाहिये ॥ १ ॥

---

१ "विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्य्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववद् पतिः ॥"

सदाचारसे रहित, व्यभिचारी और निर्गुण भी पति क्यों न हो, स्त्रीको उसकी अर्चना देवताकी तरह मानकर करनी चाहिये ।—

भार्येति । गूढविश्रम्भा । इतरस्याः कपटव्यवहारः । संभावितत्वात् । 'भर्ता तु देवता स्त्रीणाम्' इति न्यायात् । आनुकूल्येन चित्तानुविधानेनैव । वर्तेते-त्यन्तर्भावितोऽर्थः । शरीरस्थितिविषयमेतत् ॥ १ ॥

अपनी पतिव्रता पत्नी ही परम विश्वासकी पात्र होती है, दूसरीका तो कपट व्यवहार ही होता है । क्योंकि वह हुई नहीं मात्र बनी है । शास्त्रने बताया है कि–'स्त्रियोंका पति ही देवता है' इस न्यायसे उसे पतिको अपना देवता मानना चाहिये । उसके चित्तके अनुसार चलना चाहिये । सूत्रमें 'वर्तेत' यह क्रिया पद है । इसके भीतरका तात्पर्य यही है कि, अपनेको ऐसा रखे जैसे कि सूत्र बता रहा है । यह सूत्र भार्य्याके शरीरकी स्थिति बताता है कि उसे ऐसी बनकर रहना चाहिये ॥ १ ॥

कुटुम्ब सँभालना ।

वृत्तं सूचयति—

यहांसे लेकर अब एकचारिणीके वर्तावोंको कहना प्रारम्भ करते हैं कि—

तन्मतेन कुटुम्बचिन्तामात्मनि संनिवेशयेत् ॥ २ ॥

उसकी रुचिके अनुसार कुटुम्बकी चिन्ताको अपने पर ले ले ॥ २ ॥

तन्मतेनेति यदा तु नायकेनानुज्ञाता । कुटुम्बचिन्तां गृहचिन्ताम् । बाह्यवस्तुविषयमेतत् । आत्मनि संनिवेशयेत्–आत्माधीनां कुर्यात् । यथा-योगं योज्यम् ॥२॥

यदि पति आज्ञा दे दे तो घरकी सब चिन्ताओंको यानी जिस तरह घरमें बाहिरकी चीजें लगती हों उस व्यवस्थाको अपने अधीन कर ले एवम् उचित प्रवन्ध करे । जहां उन्हें खर्चना हो विधिसे खर्च होने दे ॥ २ ॥

घरकी सफाई, देवपूजा और बलि ।

तत्र गृहप्रतिबद्धत्वाद्वृत्तस्य चिन्तामाह—

घरके प्रबन्धको बताते हुए उसके साथ जो २ प्रबन्ध करने चाहियें उन्हें भी बताते हैं, क्योंकि भार्य्या घरमें रहती है, इस कारण उसका बर्ताव घरसे बँधा हुआ है, कि—

—" बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातन्त्रेण कर्तव्यं किंचित्कार्य्यं गृहेष्वपि ॥"

चाहे बालिका, युवती वा वृद्धा ही क्यों न हो, बाहिर तो जहां तहां रहा उसे घरमें भी किसी कार्य्यको स्वतंत्ररूपसे न करना चाहिये ।

वेश्म च शुचि सुसंमृष्टस्थानं विरचितविविधकुसुमं श्लक्ष्णभूमितलं हृद्यदर्शनं त्रिषवणाचरितबलिकर्म पूजितदेवतायतनं कुर्यात् ॥ ३ ॥

+ घरको शुद्ध रखे, स्थान साफ रखे, अनेक तरहके फूल आदि कढ़े रखे, आँगनमें कंकरी आदि न रहने दे, ऐसा रखे जो देखनेमें अच्छा लगे, तीनों सन्ध्याओंमें बलि होनी चाहिये, घरके मंदिरमें ठीक समयपर पूजा कर दे ॥३॥

वेश्म चेति । कुर्यादित्यनेन संबन्धः । सुसंमृष्टं सुशोधितम् । स्थानेषु विरचितानि विप्रकीर्णानि विविधानि कुसुमानि यस्य । श्लक्ष्णभूमितलमिति मसृणभूतलम् । हृद्यं हृदयप्रियं दर्शनं यस्य । त्रिषवणं त्रिसंध्यमाचरितं कारितं बलिकर्म यत्र । देवतायतनं देवगृहम् । तत्पूजितं यस्मिन् ॥ ३ ॥

सूत्रमें 'कुर्य्यात्' पद आया है, जिसका करे रखे आदि अर्थ किया है । इसका सभीके साथ सम्बन्ध है, इसी कारण सबके साथ लगा दिया है । सुसंमृष्टका अर्थ संशोधित है, जिसका 'साफ' अर्थ किया है । जो फूल काढ़नेके स्थान हों उनमें फूल बेल बूटा आदि कढ़े रहने चाहियें । भूमितलका यहां आँगन अर्थ है, श्लक्ष्णका मसृण अर्थ है, जिसका कि चिकना अर्थ होता है पर यह तब ही होगा जब कि कंकरी आदि न हों । जो देखना हृदयको प्यारा लगे उसे हृद्य कहते हैं । त्रिषवणका तीन सन्ध्या अर्थ है, घरमें प्रातः, सायम् और मध्याह्नके समय बलिकर्म होना चाहिये । देवायतन देवमंदिरका

+ इन तीनों सूत्रोंको लेकर कोकाजी महाराजने इनके भावका एक श्लोक रख दिया है, कि—

"युवतिरपि विहाय प्रातिकूल्यं स्वनाथम्
वचनहृदयकायैः पूजयेद्दिष्टदेवम् ।
गृहवसतिमथासौ चिन्तयेद्भर्तृवाचा
प्रतिदिनमतिसृष्टं वेश्म कुर्य्यात्सुशोभम् ।"

इस श्लोकका वही अर्थ है जो पहिले, दूसरे और तीसरे सूत्रका है ।

१ "सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ।
वैश्वदेवं हि नामैतत् सायंप्रातर्विधीयते ॥"

वैश्वदेव यज्ञ साम और सबेरे दोनों समय होता है, इसमें सायंकालके समय पत्नी विना मंत्रके वैश्वदेवबलि कर सकती है । मृच्छकटिक नाटकमें नित्यबलिविधान बड़ी कर्तव्यनिष्ठाके साथ दिखाया है, उसमें चींटियोंको भी दिये जानेवाला नहीं छोड़ा है । इस तरह इस कर्तव्यनिष्ठामें कामसूत्रकारने धर्मशास्त्रका विषय दिखा दिया है ।

नाम है, जहां घरमें ठाकुरजी विराजमान किये हों उस स्थानको सदा ही साफसुथरा और पवित्र रखनेका ध्यान रखे, कभी ऐसा न होने दे कि भगवान्‌की पूजा न हो पाये ॥ ३ ॥

इसपर गोनर्दीय ।

न ह्यतोऽन्यद्गृहस्थानां चित्तग्राहकमस्तीति गोनर्दीयः ४

गोनर्दीय आचार्य्य बताते हैं, कि इस बातको छोड़कर दूसरी कोई भी ऐसी बात नहीं है जो गृहस्थोंके चित्तकी ग्राहक हो ॥ ४ ॥

अतोऽन्यदिति–अत्रोपवर्णितवेश्मनः । चित्तग्राहकं मनोहारि । गोनर्दीय इति पूजार्थम् । अधिकरणेऽधिकृतत्वात् ॥ ४ ॥

पिछले सूत्रमें जिस प्रकारकी घरकी सफाई बताई है, उस घरको छोड़कर दूसरा घर ऐसा नहीं हो सकता जो अच्छा लगे । गोनर्दीय आचार्य्यका ग्रहण पूजाके लिये है, क्योंकि वे इस अधिकरणके विशेषज्ञ हैं, एवम् उन्हींके ग्रन्थोंके आधारपर यह अधिकरण बनाया जा रहा है ॥ ४ ॥

सास, सुसर आदिके साथ औचित्य ।

तत्र वृत्तद्वयं दर्शयन्नाह—

व्याहुलीको पतिके घरकी बने पीछे इन दो बातोंका अवश्य ध्यान रखना चाहिये जिन्हें कि यहां बताते हैं । उनमेंसे एक तो यह है कि—

गुरुषु भृत्यवर्गेषु नायकभगिनीषु तत्पतिषु च यथार्हं प्रतिपत्तिः ॥ ५ ॥

गुरु, भृत्यवर्ग, पतिकी बहिन और उनके पतियोंके साथ योग्यतापूर्वक बर्ताव हो ॥ ५ ॥

गुरुष्विति श्वशुरादिषु । नायकभगिनीषु ननान्दृषु । तत्पतिषु ननान्दृपतिषु । यथार्हं प्रतिपत्तिरिति यथा यस्यां प्रतिपत्तिः । वाक्कायाभ्यामनुष्ठानात् ॥ ५

सास, ससुर आदिकोंमें, ननदोंमें, ननदोओंमें, वे जिस योग्य हों, उनके

---

१ "संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ।
कुर्य्यात् श्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्परा ॥"

घरकी आवश्यकताकी चीजोंको घरमें सँभालकर राखे । सब कामोंमें चतुर रहे । खर्च अधिक न चाहे, पतिकी आज्ञामें रहकर सासुसुरोंके चरणोंको सदा प्रणाम करती रहे ।—

साथ वैसा ही वर्ताव करना चाहिये और उनके साथ वैसी ही बोलचाल, वैसा ही शरीरसे कृत्य करना चाहिये ॥ ५ ॥

उपयोगी वृक्षोंकी वाटिका ।

परिपूतेषु च हरितशाकवप्रानिक्षुस्तम्बाञ्जीरकसर्षपाजमोदशतपुष्पातमालगुल्मांश्च कारयेत् ॥ ६ ॥

पवित्रस्थलमें हरे, वर्तनेमें आनेवाले शाककी क्यारियाँ बना दे । एवम् ईख, जीरा, सरसों, अजमोद, सौंफ और तमालके पोदे लगा दे ॥ ६ ॥

परिपूतेषु चेति पवित्रेषु । हरितं धान्याकार्द्रकादि । शाकं पालङ्क्यादि च । एषां वप्रान्केदारान् । इक्षुस्तम्बानिक्षुविटपान् । जीरकादीञ्शतपुष्पापर्यन्तान्कारयेत् । तत्राजमोदोऽनेनैव नाम्ना प्रतीतः । तमालगुल्मांस्तमालविटपान् ॥ ६ ॥

धनियाँ, अदरख आदि रोज हरे बर्तनेमें आते हैं, इस कारण उन्हें एवम् सूआपालक, मेंथी आदिको अच्छी जगह छोटी २ क्यारियोंमें लगा दे । ईखके वृक्ष और पोंड़ा लगा छोड़े । अदमोदको हिन्दी और संस्कृत दोनोंमें अजमोद ही कहते हैं । तमालके गुल्म यानी तमाखूके पौदोंको भी लगा छोड़े ॥ ६ ॥

कुब्जकामलकमल्लिकाजातीकुरण्टकनवमालिकातगरनन्द्यावर्तजपागुल्मानन्यांश्च बहुपुष्पान्बालकोशीरकपातालिकांश्च वृक्षवाटिकायां च स्थण्डिलानि मनोज्ञानि कारयेत् ॥ ७ ॥

गुलाब वांसा, मोतिया, चमेली, पीले फूलका पीयावांसा, वासन्ती, तगर, कदम्ब, जपा, इनके गुल्म तथा और भी फूलोंके गाच तथा नेत्रवाला, खश, पातालिका इनको वृक्षवाटिकामें लगाये । सुहावने स्थण्डिल वनाये + ॥ ७ ॥

—" राजर्त्विक्स्नातकगुरून् प्रियश्वशुरमातुलान् ।
अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात्पुनः ॥ "

राजा, ऋत्विग्, स्नातक, गुरु, प्रिय, श्वसुर और मामा, यदि एकवर्षके बाद ये घर आयें तो इनका मधुपर्क होना चाहिये, बीचमें नहीं ।

+ कामशास्त्रके महा विद्वान् श्रीमान् कोकाजीने छठे और सातवें सूत्रका अनुवाद इस श्लोकमें किया है कि—

" मरुबकनवमालीमालतीकुन्दमल्ली–
तरुणदशपुष्पा वीरुधः सौरभाढ्याः ।
सुमधुरफलवृक्षा मूलकालाबुभाण्ड–
प्रभृतिविटपिकादीनर्पयेद् वाटिकायाम् ॥ "

तत्र कुब्जकादीनां गुल्मान् । तगरः पिण्डीतगरः । जपा ओड्रपुष्पम् । बहुपुष्पा ये निर्भरं पुष्यन्ति । वालकोशीरयोः पातालिका केदारः । स्थण्डिलान्यवपदिकानि ॥ ७ ॥

ऊपर जिन जिन फूलोंके वृक्षोंको गिनाया है, उनके सभी भेदोंको लगाये । तगर यानी पिण्डीतगर एवम् जपा यानी औण्ड्र अर्थात् एक प्रकारका कुन्द । स्थाण्डिल चबूतरे जिसे कि रोशपही कहते हैं ॥ ७ ॥

मध्ये कूपं वापीं दीर्घिकां वा खानयेत् ॥ ८ ॥

बीचमें कूआ, बावडी और डिग्गी खुदाये ॥ ८ ॥

वापीं समचतुरस्रां पुष्करिणीम्, दीर्घिकामायतचतुरस्रां खानयेत् । वास्तुवशात् ॥ ८ ॥

बराबर चौखूँटी पुष्करिणी (वापी) एवम् लम्बी चौकोर दीर्घिका होती है, इन्हें वास्तुशास्त्रके विधानके अनुसार बनवाये ॥ ८ ॥

संग न करनेयोग्य स्त्रियां ।

भिक्षुकीश्रमणाक्षपणाकुलटाकुहकेक्षणिकामूलकारिकाभिर्न संसृज्येत ॥ ९ ॥

भिखारिन, बौद्ध व जैन संन्यासिनि वा संन्यासिन, तमासे करनेवाली, शकुन परखनेवाली, व्यभिचारिणी और जादूटोना करनेवाली स्त्रियोंके साथ संसर्ग न करे ॥ ९ ॥

भिक्षुकी भिक्षणशीला । श्रमणा क्षपणा प्रव्रजिता रक्तपट्टिका च । कुलटा प्रच्छन्नं खण्डितचारित्रा । कुहका कौतु [क] कारिका । ईक्षणिका विप्रश्निका । मूलकारिका वशीकरणेन मूलेन या कर्म करोति तां (तया) च न संसृज्येत, भर्तुर्विकल्पहेतुत्वात् ॥ ९ ॥

---

१ कोक—" सकृदपि कुलटाभिर्योगिनीभिक्षुकाभिः ।
नटविटघटिताभि र्न संसृजेन्मौलिकाभिः ॥ "

दुराचारिणी, भिखारिन, जोगिन, नट, विट, विदूषक आदिकी स्त्रियां और जादूगारिनियोंसे एक बार भी न मिले । इसका कारण यह है कि ये दूतीकर्म किया करती हैं । धर्मशास्त्रने भी इनके साथका निषेध किया है ।

भिखारिन अनायास घरोंके भीतर पहुँच जाती हैं, ये बेरोकटोक स्त्री और पुरुष दोनोंसे बातें कर लेती हैं। चाहे किसी भी मजहबकी साधुनी हों, उन्हें भी इस बातमें कोई कष्ट नहीं होता। जो ऊपरसे तो अच्छी दीखें पर रोज मिलनेवालोंको गिनती फिरती हों, वे प्रायः स्त्रियोंको खराब करती हैं। नाटिनी आदिका भी यही धन्दा है। शकुन बतानेवाली भी दिल टटोलती फिरती हैं। जो जादूटोना करके किसीको किसीके वश करनेका दम भरती हैं, इनके साथ कभी भी संसर्ग न करे, क्योंकि इनके संगमात्रसे पतिको सन्देह हो जाता है ॥ ९ ॥

पतिको भोजन करानेकी बिधि ।

भोजने च रुचितमिदमस्मै द्वेष्यमिदं पथ्यमिदमपथ्यमिदमिति च विन्द्यात् ॥ १० ॥

पतिके भोजनके लिये इस बातको जानती रहे कि—'यह पदार्थ इसे अच्छा लगता है, यह इसे नहीं रुचता। यह इसे पथ्य एवम् यह अपथ्य है ॥'

भोजने चेति। भोजनकाले रुचिता [दी] नि विन्द्यात् ॥ १० ॥

भोजनके समय भार्य्याको इस बातका अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये १०

आवाज सुनते ही ।

स्वरं बहिरुपश्रुत्य भवनमागच्छतः किं कृत्यमिति ब्रुवती सज्जा भवनमध्ये तिष्ठेत् ॥ ११ ॥

यदि बाहिरसे घर आते हुएके स्वरको सुन ले तो क्या कार्य्य है? ऐसा (मनमें) कहती हुई तयार होकर भवनमें खड़ी हो जाय + ॥ ११ ॥

किं कृत्यमिति। आदिश्यमानकार्यस्यानुष्ठानबुद्ध्या। सज्जा सावधाना। भवनमध्येऽङ्गणके ॥ ११ ॥

जो पतिदेवकी आज्ञा हो उसे 'इसी समय बजा दूं' इस बुद्धिसे सावधान होकर आँगनमें खड़ी हो जाय ॥ ११ ॥

---

१ कोकाजी—" रुचितमिदममुष्मै, पथ्यमेतन्न वेति
प्रतिदिनमपि भर्त्तुर्भोजनेच्छां विदध्यात ॥ "

जो पतिको रुचिकर और पथ्य हो ऐसा भोजन प्रतिदिन बनाकर दे ॥

+ कोकाजी—" वचनमपि निशम्याऽऽगच्छतो वेश्ममध्ये
तदुपकरणसज्जा संवसेदागतस्य ॥ "

घरमें आते हुएका वचन भी सुन ले तो उसके स्वागतके लिये तयार खड़ी हो जाय। इसमें इन्होंने स्वरका अर्थ वचन कर दिया है ॥

पैर धुलाना।

परिचारिकामपनुद्य स्वयं पादौ प्रक्षालयेत् ॥ १२ ॥

नौकरानीको हटाकर स्वयम् पैर धुलाये + ॥ १२ ॥

परिचारिकामिति । पादप्रक्षालनोद्यतामपनुद्यापास्य ॥ १२ ॥

पैर पखारनेको उद्यत हुईको रोककर स्वयम् पतिके पैर धुलाये ॥ १२ ॥

एकान्तमें सिंगरी दीखे।

नायकस्य च न विमुक्तभूषणं विजने संदर्शने तिष्ठेत् ॥१३

एकान्तमें नायककी दृष्टि मैलीकुचैली पर न पड़े ॥ १३ ॥

संदर्शन इत्यग्रतो न तिष्ठेत् । कृतशरीरसंस्कारामदृष्ट्वा वैराग्यमपि स्यात् १३

मैलीकुचैलीको देखकर वैराग्य भी हो जाता है, इस कारण पतिके सामने सदा शृङ्गार करके जाना चाहिये ॥ १३ ॥

अनुचित खर्चमें समझाना।

अतिव्ययमसद्व्ययं वा कुर्वाणं रहसि बोधयेत् ॥ १४ ॥

यदि अत्यन्त खर्च वा बुरे ढंगसे पति खर्च करता हो तो एकान्तमें समझाये * ॥ १४ ॥

अतिव्ययमुचितव्ययादधिकम् । असद्व्ययं यदनर्थिजने प्रतिपाद्यते । रहसि बोधयेत् । लोकमध्ये हि लज्जित एव स्यात् ॥ १४ ॥

यदि पति उचित खर्चसे अधिक खर्च कर डाले अथवा अपने धनको अनर्थकारी वा जिनसे कोई प्रयोजन सिद्ध न हो ऐसे जनोंमें खर्च कर डालता है तो एकान्तमें ही समझाना चाहिये, क्योंकि सबके सामने समझानेसे वह लज्जित होगा ॥ १४ ॥

+ कोका-" चरणयुगलमस्य क्षालयेदात्मनाऽसौ ।"
परिचारिका उपलक्षण है घरकी कोई भी पैर धुलानेको तयार हो उसे हटाकर स्वयम् पत्नीको ही धुलाने चाहियें।

* " सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥"
पति भले ही नाराज हो पर अपने अन्तरात्माको पतिपर प्रसन्न ही राखे। घरके काममें परम प्रवीणता रखे। घरके वर्तन भाण्डे आदि सब साफसुतरे रखे। पर खर्चमें मुक्त हस्त न हो, यानी थोड़ा ही खर्च करना चाहिये।

१ " स रहसि परिबोध्यो वित्तनाशे प्रसक्तः ।"
धनके नाश करनेमें लगे हुएको एकान्तमें गुप्तरूपसे समझाये।

देवदर्शन भी आज्ञासे करे ।

आवाहे विवाहे यज्ञे गमनं सखीभिः सह गोष्ठीं देवताभिगमनमित्यनुज्ञाता कुर्यात् ॥ १५ ॥

वरके घर और कन्याके घर जाना, सखियोंके साथ खानपान बातचीत तथा देवदर्शनके लिये हिलमिलकर जानेमें पतिकी आज्ञा प्राप्त करे + ॥१५॥

आवाहे वरगृहे । विवाहे कन्यागृहे । गोष्ठीं संभूय पानभोजनम् । देवताभिगमनं द्रष्टुमनुज्ञाता कुर्यात् । अन्यथा स्वैरिणीत्याशङ्क्येत ॥ १५ ॥

इन कामोंको पतिकी आज्ञा लेकर करे, यदि विना आज्ञाके करेगी तो पतिको शक होगा कि स्वैरिणी तो नहीं है ॥ १५ ॥

उत्सवके खेलोंमें भी आज्ञा ।

सर्वक्रीडासु च तदानुलोम्येन प्रवृत्तिः ॥ १६ ॥

सब खेलोंमें जैसे पतिकी इच्छा हो उस तरहका वर्ताव करे ॥ १६ ॥

सर्वक्रीडासु चेति यक्षरात्र्यादिषु लोके प्रवृत्तासु तच्चित्तानुविधानेन प्रवृत्तिः १६

लोकमें जो यक्षरात्रि आदि खेल तमाशेके दिन प्रसिद्ध हैं उनमें पतिकी मनोवृत्तिके अनुसार प्रवृत्ति करे ॥ १६ ॥

पश्चात्संवेशनं पूर्वमुत्थानमनवबोधनं च सुप्तस्य ॥ १७ ॥

पतिके पीछे सोना एवम् उसके पहिले उठना चाहिये * ॥ १७ ॥

पश्चात्संवेशनं शयितस्य नायकस्य । पूर्वमुत्थानमनुत्थितान्नायकात् । अहनि यावन्न प्रतिबुध्येत ॥ १७ ॥

जब यह जान ले, कि पति सोगया है तो उसके पीछे नींद ले एवम् दिनमें जबतक वह न जगे उससे पहिले जगकर पहिले ही खड़ी हो जाय॥१७

+ कोकाजी–" अनुमतिमुपलभ्याधिष्ठिताऽन्यत्र यायात् ।"
आज्ञा प्राप्त होनेपर भी किसीको साथ लेकर जाय । इसमें सूत्रसे सूत्रके आशयपर ही 'साथ लेकर जाय' इतनी बात अधिक कही है ।

* कोका–'शयनमनुविदध्याद्भर्तुरुत्थानमग्रे शयिनमपि न मुञ्चेत् ।'
सो०–पतिसे पीछे नारि, सोवे अरु पहिले जगे ।
पति न छोडि कहुँ जाय, नहीं जगावे काम विनु ॥

रसोई घर गुप्त ।

महानसं च सुगुप्तं स्याद्दर्शनीयं च ॥ १८ ॥

रसोई सुगुप्त और देखने लायक रहे ॥ १८ ॥

महानसं सुगुप्तं स्यात् । यथान्य उपरिको न विशति । दर्शनीयं चान्धकराभावात् ॥ १८ ॥

रसोई परदेमें होनी चाहिये, जिससे बाहिरका आदमी उसे देख न सके वह साफसुथरी देखने लायक बनी रहे, उसमें रत्तीभर भी अँधेरा रहना चाहिये ॥ १८ ॥

अपचारपर भी अधिक नहीं।

नायकापचारेषु किंचित्कलुषिता नात्यर्थं निर्वदेत् ॥ १९॥

पतिके अपचारमें कुछ कलुषित तो हो, पर अत्यन्त न बोले ॥ १९ ॥

नायकापचारेष्विति नायकापराधेषु । किंचित्कलुषिता धीरोदात्तत्वख्यापनार्थम् । निर्वदेत् पुनर्मा कार्षीरिति । तत्रापि नात्यर्थं मा भूद्वैलक्ष्यमस्येति १९॥

यदि पतिका कोई खास अपराध उसके सामने आये तो कुछ बिलकुल सूक्ष्म अप्रसन्नसी हो, जिससे पतिको पता चले कि यह बड़ी धीरोदात्त नायिका है। कह दे कि फिर ऐसा न करना; पर अत्यन्त आग्रहके साथ न कहे, क्योंकि ऐसा करनेसे पतिकी बुरी भावना होनेका अंदेशा है ॥ १९॥

जादू टोनाका त्याग ।

साधिक्षेपवचनं त्वेनं मित्रजनमध्यस्थमेकाकिनं वाप्युपालभेत । न च मूलकारिका स्यात् ॥ २० ॥

अधिक्षेपके साथ कहना हो तो मित्रोंके बीच अथवा अकेलेमें कहे, पर मूलकारिका न बने ॥ २० ॥

मित्रजनमध्यस्थं यदि कार्यवशात्साधिक्षेपवचनमुपालभेत । न च मूलकारिका स्यात् ॥ २० ॥

यदि कार्य्यवश पतिसे अधिक्षेपयुक्त वचन कहने हों तो मित्रजनोंके बीच या अकेलेमें कहे, पर जादू टोना आदि करानेवाली व कलिहारी न बने ॥२०॥

सत्स्वप्यपचारेषु युक्तिमाह—

अपचारोंके रहनेपर भी युक्ति बताते हैं, कि—

नह्यतोऽन्यदप्रत्ययकारणमस्तीति गोनर्दीयः ॥ २१ ॥

गोनर्दीय आचार्य्य कहते हैं, कि इस बातके सिवा दूसरा कोई अप्रत्ययका कारण नहीं है ॥ २१ ॥

अत इति मूलकर्मणः । अप्रत्ययकारणमविश्वासकारणम् । गोनर्दीयमतमनुमतम् । अप्रतिषिद्धत्वात् ॥ २१ ॥

इस मूलकर्मके जैसा दूसरा कोई भी कार्य्य अविश्वासका कारण नहीं है, यह गोनर्दीय आचार्य्यका मत है । यह अप्रतिषिद्ध है, इस कारण सबके अनुमत है ॥ २१ ॥

वर्जित कार्य्य ।

दुर्व्याहृतं दुर्निरीक्षितमन्यतो मन्त्रणं द्वारदेशावस्थानं निरीक्षणं वा निष्कुटेषु मन्त्रणं विविक्तेषु चिरमवस्थानमिति वर्जयेत् ॥ २२ ॥

दुर्वाक्य, बुरी नजर, दूसरी ओर मुख करके बातें, द्वारपर खड़े होना, देखना, वाटिकाओंमें सलाह करना और एकान्तमें बहुत समय तक खड़े रहना छोड़ दे * ॥ २२ ॥

दुर्व्याहृतं दुर्मन्त्रितम् । दुर्निरीक्षितमस्निग्धवीक्षणम् । अन्यतो मन्त्रणं तिर्यङ्मुखं कृत्वा भाषणम् । एतत्त्रितयं वैराग्यजननम् । द्वारदेशावस्थानं गृहद्वारस्थितिर्निरीक्षणं च तदुभयमयत्नसाध्यसूचकम् । निष्कुटेष्विति गृहवाटिकायां निर्गत्य कयाचित्सह मन्त्रणम् । विविक्तेषु निर्जनेषु गृहप्रदेशेषु चिरमवस्थानमस्निग्धताजनकं भवेत् ॥ २२ ॥

---

* कोका–"क्वचिदपि निभृते वा द्वारि वा नैव तिष्ठेत
चिरमथ गिरमस्मिन् विप्रियां न प्रयच्छेत,
न विरलजनदेशे मन्त्रयेन्निष्कुटे वा
न पुरुषमथ पश्येन्मन्त्रहेतुं विना च ॥"

निरीक्षणका अर्थ इन्होंने परपुरुषका देखना कर दिया है । 'अन्यतोमंत्रण' का अर्थ कोकाजीके यहां जयमङ्गला जैसा परिस्फुट नहीं दीखता किन्तु वे 'मंत्रहेतुम्' इतना पद अन्तमें दे रहे हैं । इसकी आवृत्ति करके 'अन्यतो मंत्रण' का भाव यह कर देना चाहिये कि यदि टेढा मुख करके कहनेमें कुछ लज्जत पतिको प्रतीत हो तो कहे नहीं तो नहीं । एवम् जिन परिवारके बालकोंको देखना और बोलना चाहिये उनसे तो बोले एवम् बाकी विट वदमाश आदि कोई भी हो, उसकी ओर कभी भी न देखे ।

बुरे बोलनेसे, खुष्क दृष्टिसे देखनेसे, टेढा मुँह करके बोलनेसे पतिको स्त्रीसे वैराग्य हो जाता है। घरके द्वारपर खड़े होने एवम् इधर उधर देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि यह स्त्री विना परिश्रमके पाई जा सकती है। यदि पति अपनी स्त्रीको घरकी वाटिकामें जाकर किसीके साथ सलाह करती देखे एवम् एकान्तमें घरमें बैठी देखे तो संभव है, कि पतिका प्रेम कम हो ॥ २२ ॥

शरीरकी सफाई और श्रृंगार।

स्वेददन्तपङ्कदुर्गन्धांश्च बुध्येतेति विरागकारणम् ॥ २३ ॥

पसीना, दाँतोंका मैल और दुर्गन्धियोंको जाने, क्योंकि यह अरुचिका कारण होता है ॥ २३ ॥

स्वेदादीन्बुध्येतापनयनार्थम्। दन्तपङ्को दन्तमलः। विरागकारणमिति वैराग्यजनकं भवेद्भर्तुः ॥ २३ ॥

यदि जान ले कि पसीना, दाँतोंका मल और दुर्गन्ध आती है तो उन्हें उसी समय दूर कर डाले, क्योंकि इनसे पतिको अरुचि होती है ॥ २३ ॥

बहुभूषणं विविधकुसुमानुलेपनं विविधाङ्गरागसमुज्ज्वलं वास इत्याभिगामिको वेषः ॥ २४ ॥

बहुतसे भूषण, अनेक तरहके फूल, चन्दन और अनेक तरहके अङ्गरागोंसे देदीप्यमान, उज्ज्वल वस्त्र पहिनकर पतिके पास जाय ॥ २४ ॥

नानावर्णकालवशाद्यद्विराजते वर्णतस्तत्तदुपादेयमिति । आभिगामिको नायकाभिगमनप्रयोजनः। तदा हि बहुभूषणादिभिः कालौपयिकेन च रक्तवाससा प्रसाधिता मनोहरेति ॥ २४ ॥

अनेक तरहके रंगोंके समयके अनुसार जो जो रंग करने चाहियें उनका वर्णसे उपादान करना चाहिये। आभिगामिकका तात्पर्य पतिके साथ गमनकरनेका भेष है। उस समय बहुतसे भूषण पहिने हो एवम् समयके अनुसार रँगे वस्त्र पहिने हुई फूलमालाओंसे सिंगरी एवम् चन्दनसे चर्चित होनी चाहिये, क्योंकि ऐसी ही अच्छी लगती है ॥ २४ ॥

प्रतनुश्लक्ष्णाल्पदुकूलता परिमितमाभरणं सुगन्धिता नात्युल्वणमनुलेपनम्। तथा शुक्लान्यन्यानि पुष्पाणीति वैहारिको वेषः ॥ २५ ॥

पतला चिकना छोटा दुकूल हो, परिमित भूषण हों, अतर आदि लगाये हो, साधारण रूपसे चन्दनादि लगे हों तथा दूसरे शुक्लपुष्प हों, यह विहारका भेष है ॥ २५ ॥

प्रतनु श्लक्ष्णमल्पं सूक्ष्मं शोभते वस्त्रम् । परिमितं कर्णयोर्ग्रीवायां च । नात्युद्धतं वर्णकमित्य अंशाभ्यां (?) चेति वैहारिके । यात्राक्रीडाविहारप्रयोगाः ॥ २९ ॥

शरीरपर हलका और पतला तथा चिकना कपड़ा अच्छा लगता है । भूषण कानोंमें तथा ग्रीवामें हों । चन्दन आदि इतना गाढ़ा न लगा रखे हों जो कि बत्ती बनकर कन्धोंपर गिरें । ये यात्रा, क्रीडा और विहारके प्रयोग हैं ॥२५॥

व्रतोपवास ।

नायकस्य व्रतमुपवासं च स्वयमपि करणेनानुवर्तेत । वारितायां च नाहमत्र निर्बन्धनीयेति तद्वचसो निवर्तनम् ॥ २६ ॥

पति जिन व्रत उपवासोंको करे, उन्हें उसके साथ आप भी करे, यदि पति रोके तो कह दे कि इस काममें आप मुझे न रोकें, यह कहकर पतिको मने करनेसे रोक दे ॥ २६ ॥

व्रतं नियमं स्वयमनुकरणेनानुवर्तेत भक्तिख्यापनार्थम् । वारितायां नायकेन व्रतोपवासाभ्याम् । नाहमत्र निर्बन्धनीया निषेधनीयेति वाक्येन नायकवचसो निवर्तनं भक्तेर्नाट्यार्थम् ॥ २६ ॥

पति जिन व्रतनियमोंका पालन करता हो, स्त्रीको भी चाहिये कि अपनी पतिभक्ति दिखानेके लिये उन्हें उसके साथ करे । यदि पति व्रत उपवासोंके करनेसे रोके तो भक्तिको पूरी तरह दिखा देनेके लिये कह दे कि आप करते हैं तो फिर भला मुझे क्यों रोकते हैं ? ॥ २६ ॥

---

१ कोका–"व्रतनियमविधानं स्वेन चास्यानुगच्छेत् ।"
व्रतों और नियमोंके करनेमें पतिका अनुकरण करे ॥

२ "नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं न उपोषणम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गो महीयते ॥"

पतिके विना स्त्रियाँ जुदी यज्ञ (याग) नहीं कर सकतीं एवं न उसकी आज्ञाके विना व्रत उपवास ही कर सकती हैं,केवल उनसे पतिकी सेवा होती है, इसीसे स्वर्ग प्राप्ति हो जाती है। पतिकी आज्ञा व पतिके साथ इन कामोंको किया जा सकता है ।

मृद्विदलकाष्ठचर्मलोहभाण्डानां च काले समर्घग्रहणम् २७

× मिट्टी, बाँस, काठ और लोहेके बर्तनोंके समयमें अल्प मूल्यमें अच्छी चीज खरीद लेनी चाहिये ॥ २७ ॥

मृद्भाण्डं घटादि । विदलभाण्डं पिटकादि । काष्ठभाण्डं पीठखट्वादि । लोहभाण्डं ताम्रादिमयम् । काल इत्युपयोगकाले । तत्रापि समर्घं प्राप्यते ॥ २७ ॥

मिट्टीके घड़े आदि, बांसकी पिटारी आदि, पीढा, खाट आदि, लोहेके तवे एवम् ताँबे और पीतलके वर्तन आदि सस्तेके समयमें उपयोगके समयके लिये अच्छे और सस्ते मिलें तो खरीद ले ॥ २७ ॥

उपयोगी वस्तुओंका संग्रह ।

*** तथा लवणस्नेहयोश्च गन्धद्रव्यकटुकभाण्डौषधानां च दुर्लभानां भवनेषु प्रच्छन्नं निधानम् ॥ २८ ॥**

नमक, स्नेह, गन्धद्रव्य, कटुक इनके बर्तन, औषध और दुर्लभ वस्तुओंको छिपाकर रख दे ॥ २८ ॥

लवणं सैन्धवादि । स्नेहा घृततैलवसामज्जानः । गन्धद्रव्यं तगरादि । कटुकं तुम्ब्यादि । औषधं द्विपञ्चमूलादि । दुर्लभा ये न तत्रत्याः । अपि तु दुःखेन लभ्यन्ते । प्रच्छन्नं निधानं यत्र तानि भवन्ति, न विनश्यन्ति वा ॥ २८ ॥

सैंधा नमक आदि, घृत, तेल, वसा, मज्जा, तगर आदि गन्ध द्रव्य, तुम्बी आदि कडुईचीजें, द्विमूल, और पंचमूल आदि इन वस्तुओंको एवम् जो वस्तु कष्टसे मिलें, उन्हें जिनमें न नष्ट हों उन बर्तनोंमें भरकर छिपाकर रख दे ॥ २८ ॥

× कोका-"सुघटितबहुभाण्डं काष्टमृच्चर्मलोहैः ।
समयमभिसमीक्ष्य प्राददीताल्पमूल्यान् ॥"

जिस समय ये चीजें अच्छी एवम् सस्ती मिलें, उस समय खरीद करके रख ले और तर्जाके समय इन्हें बर्ते ।

* कोका-"निभृतमसुलभानि स्थापयेद् भेषजानि ।"

सूत्रके कहे छिपाकर रखनेका असुलभ दवाइयोंके साथ है, कि घरमें नमक आदि चीजोंको भी विधिके साथ रखे, किन्तु जो दवाइयाँ कठिनतासे प्राप्त हों तथा परम उपयोगी हों उन्हें विधिके साथ छिपाकर रख दे ।

मूलकालुकपालङ्की-दमनकाम्रातकैर्वारुकत्रपुसवार्ता-कर्कूष्माण्डालाबुसूरणशुकनासास्वयंगुप्तातिलपर्णिका-ग्निमन्थलशुनपलाण्डुप्रभृतीनां सर्वौषधीनां च बीज-ग्रहणं काले वापश्च ॥ २९ ॥

मूली, अरवी या आलू, पालक, दौना, आँवड़ा, ककड़ी, रंगके पौधे, बैंगन, कासीफल, तूंबा, जमीकन्द, सोनापाठा, कौंच, खंभारी, अरणी, लहसन, प्याज और सब ओषधियोंके बीज सँभालकर रखे एवम् बोनेके समय बोये ॥

मूलकादीनां च बीजग्रहणमिति । एर्वारुकः कर्कटिका । अलाबुस्तुम्बी । सूरणः कन्दः । शुकनासा स........ । स्वयंगुप्ता कपिकच्छूः । तिलपर्णिका काश्मरी । अग्निमन्थोऽनेनैव नाम्ना प्रथितः । पलाण्डुर्लशुनाकारो लोहितः॥ २९

टीकाकारने एर्वारुकका पर्य्याय कर्कटिका दिया है एवम् अलाबूका तुम्बी इन दोनोंको ककड़ी और तुम्बी कहते हैं। सूरण कन्द है, जिसका जमीकन्द अर्थ किया है। सुकनासाका सोनापाठा अर्थ किया है । स्वयंगुप्ता कपिकच्छू, जिसका कौंच अर्थ किया है। तिलपर्णिका रक्तचन्दनके पर्य्यायोंमें आया है पर इन्हें इसका काश्मरी अर्थ इष्ट है। जिसका खंभारी अर्थ किया गया है । अग्निमन्थ तो लोकमें भी इसी नामसे प्रसिद्ध है। पलाण्डु भी लहसन जैसा छोतकोंवाला पर लाल होता है ॥ २९ ॥

गुप्तको प्रकट न करना ।

स्वस्य च सारस्य परेभ्यो नाख्यानं भर्तृमन्त्रितस्य च॥३०

अपना सार और पतिकी सलाहोंको दूसरोंसे न कहे ॥ ३० ॥

सारस्य द्रव्यस्य परेभ्यो नाख्यानं 'धनायुषी गुप्ततमे कार्ये' इति वचनात् । भर्तृमन्त्रितस्य च नाख्यानं मा ज्ञासीद्भिन्नरहस्येति ॥ ३० ॥

अपने धनको किसीको न बताये, क्योंकि—'धन और आयु अत्यन्त गुप्त रखने चाहिये ' ऐसा शास्त्रकारोंका वचन है। पतिने जो गुप्त बात कही हो उसको भी किसीसे न कहना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे पति जान जायगा, कि यह गुप्त बातोंको छिपा नहीं सकती, पतिका ऐसा भाव होना स्त्रीके लिये अच्छा नहीं है ॥ ३० ॥

बराबरवालियोंमें आधिक्य ।

समानाश्च स्त्रियः कौशलेनोज्ज्वलतया पाकेन मानेन तथोपचारैरातिशयीत ॥ ३१ ॥

बराबरकी स्त्रियोंको, कौशलसे, उज्ज्वलपनेसे, पाकसे, मानसे और उपचारोंसे उलाँघ जाय ॥ ३१ ॥

आत्मनोऽधिकत्वख्यापनार्थम् । मानेन मनस्वितया । उपचारैर्भर्तरि क्रियमाणैः ॥ ३१ ॥

जो स्त्रियाँ बराबरकी हों उनसे अपनेमें अधिकता दिखानेके लिये उन्हें स्वाभिमान आदि गुणोंमें एवम् पतिमें वे जो उपचार करती हैं उनमें मात दे दे ३१

सांवत्सरिकमायं संख्याय तदनुरूपं व्ययं कुर्यात् ॥ ३२ ॥

सालभरकी अपनी आयकी संख्या बाँधकर उसके अनुसार खर्च करना चाहिये ॥ ३२ ॥

तदनुरूपम् आयानुरूपं कालयापनार्थम् ॥ ३२ ॥

जो अपनी सालभरकी आमदनी हो उसके अनुसार ही अपना खर्च भी रहना चाहिये ॥ ३२ ॥

संग्रहकी व्यवस्था ।

भोजनावशिष्टाद्गोरसाद्घृतकरणम् तथा तैलगुडयोः । कर्पासस्य च सूत्रकर्तनम् सूत्रस्य वानम् । शिक्यरज्जुपाशवल्कलसंग्रहणम् । कुट्टनकण्डनावेक्षणम् । आमचामण्डतुषकणकुट्यङ्गाराणामुपयोजनम् । भृत्यवेतनभरणज्ञानम् । कृषिपशुपालनचिन्तावाहनविधानयोगाः । मेषकुक्कुटलावकशुकशारिकापरभृतमयूरवानरमृगाणामवेक्षणम् । दैवसिकायव्ययपिण्डीकरणमिति च विद्यात् ॥ ३३ ॥

भोजनसे बाकी बचे गोरससे घी तथा ईखसे गुड़ एवम् सरसों आदिसे तेल निकालना चाहिये । कपासके सूत कातना एवम् सूतका वान बनाना चाहिये । छीका, रस्सी, पाश और वल्कल रखना, कूटना, दरना, छरना, फटकना और देखना, भातका माँड़ तुष, कण, कुटी और अंगारोंका उपयोग करना । नोकरकी नोकरी और भोजनका ज्ञान रखना, खेती और

---

१ कोका—"व्ययमवहितचिन्ताचिन्तितायं च कुर्य्यात ॥"
सावधानीके साथ आयव्यय समझकर खर्च करे ।

पशुओंके पालनकी चिन्ता, वाहनोंके करनेके योग, मेंढा, मुरगा, लवा, तोता, मैना, कोयल, मोर, बन्दर और मृगोंका देखना, दिन भरके आय-व्ययका हिसाब रखना इन बातोंको अवश्य जान ले ॥ ३३ ॥

घृतकरणमिति यज्ञादिषु ब्राह्मणान्भोजयित्वा यदवशिष्टं तस्माद् घृतकरणं मथितं चापरं भवति । तैलगुडयोः करणं सर्षपेक्षुकाण्डपीडनात् । कर्पासस्य सूत्रकरणम् । वानमाच्छादनार्थम् । शिक्यस्य भाण्डारोपणार्थम् । रज्ज्वा जलोद्धरणार्थम् । पाशस्य पशुबन्धनार्थम् । वल्कलस्य रज्ज्वाद्यर्थं संग्रहणम् । कुट्टनं धान्यानाम् । कण्डनं तण्डुलानाम् । तयोरवेक्षणं परीक्षणम् । आचामस्य मण्डस्य च पानार्थं चेटिकादिषूपयोजनम् । तुषाणां रन्धनलेपनादिषु । कणानां क्षुद्रतण्डुलानां कुक्कुटादिषु । कुटीनां तण्डुलपरागाणां गोमेषादिषु । अङ्गाराणां महानसादुत्पन्नानां लोहभाण्डकरणादिषु । भृत्या ये बहिरन्तः कर्मसु नियुक्ताः । तेषां वेतनं प्रतिमासं प्रतिवर्षं वा यो निबन्धः भरणं प्रतिदिनं भग्नकं (?) तयोर्ज्ञानं देशकालकर्मवशेन । कृषिपशुपालनचिन्तेति कर्षणवापनरोपणादिप्रत्यवेक्षणम् । प्रत्यहायव्ययस्य पिण्डीकरणमेकीकरणमिति । विद्यादित्येतद् घृतकरणादि ॥ ३३ ॥

यज्ञ आदिकोंमें ब्राह्मणभोजन करानेके बाद जो दहीके घोलसे बच जाय उससे मक्खन निकालकर, घी बना ले । गोरस अलग है और मथित (तक्र) घोलसे दूसरी वस्तु है । सरसोंका तेल और ईखका गुड पिलवाकर निकाल ले । कपासको ओट और धुनाकर कात ले, सूतका वस्त्र बनवानेके लिये बान बनवा ले । बर्तन रखनेके लिये छीका बनाये । पानी भरनेके लिये रज्जु रखे । पशु बांधनेके लिये रस्सा बनवाये। वल्कलको रज्जू आदि बनानेके लिये रख दे । धानोंका कूटना, तण्डुलोंका छरना, इन दोनोंकी पहिचान । भातके माँडको चेली आदिको पीने दे देना । तुषाओंका रांधने एवम् कुटी आदिके ऊपर डालना । तण्डुलोंके छोटे कणोंको मुरगे आदिको चुगा देना । रसोईमें जो कोला हों उन्हें लोहेके बर्तन आदिमें रख देना । जो नौकर घरके बाहिर वा भीतर नियुक्त हैं उनकी प्रतिसाल या प्रतिमासकी जो वेतन हो उसकी जानकारी कि इस वेतनके देनेका देश, काल और काम है वा नहीं एवम् जिनका भोजन भी अपने यहां होता है उनके भोजनका भी ध्यान रखना चाहिये। खेत जोतना बोना अन्नके रोप देनेका भी ध्यान हो उसे देखे। प्रतिदिनकी आमदनी और खर्चका हिसाब रखे । ये बातें भार्य्याको अवश्य जाननी चाहियें ॥ ३३ ॥

उतरे वस्त्रोंकी व्यवस्था ।

तज्जघन्यानां च जीर्णवाससां संचयस्तैर्विविधरागैः शुद्धैर्वा कृतकर्मणां परिचारकाणामनुग्रहो मानार्थेषु च दानमन्यत्र वोपयोगः ॥ ३४ ॥

पतिके उतरे हुए कपड़ोंको इकट्ठा कर ले, उन्हें धुला ले एवम् रंगनेके योग्य जो हों उन्हें रंग ले । जिन्होंने कुछ अच्छे काम किये हों उन नोंकरों-पर उनसे कृपा तथा उनके सम्मानमें उन्हें दे देना है, जो देने लायक न हों उनका दूसरे काममें उपयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥

तज्जघन्यानामिति नायकोपभुक्तानाम् । तैः संचितैः कृतकर्मणामिति यैः कर्म-कृतम् । मानार्थेषु चेति मान एवार्थो येषाम् । ते हि तैर्दत्तैर्मानिता भवन्ति । अन्यत्र वेति दीपवर्त्यादिषु ॥ ३४ ॥

जिन वस्त्रोंको पतिने पाहिनना छोड़ दिया हो, स्त्रीको उन वस्त्रोंको इकट्ठा कर रखना चाहिये । जिन्होंने सन्मान योग्य कार्य किये हों उनके सन्मानके कार्यमें लाना चाहिये, क्योंकि इनके देनेसे उनका सन्मान हो जाता है । जो किसी भी कामके न रहे हों उन्हें दीयेकी बत्ती वा आग जलाने आदिके ही कामकें लाये ॥ ३४ ॥

पेयकी सँभाल ।

सुराकुम्भीनामासवकुम्भीनां च स्थापनं तदुपयोगः क्रयविक्रयावायव्ययावेक्षणम् ॥ ३५ ॥

सुरा और आसवकी कुंभियोंका रखना और उनका उपयोग करना, बेचना खरीदना तथा नफा नुकसान देखना ॥ ३५ ॥

स्थापनमिति प्रच्छन्नम् । तदुपयोग इति कार्यवशात्सुरादीनामुपयोजनम् । क्रयविक्रयौ समर्घमहर्घतया । आयव्ययावल्पमहत्तयावेक्षेत ॥ ३५ ॥

यदि घरमें चलता हो तो सुरा और आसवकी कुम्भियोंको छिपाकर रख देना और जब उनकी आवश्यकता पड़े तव निकालकर वर्तना, सस्तेमें खरीदना और महँगे बेचना अपनी नफा नुकसानी तथा आमदनी खर्चके कम ज्यादाका हिसाब देख ले ॥ ३५ ॥

पतिके मित्रोंसे व्यवहार ।

नायकमित्राणां च स्रगनुलेपनताम्बूलदानैः पूजनं न्यायतः ॥ ३६ ॥

पतिके मित्रोंका उचित रीतिसे माला, चन्दन और पान आदिसे सत्कार करना चाहिये ॥ ३६ ॥

न्यायत इति गुणजातिवयोऽपेक्षया । पूजनं स्वीकरणार्थं परिचयधर्मार्थं च ३६

मित्रोंके गुण, जाति और आयुके अनुसार माला आदिसे सत्कार करे, कि वे प्रसन्नताके साथ ले लें, उनसे परिचय हो जाय । इसम धर्म भी है और अर्थ भी है ॥ ३६ ॥

साथ सुसरादिसे बातें ।

श्वश्रूश्वशुरपरिचर्या तत्पारतन्त्र्यमनुत्तरवादिता परिमितापचण्डालापकरणमनुच्चैर्हासः तत्प्रियाप्रियेषु स्वप्रियाप्रियेष्विव वृत्तिः ॥ ३७ ॥

सास सुसरोंकी सेवा, उनकी आज्ञा मानना, उन्हें उत्तर न देना, शान्तताके साथ परिमित बोलना और धीरेसे हँसना चाहिये ॥ ३७ ॥

तत्पारतन्त्र्यं तद्वचनानुष्ठानात् । अनुत्तरवादिता तयोः प्रत्युत्तरं न देयम् परिमिताप्रचण्डालापकरणमिति तयोरग्रतः स्वल्पं च मृदु च ब्रूयात् । अनुच्चैर्हासस्तत्समीपे । तत्प्रियाप्रियेष्विति तयोरिष्टानिष्टेषु स्वप्रियाप्रियेष्विव वृत्तिर्यथात्मनः प्रियाप्रियौ भवतः ॥ ३७ ॥

सास, सुसर जैसे कहें वैसे चलना, जो कुछ वे कहें सो सुन लेना, उन्हें उत्तर न देना, वाणीमें सरसता हो, एवम् शब्द परिमित हों । उनके सामने इसी रीतिसे बोलना चाहिये । उनके सामने जोरसे न हँसना चाहिये । उनके प्यारेको प्यारा तथा जिसके साथ उनका प्यार न हो, उसके साथ ऐसा वर्ताव करे जो वह अपना भी अप्रिय हो जाय ॥ ३७ ॥

भोगेष्वनुत्सेकः ॥ ३८ ॥

भोगोंके विषयमें अभिमान न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

भोगेषु महत्स्वपि सत्स्वनुत्सेको लाघवपरिहारार्थं चित्तविकारो न कर्तव्यः ३८

चाहे बड़े २ आराम भी क्यों न मिलें पर चित्तमें विकार न लाना चाहिये, क्योंकि उनसे लघुता प्रतीत होती है ॥ ३८ ॥

परिवार व भृत्योंके साथ वर्तन ।

परिजने दाक्षिण्यम् ॥ ३९ ॥

परिवारके सभी आदमियोंके साथ अनुकूलताका वर्ताव रखना चाहिये ३९

परिजनलोकस्य सर्वदा दाक्षिण्यमुपसंग्रहार्थम् ॥ ३९ ॥

उनके साथ सदा अनुकूल वर्तनेसे वे अपने बन जाते हैं ॥ ३९ ॥

नायकस्यानिवेद्य न कस्मैचिद्दानम् ॥ ४० ॥

पतिके विना बताये किसीको कोई चीज न दे ॥ ४० ॥

अनिवेद्य न कस्मैचिद्दानं सपुत्राया अपि स्वातन्त्र्यपरिहारार्थम् ॥ ४० ॥

चाहे पुत्रवती भी हो पर विना पतिकी आज्ञाके किसीको कोई चीज न दे, क्योंकि–ऐसा करनेसे स्वतंत्रता मालूम होगी ॥ ४० ॥

स्वकर्मसु भृत्यजननियमनमुत्सवेषु चास्य पूजनमित्येकचारिणीवृत्तम् ॥ ४१ ॥

नोकरोंको उनके कामोंमें लगाये रहे एवम् त्योहार वार पर उनका सन्मान करे। यह एकचारिणीका वर्तन पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

स्वकर्मस्विति यो यत्र नियुक्तस्तत्र तस्य नियमनं कर्मणां निपातनार्थम् (?) । अस्येति भृत्यजनस्य । पूजनं पानभोजनादिना । एकचारिणीवृत्तं द्वात्रिंशं प्रकरणम् ॥ ४१ ॥

जो जिस कामके लिये रखा है, उसे उसी काममें लगाये रहे, जिससे काम खराव न हो। उन्हें त्योहार वारके दिन अपने यहां भोजन, पान कराना चाहिये। यह एकचारिणीका वर्ताव पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

प्रवासचर्य्या प्रकरण।

एकचारिण्याः संनिहिते नायके वृत्तमुक्तम्, प्रोषिते तु तद्वृत्तशेषभूता प्रवास चर्यारभ्यते—

पतिके पास रहते तो एकचारिणीकी चर्य्या बता दी पर जब पति विदेश गया हो उस समयकी तो परिचर्य्या बताई ही नहीं है वह तो अभी बाकी ही है, अतः इस प्रकरणमें उसको भी बताते हैं,—

नियतवृत्ति व व्रतोपवास।

प्रवासे मङ्गलमात्राभरणा देवतोपवासपरा वार्तायां स्थिता गृहानवेक्षेत ॥ ४२ ॥

पतिके विदेश जानेपर सौभाग्य चिह्नमात्र धारण किये, देवताओंके उपवासोंमें लगी हुई, पतिकी बातोंका पालन करती हुई घरको देखे ॥ ४२ ॥

वार्तायां स्थितेति नायकवार्तान्वेषणपरेत्यर्थः । गृहानवेक्षेतेति तात्स्थ्यात्कर्माण्याह ॥ ४२ ॥

पति जो वातें वता गया था उनके खोजने या पालन करनेमें लगी हुई घरको देखे यानी घरके कामोंको देखे, क्योंकि सूत्रका घर शब्द अपनेमें रहने या होनेके सम्बन्धसे घरके कामोंको बताता है ॥ ४२ ॥

सास ससुरके समीप शयन।

शय्या च गुरुजनमूले। तदभिमता कार्यनिष्पत्तिः। नायकाभिमतानां चार्थानामर्जने प्रतिसंस्कारे च यत्नः॥४३

सास सुसरके पास खाट, उनके अभिमत कार्य्यकी निष्पत्ति एवम् पतिके प्यारे पदार्थोंको इकट्ठे करने और रखानेमें प्रयत्न करना चाहिये॥ ४३ ॥

गुरुजनमूल इति श्वश्रूजनसमीपे शयनमात्मविशुद्धयर्थम्। तदभिमतेति गुरुजनाभिमतस्य कार्यस्यानुष्ठानमानुकूल्यख्यापनार्थम्। अर्जने प्रयत्न इति नायकस्य येऽभिमता न च तेनार्जितास्तेषाम्॥ ४३ ॥

उनके वीचमें सोनेसे अपनी हरतरह निर्दोषता रहती है। उनके इष्टकार्य्यके कर देनेसे उन्हें यह प्रतीत होता है, कि वहू हमारे बड़े अनुकूल है। जो पतिको अभिमत यानी इष्ट हों उन्हें इकट्ठा करने एवम् उसके मनोनीत पदार्थोंके रखानेसे, आनेपर पतिको प्रसन्नता होती है॥ ४३ ॥

कथित व्यय।

नित्यनैमित्तिकेषु कर्मसूचितो व्ययः। तदारब्धानां च कर्मणां समापने मतिः॥ ४४ ॥

नित्य नैमित्तिक कार्य्योंमें उचित या पतिका बताया हुआ ही व्यय हो। पतिने जिन कार्य्योंका आरंभ किया हो उनके समाप्त करनेमें ही मति करे॥४४

नित्यं कर्माशनपानादि। नैमित्तिकं कर्म बालकोत्सवादि। उचितो व्ययो यावता विधिः संपद्यते, नायककल्पितो वा। तदारब्धानामिति नायकारब्धानां देवकुलोद्यानादिकर्मणां समापने मतिः। येन प्रकारेण निष्पद्यते तथा कार्यमित्यर्थः॥ ४४ ॥

भोजन पान आदिके रोजके खर्च और बालकोंके उत्सव आदि नैमित्तिक खर्च उचित रीतिसे हों। जितनेमें विधि पूरी हो जाय या पति बता गये हों

तो उनके कथनके अनुसार खर्च हो । पतिने जिन देवमंदिर या बागबगीचोंका बनवाना प्रारंभ कर दिया हो उसके पीछे उनके पूरे करनेमें मति राखे; जिस तरह कि वे पूरे हो जायँ ॥ ४४ ॥

मा बापोंके यहां साथ जाना व शीघ्र आना ।

ज्ञातिकुलस्यानभिगमनमन्यत्र व्यसनोत्सवाभ्याम् । तत्रापि नायकपरिजनाधिष्ठिताया नातिकालमवस्थानमपरिवर्तितप्रवासवेषता च ॥ ४५ ॥

मा बापोंके यहां व्यसन और उत्सवके मौकेके विना न जाय । इसमें भी पतिकें यहांका आदमी साथ ले जाय । फिर भी अधिक समय न लगाये । उत्सवमें भी प्रोषितपतिकाओंका ही भेष राखे ॥ ४५ ॥

ज्ञातिकुलस्य पितृगृहस्य । अनभिगमनं कारणं विना । तत्रापि व्यसनोत्सवे । नायकपरिजनाधिष्ठिताया गमनमात्मविशुद्ध्यर्थम् । नातिकालमवस्थानमिति नातिचिरकालमवस्थानं श्वशुरकोपभयात् । अपरिवर्तितप्रवासवेषता चेत्युत्सवमधिकृत्येदं वचनम् ॥ ४५ ॥

विना कारण माबापोंके यहां न जाना चाहिये । कारणोंमें भी उत्सव या मरे गिरेके मौकेपर जाय । वहांकी भी सफाईके लिये कोई अपने साथ ले जाय । वहां यदि ज्यादा ठहरेगी तो श्वसुर जी नाराज होंगे । मरे गिरेके समय यदि प्रोषित पतिकाका भेप हो तो उचित ही है, किन्तु उत्सवके समयमें भी वही हो, इसी लिये सूत्रमें कहा गया है ॥ ४५ ॥

गुरुजनाज्ञापित उपवास व व्यापार ।

गुरुजनानुज्ञातानां करणमुपवासानाम् । परिचारकैः शुचिभिराज्ञाधिष्ठितैरनुमतेन क्रयविक्रयकर्मणा सारस्यापूरणं तनूकरणं च शक्त्या व्ययानाम् ॥ ४६ ॥

सास सुसरोंको पूछकर उपवास करे । आज्ञाकारी ईमानदार नौकरोंके हाथोंसे वेचा खरीदी करके धनकी कमीको पूरा करे । शक्तिके अनुसार खर्च कम कर दे ॥ ४६ ॥

गुरुजनानुज्ञातानां करणं स्वातन्त्र्यपरिहारार्थम् । क्रयविक्रयकर्मणेति वणिज्याधर्मेण । सारस्यापूरणम् द्रव्यस्याभिवर्धनम् । तनूकरणं चेति कृशीकरणम् ।

शक्त्या व्ययानामिति कार्यवशाद्यदि व्ययस्य महत्ता स्यात्तदा कृशं सारं कुर्यादित्यर्थः ॥ ४६ ॥

यह न उन्हें प्रतीत हो कि आजाद है, इस कारण पूछकर ही व्रतादिकोंको करे। वणिज करके धन बढ़ाना चाहिये। खर्चको कम करना चाहिये। यदि कम करनेकी जरूरत हो। क्योंकि परिमितसे अधिक खर्च होगा तो धनकी कमी होना अवश्यंभावी है ॥ ४६ ॥

प्रोषितपतिकाकी स्थितिमें ही प्रथमदर्शन ।

आगते च प्रकृतिस्थाया एव प्रथमतो दर्शनं दैवतपूजनमुपहाराणां चाहरणमिति प्रवासचर्या ॥ ४७ ॥

पतिके आनेपर पहिलीवार उसे प्रोषितपतिकाके रूपमें दीखे। आनेपर देवपूजन करे, भेंट चढ़ाये। यह प्रवासचर्य्या पूरी हुई ॥ ४७ ॥

आगते चेति–प्रवासात्प्रत्यागते नायके। प्रकृतिस्थाया इति प्रवासवेषस्थाया एव प्रथमतो दर्शनं स्यात्स्वरूपख्यापनार्थम्। न पुनरागत इत्यात्मानं प्रसाधयेत्। देवतापूजनं सहपरिजनेन। उपहाराणामुपयाचितकानाम्। आहरणं दानं देवताभ्यः। प्रवासचर्या त्रयस्त्रिंशं प्रकरणम् ॥ ४७ ॥

जब पति विदेशसे बाहिर आजाय तो उसकी दृष्टिमें प्रोषितपतिकाके भेषमें आनेसे पति जान जायगा कि यह मेरेसे पीछे इसी भेषमें रही है यह न करे कि पतिके आनेको सुनकर अपना शृङ्गार करने लग जाय। कुटुम्बके साथ देवपूजन करे। जो देवताओंकी भेंट बोली हो उसे चढ़ाना चाहिये। यह प्रवासचर्य्या नामक ३३ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

उपसंहार ।

प्रकरणद्वयोपसंहारणार्थमाह—

एक चारिणीकी चर्य्या और उसकी प्रवासचर्य्या इन दोनों प्रकरणोंका उपसंहार करते हैं कि—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

तद्वृत्तमनुवर्तेत नायकस्य हितैषिणी ।
कुलयोषा पुनर्भूर्वा वेश्या वाप्येकचारिणी ॥

धर्ममर्थं तथा कामं लभन्ते स्थानमेव च ।
निःसपत्नं च भर्तारं नार्यः सद्वृत्तमाश्रिताः ॥ ४८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे भार्याधिकारिके चतुर्थेऽधिकरणे एकचारिणीवृत्तं प्रवासचर्या च प्रथमोऽध्यायः ।

इस विषयमें दो श्लोक हैं कि नायकका शुभ चाहनेवाली होकर एकचारिणीको सदाचारका पालन करना चाहिये, चाहे वह कुलयुवती हो या पुनर्भू हो वा वेश्या हो । स्त्रियाँ सद्वृत्त पर चलकर धर्म, अर्थ, काम, स्थान और भर्ताको निःसपत्न पा लेती हैं ॥ ४८ ॥

सदिति न कपटेनानुवर्तनमिति दर्शनार्थम् । अस्मिन्वृत्ते नायिकात्रयमधिकृत्याह—कुलयोषेति । अन्यैर्नोढा (अनन्योढा) कुलयोषिदित्युच्यते । वृत्तानुवर्तने फलमाह—धर्ममिति । स्थानं प्रतिष्ठानम् । निःसपत्नं निष्कण्टकम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां भार्याधिकारिके चतुर्थेऽधिकरणे एकचारिणीवृत्तं प्रवासचर्या च प्रथमोऽध्यायः ।

जो एकचारिणी अपने भर्ताके साथ निष्कपट व्यवहार रखती है, उसे ये लाभ होते हैं; इस बातको दिखानेके लिये 'सद्वृत्त' का अनुवर्तन बताया है । यह एकचारिणी तीनों नायिकाओंका वृत्त है । अनन्यपूर्वा विवाहके बाद कुलयुवती कहाती है । उसके धर्म आदि फल है । स्थानका अर्थ प्रतिष्ठा तथा निष्कपटका निष्कण्टक अर्थ है ॥ ४८ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म—तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके प्रथम अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

सौतोंके साथ बड़ीके बर्तावका प्रकरण ।

सैव यदा सपत्नीभिर्युज्यते तदा कथं वर्तितव्यमिति सपत्नीषु ज्येष्ठावृत्तमुच्यते ।

यदि वही एकचारिणी सौतोंसे संयुक्त हो जाय तो उसे कैसा बर्ताव करना चाहिये इस बातको लेकर 'सौतोंके साथ बड़ीका बर्ताव' कहते हैं ।

सौतें होनेका कारण।

तत्र सापत्नककारणमाह—

और बातके कहनेसे पहिले इस बातपर भी विचार कर लेना आवश्यक है, कि उसकी सौतें होती किन कारणोंसे हैं ? अतः सबसे पहिले उन कारणोंपर भी विचार करते हैं, कि—

जाड्यदौःशील्यदौर्भाग्येभ्यः प्रजानुत्पत्तेराभीक्ष्ण्येन दारिकोत्पत्तेर्नायकचापलाद्वा सपत्न्यधिवेदनम् ॥ १ ॥

जाड्य, दुःशील, दुर्भाग्य, सन्तानके न होने एवम् वारंवार लड़कियोंके पैदा होनेके तथा नायककी चंचलताके कारण बड़ीको सौतोंकी वेदना भोगनी पड़ती है ॥ १ ॥

जाड्यं शाठ्यम् । दौःशील्यं चारित्रखण्डनात् । प्रजानुत्पत्तेर्वन्ध्यत्वात् । अभीक्ष्णेन दारिकोत्पत्तेः ॥ १ ॥

शठता (मूर्खता) का नाम जाड्य है । चारित्रके खण्डन करनेसे शील विगड़ता है । यदि वन्ध्यापनेका दोष होगा तव ही सन्तान पैदा न होगी । वारंवार बालिकाओंके उत्पन्न होनेसे नायकको उससे सुत पैदा करनेकी आशा नहीं रहती । उसकी चंचलता तो सौतोंका कारण है ही ॥ १ ॥

विज्ञ बड़ी स्त्रीका कर्तव्य।

तदादित एव भक्तिशीलवैदग्ध्यख्यापनेन परिजिहीर्षेत् । प्रजानुत्पत्तौ च स्वयमेव सापत्नके चोदयेत् ॥ २ ॥

स्त्रीको चाहिये कि इस कारण समुदायको भक्ति, शील और विदग्धताको दिखाकर दूर कर दे, किन्तु सन्तान न हो तो आप ही पतिको विवाह करनेके लिये कहे ॥ २ ॥

तस्मादादित एवात्मनो भक्तिशीलवैदग्ध्यख्यापनेन यथाक्रमं जाड्यादित्रयं परिहर्तुमिच्छेत् । नायकचापलं वैदग्ध्यख्यापनेनैव । प्रजानुत्पत्तौ स्वयमेव । अन्यथा तेन कर्तव्यमेव । सापत्नके चोदयेत्—कुरु विवाहमिति । दारिकोत्पत्तावप्ययमेव क्रमः । स्त्रीपरिग्रहस्य पुत्रफलकत्वात् ॥ २ ॥

इन ऊपर कहे कारणोंसे पुरुष दूसरे २ विवाह करते हैं, इस कारण पहिलेसे ही अपनी पति भक्तिसे जड़ताके दोषको, सदाचारके पालनसे चरित्र हीनताके दोषको तथा चतुरतासे दुर्भाग्यको दूर कर दे । नायककी चपलता भी

अपनी प्रवीणता दिखाकर दूर की जा सकती है। यदि अपने सन्तान न हो तो स्त्रीको चाहिये कि पतिसे विवाह करनेके लिये स्वयम् निवेदन करे। ऐसा करनेसे उसका मान बना ही रहेगा, नहीं तो वह तो विना सन्तान हुए विवाह करेगा ही। यदि अपने लड़की ही लड़की हों तो भी यही बात है, क्योंकि विवाहका फल पुत्र ही है, विना पुत्रके हुए विवाहका फल प्राप्त नहीं होता ॥२

अपनी स्थिति बढ़ाये।

अधिविद्यमाना च यावच्छक्तियोगादात्मनोऽधिकत्वेन स्थितिं कारयेत् ॥ ३ ॥

* जो भरी खाटपर आई हो, उसे चाहिये कि वह जितना उससे होसके अपनेको अधिक बनाकर रहे ॥ ३ ॥

अधिविद्यमानेति सापत्ने युज्यमाना न त्वधिविन्ना। यावच्छक्तीति यावती शक्तिस्तदपेक्षयात्मनः स्थितिं कारयेत्। अधिकत्वेनेति—सपत्न्याः सकाशादाधिक्येनेत्यर्थः ॥ ३ ॥

सौतपनेमें जिसको युक्त किया है वही जितनी उसकी शक्ति हो अपनी बड़ी सौतकी अपेक्षा उसके सकाशसे अधिक रूपसे ही अपनी स्थिति राखे; यह नहीं कि बड़ी अपनी स्थिति उससे अधिक राखे ॥ ३ ॥

वड़ीका छोटीके साथ बर्ताव।

अधिविन्ना तु किं कुर्यादित्याह—

वड़ीको छोटीके साथ कैसा वर्ताव करना चाहिये, इस विषयमें कहते हैं कि-

आगतां चैनां भगिनीवदीक्षेत। नायकविदितं च प्रादोषिकं विधिमतीव यत्नादस्याः कारयेत्। सौभाग्यजं वैकृतमुत्सेकं वास्या नाद्रियेत ॥ ४ ॥

---

* ऊपरका जो अर्थ है वह हमने जयमंगलाके अनुरोधसे किया है पर वास्तवमें यह ज्येष्ठाके वर्तावका प्रकरण है, इस कारण यह सूत्र भी ज्येष्ठाके बर्तावका ही होना चाहिये कि—(३) जब ऊपर अपने व्याह ली जाय तो बड़ीकी जितनी शक्ति हो अपनेको आई हुईसे बड़ी बनाकर ही रखना चाहिये। टीकाकारको 'अधिविद्यमाना' इस पदको देखकर भ्रम हुआ है, किन्तु जो व्याकरणकी व्यवस्था 'अधिविन्ना' में है कि—आधे उपरि, विन्ना—लब्धा, अस्याः इति—अधिविन्ना, होता है। उसी तरह आधे—उपरि, विद्यमाना—लभ्यमाना, अस्याः, अधिविद्यमाना होता है। दोनोंमें एक धातु तथा एक ही प्रकरण है। प्रकरणविरुद्ध अर्थ करना किसीको भी इष्ट नहीं है।

आई हुई सौतको बहिनकी तरह देखे, प्रदोषकालकी होनेवाली विधि इस प्रकार अत्यन्त प्रयत्नके साथ करा दे जिससे उसे यह पता चल जाय कि, ये सब काम बड़ीके हैं । पर जब सौत सौभाग्यके मदमें आकर अपनेसे जो ऊटपटाग बोल उठे अथवा कुछ चित्तविकार दिखाये तो न सहे ॥ ४ ॥

नायकविदितमिति—यथा नायको जानात्यनया कारितमिति । प्रादोषिकम् प्रदोषभवं संस्कारम् । अतियत्नादनिच्छन्त्या अपि तस्याः स्नेहख्यापनार्थं परिचारिकया कारयेत् । सौभाग्यजं वैकृतं यदहंकृत्या व्याहृतम् । औत्सुक्यमुत्सेकं चित्तविकारं नाद्रियेत नापेक्षेत । अभिभवभयात् ॥ ४ ॥

भले ही अपनी इच्छा न हो पर आई हुईको अपना प्रेम दिखानेके लिये अपनी नौकरानी आदिकोंसे इस प्रकार रातके सोनेके पँलिग आदिक सजवा दे जिससे स्वामीको इतना पता चल जाय कि यह सब बड़ीने ही मेरे आरामके लिये किया है । यदि आई हुई कुछ सौभाग्यके विकारमें आकर अपनेसे अनादरपूर्वक बोल उठे अथवा उसीके आवेशमें आकर कुछ मान दिखाये तो उसे सहन न करे, क्योंकि इन्हें सहन करनेसे अपने अभिभवका भय रहता है ॥ ४ ॥

प्रमादिनीकी उपेक्षा व सँभलतीको संभालना ।

भर्तरि प्रमाद्यन्तीमुपेक्षेत । यत्र मन्येतार्थमियं स्वयमपि प्रतिपत्स्यत इति तत्रैनामादरत एवानुशिष्यात् ॥ ५ ॥

यदि पतिमें प्रमाद करे तो उपेक्षा कर दे, यदि यह समझे कि यह आप ही सँभल जायगी तो उसे आप आदरपूर्वक ही समझा दे ॥ ५ ॥

भर्तरीति—भर्तृविषये, प्रमाद्यन्तीम्—प्रमादं यान्तीमुपेक्षेत । अनेनैव स्खलितदोषेण दौर्भाग्यं स्यादिति । यत्रेति यस्मिन्प्रमादे मन्येत नायकसंभोगार्थमियं कृता सपत्नी स्वयमेव प्रतिपत्स्यते प्रमादो मा भूदिति तत्रैनां स्नेहख्यापनार्थमादरतोऽनुशिष्यात्पुनर्मा कार्षीरिति ॥ ५ ॥

यदि पतिमें प्रमाद करे तो उसकी उपेक्षा कर दे, क्योंकि इसी पतनके दोषसे दुर्भाग्य आता है । यदि जिस प्रमादके बारेमें यह समझे कि नायकको प्राप्त करनेके लिये यह स्वयम् सँभल जायगी अब मुझसे प्रमाद न हो तो उसपर प्रेम दिखानेके लिये आप उसे आदरसे समझाये कि फिर ऐसा न करना ॥ ५ ॥

विशेष दिखाना ।

नायकसंश्रवे च रहसि विशेषानधिकान् दर्शयेत् ॥ ६ ॥

एकान्तमें जहांसे नायक सुन ले ऐसी कलाओंको अधिकरूपसे दिखाये; जो कि उसे कभी न दिखाये हों ॥ ६ ॥

नायकसंश्रवे चेति नायकस्य श्रुतिगोचरे सति । रहसि च यत्रान्यो न शृणोति । विशेषानिति कलाविशेषान् अधिकानिति ये नायकस्य न दर्शिताः । तद्दर्शने द्युभाऽपि खिद्यतः ॥ ६ ॥

जहां दूसरा न सुनता हो और नायकके कानों तक आवाज पहुँच जाती हो ऐसी कलाओंको दिखाये, यानी उन रसीले गानोंको गाये जो उसे कभी न सुनाये गये हों । अथवा उन बातोंको दिखाये जो उसे कभी न दिखाई हों, क्योंकि उसे देख दिखाकर दोनों आपसमें प्रेम करने लगेंगे ॥ ६ ॥

सौतकी सन्तानोंपर प्यार ।

तदपत्येष्वविशेषः । परिजनवर्गेऽधिकानुकम्पा । मित्रवर्गे प्रीतिः । आत्मज्ञातिषु नात्यादरः । तज्ज्ञातिषु चातिसंभ्रमः ॥ ७ ॥

सपुत्रा सौतके लड़कोंपर अत्यन्त प्रेम दिखाये । सौतके परिजनोंपर अधिक दया करे । नायकके मित्रोंपर प्रेम तथा अपने भाई भतीजोंपर अधिक प्रेम न करे; पर सौतके भाई भतीजोंपर अधिक प्रेम करे ॥ ७ ॥

तदपत्येष्वित्यपुत्रया सपुत्राया दर्शितव्यः । परिजनवर्ग इति सपत्न्याः । अधिकानुकम्पा यद्यसौ नायकस्याप्यनभिमतः । मित्रवर्ग इति तस्या अधिको यो मित्रवर्गस्तस्मिन् प्रीतिः स्वीकारार्थम् । आत्मनो ज्ञातिषु नात्यादरो वचनीयतापरिहारार्थम् ॥ ७ ॥

अपुत्रा बड़ीको सपुत्राके पुत्रोंपर अवश्य ही विशेष प्रेम दिखाना चाहिये, (क्योंकि यह पतिकी प्रसन्नताका साधन होता है) चाहे वह पतिको इष्ट भी न हो पर सौतके नौकर नौकरानियोंपर अवश्य प्रेम दिखाना चाहिये । सौतके मित्रोंपर प्रेम स्वीकारके लिये दिखाया जाता है । अपनोंका आदर न करनेका कारण यह है, कि कोई यह न कहे कि अपनोंका अधिक आदर करती है ॥ ७ ॥

बहुतोंमें छोटीके साथ ।

बह्वीभिस्त्वधिविन्ना अव्यवहितया संसृज्येत ॥ ८ ॥

बहुत सौतोंमें तो बड़ी अपनेसे छोटीके साथ संसर्ग राखे ॥ ८ ॥

बह्वीभिस्त्वधिविन्ना सपत्नीभिः । अव्यवहितयेत्यनन्तरया कनीयस्या संसृज्येत, विदितशीलत्वात् ॥ ८ ॥

यदि बड़ीकी बहुतसी सौतें हों तो उसे चाहिये कि अपनेसे दूसरीके साथ संसर्ग राखे, क्योंकि वह सबसे ज्यादा उसका स्वभाव जानती है ॥ ८ ॥

परस्पर कलह योजना ।

यां तु नायकोऽधिकां चिकीर्षेत्तां भूतपूर्वसुभगया प्रोत्साह्य कलहयेत् ॥ ९ ॥

जिसको नायक अधिक माने उसे पहिली मानी हुईके साथ उकसा कर लड़ा दे ॥ ९ ॥

यां तु तासु नायकोऽधिकां चिकीर्षेत्कर्तुमिच्छेत् । भूतपूर्वसुभगयेति नायकस्य प्रज्ञातानुनयया । प्रोत्साह्य तामेव सौभाग्यबीजोपन्यासेन च तयैव कलहयेत् ॥ ९ ॥

जिसको नायक अधिक बनाना चाहे, उसे उस सुन्दरीसे लड़ा दे जो कि नायकके विनयको जानती है । पहिली सिरचढ़ीको उसके पहिले सौभाग्यकी बातें सुनाकर उकसा दे; जिससे वह स्वयम् ही लड़ जायगी ॥ ९ ॥

ततश्चानुकम्पेत ॥ १० ॥

उसके साथ लड़ाई हो जानेके बाद, जिसे नायक अधिक माने उसकी लल्लोपत्तो करे ॥ १० ॥

तत इत्युत्तरकालमनुकम्पेत कलहितां प्रच्छन्ने समाश्वासयेत्कलहवर्धनार्थम् ॥ १० ॥

इस प्रकार पहिली मानी हुईके साथ लड़ाई कराकर पीछे उसे एकान्तमें गुपचुप पुचकारे एवम् उसीमें ऐसी पट्टी पढ़ाये जिससे फिर वह उससे लड़े ॥

अधिकाको गिराना ।

ताभिरेकत्वेनाधिकां चिकीर्षितां स्वयमविवदमाना दुर्जनीकुर्यात् ॥ ११ ॥

जिसे पति सबसे अधिक करना चाहे उसे आप अलग रहकर सौतोंसे लड़ा लड़ाकर बुरी कर दे ॥ ११ ॥

तामिरेकत्वेनेति सपत्नीभिरन्याभिरेकत्वेनेत्यैक्येन । सङ्घधर्मस्थितावित्यर्थः (१) एकाभावेऽपि सैव सौभाग्यबीजोपन्यासहेतुं नायकस्याग्रतो दुर्जनीकुर्यात् । येन नायकस्य तस्यामगमबुद्धिः स्यात् । दृष्टो हि बहुभिः सकलश्चाह्वियमाणः । तत्रापि स्वयमविवदमाना मध्यस्था सती । न तत्प्रयोग इति ख्यापनार्थम् ॥ ११ ॥

जहां एक पुरुषकी बहुतसी स्त्रियाँ होती हैं उनमें लड़ाई अवश्य होती है। इसमें बड़ीका यह काम होना चाहिये कि आप लड़ाई न करे, किन्तु लड़नेवालियोंकी मध्यस्थ रहे और जिसे पति बड़ी बनाना चाहे उसे छिपे तौरसे दूसरी उस सौतसे लड़ा दे जो कि पाहिले संमानित थी। लड़ाईका कारण है सौभाग्यका बीज, जो कि उसका छिड़कर उसका हो रहा है । सबके साथ मिलकर उसे गिरा दे । यदि ऐसी कोई सौत न हो जो सम्मानित हो तो भी अपने सौभाग्यका परिपूर्ण उदय हो इस कारण नायकके सामने आप ही उसे दुर्जन सिद्ध कर दे, जिससे नायककी उसपर गम्यबुद्धि ही न रहे ॥ ११ ॥

मालिकसे कलहिताको धैर्य देना।

नायकेन तु कलहितामेनां पक्षपातावलम्बनोपबृंहितामाश्वासयेत् ॥ १२ ॥

नायकसे लड़ी हुई उसे पक्षपातके अवलम्बमें बढ़ी हुईको धीरज बढ़ाये १२॥

नायकेन तु कलहितामेनां दौर्जन्योपन्यासेन । पक्षपातावलम्बनोपबृंहितामिति तद्गुणोपबृंहितां दापितप्रत्युत्तरामाश्वासयेत् ॥ १२ ॥

नायकके सामने दुर्जनता दिखानेपर जब नायककी उसके प्रति अगम्यबुद्धि हो जाय एवम् नायककी और उसकी लड़ाई होजाय तथा सौत खिचाखिचीमें बढ़ जाय और पतिको रूखा उत्तर दे दे तो आप उसे धीरज बँधाये १२

लड़ाई बढ़ाना।

कलहं च वर्धयेत् ॥ १३ ॥

लड़ाई बढ़ाये ॥ १३ ॥

नायकेन सह । यत्नस्य तदर्थत्वात् ॥ १३ ॥

नायकके साथ इसकी लड़ाई बढ़ाये चली जाय, क्योंकि ये सब कारगुजारियाँ तो इसी लिये हैं ॥ १३ ॥

मन्दं वा कलहमुपलभ्य स्वयमेव संधुक्षयेत ॥ १४ ॥

जब यह देखे कि लड़ाई ढीली पड़ गई तो स्वयम् चेता दे ॥ १४ ॥

छिद्यमानं तूपलभ्य कलहं संधुक्षयेद्यथा न मन्दीभवति ॥ १४ ॥

जब यह देखे कि अब तो लड़ाई मिट चली तो इस रीतिसे लड़ाई चेताये जिससे कि मन्द न पड़े ॥ १४ ॥

शान्त करना।

यदि नायकोऽस्यामद्यापि सानुनय इति मन्येत तदा स्वयमेव सन्धौ प्रयतेतेति ज्येष्ठावृत्तम् ॥ १५ ॥

यदि यह देखे कि नायक अब भी इसपर प्रेम रखता, है तो स्वयम् उसके मेल करानेके लिये प्रयत्न करे, यह बड़ीका वर्ताव पूरा हुआ ॥ १५ ॥

स्वयं वा सधौ प्रयतेत। यद्ययमेकान्तेनास्यां निरनुनयस्तदा तिष्ठत्वस्मद्विधैव मैनामवमन्यध्वमिति प्रसादयेत्। इति ज्येष्ठावृत्तं चतुस्त्रिंशं प्रकरणम् ॥ १५ ॥

जब यह जान जाय कि नायक एकदम अब भी इसपर आसक्त है तो उससे कह दे, कि रहो यह जैसी है तैसी ही? पर आप इसका अपमान न करें, ऐसा कहकर प्रसन्न कर दे। यह ज्येष्ठाके वर्तावका ३४ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ १५ ॥

छोटीके वर्तावका प्रकरण।

कनिष्ठापि भार्या कथं वर्ततेति कनिष्ठावृत्तमुच्यते—

बड़ीके वर्तावके कहनेके बाद यह जिज्ञासा होती है, कि छोटीको भी कैसे वर्ताव करने चाहियें? इस कारण छोटीका वर्ताव बताते हैं, कि—

मातृवद्भाव व स्वात्मसमर्पण।

कनिष्ठा तु मातृवत्सपत्नीं पश्येत् ॥ १६ ॥

छोटी सौत तो अपनी बड़ीको माताकी तरह देखे ॥ १६ ॥

मातृवन्मातरमिव ज्येष्ठाम ॥ १६ ॥

छोटी जो हो उसे चाहिये, कि बड़ीके साथ माताकासा व्यवहार करे॥१६॥

ज्ञातिदायमपि तस्या अविदितं नोपयुञ्जीत ॥ १७ ॥

मा बाप आदिकी दी हुई वस्तुको भी विना उसके कहे न वर्ते ॥ १७ ॥

अङ्गार्पणोपाय एषः ॥ १७ ॥

यह अपने शरीरके अर्पण करनेका उपाय है ॥ १७ ॥

आत्मवृत्तान्तांस्तदधिष्ठितान् कुर्यात् ॥ १८ ॥

अपनी सब बातोंको बड़ीसे कह दे ॥ १८ ॥

आत्मवृत्तान्तानित्यात्मनि प्रतिषिद्धत्वाद्व्यवहारान् । तदधिष्ठितान् ॥ १८ ॥

छोटीको चाहिये कि अपनी बुरी २ बातोंको भी बड़ीसे कह दे ॥ १८ ॥

अनुज्ञाता पतिमधिशयीत ॥ १९ ॥

बड़ीकी आज्ञासे पतिके साथ सोये ॥ १९ ॥

अनुज्ञाता ज्येष्ठया धर्मप्राप्तेऽधिशयने पतिमधिशयीत ॥ १९ ॥

ऋतुकालमें पतिके सहवासके समय बड़ीकी आज्ञा लेकर ही पतिके साथ सोये ॥ १९ ॥

बड़ीकी बातें न कहना व सन्तानपर प्यार ।

न वा तस्या वचनमन्यस्याः कथयेत् ॥ २० ॥

बड़ीकी बातोंको किसीसे न कहे ॥ २० ॥

तस्या वचनं—ज्येष्ठावचनं, सदसद्वान्यस्या अग्रे न कथयेत् । कलहपरिहारार्थम् ॥ २० ॥

बड़ीके वचन चाहे बुरे हों चाहे अच्छे हों, किसीके भी सामने न कहे, क्योंकि कहनेपर बड़ीसे लड़ाई होजानेका भय है ॥ २० ॥

तदपत्यानि स्वेभ्योऽधिकानि पश्येत् ॥ २१ ॥

उसके लड़कोंको अपनोंसे अधिक माने ॥ २१ ॥

तदपत्यानि—ज्येष्ठान्यज्येष्ठानि च ॥ २१ ॥

उसके माइने बड़ीके हैं ॥ २१ ॥

एकान्तमें उपचार व सौतोंकी अनिन्दा ।

रहसि पतिमधिकमुपचरेत् ॥ २२ ॥

एकान्तके सहवासके समय पतिका अधिक उपचार करे ॥ २२ ॥

रहसि शयने । अधिकमुपचरेद्येनायमन्याभ्यस्तस्यामनुरज्येत ॥ २२ ॥

शयनमें ऐसा करनेसे पति इसमें अधिक अनुरक्त हो सकेगा ॥ २२ ॥

आत्मनश्च सपत्नीविकारजं दुःखं नाचक्षीत ॥ २३ ॥

सौतोंसे होनेवाले अपने दुःखको न कहे ॥ २३ ॥

सपत्नीविकारजम्—सपत्नीपरिभवजम् । नात्मना परस्याचक्षीत । स्वयं कथ्यमानं नायको न प्रतीयात् । अन्येन तु कथयेत् ॥ २३ ॥

सौतोंके अनादर पानेके कारण जो अपनेको दुःख हो उसे अपने मुखसे पतिसे न कहे, क्योंकि अपने मुखसे कहनेमें उसे विश्वास न आयेगा, किन्तु दूसरोंसे कहलवा दे ॥ २३ ॥

पतिसे मान ।

पत्युश्च सविशेषकं गूढं मानं लिप्सेत् ॥ २४ ॥

पतिसे एकान्तमें सबसे अधिक मान चाहे ॥ २४ ॥

पत्युः सविशेषकमित्यन्यतरभार्याभ्यो वैशेषिकीं पूजां पत्युः सकाशादप्रकटं लब्धुमिच्छेत् ॥ २४ ॥

एकान्तमें दूसरी सौतोंसे अधिक सत्कार पतिसे चाहे, कि गुप्तरूपसे मेरा पति अधिक मान करे ॥ २४ ॥

अनेन खलु पथ्यदानेन जीवामीति ब्रूयात् ॥ २५ ॥

कहे कि मैं आपके इस पथ्य दानसे जीती हूं ॥ २५ ॥

अनेनेति सविशेषेण मानेन । पथ्यदानेन शम्बलभूतेन जीवामि ॥ २५ ॥

जो आप इस समय मेरा अधिक आदर करते हैं यही मेरे जीनेका सहारा है, इसीसे जीती हूं ॥ २५ ॥

मानको न कहना व कथनके दोष ।

तत्तु श्लाघया रागेण वा बहिर्नाचक्षीत ॥ २६ ॥

पतिसे पाये मानको श्लाघा वा रागमें आकर बाहिर न कहे ॥ २६ ॥

तन्मानम् । श्लाघया विकत्थनेन । रागेण चेति सपत्नीक्रोधेन । बहिः सामान्यजनस्य नाचक्षीत ॥ २६ ॥

अपनी बड़ाईमें आकर अथवा सौतोंपर क्रोध करके बाहिर सबके सामने न बकने लग जाय ॥ २६ ॥

दोषमाह—

उसे बाहिर कहनेमें यह दोष है कि—

भिन्नरहस्या हि भर्तुरवज्ञां लभते ॥ २७ ॥

रहस्यके प्रकट कर देने पर पतिसे अवज्ञा पाती है ॥ २७ ॥

अवज्ञा तिरस्कारः ॥ २७ ॥

अवज्ञा तिरस्कारको कहते हैं ॥ २७ ॥

ज्येष्ठाभयाच्च निगूढसंमानार्थिनी स्यादिति गोनर्दीयः २८

इस अधिकरणके विशेषज्ञ गोनर्दीय आचार्य्यका तो यह मत है, कि बड़ीके भयसे पतिसे छिपा हुआ ही अधिक मान चाहे ॥ २८ ॥

अन्यथा सविशेषं मानं पश्यन्ती कुप्येदनर्थं वा चिन्तयेत् । गोनर्दीयमतमनुमतम् । अप्रतिषिद्धत्वात् ॥ २८ ॥

क्योंकि बड़ी गर छोटीका एकान्तमें अपनेसे अधिक मान जान लेगी तो नाराज होगी अथवा बुरा चेतेगी । यह गोनर्दीय आचार्य्यका मत है, इसको सब आचार्य्य मानते हैं, क्योंकि इसका प्रतिषेध नहीं है ॥ २८ ॥

दुर्भगा आदिपर दया ।

दुर्भगामनपत्यां च ज्येष्ठामनुकम्पेत नायकेन चानुकम्पयेत् ॥ २९ ॥

यदि बड़ी दुर्भगा अथवा बाँझवझोटी हो तो उसपर दया राखे तथा नायकसे दया कराये ॥ २९ ॥

अनुकम्पयेत्संभाषणं क्रियतामिति । आत्मसाधुत्वख्यापनार्थम् ॥ २९ ॥

ऐसी बड़ीके लिये पतिसे आग्रह करे कि आप इससे बातें करें एवम् आप भी उसके साथ प्रेमका बर्ताव करें ऐसा करनेसे वह भली समझी जायगी ॥२९॥

बुरीको अच्छी बनाना ।

प्रसह्य त्वेनामेकचारिणीवृत्तमनुतिष्ठेदिति कनिष्ठावृत्तम् ॥ ३० ॥

दुर्भगा बन्ध्या बड़ी सौतको रोककर एकचारिणीके चरित्रोंका पालन कराये और स्वयम् पालन करे । यह छोटीका बर्ताव पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एनामिति दुर्भगामनपत्यां ज्येष्ठाम् । ज्येष्ठाकनिष्ठयोर्मध्यवर्तिनीनां पूर्वापरापेक्षया ज्येष्ठाकनिष्ठावृत्तं योज्यम् ॥ इति कनिष्ठावृत्तं पञ्चत्रिंशं प्रकरणम् ॥ ३० ॥

यह जो बड़ी और छोटीका बर्ताव बताया है उसीके अनुसार जो बीचकी छोटी बड़ी हों उनका परस्परकी अपेक्षासे बड़ी छोटीका व्यवहार समझना चाहिये । यह छोटीका बर्ताव नामक ३५ वां प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३० ॥

* पुनर्भूवृत्त प्रकरण ।

यथा कन्याभार्या तथा पुनर्भूरिति पुनर्भूवृत्तमुच्यते । पुनर्भूर्द्विविधा— क्षतयोनिरक्षतयोनिश्च । तत्रान्त्या संस्कारार्हत्वात्कन्यायामेवान्तर्भूता । यथोक्तम्—

---

* सूत्रमें विधवा शब्दका साक्षात् उपादान किया है विधवा किसे कहते हैं यह बात प्रसिद्ध ही है, फिर विधवा ' पुनर्भूका बर्ताव ' सीधा कह देते तो सर्वोत्तम होता यहां पुन-

'पुनरक्षतयोनित्वादूह्यते या यथाविधि' इति । द्वितीयाया न संस्कारः । स्वीकार एव केवलम् । सा च लोकेऽपरुद्धिकेत्युच्यते । सा चैवंविधा शास्त्रेऽनुज्ञातैव । यथाह वसिष्ठः—'मनोदत्ता वचोदत्ता या च मङ्गच्छयाचिका (?) उदकस्पर्शिका चैव या च पाणिगृहीतका ॥ अग्निं परिगता चैव पुनर्भूः प्रसवा च या॥' इति । अत्र पूर्वाः षडक्षतयोनयः । प्रसवेति क्षतयोनिरित्यर्थः । तामेवाधिकृत्य वृत्तमाह—

जैसे कन्या भार्य्या होती है उसी तरह पुनर्भू भी होती है इस कारण पुनर्भूका बर्ताव कहते हैं । पुनर्भू दो तरहकी हैं—एक क्षतयोनि और दूसरी अक्षतयोनि । इनमें अक्षत योनि संस्कारके योग्य है इस कारण कन्यामें ही अन्तर्गत है । कहा भी है कि–' फिर अक्षत योनि होनेके कारण जो यथाविधि व्याही जाय ' पर दूसरीका संस्कार नहीं हो सकता केवल स्वीकारमात्र ही हो सकता है । इसे लोकमें अपरुद्धिका (रखेली) कहते हैं । ऐसी भी शास्त्रमें अनुज्ञात ही है। यही वसिष्ठजीने कहा भी है कि–'मनसे दी, वचनसे दी' देनेके मंगलाचार की हुई, संकल्प की हुई, पाणिग्रहण की हुई, फेरा फिरी हुई और जन्ति की हुई पुनर्भू हुआ करती हैं । इनमें छः अक्षतयोनि होती हैं और प्रसव की हुई क्षतयोनि है, उसीको लेकर बर्ताव कहते हैं—

पुनर्भूका लक्षण ।

विधवा त्विन्द्रियदौर्बल्यादातुरा भोगिनं गुणसंपन्नं च या पुनर्विन्देत्सा पुनर्भूः ॥ ३१ ॥

जो विधवा अपने इन्द्रिय दौर्बल्यसे कामार्त होकर गुणसंपन्न भोगी पुरुषके घर फिर बैठ जाय उसे ' पुनर्भू ' कहते हैं ॥ ३१ ॥

विधवेति मृतभर्तृका । इन्द्रियदौर्बल्यादितीन्द्रियाणि नियन्तुमसमर्थत्वात् । आतुरा कामेन बाध्यमाना । भोगिनमित्युपभोगसंपन्नम् । गुणसंपन्नमिति नायक-

—भूँओंके इतने विवेचनकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वह धर्मशास्त्रका विषय है । सब हा अक्षता, कन्याओंकी तरह विवाहके योग्य हैं यह धर्मशास्त्रके सम्मत नहीं है । शास्त्रने उसी अक्षताको विवाहके योग्य माना है जिसका विवाह कृत्य विना पूरा हुए किसी तरह वरसे विच्छेद हो गया हो उसका विवाहसंस्कार कन्याकी तरह हो सकेगा; पर वह कहलायेगी पुनर्भू, किन्तु पतिके यहां भार्य्याकी तरह ही रहेगी ।

गुणैर्युक्तम् । या पुनर्विन्देत द्वितीयं लभेत सा पुनर्भूर्भार्यात्वेन पुनर्भवतीति कृत्वा । भोगिनं गुणसंपन्नमिति गोनर्दीयमतमेतद्भविष्यति ॥ ३१ ॥

जिस स्त्रीका पति स्वर्ग सिधार गया हो एवम् वह अपनी इन्द्रिय लोलुपताको रोक न सकती हो इस कारण कामसे आतुर हो उपभोग संपन्न नायकके गुणोंसे युक्त पुरुषको फिर प्राप्त कर ले वह पुनर्भू है, क्योंकि वह फिर बनती है । 'नायकके गुणोंसे युक्त भोगी पुरुषको प्राप्त करे' यह गोनर्दीय आचार्य्यका मत होगा; वास्तवमें फिर कैसेको भी पावे तो वह पुनर्भू ही है ३१

पहिले घरोंके छोड़नेकी रीति ।

यतस्तु स्वेच्छया पुनरपि निष्क्रमणं निर्गुणोऽयमिति नदान्यं काङ्क्षेदिति बाभ्रवीयाः ॥ ३२ ॥

जिसके घर बैठी है वहांसे निकलकर फिर भी किसी दूसरेके घर बैठना चाहे तो उसे निर्गुण कहकर छोड़कर ही दूसरेके घर बैठे ॥ ३२ ॥

यतस्त्विति भर्तृगृहान्तरात् । स्वेच्छया निष्क्रान्ता पुनरपि यतः पुरुषात्स्वेच्छया निष्क्रमणं स्यात् । निर्गुणोऽयमिति निष्क्रमणोपायः ॥ ३२ ॥

जिस विधवाने अपने व्याहे पतिका घर अपने इन्द्रिय दौर्बल्यके कारण स्वेच्छासे छोड़ दिया हो वह जिसके घर बैठी हो उसे भी छोड़ना चाहे तो उसे भी वह अपनी तबियतके अनुसार छोड़ सकती है पर 'यह भी कुछ नहीं' ऐसा कहकर छोड़ना चाहिये क्योंकि यही उसके घर छोड़नेका उपाय है॥३२॥

सौख्यार्थिनी सा किलान्यं पुनर्विन्देत ॥ ३३ ॥

वहांसे भी अधिक सुख चाहे तो दूसरे करेको भी छोड़कर तीसरेके यहां चली जाय ॥ ३३ ॥

सौख्यार्थिनी विषयपरिभोगार्थिनी । किलेति वितर्के ॥ ३३ ॥

यदि उससे भी उसकी तृप्ति न हो और अधिक विषय भोग चाहे तो तीसरेके यहां चली जाय । सूत्रके किल शब्दका अर्थ वितर्क है कि यदि अधिक चाहे तो अधिककी जगह जा सकती है ॥ ३३ ॥

इसपर गोनर्दीय ।

गुणेषु सोपभोगेषु सुखसाकल्यं तस्मात्ततो विशेष इति गोनर्दीयः ॥ ३४ ॥

×उपभोगपूर्वक गुण हों पर तीसरेसे भी अधिक चौथी जगह सुखोंका साकल्य हो तो उसे छोड़कर चौथी जगह भी जा सकती है; यह गोनर्दीय आचार्य्यका मत है ॥ ३४ ॥

सुखसाकल्यमिति–गुणसुरतपरिभोगसुखयोः समवायात्। तत्किमिति निष्क्रामति। यतश्चैवं तस्मात्ततो निर्गुणभोगिनो विशिष्यते गुणवान्भोगी या तु पुनः पुनर्निष्क्रामत्यसौ वेश्याविशेषेऽन्तर्भवति ॥ ३४ ॥

यदि दूसरी जगहसे भी तीसरी जगह नायकोचित्त गुणोंका, सहवासके सुखोंका और परिभोगोंके सुखोंका समवाय हो तो सोपभोग गुणोंवाले पुरुषको भी छोड़ सकती है। क्या कारण है वह क्यों छोड़कर जाती है उसका कारण बताते हैं कि निर्गुण भोगीसे गुणवान् भोगी अच्छा रहता है। जो तो बार २ छोड़ती और करती है वह तो वेश्याविशेषोंके भीतर गतार्थ होजाती है ३४॥

वात्स्यायनका मत।

आत्मनश्चित्तानुकूल्यादिति वात्स्यायनः ॥ ३५ ॥

वात्सायन आचार्य्यका मत है कि अपने चित्तकी जहां अनुकूलता हो वहां ही बैठ जाय ॥ ३५ ॥

आत्मनश्चित्तानुकूल्यादिति। सत्यपि गुणवति भोगिनि चित्तं चेन्नानुकूलं तथापि न सुखसाकल्यं तस्मादयमपरो विशेषः। तेनोक्तलक्षणादगम्योऽन्यो दर्शयति ॥ ३५ ॥

यदि गुणवाला भोगी पुरुष हो पर अपना चित्त अनुकूल नहीं हो तो भी सब तरहके सुख नहीं मिल सकते, इस कारण जहां अपने चित्तकी अनुकूलता हो यह निर्गुणकी भावनासे इतर दूसरी भावना है,इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध होजाती है कि जिसके पास अपनी मनोवृत्ति सुख माने वही उत्तम है, जिसमें अपनी मनोवृत्ति न लगे चाहे उसमें हजार गुण हों पर अपना वह सुतराम् अगम्य है इस बातको महर्षिवात्स्यायन दिखा रहे हैं ॥ ३५ ॥

×विधवा अपनी लोलुपताके कारण धर्मपतिके घरको छोड़कर नायक गुणसंपन्न भोगीके घर बैठकर 'पुनर्भू' बनी, वहांसे उसे भी निर्गुण समझकर दूसरेके घर आई। वहां भी उसका कामवासना पूरी न हुई तो उसे भी न कुछ कहकर तीसरे उससे भी समर्थ पुरुषके यहां चली जा सकती है। यदि वहांसे भी अधिक सुख किसी चौथी जगह देखे तो वहांसे भी चली जाय। सब जगहसे जानेकी वही निर्गुण भावना है। पर ऐसा वारवार करनेसे उसकी गिनती वेश्याओंमें हो जाती है अतः यह उचित नहीं है ॥

उत्तम पुनर्भूकी लिप्सा ।

सा बान्धवैर्नायकाद्वापानकोद्यानश्रद्धादानमित्रपूजनादि व्ययसहिष्णु कर्म लिप्सेत ॥ ३६ ॥

वह अपने बान्धवोंसे अथवा नायकसे ऐसा कर्म चाहे जिससे आपानक, उद्यान, श्रद्धादान और मित्रपूजन आदिका खर्च चल जाय ॥ ३६ ॥

सेति विधवा । बान्धवैः स्वैः । नायकाद्यत्कर्मणा लब्धुमिच्छेत्तत्रापानकं मद्यगोष्ठी । उद्यानं पुष्पफलोपयिकम् । श्रद्धादानं यच्छ्रद्धया दीयते । मित्रपूजनादीत्यादिशब्दात्स्वजनं च वस्त्रादिना । एतेषु कर्तव्येषु यद्व्ययं सहते कर्म । न तु ग्रासाच्छादनमात्रमिति । इयमुत्तमप्रकृतेर्लिप्सा ॥ ३६ ॥

वह विधवा अपने कुटुम्बियोंसे जिसके घर बैठे उससे उसकी सेवा करके जो लेना चाहे वह इतना हो कि जिससे उसकी मयकशी, बागके फूलफलोंकी संभाल एवम् जो दान श्रद्धासे दिया जाता है उसे कर सके, नायकके मित्रोंका सत्कार तथा उसने जो उसके पास नौकर नौकरानियाँ छोड़े हों उन्हें अथवा स्वजनोंका वस्त्रादिकोंसे सन्मान कर सके । जो कर्म सब खर्चको सह सकें, यह न हो कि केवल भोजन वस्त्रोंपर ही पड़ जाय । यह उत्तम प्रकृतिकी स्त्रीकी इच्छा होती है ॥ ३६ ॥

मध्यमाधमकी इच्छा ।

आत्मनः सारेण वालङ्कारं तदीयमात्मीयं वा बिभृयात् ३७

अथवा अपने धनसे इन खर्चोंको चलाये आभूषण अपने वा उसके धारण करे + ॥ ३७ ॥

आत्मनः सारेण वेति । मध्यमाधमा सावधानीभूय धारयेदित्यर्थः ॥ ३७ ॥

मध्यम वा अधम सावधान होकर धारण करे ॥ ३७ ॥

+ सूत्रके-' आत्मनः सारेण वा=अथवा अपने धनसे ' इस टुकड़ेका अर्थसंबन्ध पिछले सूत्रके साथ प्रतीत होता है, टीकाकारने इसका विशेष विवरण नहीं किया है । भूषण धारणकी बातके साथ मध्यमा और अधमाका सम्बन्ध प्रतीत होता है । जो इतना खर्च लेगी कि इतना काम करसके तो आभूषण भी निजी करके ही पहिनेगी एवम् जो अपना खर्च आप चला सकेगी उसके पास आभुषण भी अपने ही होंगे । इस कारण 'आभूषण अपने वा उसके पहिने ' इस बातका उसके साथ संबन्ध ही नहीं है पर जो मध्यम वा अधम हैं उनका इतना सत्कार भी नही तथा वे आभूषण अपने यदि नहीं तो उसके पहिनेंगी ही ॥

प्रीतिदायेष्वनियमः ॥ ३८ ॥

प्रीतिसे दी हुई चीजमें नियम नहीं है ॥ ३८ ॥

प्रीतिदायेष्विति प्रीत्या दत्तेष्वनियमो धारणं प्रति ॥ ३८ ॥

जो वस्तु नायकने प्रीतिसे दी है उसके लिये यह नियम नहीं है कि सावधानीसे धारण करे अथवा धारण ही न करे ॥ ३८ ॥

जातीबार प्रीतिदायके विना सब दे पर निकालनेपर नहीं ।

स्वेच्छया च गृहान्निर्गच्छन्ती प्रीतिदायादन्यन्नायकदत्तं जीयेत । निष्कास्यमाना तु न किंचिद्दद्यात् ॥ ३९ ॥

अपनी राजीसे उसके घरको छोड़कर दूसरेके घरमें बैठे तो नायकने जो प्रेमोपहार दिये हैं उन्हें छोड़कर बाकी सब चीज उसकी उसे दे दे । यदि वह घरसे निकाले तो जो उसके पास है उसमेंसे कुछ भी न दे ॥ ३९ ॥

स्वेच्छया चेति (न तु) नायकदोषात्तेन गृहान्निर्गच्छन्तीति प्रीतिदायादन्यन्नायकदत्तं लोहक्षुरं (;) जीयेत दाप्येत ॥ ३९ ॥

यदि अपनी ही खुशीसे उसके घरको छोड़कर दूसरेके घर बैठे; नायकके दोषसे नहीं तो नायकके दिये हुए प्रेमोपहारको छोड़कर जितने भी उसके पास कीलकाँटे हों सबको नायकके ही सुपुर्द कर दे ॥ ३९ ॥

मालिकिनीकी तरह बैठे ।

सा प्रभविष्णुरिव तस्य भवनमाप्नुयात् ॥ ४० ॥

जिसके घर जाय वहां मालिकानीकी तरह बैठ जाय ॥ ४० ॥

सेति जिगमिषुः । प्रभविष्णुरिव स्वामिनीव नायकगृहं स्वीकुर्यात् । अनन्तमपि कालम् ॥ ४० ॥

जानेवाली जिसके घर बैठे उसके यहां मालिकानीकी तरह बैठ जाय, चाहे उसे कितने भी समय क्यों न बैठना पड़े ॥ ४० ॥

धरेजेकी स्त्रीका धर्मपत्नीयोंसे व्यवहार ।

निजासु किं कुर्यादित्याह—

नायककी जो धर्मपत्नी हैं उनमें उसे क्या व्यवहार करना चाहिये ? इसके विषयमें कहते हैं कि—

कुलजासु तु प्रीत्या वर्तेत ॥ ४१ ॥

उसकी धर्मपत्नियोंके साथ प्रेमका वर्ताव करे ॥ ४१ ॥

कुलजास्विति धर्मोढासु । प्रीत्या स्नेहेन ॥ ४१ ॥

जो उसकी सवर्ण पत्नियाँ हैं वे ही उसकी कुलजा यानी सवर्णजा हैं, वे ही उसका वंश चलानेवाली हैं इस कारण उनसे प्रेमपूर्ण ही व्यवहार रखना चाहिये ॥ ४१ ॥

नायकके मित्रोंसे हँसते हुए व्यवहार ।

दाक्षिण्येन परिजने सर्वत्र सपरिहासा मित्रेषु प्रतिपत्तिः । कलासु कौशलमधिकस्य च ज्ञानम् ॥ ४२ ॥

नायकके निजी परिवारके जनोंके साथ अनुकूलतासे बर्ताव करे । मित्रोंमें नजाकतके साथ वर्ते । कलाओंमें कुशलता और अधिकका ज्ञान रखे ॥ ४२॥

परिजने सर्वत्र कुलजानां नायकस्य दाक्षिण्येन वर्तेत । सपरिहासा सविकारा कलासु कौशलं दर्शनीयमधिकस्य नायकाविदितस्य ज्ञानं दर्शयितव्यम् ॥ ४२॥

नायकके जो मित्र हों उनके साथ हँसती हुई नाजो अन्दाजके साथ वर्ताव करे । गाने बजाने आदिकी तथा आलिंगन चुम्बन आदिकी कलाओंकी कुशलता तथा जिन्हें नायक न जानता हो उन कलाओंका ज्ञान दिखाये ॥ ४२॥

कलहके स्थानोंमें उपालम्भ ।

कलहस्थानेषु च नायकं स्वयमुपालभेत ॥ ४३ ॥

कलहके स्थानोंमें नायकको स्वयम् उपालम्भ दे ॥ ४३ ॥

कलहस्थानेष्विति उपचितच्छेदः स्वैरिणीसंसर्गो द्विरात्रागमनं वासकान्निष्क्रमणं चेत्यस्याः कलहस्थानानि । तेषु स्वयमुपालभेत ॥ ४३ ॥

उपचितके नुकसान, स्वैरिणियोंके संसर्ग, दो दो रातके बाद आने, वास स्थानसे निकल जाने, ये इसके कलहस्थान हैं इनमें आप ही उपालम्भ दे॥४३॥

मालिकको और सौतोंकी सेवाका ढंग ।

रहसि च कलया चतुःषष्ट्यानुवर्तेत । सपत्नीनां च स्वयमुपकुर्यात् । तासामपत्येष्वाभरणदानम् । तेषु स्वामिवदुपचारः । मण्डनकानि वेषानादरेण कुर्वीत । परिजने मित्रवर्गे चाधिकं विश्राणनम् । समाजापानकोद्यानयात्राविहारशीलता चेति पुनर्भूवृत्तम् ॥ ४४ ॥

एकान्तमें नायककी तबीयतके अनुसार चौसठ कलाएँ दिखाये । अपनी कुलीन सौतोंका आप ही उपकार करे, उनके बच्चोंको आभूषण दे । उनका

उपचार स्वामीकी तरह करे। इनका मण्डन और वेष आदरके साथ कर दे। परिजन और मित्रोंको अधिक दान दे तथा मयकशी, गोष्ठी और बागविहारकी रुचि रखना चाहिये। ये पुनर्भूके चरित्र पूरे हुए ॥ ४४ ॥

रहसि चेति नायकं शयनागतम्। कलयेत्यालिङ्गनादिभिः पुरुषोपसृप्तान्तैः। सपत्नीनां कुलजानाम् । उपकुर्याद्रुत्पन्ने प्रयोजने । आभरणं मण्डनकादि। स्वामिवदुपचारस्तेषां कुलसंततिहेतुत्वात् । मण्डनकानि पुष्पानुलेपनादीनि । परिजन इत्यात्मीये। विश्राणनमिति दानम्। समाजेति गोष्ठीशीलता आपानशीलता उद्यानविहारशीलता चेति पुनर्भूवृत्तं षट्त्रिंशं प्रकरणम् ॥ ४४ ॥

यदि नायक शयनघरमें अपने पास आये तो उसकी तबीयतके अनुसार आलिंगनसे पुरुषोपसृप्तक सभी कुछ करे। अपनी वे सौतें जो नायककी धर्मपत्नी हैं उनके ऊपर उपकार करने चाहियें । यदि उनका अपनेसे कोई प्रयोजन हो तो। आभरण मण्डनकोंका नाम है। वे ही सन्तानें नायकके वंशवृक्ष हैं इस कारण उनका आदर स्वामीकी तरह ही होना चाहिये । पुष्पानुलेपनादिक मण्डनक कहाते हैं । परिजन अपने अनुजीवी और मित्रलोगोंमें अधिक विश्राणन यानी दान करे। समाजका नाम गोष्ठी है इसे पहिले अधिकरणमें बता आये हैं। जाम पीनेका स्वभाव रखना चाहिये । वनविहारकी भी आदत रखनी चाहिये । यह पुनर्भूके वर्तावका ३६ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥४४॥

दुर्भगावृत्त प्रकरण।

आसां भार्याणां दुर्भगापि काचित्संभवति तया कथं वर्तितव्यमिति दुर्भगावृत्तमुच्यते—

इन भार्य्याओंमें कोई दुर्भगा भी हो सकती है उसे कैसा बर्ताव करना चाहिये ? इस कारण इस प्रकरणको कहते हैं—

अधिकका आसरा व प्रकटकला दिखाना।

दुर्भगा तु सापत्नकपीडिता या तासामधिकमिव पत्यावुपचरेत्तामाश्रयेत्। प्रकाश्यानि च कलाविज्ञानानि दर्शयेत। दौर्भाग्याद्रहस्यानामभावः॥ ४५ ॥

दुर्भगा तो सौतोंसे पीडित रहती है, इस कारण उसे चाहिये, कि सब सौतोंमें जो अधिकतासे पतिमें उपचार करे उसी सौतका आसरा ले ले। दिखानेयोग्य कलाविज्ञानोंको दिखा दे, क्योंकि दुर्भागसे रहस्यके दिखानेके कलायोगोंका तो अभाव हो ही जाता है ॥ ४५ ॥

दुर्भगा त्विति । सापत्नकपीडितेति दौर्भाग्यफलम् । तासामिति सपत्नीनां मध्ये या पत्यौ [उप] चरेत् । अधिकमिवेति—नायकेनाधिकृतेन या त्वधिका सपत्न्युपचिता तां सुतरामेवाश्रयेत् । तामाश्रित्य प्रकाश्यानि कलाविज्ञानानि पत्त्रच्छेद्यादिकौशलानि दर्शयेत् । वैदग्ध्यख्यापनं हि दौर्भाग्यनिवृत्तिकारणम् ॥४५॥

सौतोंसे कष्ट पहुँचना दुर्भागका फल है । उन सौतोंमेंसे नायकने जिस सौतको सबमें बड़ा मान रखा हो उसका सहारा अच्छी तरह ले ले । उसका सहारा ले दिखाने लायक जो पत्रच्छेद्य आदिकी कलाएं हैं उन्हें बड़ी सफाईके साथ दिखाये, क्योंकि अपनी प्रवीणता सबपर जाहिर कर देना ही दुर्भागकी निवृत्तिका कारण है ॥ ४५ ॥

बच्चोंकी धायका काम ।

नायकापत्यानां धात्रेयिकानि कुर्यात् ॥ ४६ ॥

नायककी सन्तानोंकी धायका कार्य्य कर दे ॥ ४६ ॥

धात्रेयिकान्यभ्यञ्जनोद्वर्तनस्नपनादीनि ॥ ४६ ॥

लड़कोंकी आंखोंमें अंजन लगा दे, उबटन कर दे और स्नान आदि करा दे॥

तन्मित्राणि चोपगृह्य तैर्भक्तिमात्मनः प्रकाशयेत् ॥ ४७ ॥

नायकके मित्रोंको अनुकूल करके उनके द्वारा अपनी भक्ति प्रकट कर दे ४७

तन्मित्राणि चेति नायकमित्राणि । चोपगृह्य प्रियहिताभ्याम् । तैरित्युपगृहीतैर्भक्तिमात्मनः श्रावयेदशाठ्यख्यापनार्थम् ॥ ४७ ॥

नायकके मित्रोंको उनके प्रिय और हितसे अपने अनुकूल बनाकर उनसे पतिको अपनी पतिभक्ति सुनवाये; जिससे पतिको यह विश्वास हो जाय कि यह मूढ नहीं है ॥ ४७ ॥

धर्मकृत्योंमें अग्रगामिनी ।

धर्मकृत्येषु च पुरश्चारिणी स्याद्व्रतोपवासयोश्च ॥ ४८ ॥

धर्मकाम, व्रत और उपवासोंमें अगाड़ी रहे ॥ ४८ ॥

धर्मकृत्येषु श्राद्धादिषु पुरश्चारिणी प्रारम्भिका स्यात् । व्रतोपवासयोश्च नायकेन क्रियमाणयोः पुरश्चारिणी ॥ ४८ ॥

श्राद्ध आदिक धर्मकृत्योंमें प्रारंभ करनेवाली रहे एवम् नायकसे किये जाने-वाले व्रत और उपवासोंमें अगाड़ी रहे ॥ ४८ ॥

परिजनोंकी अनुकूलता व अपनेमें छुटाई ।

परिजने दाक्षिण्यम् । न चाधिकमात्मानं पश्येत् ॥ ४९ ॥

परिजनोंमें अनुकूलता दिखाये, अपनेको बड़ा न देखे ॥ ४९ ॥

परिजने नायकस्य दाक्षिण्यमानुकूल्यं दर्शयितव्यम् । न चाधिकमात्मानं पश्येत्सपत्नीभ्यः परिजनेभ्यश्च । दौर्भाग्यहेतुत्वादिति । बाह्यमेतद्वृत्तम् ॥ ४९ ॥

नायकके परिवारके सब लोगोंमें सबके अनुकूल व्यवहार राखे यानी योग्य बर्ताव दिखाये । परिजनोंसे और सौतोंसे अपनेको वड़ा न समझे, क्योंकि बड़ा समझना ही दुर्भाग्यका कारण है । ये दुर्भगाके बाहिरके वर्ताव हैं ॥ ४९॥

भीतरके वर्ताव ।

आभ्यन्तरमाह—

अबतक जो व्यवहार बताया वह बाहिरका था, अब भीतरके उसके बर्ताव बताते हैं—

फिर प्रेम पाना ।

शयने तत्सात्म्येनात्मनोऽनुरागप्रत्यानयनम् ॥ ५० ॥

शयनमें पतिकी प्रकृतिके अनुसार अपने अनुरागको फिर ले आये ॥५०॥

तत्सात्म्येनेति—नायकानुकूल्येन । यथैव नायकोऽभियुक्ते तथैवानिच्छन्त्यप्या-त्मनोऽनुरागमातृप्तिं प्रत्यानयेत् ॥ ५० ॥

नायकसे सहवासके समय वह जिस प्रकार अपनेको लगायें, उसी समय उसी तरह करने लग जाय; चाहे अपनी इच्छा हो चाहे न हो । पर जबतक नायक तृप्त न हो ले अपने रागको ले आये ॥ ५० ॥

वामता न दिखाना ।

न चोपालभेत वामतां च न दर्शयेत् ॥ ५१ ॥

न उपालम्भ दे एवम् न वामता ही दिखाये ॥ ५१ ॥

न चोपालभेतेति तवाहमप्रियेति । वामतां प्रातिकूल्यमङ्गगूहनेन न दर्शयेत् ५१

नायकसे यह न कहे कि मैं तुझे प्यारी नहीं हूं । न जिस अंगको वह देखना चाहे उसे ढककर वामता ही दिखाये ॥ ५१ ॥

अनुकूल करनेके उपाय।

यया च कलहितः स्यात्कामं तामावर्तयेत् ॥ ५२ ॥

जिसके साथ लड़ा हुआ हो उसे अपनी तरफ करे ॥ ५२ ॥

यया हि पत्न्या कलहितः स्यात्तामावर्तयेदभिमुखीकुर्यात् । काममित्यभ्युपगमे । अनेनापि प्रकारेण ममाभिमुखः स्यात् ॥ ५२ ॥

अपनी जिस पत्नीके साथ लड़ा हुआ हो उसे प्राप्त करके अपनी ओर कर ले, क्योंकि इस रीतिसे भी पति अपनी ओर हो सकता है। 'कामम्' यह अभ्युपगम यानी प्राप्तिमें वर्तता है ॥ ५२ ॥

यां च प्रच्छन्नां कामयेत्तामनेन सह संगमयेद्गोपयेच्च ॥५३॥

जिसे छिपे तौरपर चाहे उसे उसके साथ मिला दे और छिपा ले ॥ ५३॥

यां प्रच्छन्नां परस्त्रियं कामयेदनेन दूतीकर्मणा तां संगमयेत् । काममित्येव गोपयेच्चेतरस्मै नाचक्षीत ॥ ५३ ॥

पति जिस परस्त्रीको छिपे तौरपर चाहे उसे दूतीकर्म करके उसके साथ मिला दे। सब कुछ करके और देखकर भी छिपा ले किसीसे भी न कहे ॥५३

यथा च पतिव्रतात्वमशाठ्यं नायको मन्येत तथा प्रतिविदध्यादिति दुर्भगावृत्तम् ॥ ५४ ॥

पति जिस तरह अपनेको पतिव्रता और चतुर समझे उसी तरह करे। यह दुर्भगाका वर्ताव पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

प्रतिविदध्यादनुतिष्ठेत् । जाड्यदौःशील्ययोः प्रायेण दौर्भाग्यहेतुत्वात् । इति दुर्भगावृत्तं सप्तत्रिंशं प्रकरणम् ॥ ५४ ॥

जड़ता और दुराचरण ही प्रायः दुर्भागके कारण होते हैं इस कारण जिस तरह इनका अभाव अपनेमें दीखे वही पथ उत्तम है वही करे। यह 'दुर्भगाके वर्ताव' का ३७ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

राजमहलोंके वर्ताव।

यथा भार्याधिकारस्तथा भार्यायां नायकस्यापीति सप्तमीसमासोऽपि द्रष्टव्यः। अन्यथा नायकेन संगताप्यनुवर्तिता न संप्रयुज्येत। तत्र नायको द्विविधः—राजन्यको जानपदश्च। तत्र पूर्वमधिकृत्यान्तःपुरिकमुच्यते। अन्तःपुरे भवं वृत्तमान्तःपुरिकम्। 'रोपधेतोः प्राचाम्' इति वुञ्।

जिस प्रकार पतिके विषयमें भार्य्याका अधिकार रहता है उसी तरह भार्य्याके विषयमें नायकका भी पूरा अधिकार हुआ करता है । प्र० अधि० अ०१-१० में जो यह कह चुके हैं कि जिस अधिकरणमें भार्य्या अधिकारिणी हो इसी तरह यह भी समझना चाहिये कि भार्य्यामें जो पुरुषका अधिकार है। इससे यह सिद्ध होगया कि भार्य्याको जो पुरुषके साथ व्यवहार करना चाहिये तथा पुरुषको जो भार्य्याके साथ व्यवहार करने चाहियें वे भी इसमें हैं । यदि ऐसा न मानकर केवल भार्य्याके ही वर्ताव मानोगे तो विना पुरुषके वर्तावके मिलकर और अनुकूल चलकर भी संप्रयुक्त न हो सकेगी, इस कारण नायकके बर्ताव बताना भी आवश्यक है । नायक दो तरहके होते हैं—एक तो राजा तथा दूसरा प्रजावर्गका । इन दोनोंमें सबसे पहिले राजमहलोंके राजाके बर्ताव बताते हैं । अन्तःपुर राजमहलोंको कहते हैं उनके वर्ताव 'आन्तःपुरिक'[1] कहाते हैं ॥

ननु च यथा राज्ञो वृत्तं तथान्तःपुरिकाणामपि वक्तव्यमित्याह—

यहां यह शंका होती है कि जिस प्रकार आप राजाके वर्ताव बताने चले हैं उसी तरह रानियोंके भी बर्ताव बताने थे ? इस बातका उत्तर नीचेके सूत्रसे देते हैं कि—

महलोंमें बड़ी छोटियोंके बर्ताव ।

अन्तःपुराणां च वृत्तमेतेष्वेव प्रकरणेषु लक्षयेत् ॥ ५५ ॥

अन्तःपुरके बर्तावोंको भी इन्हीं प्रकरणोंमें लख ले ॥ ५५ ॥

अन्तःपुराणां चेति तत्स्थस्त्रीणामेवाभिधानम् । एतेष्वेव प्रकरणेषु लक्षयेत् । तत्राप्येकचारिणीज्येष्ठादयः सन्तीति पृथङ्नोक्तम् ॥ ५५ ॥

अन्तःपुर जनानखानेको कहते हैं । यहां अन्तःपुर शब्दसे जनानखानेमें रहनेवाली स्त्रियोंका ही कथन हैं कि राजमहलोंकी परदेनसीन रानी आदि-कोंमेंसे बड़ी छोटीके बर्तावको भी ज्येष्ठा और कनिष्ठाके बर्ताव आदिसे ही लख ले, क्योंकि वहां भी जो एकचारिणी ज्येष्ठा आदिक हैं उनकी भी ये ही बातें हैं, इस कारण भिन्न कहनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ५५ ॥

राजाका बर्ताव ।

राज्ञस्तु पृथगुच्यते—

पर राजाके व्यवहारको तो पृथक् कहते हैं कि—

---

१ अन्तःपुर शब्दसे तत्र भवः इस अर्थमें 'रोपधेतोः प्राचाम्' इस सूत्रसे 'वुञ्' प्रत्यय होकर 'आन्तःपुरिक' शब्द बनता है, पर वास्तवमें यह 'ठञ्' का रूप है ।

माल्यानुलेपनवासांसि चासां कञ्चुकीया महत्तरिका वा राज्ञो निवेदयेयुर्देवीभिः प्रहितमिति ॥ ५६ ॥

चोबदारिन, जमादारेन, कोतवालिनको चाहिये कि-रानीयोंके माल्य, अनुलेपन व वस्त्र लेकर राजाको दें, कि ' देवियोंने आपके लिये भेजे हैं' ५६

देवीभिः प्रहितमिति ॥ ५६ ॥

उन वस्तुओंको लेकर रानियोंका नाम लेकर राजाको दे दें, कि ये फलानी फलानीने भेजे हैं ॥ ५६ ॥

तदादाय राजा निर्माल्यमासां प्रतिप्राभृतकं दद्यात् ॥५७॥

राजा उन वस्तुओंको ले ले एवम् जहांसे जो वस्तु आई हो वहां अपने धारण की हुई वहा वस्तु भेज दे ॥ ५७ ॥

तदादायेत्याद्यनुरागख्यापनार्थम् ॥ ५७ ॥

उनकी वस्तु ले लेना एवम् अपनी वस्तु वहां २ भेज देना अपना प्रेम प्रकट करना है, इससे संकेत हो जाता है कि मैं तुम्हें चाहता हूं ॥ ५७ ॥

अलंकृतश्च स्वलंकृतानि चापराह्णे सर्वाण्यन्तःपुराण्यैकध्येन पश्येत् ॥ ५८ ॥

शृङ्गार करके सिंगरे हुए अन्तःपुरोंको अपराह्णकालमें एकदम देखे ॥५८॥

अलंकृतश्चेति गृहीतनेपथ्यो राजा ऐकध्येनेत्येकधाशब्दाद्धात्रे ध्यमुञ् ॥ ५८॥

अपराह्णकालमें महलमें जानेका बाना बनाकर शृंगार किये हुई सभी रानियोंको एकदम देखे ॥ ५८ ॥

मानादिकी व्यवस्था ।

तासां यथाकालं यथार्हं च स्थानमानानुवृत्तिः सपरिहासाश्च कथाः कुर्यात् ॥ ५९ ॥

समय और योग्यताके अनुसार इनके स्थान और मान करना चाहिये । इनसे बातें भी हँसते हुए ही करना चाहिये ॥ ५९ ॥

यथार्हं चेति यद्यस्याः कुलवयोऽपेक्षया स्थानं नियोगो मानः पूजा आभ्यामनुवृत्तिः कार्या । सपरिहासाः सर्वाकाराः कथाः । परिणीतास्विदं वृत्तम् ॥ ५९ ॥

जिसका जैसा कुल हो आयु हो उसके अनुसार ही उसका नियोग और पूजासे अनुवृत्ति करे । उनके साथ बातें इस रीतिसे करे कि सभी हावभाव झलकें । पर ये बातें विवाहिताओंके बारेकी हैं ॥ ५९ ॥

---

१ एक शब्दसे हुएधाको ध्यमुञ् होकर एकध्येन बनता है इसका अर्थ एकदम किया है ।

क्रमशः पुनर्भू, वेश्या, नाटकीओंके स्थानावलोकन।

तदनन्तरं पुनर्भुवस्तथैव पश्येत् ॥ ६० ॥

इसके बाद पुनर्भूओंको भी इसी रीतिसे देखे ॥ ६० ॥

तदनन्तरमिति परिणीतादर्शनानन्तरम् । पुनर्भुवस्तथैव पश्येदैकध्येन तथा स्थानमानानुवृत्तिभिश्च ॥ ६० ॥

विवाहिताओंके देखनेके बाद स्थान और मानकी अनुवृत्तियों द्वारा धरी हुई स्त्रियोंको भी एकदम देखे ॥ ६० ॥

ततो वेश्या आभ्यन्तरिका नाटकीयाश्च ॥ ६१ ॥

इसके बाद पड़देकी पटकी वेश्याएँ देखी जायँ तथा पीछे नाटकमें नाचनेवाली वेश्याओंको देखे ॥ ६१ ॥

आभ्यन्तरिका अन्तःपुरिका । नाटकीयाश्च नाटकहिताः । तथैव पश्येदेव ६१

इसके बाद उन वेश्याओंको देखे जो कि महलमें डाल ली हैं तथा इनके साथ भी पूर्व जैसा ही वर्ताव करे । पीछे नाटकी वेश्याओंका सम्मान करे एवम् उसी तरहका व्यवहार करे ॥ ६१ ॥

तासां यथोक्तकक्षाणि स्थानानि ॥ ६२ ॥

इनका स्थान भी कही हुई कक्षाओंमें हो ॥ ६२ ॥

तासामिति पुनर्भ्वादीनाम् । यथोक्तकक्षाणीति मध्ये देवीनां स्थानम् । ततो बहिःकक्षे पुनर्भुवाम् । ततो बहिर्वेश्यानाम् । ततोऽपि नाटकीयानामिति ॥ ६२ ॥

बीचमें विवाहिता रानियोंका स्थान हो । उनसे बाहिरकी कक्षाओंमें धरी औरतोंका स्थान हो । इसके बाद पर्दामें डाली हुई वेश्याओंका हो । इसके बाद नाटककी नाचनेवाली हों । यानी जो क्रम सत्कारका है वही क्रम पुनर्भू आदिके निवासका भी होता है ॥ ६२ ॥

रँगरेली आदिके निवेदन।

वासकपाल्यस्तु यस्या वासको यस्याश्चातीतो यस्याश्च ऋतुस्तत्परिचारिकानुगता दिवा शय्योत्थितस्य राज्ञस्ताभ्यां प्रहितमङ्गुलीयकाङ्कमनुलेपनमृतुं वासकं च निवेदयेयुः ॥ ६३ ॥

वासकपालियाँ तो जिसका वासक हो, जिसका बीत चुका हो, जिसका ऋतु हो उनकी परिचारिकाओंको अपने साथ लेकर भोजनके बाद नींद लेकर उठे हुए राजाओंकी भेंट उन दोनोंकी भेजी हुई नामकी अँगूठियाँ, कुंकुमका अनुलेपन और ऋतुवासकको कर दें ॥ ६३ ॥

[अतीतो—व्यस] नोत्सवाभ्यामन्तरितः । ऋतुश्च यस्याः प्रत्युपस्थितः । तत्परिचारिकानुगता इति—तिसृणामपि देवी (व्यादी) नां याः परिचारिकास्ताभिरनुगता वासकपाल्यः। दिवाशय्योत्थितस्य—भुक्त्वा शयितोत्थितस्य । ताभ्यामिति—यस्या [वासको] अतीतो यस्याश्च ऋतुः । अंगुलीयकाङ्कमिति मुद्रितम्। अनुलेपनं संबन्धिनः ख्यापनार्थम् । वासकं क्रमप्राप्तमतीतं वा । ऋतुं च प्रत्युपस्थितम् ॥ ६३ ॥

रंगरेलीका नियमित प्रबन्ध करनेवालियोंको चाहिये कि, जिसका वासक हो एवम् जिसका वासक व्यसन और उत्सवोंसे बीत गया हो एवम् जिसका ऋतुकाल आ उपस्थित हुआ हो इन तीनों तरहकी जो देवी धरी और वेश्याओंमें हों इनकी नौकरानियोंको साथ लेकर दोपहरके भोजनके बाद नींद लेकर उठे राजाको छाप, कुंकुम और वासक दे । इसमें यह पहिचान है कि अनुलेपन रजस्वलाको बतानेवाला है। वासक क्रम प्राप्त या बीते हुएको कहनेवाला है । अँगूठी सुवासापनेको बतानेवाली है । अँगूठीमें नाम लिखा रहना चाहिये । ऋतुका तात्पर्य्य ऋतुकालके प्रारंभसे है ॥ ६३ ॥

तत्र राजा यद् गृह्णीयात्तस्या वासकमाज्ञापयेत् ॥ ६४ ॥

इनमें राजा जिसकेको ग्रहण कर ले उसके वासकको आज्ञा दे दे ॥ ६४ ॥

तत्रेति निवेदिते । यद् गृह्णीयादिति—यदीयमंगुलीयकम् ॥ ६४ ॥

निवेदित की हुई वस्तुओंमेंसे राजा जिसकी अँगूठीको ले ले उसके ही चोबदारको आज्ञा दे दे । वह फिर नीचेसे आवाज लगा देगा कि महाराजसाहिब आयेंगे ॥ ६४ ॥

सम सम्मानके स्थल ।

उत्सवेषु च सर्वासामनुरूपेण पूजापानकं च । संगीतदर्शनेषु च ॥ ६५ ॥

उत्सवोंमें सबका उचित सम्मान हो और उचित ढंगसे जाम भी पिया जाय । संगीतके देखनेमें भी यही व्यवस्था हो ॥ ६५ ॥

अनुरूपेण पूजेति—कुलवयोऽनुरूपा । आपानकं च ताभिः सह ॥ ६५ ॥

जिसका जैसा घराना हो जैसी आयु हो उसीके अनुसार सत्कार होना चाहिये एवम् उसके साथ उसी रससे जाम पीना चाहिये । यही हाल संगीत देखनेमें भी होना चाहिये ॥ ६५ ॥

आना जाना बन्द ।

अन्तःपुरचारिणीनां बहिरनिष्क्रमो बाह्यानां चाप्रवेशः।

अन्यत्र विदितशौचाभ्यः । अपरिक्लिष्टश्च कर्मयोग इत्यान्तःपुरिकम् ॥ ६६ ॥

रनिवासमें रहनेवालियोंको बाहिर न निकलने दे तथा बाहिरकीयोंको भीतर न जाने दे जिनके कि चारित्रका पता न हो । जिनका पता हो वे भले ही चली जायँ । कर्मयोग परिक्लिष्ट न होना चाहिये। ये राजमहालके वर्ताव पूरे हुए ॥

अप्रवेश (अन्यत्र) इति । ता ह्युपधाशुद्धत्वान्नान्यत्प्रयोजयन्ति । अपरिक्लिष्टश्च कर्मयोग इति रतोपचारोऽकदर्थितः स्यात् । इत्यान्तःपुरिकमष्टत्रिंशं प्रकरणम् ॥ ६६ ॥

जिनकी अर्थ, धर्म, काम और भयसे परीक्षा कर ली गई है, जो इसमें शुद्ध साबित हुए हैं उन्हें छोड़कर दूसरेको इसमें नहीं लगाते । जिन स्त्रियोंकी पवित्रताका पता लग चुका है वे ही जा सकें दूसरी नहीं । सहवासका राग-रंग ऐसा होना चाहिये जिसमें रति उत्तम हो किसी तरह भी अधम कोटिमें न आये ॥ यह 'राजमहलोंके वर्ताव' नामक ३८ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ६६॥

एक पुरुषका अनेक स्त्रियोंके साथ वर्तावका प्रकरण ।

यथा राज्ञो बह्वयः स्त्रियस्तथा जनपदस्यापि भवन्तीति पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिरुच्यते ॥

जिस प्रकार राजा लोगोंके यहां बहुतसी स्त्रियाँ होती हैं उसी तरह प्रजामें भी ऐसे संपन्न पुरुष होते हैं जिनके घरोंमें कितनी ही स्त्रियाँ होती हैं । उसे उनके साथ कैसा वर्ताव करना चाहिये? इस कारण इस प्रकरणको कहते हैं॥

सामान्य व्यवहार ।

तत्र सामान्यमाह—

पहिले सामान्य होकर पीछे विशेष होता है, इस कारण सबसे पहिले सामान्य ही बताते हैं—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

पुरुषस्तु बहून् दारान् समाहृत्य समो भवेत् ।
न चावज्ञां चरेदासु व्यलीकान्न सहेत च ॥ ६७ ॥

इस विषयमें श्लोक हैं कि–पुरुष तो बहुतसी स्त्रियोंको इकट्ठी करके सबके साथ सम होजाय । उनमेंसे न तो किसीका अनादर ही करे एवम् न किसीके अपराधोंको ही सहे ॥ ६७ ॥

समो भवेदिति—नैकत्र स्नेहेन वर्तेत । न चावज्ञां चरेदिति—गुणरूपरहितास्वपि तिरस्कारं न कुर्वीत । व्यलीकानपराधान्न सहेत । अन्यथा क्षान्तेषु पुनः कुर्युः ॥ ६७ ॥

उसे यह न करना चाहिये कि एकपर ही प्रेम करने लग जाय । चाहे कोई गुण और रूपसे रहित भी हो पर अनादर न करे । पर उनके अपराधोंको भी न सहे नहीं तो फिर भी वे अपराध करने लग जायँगी ॥ ६७ ॥

एककी बात एकसे न कहे ।

एकस्यां या रतिक्रीडा वैकृतं वा शरीरजम् ।
विस्रम्भाद्वाप्युपालम्भस्तमन्यासु न कीर्तयेत् ॥ ६८ ॥

एकके साथ जो रतिक्रीडा वा शरीरका विकार भाव हो अथवा उपालम्भ हो उसे विश्वासमें आकर भी दूसरीयोंसे न कहे ॥ ६८ ॥

'युक्तं वासकशय्यया (सज्जया), इति पाठान्तरम् । अन्यासु न कीर्तयेदिति स्त्रीणां वैराग्यहेतुत्वात् ॥ ६८ ॥

एकके साथकी इन बातोंके कहनेसे दूसरि..को अपनेसे अरुचि होजायगी६८

लड़नेका मौका न दे ।

न दद्यात्प्रसरं स्त्रीणां सपत्न्याः कारणे क्वचित् ।
तथोपालभमानां च दोषैस्तामेव योजयेत् ॥ ६९ ॥

सौतोंके कलहके कारणके होनेपर भी स्त्रियोंको कभी मौका न दे । जो आपसे आकर उपालंभ दे उसीका दोष बताये ॥ ६९ ॥

प्रसरं न दद्यात्कलहपरिहारार्थम् । सपत्न्याः कारणे इति—सापत्न्यसंबन्धिनि सत्यपि निमित्ते । तथा तेनैव प्रकारेण निःसर (सार ?) तयोपालभमानां युक्तमेवोदेक्षितमिति । दोषैस्तामेव योजयेत्त्वैव दोषो न तस्या इति ॥ ६९ ॥

मौका दिये पीछे लड़ जायँगी इस कारण इस बातका कभी अवकाश न दे कि किसीकी शिकायतपर जाहिरा अमल करे, चाहे भले ही सौतोंका ऐसा कारण उपस्थित हो। इसी प्रकार निःसाररूपसे उपालम्भ देनेवाली उपे-

---

१ 'वैकृतं वा शरीरजम्' के स्थानमें 'युक्तं वासक शय्यया (सज्जया)' यह पाठ है। वासकसज्जा नायिका होती है इसे हम अ० अ० अ० में दिखा चुके हैं। उसने जो कुछ अपने साथ किया हो अथवा आपने जो उसके साथ किया हो उसे किसी दूसरीसे भूलकर भी न कहे और न उपालम्भ उराहनोंकी बातें ही कहे ॥

क्षाके योग्य ही है । जो दूसरियोंका दोष दिखाने आये भले ही चाहें उसका दोष भी नहीं है तो भी जो अपनी सौतोंका निःसार दोष अपनेको बताये वह दोष उसीमें बता देना चाहिये कि तू भी तो इससे खाली नहीं है ॥ ६९ ॥

हर एकसे बर्ताव ।

प्रत्येकं प्रतिपत्तिमाह—

प्रत्येकके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये इसके विषयमें कहते हैं कि—

अन्यां रहसि विस्रम्भैरन्यां प्रत्यक्षपूजनैः ।
बहुमानैस्तथा चान्यामित्येवं रञ्जयेत् स्त्रियः ॥ ७० ॥

किसीको एकान्तमें विश्वास देकर, किसीका जाहिरा सम्मान करके एवम् किसीका बहुमान करके सबोंको ही अनुरक्त बनाये रहे ॥ ७० ॥

रहसि विश्वासैर्या लज्जावती । प्रत्यक्षपूजनैर्या सपत्नीषु पंक्तिमिच्छति । बहुमानैर्या मनस्विनी ॥ ७० ॥

जो लज्जाशील हो उसे एकान्तमें विश्वास दे, जो सौतोंमें पंक्ति चाहती हो उसका प्रत्यक्ष सत्कार करे, जो मानिनी हो उसका बहुमानसे सत्कार करे; इस तरह सबको अनुरक्त राखे ॥ ७० ॥

अनुकूल वृत्तिसे सबकी प्रसन्नता ।

उद्यानगमनैर्भोगैर्दानैस्तज्ज्ञातिपूजनैः ।
रहस्यैः प्रीतियोगैश्चेत्येकैकामनुरञ्जयेत् ॥ ७१ ॥

वनविहार, भोग, दान, उसके भाई भतीजोंका सत्कार और एकान्तके प्रेम योगोंसे एक एकको अनुरक्त राखे ॥ ७१ ॥

उद्यानगमनैर्या तच्छीला । भोगैर्या परिभोगलालसा । तज्ज्ञातिपूजनैर्या ज्ञातिषु कर्तव्यबुद्धिः । रहस्यै रहसि भवैः प्रीतियोगैर्या रतिप्रिया ॥ ७१ ॥

जिसे वनविहार अच्छा लगता है उसे वनविहारसे, खान पान आदिकी इच्छावालीको खान पान आदि उपभोगोंसे, जो अपने भाई भतीजोंके सत्कारमें मन रखती है उसको भाईभतीजोंके सत्कारसे और जो रतिप्रिया हो उसे एकान्तमें होनेवाले प्रेमके योगोंसे अनुरक्त राखे ॥ ७१ ॥

अधिकरणके अनुष्ठानका फल ।

अधिकरणार्थानुष्ठाने फलमाह—

इस अधिकरणके कहे हुए पदार्थोंके अनुष्ठान करनेका जो फल मिलता है है उसे बताते हैं कि—

युवतिश्च जितक्रोधा यथाशास्त्रप्रवर्तिनी ।
करोति वश्यं भर्तारं सपत्नीश्चाधितिष्ठति ॥ ७२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे भार्याधिकारिके चतुर्थेऽधिकरणे सपत्नीषु ज्येष्ठावृत्तं कनिष्ठावृत्तं पुनर्भूवृत्तं दुर्भगावृत्तमान्तःपुरिकं पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिर्द्वितीयोऽध्यायः ।

जो युवती क्रोधपर काबू रखकर शास्त्रके अनुसार बर्ताव करती है वह अपने पतिको वशमें करके सौतोंके ऊपर रहती है ॥ ७२ ॥

जितक्रोधेति शास्त्रानुष्ठाने कारणम् । यथाशास्त्रप्रवर्तिनीति यद्यस्याः शास्त्रमेकचारिणीज्येष्ठादिवृत्तम् । सपत्नीरधितिष्ठतीति 'अधिशीङ्स्थासां—' इति कर्मसंज्ञा । इति पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिरेकोनचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ७२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां भार्याधिकारिके चतुर्थेऽधिकरणे सपत्नीषु ज्येष्ठावृत्तं कनिष्ठावृत्तं पुनर्भूवृत्तं दुर्भगावृत्तमान्तःपुरिकं पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिर्द्वितीयोऽध्यायः ।

जो अपने क्रोधपर काबू रखेगी वह शास्त्रके अनुसार चल सकेगी, क्योंकि यही कारण है । जो एकचारिणी ज्येष्ठाको करना चाहिये वह क्रोधपर काबू पाकर करे तो कहे फलको पा सकती है । इसी तरह जो जिसका बर्ताव बताया है उसे उसीके अनुसार करेगी तो सौतोंपर अवश्य ही विजय होगी, यानी वह सौतोंकी अधिष्ठाता बन जायगी । यह एक पुरुषके बहुतसी स्त्रियोंके साथ बर्तावका उन्तालीसवां प्रकरण पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म—तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके द्वितीय अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

समाप्तं चेदं भार्याधिकारिकं चतुर्थमधिकरणम् ।

पारदारिकं पञ्चममधिकरणम् ।

पारदारिकविमर्श ।

पहिले अधिकरणके १ अध्यायमें 'कामशास्त्रकी गुरुपरम्परा' में टीका तथा टिप्पणीमें इस बातका सप्रमाण प्रतिपादन किया है कि प्राचीन भारत परदारगमनके नितान्त विपरीत था; इसने इसे आक्रमणकारी अरबोंसे सीखा अतः यह भारतकी प्राचीन सभ्यतामें नहीं किन्तु दो हजार वर्षोंसे पीछे आया है। १८४ वें पृष्ठमें 'गम्य–परनारी–विषयक विचार' इस शीर्षकमें पूर्वाचार्य्योंके भाष्य तथा वेदके आधारपर यह बात सिद्ध की है कि प्राचीन पुरुष परनारीको विष समझते थे, किन्तु जब परस्त्री कामार्त होकर स्वतः अपने घर यहांतक आ उपस्थित हो कि शय्यातक पहुँच जाय तो वामदेव्यसामकी उपासनाके भावसे परस्त्रीगमन कर लेते थे अन्यथा नहीं। किन्हीं २ स्त्रियोंके साथ तो ऐसी अवस्थामें भी विचारशील पुरुष गमन नहीं करते थे, जैसे महारथी अर्जुनने उर्वशीको चन्द्रवंशकी जननी समझकर शय्यातक प्राप्त हुईका भी परित्याग कर दिया था। अतः जिन स्त्रियोंमें धर्मतः माता, बहिन व पुत्रीका भाव होता था ऐसी स्त्रियोंका ऐसी दशामें भी परित्याग कर दिया जाता था; जैसा कि महाराज यम और उनकी बहिनने लोकोपकारके लिये प्रकट किया था। इस प्रकरणको यहां प्रसंगवश रखते हैं, यमकी छोटी बहिनने भाइयोंके कर्तव्योंको परिस्फुट करनेके लिये अपनी कामार्तसी सूरत बनाकर यमदेवसे प्रार्थना की कि—

"ओं चित् सखायं सख्या ववृत्यम्, तिरः पुरूचिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमादधीत वेधा अधिक्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥"

यह स्थल नितान्त एकान्तका है यहां कोई न जान सकेगा। मैं योग्य हूं यह मेरे साथ सहवास करके अपना पुत्र पैदा करे मैं ऐसा चाहती हूं। यह सुनकर यमदेवने उत्तर दिया कि, तू मेरी बहिन है इस कारण मैं तुझसे किसी प्रकार भी कुछ करना नहीं चाहता। जिन कामोंको तू कर रही है वे कार्य्य बहिनोंके नहीं होते, ये तो "सलक्ष्म्या यद् विषुरूपावभाति" दूसरियोंके काम हैं, बहिन माता आदिके करनेके कार्य्य नहीं हैं। जो भाई ऐसा पाप करते हैं उन भाइयोंके भी ये काम नहीं हैं किन्तु "पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्" उसे वज्रपापी कहते हैं, जो बहिन आदिके साथ ऐसा करता है। इससे यह सुतराम् सिद्ध होजाता है कि, बहिन माता आदि या जिनके साथ अपना ऐसा व्यवहार हो यदि वे देवियाँ इतनी बेशर्मी भी कर बैठें तो भी उनसे बचे; अपनी आत्माका संयम राखे। इसके सिवा किन स्त्रियोंके

गमनमें महापाप नहीं इस बातको बता कामसूत्रकारने यह भी बता दिया कि इन कारणोंके उपस्थित होनेपर स्वार्थसिद्धिके लिये स्वार्थी ऐसा कर भी लेते हैं पर उनका कर्म सुतरां ही निष्पाप हो यह नहीं कहा जा सकता । यहां कामसूत्रकार शरीरको बचानेके लिये भी अन्तरमें परदारगमन करनेके लिये धर्म न मानते हुए भी कहते हैं तथा कोक इस दशामें भी इसे पापका ही कारण मानता है पर " न शरीरं पुनः पुनः " के सिद्धान्तको लेकर इसमें प्रवृत्ति करता है । यदि यह शंका हो कि महर्षिवात्स्यायनजी शरीररक्षाके लिये भी क्यों इस पापकर्मके करनेके लिये कहते हैं ? इस प्रश्नका उत्तर वैद्यकशास्त्रसे लेना चाहिये । अन्यशास्त्रोंकी तरह वैद्यकशास्त्र भी परदारगमनको आयुका नाशक मानता है, किन्तु कामज्वरमें प्राण बचानेके लिये इसका विधान भी करता है । पापके कर्म पुण्य व पुण्यके कर्म कभी पाप नहीं हो सकते इसी तरह परनारीगमन चाहे किसी कारण किया जाय कभी पुण्य नहीं; पाप ही कहा जायगा । पर यह शास्त्रकी सार्वभौमिकता है जो ऐसे पापियोंको भी बचानेमें कल्याण देखता है । यदि यह सन्देह हो कि उक्त शास्त्रने कहां परनारीगमन दिखाया है वह यहीं दिखाये देते हैं । इसमें सबसे पहिले यह बताया है कि स्त्रीपुरुषोंकी कामज्वरमें क्या दशा होती है ?

इसपर वैद्यकशास्त्रके वाक्य ।

वैद्यकशास्त्रने उन दशाओंको बताते हुए उनका उपाय भी बता दिया है उसको यहीं बताते हैं । कामजज्वरके विषयमें वंगसेनने लिखा है कि—

" कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् ।
हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति ॥ "

जब मनुष्यको या स्त्रीको किसी स्त्री व पुरुषकी चाह उत्पन्न हो जाती है तो जो उससे उसे ज्वर हो आता है उसे कामज्वर कहते हैं, इसमें चित्तविभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, भोजनसे अरुचि, हृदयमें वेदना और शरीर–शोष होजाता है । इसपर वागूभट निदानस्थान २ अ० में कहते हैं कि—

" कामाद् भ्रमोऽरुचिर्दाहो ह्रीनिद्राधीधृतिक्षयः ॥ "

कामसे भ्रम, अरुचि, दाह एवम् लज्जा, निद्रा, बुद्धि और धृतिका नाश होजाता है । इसी वातको लेकर कहा गया है कि–" कामातुराणां न भयं न लज्जा " कि कामसे व्याकुल हुए व्यक्तियोंको न तो भय ही रहता है एवं न लाज ही रहती है । स्त्रियोंके कामज्वरके विषयमें कहा है कि–

" मूर्च्छाऽङ्गमर्दस्तृष्णनेत्रे चापल्यं कुचवक्षयोः ।
स्वेदः स्याद् हृदि दाहश्च स्त्रीणां कामज्वरे भवेत् ॥ "

मूर्च्छा, शरीरकी टूटन, तृषा, नेत्रोंमें चंचलता, स्तनोंमें चंचलता, मुखमें चपलता, हृदयमें पसीना और दाह होता है । स्त्रीके कामज्वरकी शान्तिके उपायोंमें भावमिश्र कहते हैं कि–

" सन्ध्यायां संस्तरः कार्यः सुगन्धैः कुसुमैर्भृशम् ।
क्रीडनीयं स्वकान्तेन सह रात्रौ तथा स्त्रियाः ॥ "

सामके समय फूलोंकी सेज बिछानी चाहिये, फिर उस प्यारेके साथ खेलना चाहिये जिसकी चाहमें यह दशा हुई हो । यह हुआ स्त्रीके कामज्वर शान्तिका उपाय कि जिस प्यारेकी उसे चाह हो उसीके साथके संगसे शान्त हो जाता है । अब पुरुषोंके कामकी शान्तिका उपाय बताते हैं कि—

" काम्ये नार्य्याः सद्वाक्यमेव च, आश्वासनेष्टलाभेन वायोः
प्रशमनेन च । हर्षणैश्च शमं यान्ति कामक्रोधभयज्वराः ॥ "

कामज्वरमें सुन्दरियोंके मधुरवचन ही शान्ति करते हैं, मित्र जब यह आश्वासन देते हैं कि ' शिर जाय या रहे पर आपका कार्य्य करके हम लेंगे आप सावधान हो जायँ ' तो इससे भी शान्ति मिलती है । जिनका मर्ज इससे भी अगाड़ी बढ़ा हुआ है उनकी दवा वही सुन्दरी वा सुन्दर होता है जिसकी कि चाहसे दर्द बढ़कर ज्वरका कारण हुआ है। इस ज्वरको कम करनेके दूसरेभी उपाय हैं पर वास्तवमें उनमें उतनी ताकत नहीं जो चाहकी वस्तुके मिलनेमें हैं । मेरे इस सबके दिखानेका यह तात्पर्य्य नहीं है कि प्राण बचनेके लिये जो परस्त्रीगमन किया जाता है उसमें पाप नहीं है, न किसी शास्त्रकारका ही यह मन्तव्य है । धर्मशास्त्र तो ऐसी इच्छाके उत्पन्न होनेको भी पाप मानते हैं तथा कामशास्त्र भी परनारियोंमें प्रवृत्त होने कारण व ढंगोंको बताता हुआ यह कहता है कि मैंने इसको इसलिये भी कहा है कि सभ्यलोग अपनी स्त्रियोंको इन दोषोंसे सदा बचाये रहें । यदि महर्षिपर यह शंका हो कि फिर प्राप्त करनेके उपायोंके बतानेकी क्या आवश्यकता है तो यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जो प्रयत्न तथा हावभावोंके दर्शन परस्त्रियोंके विषयमें उपयोगी सिद्ध होते हैं वे ही स्वयंवरा और स्वयं भार्य्या चुननेवाले पुरुषके भी हितकारी होते हैं। इस कारण उनका विस्तारके साथ वर्णन किया है ।

स्वयंवरार्थिनी कन्याओंके विषयमें यह है ।

यादि मैं इन अधिकरणपर गहरी दृष्टि डालता हूं तो विवाहयोग्य व विवाहोद्यत, वयःप्राप्त, स्वयंवर करनेवाली कन्याके विषय और उसके चाहनेवाले युवकोंकी प्रवृत्ति लेकर इस अधिकरणको रखा है । यह परकी व्याही हुई

स्त्रीके विषयमें भी समान पड़ता है इस कारण उसपर भी इसे घटा दिया गया है। यदि यह शंका हो कि कन्या संप्रयुक्तकके रहते इसे फिर कन्याओंके लिये क्यों माना जाय? इस प्रश्नके उत्तरमें यह कहा जाता है कि प्रथम तो उत्तम विवाह कहे हैं एवम् फिर कुछ प्रायत्निक विवाह बता दिये हैं तथा दो प्रकरण कहे हैं, पर वे अपूर्ण हैं उनसे पूरा मतलब हल नहीं होता इसी तरह अन्य प्रकरण भी विना इसके अधूरे रह जाते हैं इस कारण इसकी आवश्यकता है।

आज कलके चुनावोंमें आवश्यकता।

जब कन्या अनेकोंपर हाथ डालती बार किसीकी ओर अधिक, किसीकी तरफ ज्यादा एवम् किसीमें पूर्ण अनुरक्त होकर सहवास भी कर चुकी हो पर प्रकट न आया हो तथा प्रकट आनेपर भी उसके व उसके मा बापोंने उसके साथ शादी न की हो। दूसरे प्रयत्न करनेवाले उसे उसकी मानकर झपटनेकी इच्छासे आप ही पा लेना चाहें तो उनके भी वे ही प्रयत्न होते हैं जो कि परनारीपर किये जाते हैं। इस कारण यह उनका भी हितकारी है या उनके लिये भी महर्षिने कहा ऐसा समझना चाहिये। यदि यह शंका हो कि जबतक उसके घर नहीं तो उसकी कैसे? तो यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि जिन माता पिताओंके अधिकारमें वह रहती है उनकी तो वह बनी बनाई है तथा जिसके काबूमें उसका हृदय चला गया उसकी वह हो चुकी। अतः दूसरा उसपर वे ही प्रयत्न करेगा जो परकीयापर होने चाहियें।

यह पाश्चात्योंको अधिक हितकर है।

महर्षि वात्स्यायनका उद्देश किसी देशके हित करनेका ही नहीं किन्तु अखिल विश्वके हितकरनेमें उनकी दृष्टि थी। उनके कन्यासंप्रयुक्तकके कुछ प्रकरण तथा यह अधिकरण दूसरे देशोंपर भी अधिक उपकार करनेवाले सिद्ध होते हैं। जहां कन्याएँ विवाहसे पहिले ही सहवास करके कन्याएँ ही मानी जातीं तथा मिलकर ही जोटका निश्चय करती हैं एव चुनाव करतीबार कितनोंहीसे मिल लेतीं और संगत हो लेती हैं एवम् यही हाल पुरुषोंका भी होता है, अतः इस अधिकरणको मुख्यरूपसे उनके लिये समझना चाहिये।

आज यही इन उपायोंको सामने रख रहा है यह बात नहीं हैं, जबसे दुनियामें इस प्रकारके प्रयत्नोंकी आवश्यकता पड़ी है उसी दिनसे प्रयत्न प्रचलित हैं। होते देखे जाते हैं, केवल ऋषिने तो वस्तुस्थितिको ही बताया है। उसका यही मुख्य उद्देश्य है कि कामीपुरुषोंके इन प्रयत्नोंको जान अपनी रक्षा कर सकें। ऋषियोंके ऐसे अक्षर नहीं होते जो लोकोद्वेजक हों किन्तु उनका तो यही प्रयास होता है कि संसारकी मर्यादा बनी रहे।

प्रथमोऽध्यायः ।

स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनप्रकरण ।

कन्यापुनर्भूनायकयोः समागमोपायः सविशेष उक्तः । तत्र वेश्यायाः काम एव परदारेभ्योऽर्थकामाविति तत्समागमोपायदर्शनार्थं वैशिकात्प्राक्पारदारिकमुच्यते ।

कन्या और पुनर्भू नायिकाओंके समागमके उपाय विशेषताके साथ कह दिये । इनमें वेश्यासे तो काम ही प्रयोजन है पर पत्नियोंसे अर्थ और काम दोनों होते हैं, इस कारण परदाराओंके समागमके उपायोंके दिखानेके लिये वैशिकसे पहिले पारदारिक अधिकरण कहते हैं ।

तत्र स्त्रीपुंसयोः शीलमनवस्थाप्योत्तरव्यापारासंभवात्स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनमुच्यते ।

इसमें भी स्त्रीपुरुषोंके स्वभावकी व्यवस्था किये विना दूसरे व्यापार नहीं कहे जा सकते, क्योंकि लोकमें प्रथम स्वभावोंका परिचय ही होता है, इसके बाद दूसरे कार्य्य होते हैं; अत एव हम भी सर्वप्रथम स्त्रीपुरुषोंके सहज स्वभावोंकी व्यवस्था कहते हैं ।

प्रकरण शुद्धिका स्मरण ।

परपरिगृहीतासु कामः प्रतिषिद्ध इति चेदाह—

यदि यह कहो कि पराई नारियोंमें काम प्रतिषिद्ध है फिर किसलिये इस प्रकरणको कहते हो ? इसका उत्तर देते हैं कि—

व्याख्यातकारणाः परपरिग्रहोपगमाः ॥ १ ॥

परनारीगमनके कारण बता चुके ॥ १ ॥

व्याख्यातकारणा इति–परपरिग्रहगमनस्य सुखपुत्रव्यतिरेकेण कारणानि विशुद्धपूर्वकाणि नायिकाविमर्शे व्याख्यातानीति स्मारयति ॥ १ ॥

पराई नारीके साथ गमनके कारण विशुद्धिपूर्वक पांचवें अध्यायमें चौथे सूत्रसे लेकर इकीसवें सूत्रतक बताये हैं । उन्हींको यहां भी स्मरण कराये देते हैं ॥ १ ॥

---

१ वास्तवमें इसका यहां ही उपयोग है, यही कारण है कि कोक और कल्याणमल्लने परनारीगमनके कारण, गम्य और अगम्य परनारियाँ तथा दूत दूती आदि सबको कहीं दिखाया है अतएव कामसूत्रके भी इस विषयको यहांके लिये समझना ।

परनारीमें प्रथम देखनेकी बातें ।

तेषु साध्यत्वमनत्ययं गम्यत्वमायतिं वृत्तिं चादित एव परीक्षेत ॥ २ ॥

परनारियोंके विषयमें इन बातोंको पहिलेसे देख ले कि साध सकता हूं वा नहीं । शिर जानेका मार्ग तो नहीं है, है तो मिलने लायक, अगाड़ी लाभ और फायदा तो है ॥ २ ॥

तेष्विति परपरिग्रहेषु । सत्स्वपि कारणेष्विदमादित एय परीक्षेतेत्याह । साध्यत्वमिति साधयितुं शक्येति । अनत्ययमत्ययाभावात् । गम्यत्वं कुष्ठिन्युन्मत्ताद्यभावात् । आयतिं प्रभावं (?) तत्संयोगात् । वृत्तिमात्मनो वृत्त्यभिधानात् ॥ २ ॥

बताये हुए कारणोंके होनेपर भी इन बातोंकी परीक्षा सबसे पहिले कर ले कि मैं पा सकूंगा वा नहीं । शिरके लाले तो न पड़ेंगे, यह कोढिनी वा पगली तो नहीं है । इसपर काबू पानेके बाद मेरा प्रभाव क्या होगा, मुझे इसके मिलनेपर लाभ क्या होगा ? ॥ २ ॥

मुख्य कारण ।

मुख (ख्य) मपि गमनकारणं यदा शरीरोपघातं पश्येदित्याह—

इन कारणोंके सिवा मुख्य भी कारण है, कि जब विना उसके पाये यह देखे, कि शरीर नहीं रह सकता तो अवश्य ही करे इसी बातको कहते हैं कि-

यदा तु स्थानात्स्थानान्तरं कामं प्रतिपद्यमानं पश्येत्तदात्मशरीरोपघातत्राणार्थं परपरिग्रहानभ्युपगच्छेत् ॥३॥

जब तो स्थानसे स्थानान्तरको प्राप्त हुए कामको देखे तो अपने शरीरको मरनेसे बचानेके लिये पराई नारीके साथ भी सहवास करे ॥ ३ ॥

यदा त्विति—कांचित्स्त्रियं दृष्ट्वा संप्रयोगेच्छालक्षणः काम उत्पन्नस्तं यदा

---

१ "जिगमिषुभिः परदारान्, सिद्ध्यायतिवृत्त्युपायपरिहाराः ।
प्रागेव चिन्तनीयाः, लब्धप्रसरो हि दुर्जयो मदनः ॥"

जो परदारामें आसक्त हो उसे चाहिये कि कारणोंसे भी पहिले सिद्धि, आयति, वृत्ति, उपाय और विघ्नोंके परिहार देख ले, पीछे प्रवृत्त हो । क्योंकि कामको अवसर मिले पीछे उसका विजय कठिनतासे होता है ।

प्रथमात्स्थानात्स्थानान्तरमन्यत्स्थान्तरं प्रतिपद्यमानं गच्छन्तं पश्येदनुभवेन्न च प्रतिसंख्या (स्थाप) ने निवर्तयितुमीशः स्यात् ॥ ३ ॥

जब किसी स्त्रीको देखकर मिलनेकी इच्छारूप काम उत्पन्न हो जाय, जब पहिली अवस्थासे दूसरी अवस्थामें जाता हुआ अनुभव करे एवम् यह देखे कि मैं नहीं रोक सकता तो परदारगमन कर सकता है ॥ ३ ॥

कामकी दशाएँ।

तस्य कति स्थानानीत्याह—

कामके कितने स्थान यानी दशाएँ हैं? इसका उत्तर देते हैं कि—

दश तु कामस्य स्थानानि ॥ ४ ॥

दश तो स्थान ह ॥ ४ ॥

कामो ह्युन्मादात्प्रभृति विषयाप्राप्तावनुकूलप्रत्ययवशात्प्रतिक्षणमुपवर्धमान आ प्राणत्यागं वर्तते । तस्यासाधारणकार्योत्पत्त्या व्यवहारार्थं दश स्थानानि पूर्वाचार्यैरुक्तानि ॥ ४ ॥

कामविषयके प्राप्त न होनेपर अनुकूल विश्वासके कारण प्रतिक्षण बढ़ता हुआ उन्मादसे लेकर प्राणत्यागतक पहुँच जाता है। उस कामके असाधारण कार्य्योंकी उत्पत्ति होनेसे व्यवहारके लिये दश स्थान पूर्वाचार्य्योंने कहे हैं ॥ ४ ॥

ये सर्वसाधारण हैं।

रतविशेष प्रकरणमें हमने रागवत् रतपर कामकी दशों दशाओंका सोपपत्तिक विचार किया है। जिस प्रकार ये दशों दशाएँ होती हैं, इस बातको विस्तारके साथ समझाया है। ये दशों दशाएँ वियोगके समय होती हैं इनमें यह कोई खास बात नहीं है, किन्तु परनारीको लेकर ही ये प्रवृत्त होते हों। मैंने जितना भी लोक और वेद देखा है उसमेंसे यही निश्चय किया है, कि ये सब चाहकी चीजका उद्देश लेकर हो जाती हैं। चाहकी वस्तु अपने पास न हो, चाहें वह कन्या या युवक हो चाहें परकीया हो या भले ही स्वकीया हो कोई भी हो यह अधिकरण इनकी सर्वसाधारण दशाओंको लेकर प्रवृत्त होता है, इससे पता चलता है कि यह केवल पराई नारीके विषयमें ही नहीं है किन्तु चाहकी सर्व साधारण वस्तुको लेकर ही प्रवृत्त हुआ है ये दशाएँ जिस प्रकार पुरुषोंको आक्रान्त करती हैं उसी तरह स्त्रियोंको भी सताती हैं। इसमें भी विवाहित अविवाहित सभी आजाती हैं। पुरुषोंसे जिस प्रकारके

प्रयत्न होते देखे जाते हैं तो स्त्रियोंसे भी वे कुछ न्यूनाधिकमें देखनेमें आते हैं। उन्माद आदि दशाओंका भी एकसा अनुभव देखा जाता है, अतः इसके माननेमें कोई सन्देह न होना चाहिये, कि ये सर्वसाधारण हैं। इनकी साधारणता भी इस अधिकरणके साधारणपनेमें एक दृढप्रमाण सिद्ध होती है॥

इनका क्रमपूर्वक वर्णन।

तानि क्रमेणाह—

उन दशों दशाओंको क्रमपूर्वक कहते हैं कि—

चक्षुःप्रीतिर्मनःसङ्गः संकल्पोत्पत्तिर्निद्राच्छेदस्तनुता विषयेभ्यो व्यावृत्तिर्लज्जाप्रणाश उन्मादो मूर्च्छा मरणमिति तेषां लिङ्गानि ॥ ५ ॥

आखोंमें प्रेमकी झलक, चित्तकी आसक्ति, संकल्पका पैदा होना, नींदका न आना, दुर्बल होना, विषयोंसे चित्तका हट जाना, लाजका मिट जाना, दीवानगी, बेहोशी और मौत ये दश उनके जतानेवाले हैं ॥ ५ ॥

स्त्रियं दृष्टवतः संयोगेच्छालक्षणात्कामादनन्तरं दृशौ स्निग्धे भवतः । ततो विषयाप्राप्तो मनःसङ्गस्तत्र मनसः सक्तिः । तस्मिन्सक्ते संकल्पोत्पत्तिः कथं प्राप्स्यामि प्राप्य चैवमनुष्ठातव्यमिति । ततः संकल्पयतो निद्राच्छेदः । ततो निद्रामलभमानस्य तनुता शरीरकार्श्यम् । ततो विषयेभ्यो व्यावृत्तिः । सर्वथा तद्गतचित्तत्वादन्यविषयाञ्ज्वलदनलप्रख्यानोपयाति । तेभ्यश्च व्यावर्तमानस्य लज्जाप्रणाशनम् । गुरुभ्योऽपि निर्लज्जत्वान्न बिभेति । विप्रनष्टलज्जस्य निर्भयस्य चोन्मादः प्रवर्तते । ततो मूर्च्छा भवत्यस्वास्थ्यसंज्ञिका । ततो मरणं प्राणत्यागः । तेषामिति कामस्थानानां प्रतिपत्त्यर्थमेते चक्षुःप्रीत्यादयो लिङ्गानि । तत्कार्यत्वात् ॥ ५ ॥

किसी सुन्दर स्त्रीको देखकर जब मनुष्यके दिलमें उसके साथ रतिकेलि करनेकी इच्छारूप काम उत्पन्न होता है तो इसके बाद उसकी आखें उसके प्रेमसे सराबोर हो जाती हैं। फिर उसके न मिलनेपर उसमें मन आसक्त हो जाता है। इस आसक्तिके पीछे उसके मनमें ये संकल्प उठते रहते हैं, कि कैसे पाऊं ? पाकर यह कहूंगा यह न कहूंगा। इस तरह संकल्पविकल्पमें रहनेवालेको फिर नींद भी क्यों आयेगी। नींद न मिलनेपर शरीरका कृश होना अनिवार्य्य ही है । जब सब ओरसे चित्त खिंचकर प्यारीमें ही

लग जायगा तो बुद्धिको दूसरे विषय जलती हुई आग जैसे ही लगेंगे । उस कारण उनसे हटना स्वाभाविक ही है । जब विषयोंमें चित्त न रहेगा तो लाजको फिर क्यों रहना था वह निर्लज्ज होनेके कारण गुरुओंसे भी नहीं डरता । निर्लज्ज और निर्भय होनेपर उन्माद हो जाता है । उन्मादके होनेपर शरीरकी आरोग्यताके बिगड़ जानेके कारण मूर्च्छा आने लगती है । इसके बाद इस दुःखी जीवके प्राणपखेरू शरीर छोड़कर उड़ जाते हैं । ये दशों कामकी अवस्था जाननेके चिह्न हैं, क्योंकि उन्हींके ये कार्य हैं ॥ ५ ॥

साहित्यमें दशों दशाएँ ।

प्रत्येक भाषाके उच्चकोटिके साहित्यके ग्रन्थोंमें प्रेम कहानी प्रायः नयनप्रीतिसे ही प्रारंभ होती है । कालीदासजीका प्रसिद्ध शकुन्तला, विक्रमोर्वशी तथा दूसरे २ कवियोंके नाटकग्रन्थ इसीसे प्रारंभ हुए हैं । सभी ग्रन्थोंने इनपर प्रकाश डाला है पर मालतीमाधव नाटकको देखनेसे तो इस बातका निश्चय-पूर्वक पता चल जाता है कि कामकी दशाएँ किस प्रकार पुरुषपर अधिकार किया करती हैं । इनके वर्णनमें संस्कृतसाहित्यमें यह नियम रहा है कि उन्होंने नायककी मृत्युका वर्णन नहीं किया है, किन्तु इतना अवश्य होता है कि नायक प्राणोंको एकतुच्छ वस्तुकी तरह परित्याग करनेके लिये तयार होता है पर उसके सहायक उसे मरने नहीं देते । इस बातके सिवा उस काव्यको अधम माना है जहां कि वियोगव्यथित नायकने अपनेको मौतसे बचानेका प्रयत्न किया है । अतः नायकको ये मौतके द्वारसे वापिस ले आते हैं; उसे मरने नहीं देते पर उसे मौत प्यारी अवश्य हो जाती है ।

उर्दू फारसीमें उलटा ढंग ।

पर उर्दू आर फारसीके साहित्यमें इसका बिलकुल उलटा होता है, ये जबतक नायकको कबर नहीं पहुँचा देते इनको आनन्द नहीं आता । कब-रमें भी उसे तड़फाया करते हैं । पर हिन्दी साहित्यके ज्ञाताओंकी कविताएँ इसमें भी अपने ही ढंगकी होती हैं ।

आकृति और लक्षणोंसे शीलादिकी परीक्षा ।

तत्राकृतितो लक्षणतश्च युवत्याः शीलं सत्यं शौचं साध्यतां चण्डवेगतां च लक्षयेदित्याचार्याः ॥ ६ ॥

आचार्य्योंका तो यह मत है कि–' इसमें आकृति और लक्षणोंसे युवतीके शील, सत्य, शौच, साध्यता और चण्डवेगताको देख लो ' ॥ ६ ॥

तत्रेति तस्मिन्रागवशादभिगमने शीलादिकमेव प्राधान्येन लक्षयेत् । आकृतित इति शरीरस्थाने । लक्षणतः शरीरस्थानचिह्नेन । शीलं वक्ष्यमाणकम् । सत्यं यथार्थवादिताम् । शौचं चारित्रविशुद्धिम् ॥ ६ ॥

जब रागके वश हो परनारीके साथ गमन करना हो तो उसके स्वभाव आदिको मुख्यरूपसे देख ले । शरीरस्थानमें उसके चिह्न देखकर पहिचान ले । शीलको अभी बतायेंगे । सत्य जैसेका तैसा कहनेका नाम है । चरित्रकी पवित्रताको शौच कहते हैं ॥ ६ ॥

लक्षणोंसे व्यभिचारिणीकी पहिचान ।

लक्षणोंसे किस प्रकार व्यभिचारिणी जानी जाती है इस बातको बताते हैं-

कि—" अंगुष्ठादधिकाग्रा वामपदे स्यात्प्रदेशिनी यस्याः ।
हीनाग्रमध्यमा वा स्पृशति न भूमिं कनिष्ठा वा ॥ "

जिस स्त्रीके वाँये पैरकी अँगूठेकी पासकी अंगुली अँगूठेसे बड़ी हो, जिसकी प्रदेशिनी छोटी और मध्यमा बड़ी हो व जिसकी सबसे छोटी उँगली चलती वार भूमिपर न लगे । इन लक्षणोंकी व्यभिचारिणी होती है ।

" तदनन्तरद्वयं वा केकरदृक् पिङ्गलाक्षी च ।
तां पुँश्चलीमिति विदुः सामुद्रविदो हसनतुण्डीं च ॥ "

जिस स्त्रीकी सबसे छोटी अँगुलीसे पहिलेकी दोनों अँगुलियाँ भूमिपर न टिकें, जो तिरछा देखती हो, जो पिङ्गलाक्षी हो, जो बेबात हँसती हो, सामुद्रिकशास्त्रके वेत्ता उसे व्यभिचारिणी कहते हैं, यह कोकमहाराजने कहा है । सामुद्रिकशास्त्रके चौथे अधिकारमें १९ वें श्लोकसे लेकर २६ वें श्लोकतक अंगुलियोंका लक्षण बताया है, उसमें कहा है कि जिसकी कनिष्ठा सबसे छोटी अंगुली जमीनपर न टिके वह पहिले पतिको मारकर एकान्तमें दूसरेसे रमण करती है । जिसकी अनामिका (सबसे छोटीके पासकी अंगुली) की यही दशा हो तो वह दोओंको मारे । यदि यह अंगुली अत्यन्त छोटी हो तो कलहप्रिया हो । जिसकी मध्यमा छोटी हो वह निरन्तर परपुरुषोंके विषयमें पुरुषार्थ करती है । यदि मध्यमा भूमिपर न लगे तो तीनों पतियोंका सफाया करे । जिसकी अँगूठेके पासकी उँगली अँगूठेसे बड़ी हो वह कन्या भी दुश्चरित्रा होगी, इसमें सन्देह नहीं है । सामुद्रिकके इन्हीं वचनोंके आधारपर कोकने ऊपरके श्लोकोंका संग्रह किया है ।

इसके सिवा यह भी बताया है कि, जिसकी पतली उँगलियाँ पहिले मोटी पीछे पतली, एकके ऊपर एक चढ़ी हुई हों वह बहुतसे पतियोंको भी मारकर अन्तमें दासी बनती है। जिसके चलनेसे भूमिपर रेतके कण उछलें वह व्यभिचारिणी वंशका सत्यानाश कर देती है। इस तरह सामुद्रशास्त्रमें स्त्रियोंके और भी लक्षण बताये हैं, किन्तु वे ढके अंगोंके होनेके कारण प्रारंभमें देखे नहीं जा सकते इसी कारण कोक महाराजने पैरोंकी अंगुलियोंका ही लक्षण लिया है ।

परीक्षापर वात्स्यायन।

व्यभिचारादाकृतिलक्षणयोगानामिङ्गिताकाराभ्यामेव प्रवृत्तिर्बोद्धव्या योषित इति वात्स्यायनः ॥ ७ ॥

इसपर वात्स्यायन महर्षिका तो यह मत है कि–स्त्रीके शरीर व शरीरके स्थानोंमें जो चिह्न देखे जाते हैं, उनमें व्यभिचार होनेके कारण इङ्गित और आकारसे ही प्रवृत्ति जाननी चाहिये ॥ ७ ॥

सत्यप्याकृतियोगे लक्षणयोगेनावश्यं शीलसत्यशौचानि गम्यन्ते। साध्यासाध्यतां चण्डमृदुवेगतां पुनर्गमयन्त्येव। कथं तर्हि लक्षयेदित्याह—इङ्गिताकाराभ्यामिति। बोद्धव्या शीलादियुक्तेत्यर्थः। तत्रेङ्गिताकारौ कन्यासंप्रयुक्तकेऽभिहितौ। प्रवर्तनं प्रवृत्तिः। इङ्गितव्यतिरेकेण तत्र त्रिभिरेव सत्यशीलशौचानि विशेषाणि प्रवृत्त्या स्त्रीपुंसयोः ॥ ७ ॥

आकृतिका और लक्षण योग होनेपर भी ही शील, सत्य और शौचका नहीं पता चलता, यह साध्य है अथवा असाध्य है मृदु, मध्यम व चण्डवेग-

---

१ महात्मा शुकरात बैठे हुए थे एवम् उनके शिष्य लोग एक ओर पढ रहे थे, इतनेमें एक सामुद्रिकशास्त्रका अनुभवी जाननेवाला आ गया। लड़कोंने उससे पूछा तो उसने बताया कि मैं सामुद्रिकशास्त्रको जानता हूं। लड़के चंचल होते ही हैं उसे देखकर कहने लगे कि इनके लक्षण बता, ये कैसे हैं ? यह सुनते ही उसने उनके शरीरपर एक गहरी दृष्टि डालकर कहा कि इसे तो भारी व्यभिचारी होना चाहिये। इतना सुनते ही शुकरातके चेले चौंककर उससे अंडसंड बकने लगे। जिसे देखकर महात्मा सुकरातने कहा कि यह ठीक कहता है मेरे ऐसे ही लक्षण हैं पर मैंने अपने लक्षणोंपर अधिकार कर रखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि बोध होनेके बाद लक्षणोंपर अधिकार भी कर लिया जा सकता है, इसी कारण वात्स्यायन लक्षणोंकी प्रवृत्तिको उचित नहीं समझते।

वाली है इस बातका भी पता निश्चय पूर्वक नहीं चलता । तो फिर कैसे देखे ? इसका उत्तर देते हैं, कि कन्यासंप्रयुक्तक अधिकरणके बताये हुए इङ्गित और आकारोंसे जान ले कि शीलादिक कैसे हैं । प्रवर्तन करनेका नाम प्रवृत्ति है । इसमें इंगितके सिवा तीनोंसे ही स्त्री पुरुषोंको प्रवृत्तिसे सत्य शील और शौचको विशेषरूपसे देख ले ॥ ७ ॥

दोनोंका उज्वलकामित्व शील है ।

कस्य किं शीलमित्याह—

स्त्री पुरुष इन दोनोंमेंसे किसका कैसा शील है इस बातको बताते हैं कि—

यं कश्चिदुज्ज्वलं पुरुषं दृष्ट्वा स्त्री कामयते । तथा पुरुषोऽपि योषितम् । अपेक्षया तु न प्रवर्तते इति गोणिकापुत्रः ॥ ८ ॥

स्त्री किसी भी उज्ज्वल पुरुषको देखकर चाहती है । इसी तरह पुरुष भी किसी उज्वला स्त्रीको देखकर चाहता है, किन्तु अपेक्षासे रुके हुए एक दूसरेमें प्रवृत्त नहीं होते यह गोणिकापुत्रका मत है ॥ ८ ॥

यं कंचिदिति स्वकीयं परकीयं वा पुरुषम् । उज्ज्वलं वर्णवेषाभ्याम् । कामयते संजातरागा भवति । पुरुषोऽपि योषितमुज्ज्वलां दृष्ट्वा कामयते । अपेक्षया तु कस्यचित्कार्यस्य । प्रवर्तते द्वावपि न संप्रयुज्येते । तदुभयोरप्युज्ज्वलकामित्वं कार्यापेक्षित्वं च शीलम् । गोणिकापुत्रग्रहणं प्रावीण्यख्यापनार्थम् ॥ ८ ॥

चाहे अपना हो चाहे दूसरीका हो, किन्तु वेष, वर्ण और भूषणसे स्वच्छ हो उसे देखकर स्त्रीके मनमें राग हो जाता है । यही हालत पुरुषकी है; वह भी किसी साफ सुथरी सुन्दरीको देखते ही रागी हो जाता है । पर किसी कार्य्यसे नहीं मिलते एवम् किसीसे मिल जाते हैं । इससे यह सिद्ध हो गया कि स्त्रीपुरुष दोनोंका चमक दमक चाहनेका स्वभाव है । यह गोणिकापुत्रका मत है, यहां उनकी प्रवीणताको दिखानेके लिये लिया है ॥ ८ ॥

स्त्रीमें पुरुषसे विशेषता ।

तत्र स्त्रियं प्रति विशेषः ॥ ९ ॥

इसमें स्त्रीके प्रति विशेष है ॥ ९ ॥

तत्रेति तयोस्तुल्यशीलत्वेऽपि । विशेषः प्रत्येकं विशेष उच्यते ॥ ९ ॥

स्त्री और पुरुष दोनोंका एकसा स्वभाव होनेपर भी स्त्रियोंमें विशेषता है॥९॥

धर्माधर्म नहीं देखती; पर कार्य्यसे नहीं मिलतीं ।

उज्ज्वल चाहनेका एकसा शील होनेपर भी स्त्रियोंमें जो विशेषताएँ हैं, उन सबोंको वताते हैं कि—

न स्त्री धर्ममधर्मं चापेक्षते कामयत एव । कार्यापेक्षया तु नाभियुङ्क्ते ॥ १० ॥

स्त्री धर्म अधर्म कुछ नहीं देखती । चाहती ही है, किन्तु किसी कार्य्यकी अपेक्षासे तो नहीं मिलती ॥ १० ॥

न स्त्रीति—प्रवृत्तौ धर्मः स्यान्न वेति नापेक्षते । तमोबहुलत्वात्कामयत एवैनम् । कार्यापेक्षया तु नाभियुंक्त एवंति—तत्रात्मनि च दोषदर्शनात् । इदं दृष्टदोषदर्शित्वं शीलम् ॥ १० ॥

'धर्म होगा वा नहीं' इस बातको स्त्री अपनी प्रवृत्तिके लिये नहीं देखती, क्योंकि इनमें तम यानी अज्ञान अधिक है, पर मिलनेमें अपनेमें कोई दोष देख लेती है तो फिर नहीं मिलती । यह देखे हुए दोपको देखनेका स्त्रीका शील होताहै१०

चाहती हुई भी आप हट जाती है ।

स्वभावाच्च पुरुषेणाभियुज्यमाना चिकीर्षन्त्यपि व्यावर्तते ॥ ११ ॥

पुरुष पानेके लिये उपाय कर रहा है एवम् आप उसके उपायोंसे मिल जायगी ऐसी होते हुए भी चाहती हुई भी स्वभावसे ही अपने आप हट जाती है ॥ ११ ॥

चिकीर्षन्त्यपीति—तेन सह योगं कर्तुमिच्छन्त्यपि व्यावर्तते नायकाभियोगात् । कारणापेक्षया यावदभियुक्तकामित्वं कारणापेक्षित्वं च शीलम् ॥ ११ ॥

उसके साथ मिलना चाहती हुई भी नायकके अभियोग (उपायों)से आप ही हट जाती है । इससे यह सिद्ध हुआ कि कारण उपस्थित हों तो जो उपाय कर रहा है या जिसपर उपाय किया जा सकता है उन सबोंसे मिलनेकी चाहे रखती है । इस कारण स्त्रियोंका स्वभाव कारण चाहता है ॥ ११ ॥

बारबारके प्रयत्नसे सिद्धि ।

पुनःपुनरभियुक्ता सिद्ध्यति ॥ १२ ॥

बारंबार प्रयत्न करनेपर सिद्ध हो जाती है ॥ १२ ॥

पुनःपुनरभियुक्ता सिद्ध्यतीति भूयोऽभियुक्तकामित्वं शीलम् ॥ १२ ॥

इससे यह सिद्ध हो गया, कि अपने लिये बारंबारके किये उपायोंके करने-वालोंके चाहनेका स्वभाव हैं ॥ १२ ॥

धर्माधर्म और शिष्टाचारके कारण नहीं ।

पुरुषस्तु धर्मस्थितिमार्यसमयं चापेक्ष्य कामयमानो-ऽपि व्यावर्तते ॥ १३ ॥

पुरुष तो धर्मकी स्थिति और शिष्ट पुरुषोंके व्यवहारोंको देखकर चाहता हुआ भी हट जाता है ॥ १३ ॥

धर्मस्थितिमिति—श्रुतिस्मृतिविहितमदृष्टार्थम् । आर्यसमयं शिष्टाचारं दृष्टार्थम् । कामयमानोऽपीतीच्छन्नपि व्यावर्तत इति दृष्टादृष्टदोषदर्शित्वं शीलम् ॥ १३ ॥

श्रुति और स्मृतियोंके बताये हुए अदृष्ट धर्मके प्रयोजनको विचार तथा आर्य्य—शिष्ट व सज्जन पुरुषोंके देखे हुए प्रत्यक्ष प्रयोजन देखकर चाहता हुआ भी हट जाता है । इसतरह धर्माधर्म और शिष्टाचारके दोषोंको देख-नेका स्वभाव है ॥ १३ ॥

विचारशीलकी प्रयत्नसे भी सिद्धि नहीं ।

तथाबुद्धिश्चाभियुज्यमानोऽपि न सिद्ध्यति ॥ १४ ॥

ऐसी बुद्धिका पुरुष प्रयत्न करनेपर भी सिद्ध नहीं होता ॥ १४ ॥

तथाबुद्धिश्चेति धर्मस्थित्यपेक्षी आर्यसमयापेक्षी चाभियुज्यमानोऽपि स्त्रिया । न सिद्ध्यति न प्रवर्तते । अस्य पूर्वोक्तमेव शीलम् । कर्तृकर्मभेदाद्भेदः ॥ १४ ॥

धर्मकी स्थितिकी और शिष्टाचारकी अपेक्षा रखनेवाला पुरुष (सदाचारी होता है) को परस्त्री हजार उपाय करके भी नहीं पा सकती वह चित्तके चंचल होनेपर भी परस्त्रीकी ओर नहीं झुकता, पर इसका स्वभाव पाहिला कहा हुआ ही है । कर्ता और कर्मके भेदसे यह भेद दीखता है ॥ १४ ॥

विना शोचे उपाय व सिद्ध होनेपर उदासीन ।

निष्कारणमभियुङ्क्ते । अभियुज्यापि पुनर्नाभियुङ्क्ते । सिद्धायां च माध्यस्थ्यं गच्छति ॥ १५ ॥

पुरुष विना कामके स्त्री पानेका उपाय करने लगता है, पाकरके भी फिर उपाय नहीं करता, सिद्ध होनेपर उदासीन हो जाता है ॥ १५ ॥

निष्कारणमिति—सुखं कारणान्तरं चानपेक्ष्य । अभियुज्य पुनर्नाभियुंक्ते कार-णस्यासमीहितत्वात् । इदं शुद्धकामित्वं शीलम् । सिद्धायां च माध्यस्थ्यं गच्छती-त्यभियुंक्ते न च संप्रयुज्यते । इति शुद्धकामित्वं शीलम् ॥ १५ ॥

पुरुष अपनी प्रवृत्तिमें सुख वा दूसरे कारणोंको विना विचारे परनारीके पानेको उपाय करने लग जाता है । उपाय करके प्राप्त होकर भी फिर नहीं मिलता, क्योंकि उसने कोई मिलनेका कारण थोड़ा ही विचार रखा था । इस प्रकार निःस्वार्थ शुद्ध चाहनेका पुरुषका स्वभाव होता है । परस्त्रीके सिद्ध हो जानेपर उदासीन हो जाता है । उपायमात्र ही करता है सहवास नहीं करता यह भी उसका शुद्ध चाहनेका स्वभाव है ॥ १५ ॥

दुर्लभाकी चाह व सुलभाका अनादर ।

सुलभामवन्यते । दुर्लभामाकाङ्क्षत इति प्रायोवादः ॥१६॥

पुरुषकी यह बात अधिकांशमें देखी जाती है सुलभाका अनादर करता है और दुर्लभाको चाहता है ॥ १६ ॥

सुलभामवमन्यते दुर्लभामाकांक्षत इति वामशीलत्वम् । इति स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनमेकोनचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ १६ ॥

सुलभाका अपमान करना और जिसका मिलना कठिन हो उसका चाहना ही उसका वामशील है । यह स्त्री पुरुषोंके स्वभावकी व्यवस्थाका ३९ वां प्रकरण पूरा हुआ ॥ १६ ॥

व्यावर्तनके कारणोंका प्रकरण ।

तत्र व्यावर्तनकारणानि ॥ १७ ॥

इसमें ये नीचे बताये हुए रुकनेके कारण हैं ॥ १७ ॥

तत्रेति स्त्रीपुरुषशीलावस्थापने यानि व्यवर्तनानि तानि व्यावर्तनकारणानि प्रकरणान्तर इ (मि) त्युच्यते ॥ १७ ॥

स्त्री पुरुषोंके शीलकी व्यवस्था उसमें करके इसके बाद जो उसमें स्त्रीके रुकनेके कारण हैं,उन्हें बताना चाहिये,इस कारण इस प्रकरणको कहते हैं ॥१७॥

पतिका सामीप्य व प्रेम, अपत्यकी अपेक्षा आयुका ढलाव और दुःख ।

पत्यावनुरागः ॥ १८ ॥

इच्छा होते हुए भी पतिका प्रेम स्त्रीको रोक देता है ॥ १८ ॥

पत्यावनुरागो व्यावृत्तिकारणं प्रत्यन्यायामपीप्सायाम् ॥ १८ ॥

दूसरेकी इच्छा होते हुए भी पतिमें जो प्रेम है वह प्रवृत्त होनेसे रोक देता है ॥ १८ ॥

अपत्यापेक्षा ॥ १९ ॥

अपत्यकी अपेक्षा भी उसे रोक देती है ॥ १९ ॥

अपत्यापेक्षेति—स्तनंधयं ममापत्यमिति ॥ १९ ॥

मेरी सन्तान अभी गोदीमें रहकर दूध पीती है, इसके इस प्रकार रहते कैसे करूं ॥ १९ ॥

अतिक्रान्तवयस्त्वम् ॥ २० ॥

अवस्थाके निकल जानेपर भी रुक जाती है ॥ २० ॥

अतिक्रान्तवयस्त्वमिति परिणतवया लज्जते बलात्परपुरुषाणामङ्गार्पणेनेति २०

जिसकी अवस्था बीत लेती है वह भी वलसे परपुरुषको अपना शरीर सौंपते हुए लजाती है ॥ २० ॥

दुःखाभिभवः ॥ २१ ॥

दुःखोंकी दवाई भी रुक जाती है ॥ २१ ॥

इष्टमरणादि दुःखाभिभूता जातेच्छापि व्यावर्तते ॥ २१ ॥

प्यारेके मरणके दुःखसे दुःखी हुई इच्छा रहते हुए भी रुक जाती है२१॥

विरहानुपलम्भः ॥ २२ ॥

जिसे पतिका वियोग नहीं वह भी रुकती है ॥ २२ ॥

विरहानुपलम्भो भर्तुः सदा संनिहितत्वाद्वियोगं न पश्यति येन संप्रयुज्यते२२

जिसका पति सदा पासमें रहता है वह भी वियोग नहीं देख पाती; जिससे चाहते हुए भी नहीं मिलती ॥ २२ ॥

अनादर, दुष्प्राप्यताकी शंका ।

अवज्ञयोपमन्त्रयत इति क्रोधः ॥ २३ ॥

कहीं अनादर करनेके लिये तो अभियोग नहीं करता इस क्रोधसे भी हट जाती है ॥ २३ ॥

अवज्ञयोपमन्त्रयतेऽनादरेणाभियुंक्त इति भयात्क्रोधो व्यावृत्तिकारणम् ॥२३॥

कहीं मेरा अनादर करनेके लिये तो मेरे लिये उपाय नहीं करता, इस भयसे जो क्रोध होता है वह भी रोक देता है ॥ २३ ॥

अप्रतर्क्य इति संकल्पवर्जनम् ॥ २४ ॥

इसका मिलना कठिन है, इस खयालसे भी संकल्प छोड़ देती है ॥ २४ ॥

अप्रतर्क्यो दुःखग्राहचित्त इति तस्मिन्ब--(न्नत्र) हुमानात्संकल्पवर्जनम् । मनो न संकल्प्यत इत्यर्थः ॥ २४ ॥

इसका मिलना कठिन है, चित्तमें ऐसा हो जानेपर भी वह मिलनेका संकल्प छोड़ देती है, उसमें बहुमान करके । यानी उसका मन उसके पानेके संकल्पको फिर नहीं करता ॥ २४ ॥

हाथसे निकल जाने व भंडाफोटकी शंका ।

गमिष्यतीत्यनायतिरन्यत्र प्रसक्तमतिरिति च ॥ २५ ॥

मेरे हाथ आकर फिर चला जायगा अथवा दूसरी जगह आसक्त है मेरे हाथ न रहेगा ॥ २५ ॥

गमिष्यतीति न चिरकालमनेन संप्रयोग इत्यनायतिर्भविष्यत्कालाभावः कारणम् । अन्यत्र प्रसक्तमतिरिति वानायतिस्तात्कालिकत्वात् ॥ २५ ॥

मैं इससे वहुत समय निरन्तर न मिल सकूंगी अथवा यह दूसरी जगह आसक्त है, इसकी ये बातें इसी समयकी हैं, भविष्यमें मेरे हाथ न रहेगा, इस ध्यानसे भी हट जाती है ॥ २५ ॥

असंवृताकार इत्युद्वेगः ॥ २६ ॥

यह अपनी बातको छिपा नहीं सकता ॥ २६ ॥

असंवृताकार आकारसंवरणमकुर्वंल्लोके मद्प्रीतिकां करोतीति परिभवादुद्वेगः ॥ २६ ॥

यह प्रीतिको छिपा न सकेगा, मेरी कहानी सुनाता फिरेगा, इस पराभवके भयसे भी रुक जाती है ॥ २६ ॥

मित्रोंसे कहने और खाली अभियोगोंकी शंका ।

मित्रेषु निसृष्टभाव इति तेष्वपेक्षा ॥ २७ ॥

मित्रोंमें अपने भावको कह देता है उनकी ही अपेक्षा करता है ॥ २७ ॥

मित्त्रेषु निसृष्टभावस्ते (तानि) च यदाहुस्तत्करोतीति च तेष्वपेक्षा मयि त्ववज्ञा ॥ २७ ॥

यह अपनी सब बातोंको मित्रोंसे कह देता है एवम् वे जिस तरह कहते हैं करता है, उनकी ही अपेक्षा रखता है । मुझमें तो अनादरकी दृष्टि रखता है इससे भी नहीं चाहती ॥ २७ ॥

शुष्काभियोगीत्याशङ्का ॥ २८ ॥

खाली ही उपाय करता है, इस आशंकासे ॥ २८ ॥

शुष्काभियोगी निष्कारणमभियुंक्त इत्याशङ्का ॥ २८ ॥

बेवात उपाय करता है मिले मिलावेगा नहीं इस आशंकासे भी प्रवृत्त नहीं होती ॥ २८ ॥

प्रभावी, नागर व मृगी व मैत्रीकी शंका ।

तेजस्वीति साध्वसम् ॥ २९ ॥

तेजस्वी है इस भयसे ॥ २९ ॥

तेजस्वीति साध्वसं–प्रमादावस्खलितेऽनर्थं करिष्यतीति ॥ २९ ॥

प्रभावशाली व्यक्ति है कभी भूलचूकसे इसके साथ कोई गलती हो गई तो न सहेगा, अनर्थ कर डालेगा यह समझकर भी मन हटा लेती है ॥ २९ ॥

चण्डवेगः समर्थो वेति भयं मृग्याः ॥ ३० ॥

मृगी या छोटे शरीरकी स्त्री पुरुषको प्रचण्ड या बड़े साधनका समझकर भी रुक जाती है ॥ ३० ॥

मृग्या इति मन्दवेगायाः । मृग्याश्चण्डवेगः समर्थो वेत्यश्व इति भयम् ॥ ३० ॥

मृगी नायिका वा छोटे शरीरकी स्त्रीको बड़े शरीरके प्रचण्ड पुरुषको देखकर, डरकर भी रह जाती है ॥ ३० ॥

नागरकः कलासु विचक्षण इति व्रीडा ॥ ३१ ॥

यह नागरक है अथवा इन बातोंमें बड़ा चतुर है, इस लज्जासे ॥ ३१ ॥

नागरक इति यो नागरकवृत्तावधिकृतः । कलासु च विचक्षणो नागरकादन्यः । व्रीडा ग्राम्याया अविदग्धायाश्च ॥ ३१ ॥

मैं ग्रामीण हूं रंगरेलीकी सफाइयोंको बिलकुल नहीं जानती पर यह पुरुष छैलाओंके गुणोंमें परिपूर्ण है अथवा छैला है । इस लज्जासे भी रुकजाती है ॥

सखित्वेनोपचरित इति च ॥ ३२ ॥

मेरा इसका मित्रताका व्यवहार रहा है ॥ ३२ ॥

सखित्वेनेति मित्रत्वेन मयायमुपचरितः कथं पुनरेवं कुर्यामिति च व्रीडा ३२

मैंने अबतक इसके साथ मित्रताका नाता निभाया है, फिर अब मैं इसके साथ ऐसा कैसे करूं, इस लाजसे भी अवरोध होता है ॥ ३२ ॥

अज्ञ, अनादर, मूढ व छोटा व अनिष्टकी शंका ।

अदेशकालज्ञ इत्यसूया ॥ ३३ ॥

देश और कालको नहीं जानता, इस अनादरसे ॥ ३३ ॥

अदेशकालज्ञ इति चासूया देशकालयोर्नाभियुक्त इति ॥ ३३ ॥

यह देश कालको देखकर उपाय नहीं करता इस घृणासे भी चाह छोड़ देती है ॥ ३३ ॥

परिभवस्थानमित्यबहुमानः ॥ ३४ ॥

यह निन्दाका कारण है, इस कारण अनादरसे छोड़ती है ॥ ३४ ॥

परिभवस्थानं नीचत्वात् ततश्च सखीजनोऽन्यो वा मां परिभविष्यतीत्यसंयतेति तस्मिन्नबहुमानकारणम् ॥ ३४ ॥

यह नीच है इसके साथ मिलनेसे सखी मेरी बुराई करेंगी, कि बिलकुल नियम नहीं रखती, इस विचारसे सामनेवालेमें बहुमान न होनेके कारण रुक जाती है ॥ ३४ ॥

आकारितोऽपि नावबुध्यत इत्यवज्ञा ॥ ३५ ॥

इशारे करनेपर भी नहीं समझा इस अवज्ञासे ॥ ३५ ॥

अभिप्रायं दर्शितो नावबुध्यत इत्यवज्ञा न विदग्ध इति ॥ ३५ ॥

मैंने इसे इशारोंसे अपना अभिप्राय दिखाया पर यह नहीं समझता मूर्ख है, इस अनादरकी दृष्टिसे भी हट जाती है ॥ ३५ ॥

शशो मन्दवेग इति च हस्तिन्याः ॥ ३६ ॥

हस्तिनी बड़े शरीरकी विषयभोगोंको अधिक चाहनेवाली इस खयालसे हटजाती है, कि शश यानी छोटे साधनका एवम् मन्दवेगवाला है ॥ ३६ ॥

हस्तिन्या इति चण्डवेगायाः । हस्तिन्याः शशो मन्दवेग इति चावज्ञा॥ ३६॥

चण्डवेगवाली हस्तिनीको मन्दवेगके शशपर अरुचि होना स्वाभाविक ही है॥

मत्तोऽस्य मा भूदनिष्टमित्यनुकम्पा ॥ ३७ ॥

मुझसे इसका कुछ बुरा न हो जाय इस दयासे भी रुकती है ॥ ३७ ॥

मत्तोऽस्येति मन्निमित्तेन मामधिगच्छतो मा भूदनिष्टं शरीरतोऽर्थतो वेत्यनुकम्पा ॥ ३७ ॥

मेरे मिलनेसे इसका कुछ बुरा न हो जाय, इसके शरीरको व धनको मुझसे हानि न पहुँचे इस दयासे भी भली स्त्री रुक जाती है ॥ ३७ ॥

अपने दोष व स्वजनोंका भय ।

आत्मनि दोषदर्शनान्निर्वेदः ॥ ३८ ॥

अपनेमें दोष देखकर भी वैराग्य हो जाता है ॥ ३८ ॥

आत्मनि दोषदर्शनादिति शरीरे रोगादिकं वैगन्ध्यादिकं पश्यन्त्या निर्वेदः ३८

स्त्रीके शरीरमें कोई बीमारी हो जाती है या शरीरसे बदबू आने लगती है तो वह आप ही बदचलनीसे विरक्त हो जाती है ॥ ३८ ॥

विदिता सती स्वजनबहिष्कृता भविष्यामीति भयम् ३९

मालूम पड़नेपर स्वजनोंसे बहिष्कृत हो जाऊँगी इस भयसे ॥ ३९ ॥

विदिता स्वजनस्य विप्रतिपन्नेति तस्माद्बहिष्कृता भविष्यामीति भयम् ॥ ३९ ॥

यदि यह पता चल जायगा कि बदचलन है तो मुझपर आपत्ति आ जायगी, घरवाले घरसे निकाल देंगे, इस भयसे भी मक्कारी नहीं करती ॥ ३९ ॥

बुड्ढा व पतिप्रेषितकी शंका ।

पलित इत्यनादरः ॥ ४० ॥

पलित देखकर भी आदर नहीं करती ॥ ४० ॥

पलितो वृद्ध इत्यनादरः ॥ ४० ॥

उपाय करनेवाले पुरुषको बुड्ढा समझकर भी हट जाती है, उसमें अनादरकी बुद्धि करके कि मेरे योग्य नहीं है ॥ ४० ॥

पत्याप्रयुक्तः परीक्षत इति विमर्शः ॥ ४१ ॥

पतिका भेजा हुआ तो नहीं है जो मेरी परीक्षा लेता हो, इस ध्यानसे भी हट जाती है ॥ ४१ ॥

पत्या प्रयुक्त इति किं पतिव्रता नेति ज्ञातुं नियुक्तः परीक्षत इति विमर्शः ४१

पतिने मेरे चालचलन मालूम करनेके लिये तो नहीं सिखा दिया है, कि यह पतिव्रता है वा नहीं, इस संदेहसे भी रुकती है ॥ ४१ ॥

धर्माधर्मकी शंकासे ।

धर्मापेक्षा चेति ॥ ४२ ॥

धर्म समझकर भी बुरे कर्मसे मनको हटा लेती है ॥ ४२ ॥

धर्मापेक्षा च कारणम् । अस्त्येव हि काचित्स्त्री या धर्माधमावपेक्षते ॥ ४२ ॥

धर्मपर ध्यान होना भी परपुरुषसे हटनेका कारण है । कोई कोई स्त्रियाँ ऐसी भी हैं जो धर्म समझकर पतिसेवा करती हैं और अधर्म जानकर परपुरुषोंसे मनको हटाती हैं, प्रवृत्त नहीं होतीं ॥ ४२ ॥

कारणोंके प्रतीकार ।

प्रतिविधानमाह—

इन कारणोंके विषयमें परस्त्रीके लिये उपाय करनेवाले पुरुषोंको क्या करना चाहिये ? सो बताते हैं, कि—

तेषु यदात्मनि लक्षयेत्तदादित एव परिच्छिन्द्यात् ॥ ४३॥

इन कारणोंमेंसे अपनेमें जिस कारणको देखे उसे पहिलेसे ही काटे ॥४३॥

तेष्विति व्यावर्तनकारणेषु यदात्मनि कारणं लक्षयेन्ममेदं भवितेति तदादित एव परिच्छिन्द्यात्परित्यजेद्यथा न भवति ॥ ४३ ॥

स्त्रीके हटनेके इन कारणोंमेंसे अपने विषयमें जिस कारणको देखे कि मेरे प्रयत्नमें यह कारण आड़े आयेगा उस दोषको पहिलेसे ही छोड दे, जिससे कि कोई प्रतिबन्धक न हो ॥ ४३ ॥

प्रतीकारके उपाय ।

जो रुक जानेके कारण अपनेमें और दूसरेमें आ उपस्थित हों उन्हें उपायोंसे दूर कर डाले, इस कारण उपाय बताते हैं ।

आर्य्यपनेसे युक्तोंको राग बढ़ाकर ।

उत्पन्नानि चात्मनि स्त्रियां वा परिच्छिन्द्यादुपायैरित्याह—

ये प्रतिबन्ध ऐसे हैं जिनसे सब कुछ चाहता हुआ भी व्यक्ति रुक जाता है, इस कारण सबसे पहिले इसीके प्रतीकारका उपाय बताते हैं कि—

आर्यत्वयुक्तानि रागवर्धनात् ॥ ४४ ॥

श्रेष्ठपनेसे होनेवालोंको राग बढ़ाकर हटाये ॥ ४४ ॥

आर्यत्वयुक्तानीति—पत्यावनुरागोऽपत्यापेक्षातिक्रान्तवयस्त्वं दुःखाभिभवो धर्मापेक्षा चेत्येतानि स्त्रीगतान्यार्यत्वयुक्तानि रागवर्धनात्परिच्छिन्द्याद्यथा तस्या रागो वर्धेत तथा प्रतिविधेयम् ॥ ४४ ॥

पतिपर अनुराग, गोदके बच्चे, अवस्थाके ढल जाने, दुःखोंसे दब जाने और धर्मका ज्ञान कि यह अधर्म है ये स्त्रियोंमें होनेवाले श्रेष्ठपने हैं; इन कारणोंसे जो स्त्री अपनी ओर झुकती हुई भी न मिले इनको ज्यों २ राग बढ़ता जाय त्यों २ हटाता चला जाय ॥ ४४ ॥

अशक्तिसे होनेवालोंका उपाय ।

अशक्तिजान्युपायप्रदर्शनात् ॥ ४५ ॥

अशक्तिसे होनेवाले रुकनेके कारणोंको उपाय बताकर दूर कर दे ॥ ४५ ॥

विरहानुपलम्भोऽस्य मा भूदनिष्टमात्मनि दोषदर्शनात् ॥ ४५ ॥

पतिके सदा ही पास रहनेसे जो चाहती हुई भी न मिल सके, उसे मिलनेके उपाय बता दे । जिसे यह शंका हो कि मेरे लिये इसे कोई कष्ट न हो तो उसे वे उपाय बता दे जिससे अपनेको कोई कष्ट न उठाना पड़े । यदि वह दुष्टरोगसे पीडित व दुर्गन्धि युक्त हो तो उसके उस रोग व दुर्गन्धिको दूर कर दे । (यदि यह शंका हो कि दूसरोंमें आसक्त है तो उसे हटा दे) एवम् जो अपनी असमर्थता वा उसकी असमर्थताके ही कारण न मिलना हो सके तो उसके उपाय कर डाले ॥ ४५ ॥

बहुमानसे उत्पन्न होनेवालोंका उपाय ।

बहुमानकृतान्यतिपरिचयात् ॥ ४६ ॥

बहुमानसे उत्पन्न होनेवाली रोकोंको अतिपरिचयसे दूर करे ॥ ४६ ॥

अप्रतर्क्यो नागरकः कलासु विचक्षणः सखित्वेनोपचरितः पत्या प्रयुक्तः परीक्षत इत्यात्मगतानि बहुमानकृतान्यतिपरिचयात् । कृतेऽतिपरिचये तस्योपरि मानो विगलति ॥ ४६ ॥

यदि नायिका यह समझकर रुक रही हो कि—' इसका मिलना मुझे कठिन है । यह छैला व उनकी बातोंमें बड़ा चतुर है पर मैं नहीं । मित्र रूपसे माने हुएको कैसे दूसरी तरह देखूं, कहीं पतिने तो परीक्षा लेनेके लिये नहीं भेजा ' तो अत्यन्त परिचय करके दूर करे । क्योंकि बहुमानसे होनेवाली रोक अत्यन्तके परिचयसे दूर होती है, अतिपरिचयसे मान गल जाता है ॥ ४६ ॥

परिभवसे उत्पन्न हुओंका निवारण ।

परिभवकृतान्यतिशौण्डीर्याद्वैचक्षण्याच्च ॥ ४७ ॥

परिभवकी भावनासे उत्पन्न हुए प्रतिबन्ध अत्यन्त कुशलता दिखाने वा विचक्षणतासे दूर किये जा सकते हैं ॥ ४७ ॥

शुष्काभियोगी अदेशकालज्ञः परिभवस्थानमाकारितो नावबुध्यते पलित इत्यात्मगतानि नायिकापरिभवकृतान्यतिशौर्ण्डार्यादिति—परिभवप्रक्षालनात् । वैचक्षण्याच्चेति—शास्त्रकलाप्रकाशनात् ॥ ४७ ॥

यह सूखे उपाय करता है, देश, काल नहीं जानता, अनादरकी जगह तो नहीं है, कि नीच हो अनादरसे देखी जाऊं । इशारे नहीं जानता, बुढ़ा

गया । इन बातोंको मनमें लाकर जो अपने अनादरके भयसे रुक जाती है यह रोग अनादरकी भावनाओंको दूर करने व धो डालनेसे एवम् काम-शास्त्रकी कलायें दिखानेसे दूर किये जा सकते हैं ॥ ४७ ॥

तत्परिभवजानि प्रणत्या ॥ ४८ ॥

अपनेसे परिभवके डरसे होनेवाले रोकके कारणोंको अपनी नम्रतासे दूर कर दे ॥ ४८ ॥

अवज्ञयोपमन्त्रयते असंवृताकारो मित्रेषु निसृष्टभाव इत्यात्मगतानि । तत्प-रिभवजानि नायिकापरिभवजानि । प्रणत्येति तत्रैकान्तप्रसृतया ॥ ४८ ॥

मेरे अनादरके लिये करता है, छिपा नहीं सकता, मित्रोंसे सब कुछ कह देनेवाला है, इन बातोंमें मनमें सोच अपनेसे अनादर हो जानेके भयसे जो परनारी अपनेसे विरत हो तो एकान्तकी आरजूमिन्नतोंको दिखाकर दूर कर दे॥

भय-निवारण ।

भययुक्तान्याश्वासनादिति ॥ ४९ ॥

भयसे सनी हुई रोकोंको आश्वासनसे दूर करे ॥ ४९ ॥

तेजस्वी चण्डवेगः समर्थो भवति शशो मन्दवेगो विदिता सती स्वजनबहि-ष्कृता भविष्यामीत्यात्मगतानि भययुक्तान्याश्वासनादिति यथा न भयं तथा प्रति-विधानेनेति । इति व्यावर्तनकारणानि चत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ४९ ॥

यह तेजस्वी है, चण्डवेग अश्व है, समर्थ है, मन्दवेग शश है, जान जाने-पर स्वजनोंसे बहिष्कार हो जायगा । इन भयकी बातोंको मनमें सोचकर जो चाहती हुई भी हटे उसे उस तरहके आश्वासन देने चाहिये जिस तरह कि उसका भय निकल जाय, वे ही काम भी करने चाहियें ॥ यह 'अपनेसे हटनेके कारण' नामका चालीसवां प्रकरण पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

स्त्रियोंके विषयमें सिद्ध पुरुषोंका प्रकरण ।

एवं शीलमवधार्यात्मनः सिद्धतां पश्येत् । अन्यथाभियोगासंभवादिति स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषा उच्यन्ते—

बताई हुई रीतिसे शीलका निश्चय करके यह देख ले कि मैं इसमें सिद्ध-हस्त हो सकता हूं वा नहीं, विना इस बातके देखे उपाय असंभव है, इस कारण यह बताते हैं कि कौनसे पुरुष किन स्त्रियोंमें सिद्धहस्त होते हैं—

पुरुषास्त्वमी प्रायेण सिद्धाः—कामसूत्रज्ञः कथाख्यानकुशलो बाल्यात्प्रभृति संसृष्टः प्रवृद्धयौवनः क्रीडनकर्मादिनागतविश्वासः प्रेषणस्य कर्तोचितसंभाषणः प्रियस्य कर्तान्यस्य भूतपूर्वो दूतो मर्मज्ञ उत्तमया प्रार्थितः सख्या प्रच्छन्नं संसृष्टः सुभगाभिख्यातः सहसंवृद्धः प्रातिवेश्यः कामशीलस्तथाभूतश्च परिचारको धात्रेयिकापरिग्रहो नववरकः प्रेक्षोद्यानत्यागशीलो वृष इति सिद्धप्रतापः साहासिकः शूरो विद्यारूपगुणोपभोगैः पत्युरतिशायिता महार्हवेषोपचारश्चेति ॥ ५० ॥

प्रायः नीचे बताये हुए पुरुष स्त्रियोंमें सिद्धहस्त होते हैं—(१) कामसूत्रका ज्ञाता, (२) कथा और आख्यानोंमें चतुर, (३) बचपनका संसर्गी, (४) सन्नाटेका जवान (५) खेलनेका विश्वासी, (६) कहेका करनेवाला, (७) उचित भाषी, (८) चाही हुई वस्तुका ला देनेवाला, (९) दूसरेका पहिला दूत, (१०) अच्छीका चाहा हुआ, (११) सखीसे गुप्तरूपसे मिला हुआ, (१२) सुभगतामें प्रसिद्ध, (१३) साथ बड़ा हुआ, (१४) कामी पड़ोसी, (१५) ऐसा ही नौकर, (१६) धात्रेयीका वर, (१७) नया जमाई, (१८) दीखने देखनेवाला, (१९) त्यागशील, (२०) सिद्ध प्रतापी, (२१) वृष, (२२) साहसी, (२३), शूरवीर, (२४) विद्या रूप गुण और उपभोगोंसे पतिसे बढ़ा हुआ, (२५) सुन्दर वेष और उपचारोंवाला, (२६) मर्मज्ञ ॥ ५० ॥

अमी वक्ष्यमाणाः । प्रायेण बाहुल्येन । कामसूत्रज्ञः, कथाख्यानकुशल इति द्वावपि कामशीलत्वात्स्त्रीषु सिद्ध्यतः । बाल्यात्प्रभृतीति योऽन्यस्माद्गृहादागतो बाल्यात्प्रभृति स प्रवृद्धस्नेहत्वादस्याः सिद्धः । प्रवृद्धयौवन इति स हि वयःसामर्थ्यात्स्त्रीषु सिद्धः । क्रीडनकर्मादिनेति क्रीडनव्यापारेण । आदिशब्दात्पत्त्रच्छेद्यादिना यस्या आगतविश्वासः स तस्याः सिद्धः । प्रेषणस्य कर्ता यस्या वचनकरस्तस्याः सिद्धः । उचितसंभाषणोऽनियन्त्रणात्सिद्धः । प्रियस्य कर्ता यस्या य इष्टं संपादयति स तस्याः सिद्धः । अन्यस्य भूतपूर्वो दूतः पूर्वसंस्तुतत्वादस्याः सिद्ध इति योज्यम् । उत्तमयेत्यधिकया यः प्रार्थितः स पूर्वायाः सिद्ध्यति । सख्या प्रच्छन्नं संसृष्टः प्रच्छन्नं कामितस्तत्परिचयान्नायिकायाः (सिद्धः) । सुभगा-

भिख्यातः सौभाग्यख्यातिमहापयन्स्त्रीषु सिद्धः । सहसंवृद्धो यया एकस्मिन्प्रिये (?) स तस्याः सिद्धः । प्रातिवेश्यः कामशीलः सोऽस्या वचनमात्रसाध्यः । तथाभूतश्च परिचारकः कामशीलः सोऽस्याः सिद्धः । धात्रेयिकापरिग्रहो धात्रेयिकया पतित्वेन यो गृहीतस्तत्परिचयादस्याः सिद्धः । नववरक इति यस्मिन् गृहे नवो जामाता तत्रत्यासु स्त्रीषु सिद्धः । प्रेक्षोद्यानत्यागशील इति नटादिप्रेक्षणशील उद्यानक्रीडाशीलस्त्यागशीलस्त्रयोऽपि कामशीलत्वात्स्त्रीषु सिद्धाः । वृष इति सिद्धप्रतापो व्यवायीति यो लब्धप्रतापः स स्त्रीषु सिद्ध एवास्ति । साहसिक इति नावमृष्य सहसा यः प्रवर्तते स स्त्रीणां वचनमात्रमपेक्षते । शूर इत्यकुतोभयत्वात्परस्त्रियमपेक्षमाण एव तिष्ठति । पत्युरतिशयितेति यस्या भर्तारं विद्यादिभिरतिशेते स तस्याः सिद्धः । महार्हौ वेषोपचारौ यस्य स कामशीलत्वात्स्त्रीषु सिद्धः । इति स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषा एकचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ९० ॥

नीचे बताये हुए पुरुष बहुत करके स्त्रियोंमें सिद्धहस्त होते हैं। कामसूत्रके जाननेवाले तथा कहानियोंके सुनानेवाले ये दोनों कामशील होनेके कारण स्त्रियोंमें सिद्धहस्त होते हैं। जो दूसरेके घरसे आया बचपनका साथी होता है उसका प्रेम बचपनसे ही बढ़ा रहता है इस कारण वह उसमें सिद्ध ही होता है। जिसकी जवानी सनसनाई हुई होती है वह अपनी जवानीके सामर्थ्यसे स्त्रियोंमें सिद्ध रहता है। जो खेलनेके कामों और पत्रच्छेद आदिके व्यापारोंमें विश्वास पात्र बन चुका है वह उसका कामयाब ही है। उचित बोलनेवाला नियंत्रण न होनेके कारण सिद्ध ही है। जो उसके विषयमें किसीका तमाम भेद जाननेवाला दूत रहा है वह पहिलेका परिचित होनेके कारण सिद्ध है। (जो जिसका कहा कर देता है वह उसके विषयमें सिद्ध ही है) जिसे उससे भी उत्तम चाहे वह पूर्वाका तो सिद्ध होता ही है। जो जिसकी सहेलीका गुप्तरूपसे मिलनेवाला है वह उस नायिकाका तो कामयाब ही है। जिसकी सुभगताकी बड़ी प्रसिद्धि हो वह भी स्त्रियोंमें सिद्ध होता है। एकप्रियमें जो जिसके साथ बढ़ा हो वह उसका सिद्ध ही है। जो जिस घरका नया जमाई होता है वह उसकी स्त्रियोंमें सिद्ध ही होता है। जिसे नटोंके तमासे, बागकी शैर और त्यागके सौक हों ये तीनों तरहके पुरुष कामशील होनेके कारण स्त्रियोंमें सिद्ध होते हैं। जो सिद्धप्रताप व्यवायी हो वह स्त्रियोंमें सिद्ध ही है। जो न सोचकर सहसा प्रवृत्त होता है वह स्त्रियोंके वचनमात्रकी अपेक्षा करता है। जिसे किसी भी

ओरका डर नहीं वह तो परस्त्रीकी अपेक्षा करता हुआ ही रहता है । जो जिसके पतिसे विद्या आदिकोंमें अधिक है वह उसमें सिद्ध ही है । जो उत्तम वेष भूषा रखता है वह कामशील होता है । वह प्राय: स्त्रियोंमें सिद्ध ही होता है । ये स्त्रियोंमें सिद्ध पुरुष नामका ४१ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ५० ॥

सूत्रका श्लोकानुवाद ।

" शूरः[२३] समुचित[७]भाषी रतितन्त्रज्ञः[१] प्रिय[८]स्य कर्ता च[६] ।
प्रेक्षणकारी[१८], साहस[२२]-रसिकः प्रोद्दाम[४]यौवनश्रीकः ॥
आबाल्य[३]जातसख्यः क्रीडनकृत्या[५]दिना जातविश्वासः ।
आख्यान[२]शिल्पकुशलः, कस्य[६]चिदन्यस्य कृतदूत्यः ॥
अप्यगुणो[२६] मर्मज्ञः[९] सख्यां[११] प्रच्छन्नसंसृष्टः ।
उत्तमया संभक्तः[१०] सुभगः[१२] ख्याता[२०]न्वयश्च जामाता[१७] ॥
परिचारः[१५] स्मरशीलः तादृक्षः प्रातिवेश्यो[१४]ऽपि ।
धात्रेयिका[१६] परिग्रह उद्योगत्यागशील[१९]श्च ॥
प्रेक्षण[१८]रसिको वृष[२१] इति विख्यातः सद्गुणा[२४]धिकः पत्युः ।
अभिमत[२५]महार्हवेशाचारः सिद्धा इमे नराः स्त्रीषु ॥ "

' प्रियस्य कर्ता ' इसके दोनों अर्थ हो जाते हैं, यह चाही हुई वस्तुका ला देनेवाला भी है तथा कहेका करनेवाला भी है । बाकी हमने जो सूत्रार्थपर नंबर दिये हैं, वे ही श्लोकोंके पदोंपर भी दे दिये हैं। श्लोकमें जो नंबर दीखते हैं उनका अर्थ सूत्रार्थके उन्हीं नम्बरोंमें है । महाराज कोकने इसी सूत्रको श्लोकोंमें कह दिया है ।

बिनाविशेष प्रयत्नके सिद्ध होनेवाली स्त्रियोंका प्रकरण ।

यथात्मनः सिद्धतां पश्येदेवं योषितोऽपि ॥ ५१ ॥

जिसप्रकार यह देखे कि-मैं कामयाब हो सकता हूं वा नहीं, उसी तरह यह भी देख ले, कि यह साध्य है वा नहीं ॥ ५१ ॥

अयत्नसाध्या योषितस्त्विमाः—अभियोगमात्रसाध्याः। द्वारदेशावस्थायिनी । प्रासादाद्राजमार्गावलोकिनी । तरुणप्रातिवेश्यगृहे गोष्ठीयोजिनी । सततप्रेक्षिणी । प्रेक्षिता पार्श्वविलोकिनी। निष्कारणं सपत्न्याधिविन्ना। भर्तृद्वेषिणी विद्विष्टा च । परिहारहीना । निरपत्या ॥५२॥

ये स्त्रियाँ विना प्रयत्नके सिद्ध होती हैं यानी साधारण उपाय-मात्रसे सिद्ध हो जाती हैं—(१) दरवाजेपर खड़ी होनेवाली व हवेलीपर चढ़कर नीचे सड़क झाकनेवाली, (२) जवान पड़ोसीके घर गप्पें उड़ाने-वाली, (३) सदा देखनेवाली (४) देखनेमात्रसे बगल झांकनेवाली, (५) जिसके लिये बेबात सौत ला दी गई, (६) पतिसे वैर करनेवाली वा जिससे पति द्वेष करे, (७) हलका वरजा रहित, (८) सन्तान रहित ॥५२॥

अयत्नसाध्या योषितस्त्विति वक्ष्यमाणाः । अभियोगमात्रसाध्या इति या अभियोगमात्रमपेक्षन्ते नाधिकं ता अयत्नसाध्या इत्युच्यन्ते । द्वारदेशावस्थायि-नीति पुरुषदिदृक्षया द्वारदेशेऽवस्थातुं शीलं यस्याः सा चपलाभियोगमात्र-साध्या । प्रासादादिति प्रासादमारुह्य राजमार्गावलोकिनी । राजमार्गे हि पुरुषाणां संनिधानात् । सतरुणेति सतरुणाः पुमांसो यत्रेति प्रातिवेश्यगृहे तत्रत्याभिः स्त्रीभिर्गोष्ठीयोजिनी सा चापल्यं द्योतयति । सततप्रेक्षिणी चेति या सततं प्रेक्षते सा तस्य साध्या । प्रेक्षितेति नायकेन पार्श्वविलोकिनी या पार्श्वमवलोक-यति किमन्येन दृष्टास्मीति सापि चापल्यं कथयति । निष्कारणमिति या तु दौःशील्यादिकं विनेति सपत्न्याधिविन्ना युक्तामर्षात्परपुरुषमिच्छति । भर्तृद्वेषिणी गुणवन्तमपि भर्तारमनिच्छन्ती, विद्विष्टा चेति भर्ता यां द्वेष्टि द्वे अपि चञ्चले । परिहारहीना निष्परिहारा परिहार्येषु सा स्वभावत एव व्यभिचारिणी । निरपत्या भर्तुरपत्यमपश्यन्ती परानुपैति ॥ ५२ ॥

नीचे बताई हुई स्त्रियाँ विना प्रयत्न यानी साधारण उपायमात्रसे सिद्ध हो जाती हैं, अधिक उपाय नहीं चाहतीं इस कारण इन्हें अयत्नसाध्य कहते हैं। जो पुरुषोंके देखनेकी इच्छासे द्वारपर खड़ी होती है वह चपला है, साधारण उपायमात्रसे हाथ आजाती है। बड़ी २ सड़कोंपर सदा ही पुरुष फिरते रहते हैं। जो हवेलीके ऊपर चढकर रासता निहारती है वह पुरुषोंको ही देखती है। जिस पड़ोसीके घरमें जवान २ आदमी हैं वहां जाकर गप्पें उड़ाना चपलताका ही द्योतन करता है। जो जिसे सदा देखती है वह उससे शीघ्र ही सिद्ध हो सकती है। जो नायककी नजर पड़ते ही बगलें झांकती है, कि कोई देख तो नहीं रहा है यह खुद अपनी चपलताको बता रही है। जिसके ऊपर व्यभि-चार आदिक दोषोंके विना भी सौत बिठा दी हो वह इस अनुचितको न सह कर परपुरुषको चाहेगी। जो गुणवाले पतिको भी नहीं चाहती अथवा जिसके

साथ पति द्वेष रखता है ये दोनों चंचल रहती हैं। जिसका कोई रोकनेवाला नहीं है वह स्वभावसे ही व्यभिचारिणी होती है (वह ऐसे पुरुषोंको चाहती है जो लजालु वा रुके हुए हों)। जिसके लड़का नहीं होता (वह पतिका पुत्र न देखकर दूसरोंसे चाहती है, इस कारण दूसरोंके पास जाती है ॥ ५२ ॥

ज्ञातिकुलनित्या । विपन्नापत्या । गोष्ठीयोजिनी । प्रीतियोजिनी । कुशीलवभार्या । मृतपतिका बाला । दरिद्रा बहूपभोगा । ज्येष्ठभार्या बहुदेवरका । बहुमानिनी न्यूनभर्तृका । कौशलाभिमानिनी भर्तुर्मौर्ख्येणोद्विग्ना । अविशेषतया लोभेन ॥ ५३ ॥

(९) सदा बापके यहां रहनेवाली, (१०) जिसके लड़केवाले मर जाते हों, (११) गप्पिनि, (१२) भायेला जोड़नेवाली, (१३) नटोंकी स्त्रियाँ, (१४) बालविधवा, (१५) स्वयं दरिद्रा होकर बहुत भोग चाहनेवाली, (१६) बहुतसे देवरोंवाली बड़े भाईकी स्त्री, (१७) अपनेको अधिक और पतिको हीन माननेवाली, (१८) अपनेको कुशला मानकर पतिकी मूर्खतासे उद्विग्न हुई, (१९) अविशेषरूपसे लोभसे अकुलाई॥५३॥

ज्ञातिकुलनित्या ज्ञातिगृहे सदावस्थिता स्वातन्त्र्याद्भिन्नवृत्तिः। विपन्नापत्या भर्तुर्यद्यदपत्यं तत्तद्विपद्यत इति परपुरुषापेक्षापत्याभावाद्वा। गोष्ठीयोजिनी स्वगृहे सखीगृहे वा चापल्यं सूचयति। प्रीतियोजिनी येन सह प्रीतिं योजयति तस्य साध्या। कुशीलवभार्या नटनर्तकादीनां भार्या वेश्याप्राया:। मृतपतिका बालेति बाला च या विधवा सा तारुण्ये निषद्यमाना शीलं खण्डयति। दरिद्रा बहूपभोगान्वितं दातारमभिगच्छति। ज्येष्ठभार्या बहुदेवरका प्रायशो देवरैरेव व्युत्पादिता। बहुमानिनी न्यूनभर्तृकेत्यात्मनि बहुमानो यस्याः। न्यूनश्च भर्ता सा न तत्र रमते। कौशलाभिनानिनी कलानां परिज्ञानाभिमानो यस्याः सा भर्तुर्मौर्ख्येण मूर्खत्वेनोद्विग्ना नियतं तत्कुशलमन्विष्यति। अविशेषतया भर्तुरुद्विग्ना विशेषज्ञा लोभेन भर्तुरुद्विग्ना स्वयमलुब्धा न तत्र रमते ॥ ५२ ॥

जो सदा बापके घर रहती है, उसकी स्वतंत्र रहनेसे वृत्ति बिगड़ जाती है। पतिसे तो जो होते हैं वे मर जाते हैं या सन्तान न होनेसे परपुरुषको चाहने लगती है। चाहे अपना घर हो चाहे सखीका हो गप्पें लगाना

चपलताकी सूचना देता है । जो जिसके साथ प्रेम बाँधे वह उससे सिद्ध हो सकती है । नट नचकैयोंकी स्त्रियाँ प्रायः वेश्या जैसी ही होती हैं । जो बालमें विधवा हो गई वह जब युवती होगी उस समय अपने चरित्रोंका अवश्य खण्डन करेगी । दरिद्रा बहुतसे भोगोंवाले दाताको चाहती ही है । बड़े भाईकी स्त्री जिसके कि बहुतसे देवर होते हैं, वे ही उसे बिगाड़ डालते हैं । जो अपनेको अधिक और पतिको तुच्छ समझती है वह पतिमें रमण नहीं कर पाती । जो कि अपनेको कलाकुशल समझती है और पतिकी मूर्खतासे उद्विग्न रहती है वह अपनेसे अधिक कुशल पुरुषको चाहती ही है । जो विशेषज्ञ होकर पतिके अविशेषज्ञपनेसे उद्विग्न रहती है वह पतिपर लोभित न होनेके कारण उसमें राग नहीं करती, दूसरेको चाहती है ॥५३॥

कन्याकाले यत्नेन वारिता कथंचिदलब्धाभियुक्ता च सा तदानीम् । समानबुद्धिशीलमेधाप्रतिपत्तिसात्म्या । प्रकृत्या पक्षपातिनी । अनपराधे विमानिता । तुल्यरूपाभिश्चाधः कृता । प्रोषितपतिकेति । ईर्ष्यालुपूतिचोक्षक्लीबदीर्घसूत्रकापुरुषकुब्जवामनविरूपमणिकारग्राम्यदुर्गन्धिरोगिवृद्धभार्याश्चेति ॥ ५४ ॥

(२०) जिसके साथ जिसकी सगाई हुई हो पर दैवयोगसे उसके साथ विवाह न हो आये, दूसरेके साथ व्याह हो जाय । (२१) यदि वह बराबरका, जिसकी कि उसके साथ बुद्धि, शील, मेधा और प्रतिपत्ति एकसी हो वह साधारण उपायसे भी उससे मिल सकता है । (२२) जिसका पक्षपात जिसपर हो वह उसे मिल सकती है । (२३) बेकुशूर अपमानित, (२४) बराबरवालियोंसे नीचे गिराई गई, (२५) जिसका पति विदेश रहे, ये स्त्रियाँ एवं (२६) मैलेकुचैले रहनेवाले, (२७) ईर्ष्या रखनेवाले, (२८) चोक्ष, (२९) नपुंसक, (३०) दीर्घसूत्री, (३१) कायर, (३२) कूबरा, (३३) बौना, (३४) कुरूप, (३५) मणिकार, (३६) ग्रामीण, बसैले, (३७) रोगी और (३८) बुड्ढे की स्त्रियाँ व्याभिचारिणी ही हुआ करती हैं ॥

कन्याकाल इति कन्यावस्थायां यत्नान्नायकेन वृता कथंचिद्दैवयोगात्तु न लब्धा सत्यन्येनोढेत्यभियुक्ता तदानीं यदा तस्येच्छा सा तस्य साध्या, पूर्वानुरागात् । समानबुद्धिरिति नायकेन तुल्या बुद्ध्यादयो यस्याः सा तस्य साध्या । तत्र बुद्धि-

बोध्येषु । शीलं स्वभावः । मेधा विद्याकलासु ग्रहणशक्तिः । प्रतिपत्तिरनुष्ठानम् । सात्म्यं देशसात्म्यं प्रकृतिसात्म्यं च । प्रकृत्येति स्वभावेन यं प्रति पक्षपातो यस्याः सा तस्य साध्या । अनपराध इति दोषं विना भर्त्रावमानिता परिभूता न तत्र सज्जते । अन्यमिच्छति । तुल्यरूपाभिश्चाधः कृतेति समानप्रतिपत्तिभिः सपत्नीभिर्न्यक्कृता विरागादन्यमिच्छति । प्रोषितभर्तृका ब्रह्मचर्येण भग्ना कथमन्यान्नेच्छेत् । यो निष्कारणमीर्ष्यते तस्य भार्या विटैश्चिरमपहृतैव । पूतिः शरीरसंस्काररहितस्तस्य भार्या कश्मलत्वाद्विमुखीभवति । चोक्षो जातिविशेषस्तद्भार्या वेश्याप्राया । क्लीबो नपुंसकः । दीर्घसूत्रः कार्यमवमृश्य तदात्वे नारभते । कापुरुषः पौरुषहीनः द्वयोरपि भार्या परस्यैव । कुब्जवामनयोर्विरूपयोरप्युपादानं वैरूप्यभेदप्रकर्षणार्थम् । द्वयोरपि भार्या खण्डितशीला । मणिकारो मणीनां संस्कर्ता । तद्भार्या सदैव हट्टचारिणी खण्डितशीला । ग्राम्यभार्या नागरकस्यायत्नसाध्या स्यात् । दुर्गन्धिः शरीरे यस्य दुष्टो गन्धः स उद्वेगकरः । रोगी यो दीर्घरोगयुक्तः । वृद्धो व्यवायाक्षमः । एषां भार्या व्यभिचारिण्यः ॥ ९४ ॥

नायकने कन्यापनेकी हालतमें प्रयत्न करके जिसका वाग्दान तो ले लिया हो पर किसी कारणसे दैवयोगवश न मिली और दूसरेने व्याह ली ऐसी स्त्रीने जब पहिला बनड़ा मिलना चाहेगा उसी समय उसे सिद्ध कर लेगा, क्योंकि उसके साथ पहिला प्रेम रहता है। जिसके बुद्धि आदि नायकके तुल्य होंगे वह उससे सिद्ध हो सकेगी । इसमें जाननेके योग्य वस्तु कलापके ज्ञानका नाम बुद्धि है । शील स्वभावको कहते हैं । विद्या और कलाओंकी ग्रहणशक्तिका नाम मेधा है । प्रतिपत्ति अनुष्ठानका नाम है । अनुकूलता दो तरहकी होती है—एक देशसे तथा दूसरी स्वभावसे । जिसके प्रति जिसका स्वाभाविक पक्षपात होता है वह उससे सिद्ध होता ही है । जिसे पति विना कारण अपमानित कर देता है वह उसमें अनुरक्त नहीं होती दूसरेको ही चाहती है । बराबरके काम करनेवाली सौतोंने जिसका तिरस्कार कर दिया हो उसकी अरुचि हो जाती है, इस कारण पतिको छोड़कर दूसरेको चाहती है । जिसका पति विदेशी है वह ब्रह्मचर्य्यसे भग्न रहती है कैसे न औरको चाहेगी । जो अपनी स्त्रीसे वेबात ईर्ष्या रखता है, उसकी स्त्री जारोंने बहुत समयके लिये छीन ली ही समझो । जो अपने शरीरका संस्कार नहीं करता उसकी कश्मल होनेसे विमुख हो जाती है । चोक्ष एक जाति-

विशेष है उसकी स्त्री प्रायः वेश्या ही होती है । नामर्दकी स्त्री उसकी नहीं । जो कार्य्य करना सोचकर उस समय न करे । जिसमें पुरुषार्थ ही न हो । इन दोनोंकी स्त्रियां दूसरेकी ही हैं । यद्यपि कूबरे और बौने भी कुरूप ही होते हैं फिर इनका विरूपसे भिन्न उपादान तो विरूपताके भेदोंकी बढ़ाघटी दिखानेके लिये है । इन दोनोंकी स्त्रियाँ भी दुश्चरित्रा ही हुआ करती हैं । मणियोंके संस्कार करनेवालेको मणिकार कहते हैं । इसकी स्त्री भी सदा दूकानपर ही बैठी रहती हैं अतः इनके भी चारित्र अच्छे नहीं होते । ग्रामीणकी स्त्रीको तो नागर जलदी ही विना प्रयत्नके सिद्ध कर लेता है । जिसके बदनसे बुरी बदबू आती है उसक पास आनेवालेको उद्वेग होता है । जिसे चिरकालसे राजरोग लग गया हो, जो बुढ़ापेके कारण रति करनेमें असमर्थ हो गया हो । इनकी स्त्रियाँ व्यभिचारिणी ही होती हैं ॥ ५४ ॥

उक्त प्रकरणका श्लोकोंमें संग्रह ।

" द्वारा[२]वस्थितिशीला दृष्टा[४] पार्श्वं विलोकते या च ।
रमण[६]द्विट् दुर्भगा वा निरर्पत्या निरपराधै[२२]परिभूता ॥
लङ्घितलज्जा वन्ध्या गो[३]ष्ठीशीला मृता[१०]पत्या ।
परिहरति नापराधेऽप्यभिभूता वा वृथा सपत्नीभिः ॥
बाला [१४]मृतपतिका या बहूपभोगा[१५] दरिद्रा च ।
न्यून[१७]पतिर्बहुमाना गूढधवोद्वे[१८]गिनी कलाकुशला ॥
ज्येष्ठा बहुदे[१६]वरका प्रोषित[२४]भर्तृकाऽधरीकृता[२३] समानाभिः ।
नित्यं ज्ञातिकुलेस्थितिरी[२६]र्ष्यालुपतिः स[२१]मानशीला च ॥
कन्याकाले यत्नाद् वारिवा व्यूढा कुतोऽपि कारणान्नैव ।
या यौवनेऽभियुक्ता प्र[२१]कृतिस्निग्धा च या यस्मिन् ॥
चारण[१३]विरूप[३३]वा[३२]मन[२५]दुर्गन्धि[३५]ग्राम्य[३६]रोगिणां भार्य्याः ।
कुपु[३०]रुष[३७]वृद्ध[२८]क्लीबप्रमदा एता[१] अयत्नसाध्याः स्युः ॥

अल्पयत्न साध्य स्त्रियोंका इसमें संग्रह किया है । जिससे स्त्री प्रारम्भमें मिल लेती है उसका उसके हृदयमें अवश्य ही पक्षपात हो जाता है । निरपराधका परिभव तीन तरहसे होता है या तो शंकासे तिरस्कृत करके पति एकान्तवास करने लग जाय या अपनीको छोड़कर किसी वैसी ही स्त्रीको रख ले या उसपर दूसरा विवाह कर ले । सूत्रकारने अभिभव लिखा है तो उसका श्लोकमें खुलासा कर दिया है । श्लोकने चारण ग्रहण किया है, इससे सूत्रकी बताई हुई जातिविशेषकी स्त्रियोंका भी ग्रहण हो जाता है । दुर्भगाका भी

यही हाल होता है, क्योंकि पति उसके साथ नहीं मिलता, इस कारण वह भी दूसरोंको ही चाहती है।

उपसंहार ।

प्रकरणत्रयाथमुपसंहरन्नाह—

यहांतक कहकर अब इन तीनों प्रकरणोंके पदार्थोंका सामान्यरूपसे तात्पर्य्य कथन करते हैं कि—

श्लोकावत्र भवतः—

इच्छा स्वभावतो जाता क्रियया परिबृंहिता ।
बुद्ध्या संशोधितोद्वेगा स्थिरा स्यादनपायिनी ॥ ५५॥

इस विपयमें यहां दो श्लोक हैं कि स्वभावसे पैदा हुई इच्छाके क्रियाओंसे वढ़ती है, बुद्धिसे उसके उद्वेगोंका संशोधन कर देनेपर न मिटनेवाली स्थिर रहती है ॥ ५५ ॥

इच्छेति स्वभावतो यं कंचिदुज्ज्वलं दृष्ट्वा कामयत इति । क्रिययेति परिचयाभियोगलक्षणया परिबृंहिता वर्धिता । बुद्ध्येति प्रज्ञया संशोधितोद्वेगेति संप्रयोगोपायमपश्यन्ती उद्वेगयुक्तापि स्यात् । तदुपायदर्शनेनापनीतोद्वेगा । सा चैवंविधा स्थिरा स्यात् । अनपायिनीःवात् ॥ ५५ ॥

यह स्वाभाविक वात है किसी भी सुन्दर पुरुपको स्त्री एवम् सुन्दरीको पुरुप चाहता है । यह इच्छा परिचय और उपायोंसे वढ़ाई जाती है । यदि यह इच्छा मिलनेके उपाय न देखे तो उद्वेगयुक्त भी हो जाती है, इस कारण बुद्धिसे उपाय ढूंढ लेनेपर उसकी शान्ति भी हो जाती है, ऐसी इच्छा मिटनेकी तो रही नहीं, इस कारण स्थिर हो जाती है ॥ ५५ ॥

सिद्धतामात्मनो ज्ञात्वा लिङ्गान्युन्नीय योषिताम् ।
व्यावृत्तिकारणोच्छेदी नरो योषित्सु सिध्यति ॥ ५६॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनं व्यावर्तनकारणानि स्त्रीपु सिद्धाः पुरुषा अयत्नसाध्या योषितः प्रथमोऽध्यायः ।

अपनी कामयावी जान, उसके इंगिताकारोंसे अनुमान करके, रोकके कारणोंको मिटा मनुष्य स्त्रियोंमें सिद्ध हो जाता है ॥ ५६ ॥

सिद्धतामिति ज्ञात्वा किमहमस्याः सिद्ध इति। लिङ्गानीच्छासूचकानि। इङ्गिताकारानित्यर्थः। उन्नीयेति ज्ञात्वा। व्यावृत्तिकारणोच्छेदी रागवर्धनादिभिः। योषित्सु सिद्ध्यत्यभियुञ्जानः फलं लभत इत्यर्थः। इत्ययत्नसाध्या योषितो द्वाचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनं व्यावर्तनकारणानि स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषा अयत्नसाध्या योषितः प्रथमोऽध्यायः ।

मैं इससे सिद्ध हूंगा वा नहीं ? इसके मेरे लिये इंगिताकार कैसे हैं ? इस बातको जानकर रागवर्धन आदिसे रोकके कारणोंका नाश करके स्त्रियोंमें अभियोग करता हुआ सिद्धिको पाता है । यह विना प्रयत्नसे सिद्ध होनेवाला स्त्रियोंका व्यालीसवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके प्रथम अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

परिचयकारण प्रकरण ।

क्रियया परिबृंहितेत्युक्तं तां क्रियां दर्शयितुमाह—

यह जो उपसंहारमें कहा है, कि–' क्रियया चोपबृंहिता ' क्रियाओंसे वह स्वाभाविकी इच्छा बढ़ाई गई। इसमें यह विचार होता है कि वे क्रियाएँ कौनसी हैं जिनसे इच्छा बढ़ाई जाती है ? इस कारण उन क्रियाओंको दिखानेके लिये कहते हैं कि—

दूतीसाध्य न स्वयं साध्य ।

यथाकन्या स्वयमभियोगसाध्या न तथा दूत्या । परस्त्रियस्तु सूक्ष्मभावा दूतीसाध्या न तथात्मनेत्याचार्याः[१]

---

१ इंगिताकार प्रकरण ६४७ वें पृष्ठसे प्रारंभ होता है। उसे यहां भी समझना चाहिये ।

जिस प्रकार कन्या स्वयम् अपने उपायसे सिद्ध की जा सकती है उस तरह दूतीसे नहीं एवम् जिस प्रकार सूक्ष्म भावकी परनारियाँ दूतियोंसे सिद्ध की जा सकती हैं उस तरह स्वयम् नहीं, यह आचार्योंका मत है ॥ १ ॥

द्वे नायिके कन्या परयोषिच्च । अभियोगो द्विविध आत्मना दूत्या च । अत्राचार्याणां मतं यथाकन्येति । कन्यानामसंप्रयुक्तत्वात्तासु प्रायेण युक्त्याभियोगाः । तांश्च नायक एव प्रयोक्तुं शक्नोति । न दूती । एवं च तास्वेकपुरुषाभियोगा उक्ताः । सूक्ष्मभावा इति प्रवृत्तसंयोगात्परपुरुषः संभवति (?) । किमु तस्मिन्भावप्रदर्शनं प्रकाशनं दूत्यामुभयं संभवति।तस्माद्दूत्यैव साध्या इति॥ १

कन्या और परनारी ये दो नायिकाएँ इस सूत्रका विषय हैं । इसी तरह अपने आपसे और दूतीसे दो तरहसे अभियोग होता है । इसमें आचार्य्योंका मत है, कि जैसे कन्या अपनी ओर झुकाई जाती हैं उस तरह परस्त्री नहीं । कन्या किसीसे मिली हुई तो होती नहीं, इस कारण उन विचारियोंको कुछ पता नहीं रहता, उनपर युक्तिसे रंग जम जाता है, अतः उनका उपाय स्वयम् नायक कर सकता है दूती नहीं, इससे उनमें एक पुरुषके करनेके उपाय कन्यासंप्रयुक्तकमें बता दिये हैं । पर परनारियाँ तो खेली खाई रहती हैं इस कारण सूक्ष्मभाववाली रहती हैं, मिले पीछे तो पुरुष अपना काम आप साधता रहता है पर उसमें भाव दिखाना और उसके भावोंका कहना ये दोनोंमें बात दूतीके नियुक्त करनेमें हो सकती हैं, इस कारण उन्हें दूतीसे सिद्ध करना चाहिये१॥

सर्वत्र शक्तिविषये स्वयं साधनमुपपन्नतरकं दुरुपपादत्वात्तस्य दूतीप्रयोग इति वात्स्यायनः ॥ २ ॥

शक्तिके विषयमें सब जगह स्वयम् साधन करना दूतीसे अच्छा है । यदि स्वयम्‌से उपाय होना कठिन हो तो उसके लिये दूतीका प्रयोग करे, यह वात्स्यायनका मत है ॥ २ ॥

सर्वत्रेति—कन्यासु परस्त्रीषु चेति । शक्तिविषय इति—यत्र स्वयमभियोक्तुं शक्नोति । उपपन्नतरकं दूतीसाधनात् । तस्येति—स्वयमभियोगस्य । दुरुपपादकत्वादिति—यत्र दुःखेनोपपाद्यते तत्र दूतीप्रयोगः ॥ २ ॥

कन्या हो चाहे परनारी हो सभीके प्रति यदि आप उपाय कर सकता है तो दूतीसे उपाय करानेकी बनिसपत अच्छा है । यदि आपसे उपाय करना

एकदम कठिन हो यानी बड़े कष्टोंसे किया जाय तो वहां दूतीका प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

तत्र प्रायोवादेन दर्शयन्नाह—

इसमें भी जो बात प्रायिक है, उसे दिखाते हुए कहते हैं कि—

प्रथमसाहसा अनियन्त्रणसंभाषाश्च स्वयं प्रतार्याः । तद्विपरीताश्च दूत्येति प्रायोवादः ॥ ३ ॥

जिसका पहिला ही अवसर हो जिससे स्वयम् बातेंचीतें की जा सकती हों वे स्वयम् ही सिद्ध करनी चाहिये, इससे विपरीत दूतियोंसे यह बात प्रायिक है ॥ ३ ॥

प्रथमं साहसं चारित्रखण्डनं यासां तासु नायक एव समर्थो न दूती । अनियन्त्रणमनिषिद्धं संभाषणं यासां नायकेन सह यास्वपि किं दूत्येति । स्वयं प्रतार्या इति स्वयमुपपन्नतरकत्वं प्रदर्शयति । दुरुपपादत्वमाह–तद्विपरीता इति बहुशः खण्डितचारित्रा नियन्त्रणसंभाषिण्यः ॥ ३ ॥

जिनका प्रथम ही चारित्र खण्डन हो उनके सिद्ध करनेमें नायक ही समर्थ है दूती नहीं । जिनके साथ स्वयम् बातेंचीतें कर सकता है वहां भी दूतीकी क्या आवश्यकता है ? उनका स्वयम् ही प्रतारण करे इस कथनसे इस बातको दिखा दिया है, कि इनमें स्वयम् दूतियोंसे अच्छा रहता है । किन्तु जो इसके विपरीत हो स्वयम्से होना कठिन हो जैसे जिसके चारित्र अनेकबार बिगड़ चुके हों अथवा जिनसे बातें ही न हो सकती हों तो दूतीसे सिद्ध करे ॥ ३ ॥

ननु प्रथमसाहसायां गमनं प्रतिषिद्धम् । विषयस्याशुद्धत्वात् । शरीरोपघातत्राणार्थमप्ययुक्तम् । स्वयमभियोगस्य (तु) न परिचयं विनेति परिचयकारणान्युच्यन्ते । यदाह—

इसपर यह शंका होती है कि, पहिली बार ही साहस करनेवालीके साथ तो गमनका निषेध है, क्योंकि वहां विषयकी विशुद्धि नहीं है । क्योंकि इस प्रकरणकी विशुद्धिमें परनारीको खण्डितचारित्रा चाहते हैं, इस कारण जो पहिले बार ही साहस कर रही हो उसके साथ शरीरके पतनसे रक्षा करनेके लिये भी उचित नहीं है । इसके सिवा यह भी बात है कि अपने आप उपाय विना परिचयके नहीं हो सकता, इस कारण परिचयके कारण कहते हैं । कामसूत्रकारने भी स्वयम् उपाय करनेवालेके लिये कहा है कि–

स्वयमभियोक्ष्यमाणस्त्वादावेव परिचयं कुर्यात् ॥ ४ ॥

अपने आप उपाय करता हुआ तो पहिले ही परिचय करे ॥ ४ ॥

अभियोक्ष्यमाणोऽभियोगं करिष्यन् । परिचयं संदर्शनं दूतीपूर्वकम् ॥ ४ ॥

जो आप ही उपाय करना चाहे उसे चाहिये कि पहिले परिचय करे । परिचय जानपहिचान व अच्छी तरह देखनाभालना है । यह आप वा दूतीपूर्वक होता है ॥ ४ ॥

स्वाभाविक और प्रायत्निक दर्शन ।

संदर्शनं च द्विविधमित्याह—

संदर्शन दो तरहका होता है, उन दोनोंको वताते हैं कि—

तस्याः स्वाभाविकं दर्शनं प्रायत्निकं च ॥ ५ ॥

उसका स्वाभाविक और प्रायत्निक दो तरहका संदर्शन होता है । अपने आप विना प्रयत्न जो देखना हो वह 'स्वाभाविक' है एवम् उपायसे देख पाना 'प्रायत्निक' है ॥ ५ ॥

स्वाभाविकमात्मनो भवनसंनिकर्षे प्रायत्निकं मित्रज्ञातिमहामात्रवैद्यभवनसंनिकर्षे विवाहयज्ञोत्सवव्यसनोद्यानगमनादिषु ॥ ६ ॥

अपने घरके पास आती जातीको देखभाल लेना स्वाभाविक तथा मित्र, ज्ञाति, महामात्र और वैद्यके घरके पास एवम् विवाह, यज्ञ, उत्सव, दुःख और वनविहार आदिकोंमें देखना 'प्रायत्निक' है ॥ ६ ॥

भवनसंनिकर्ष इति गृहसमीपे क्वचिदागताया दर्शनं स्वाभाविकं न प्रयत्नकृतम् । मित्रादीनां यद्गृहं तत्समीपे यद्दर्शनं विवाहादिषु च । तत्प्रायत्निकम् । प्रयत्नसाध्यत्वात् ॥ ६ ॥

यदि कभी अपने घरके पास नायिका आ रही हो तो उसका नायकको दीख जाना स्वाभाविक ही है, प्रयत्नसे किया हुआ नहीं है । अपने मित्र, वैद्य आदिके घरके पास जो उसको देखना है और विवाह आदिकोंमें जो उसका देखना है वह प्रायत्निक है, क्योंकि वहां जानेका प्रयत्न करके ही देखा जा सकता है ॥ ६ ॥

परिचयके बाह्य कारण ।

तत्र च द्विविधे संदर्शने परिचयकारणं द्विविधं बाह्यमाभ्यन्तरं च । तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

प्रयत्न और सहजसे होनेवाले दोनों तरहके दर्शनोंमें आभ्यन्तर और बाह्य भेदसे दो तरहके परिचयके कारण हैं । इन दोनोंमें पहिले बाह्य परिचयके कारणोंको लेकर कहते हैं कि—

दर्शने चास्याः सततं साकारं प्रेक्षणं केशसंयमनं नखाच्छुरणमाभरणप्रह्लादनमधरौष्ठविमर्दनं तास्ताश्च लीला वयस्यैः सह प्रेक्षमाणायास्तत्संबद्धाः परापदेशिन्यश्च कथास्त्यागोपभोगप्रकाशनं सख्युरुत्सङ्गनिषण्णस्य साङ्गभङ्गं जृम्भणमेकभ्रूक्षेपणं मन्दवाक्यता तद्वाक्यश्रवणं तामुद्दिश्य बालेनान्यजनेन वा सहान्योपदिष्टा द्व्यर्थां कथा तस्यां स्वयं मनोरथावेदनमन्यापदेशेन तामेवोद्दिश्य बालचुम्बनमालिङ्गनं च जिह्वया चास्य ताम्बूलदानं प्रदेशिन्या हनुदेशघट्टनं तत्तद्यथायोगं यथावकाशं च प्रयोक्तव्यम् ॥ ७ ॥

देखनेके समय इसे निरन्तर साकार देखे, बालोंको खोलकर बाँधे, नाखूनोंसे खुजाये, आभूषण सुधारने लगे, नीचेके होंठको मसले और मित्रोंके साथ उन उन लीलाओंको उसके देखते हुए करे, दूसरेके बहाने उसकी बातें करे, अपने त्याग और उपभोगोंको प्रकट करे, मित्रकी गोदमें लेट अँगड़ाई ल, जँभाई लेता हुआ उसकी तरह भौहें मटकाये । धीमा बोले, उसकी बात सुने, उसका उद्देश लेकर बालकसे या दूसरे आदमीके साथ दूसरीकी कहीं दो अर्थोंवाली बातें करे । उसके विषयके अपने मनोरथको दूसरेके बहानेसे कहे । उसीका उद्देश लेकर बालकका चुम्बन, आलिंगन एवं उसी बालकको जीभसे पान देना, प्रदेशिनीसे हनुदेशको हिलाना । इन योगोंमेंसे जो कर सके; जैसा अवकाश हो उसीका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

साकारमिति भावसूचकेन मुखनयनगतेनाकारेण सह प्रकृते प्रेक्षणं कर्तव्यम् केशसंयमनं केशानवमुच्य बन्धनम् । नखाच्छुरणं स्वाङ्गेष्वाच्छुरितकम् । आभ-

रणप्रह्लादनं शब्दनम् । अधरोष्ठविमर्दनमंगुष्ठसंपुटेन परिघर्षणम् । तास्ताश्चेति गुणसंवर्धनप्रधानाः कथाः । वयस्यैर्मित्रैः । प्रेक्षमाणाया इति नायिकायाः पश्यन्त्याः । तत्संबद्धा इति नायिकासंबद्धाः । परापदेशिन्य इति नायिकापदेशिन्यः। त्यागोपभोगप्रकाशनं दातृत्वभोगित्वख्यापनार्थम् । सख्युरिति मित्रस्योत्सङ्गे निषण्णस्य । साङ्गभङ्गमिति साङ्गस्फोटनं जृम्भणं विजृम्भिका स्यात् । एकभ्रूक्षेपणं निषण्णस्येव । मन्दवाक्यता गद्गदवचनता किमु मां किंचिद्वक्तीति । तामिति नायिकाम् । बालेनेति तत्पार्श्ववर्तिना गर्भरूपेण । जनेन चान्येन । अन्योपदिष्टेति तत्सुहृदा कृता न स्वयम् । द्व्यर्था कथेत्येको बालेन संबद्धोऽर्थो द्वितीयो नायिकया । तस्यामिति कथायां क्रियमाणायां स्वयमात्मना मनोरथावेदनम् । अन्यापदेशेनेत्यस्मिन्मित्रस्या (?) मिति दुर्घटो मनोरथः स किं भविष्यति न भविष्यतीति न जाने । तामेवेति नायिकाम् । बालस्य चुम्बनमालिङ्गनं संक्रान्तकम् । जिह्वया च प्रसारितया । प्रदेशिन्या तर्जन्या । हनुदेशघट्टनं कपोलयोरधस्ताच्चलनम् । तामुद्दिश्येति सर्वत्र योज्यम् । तत्तदित्यन्यदप्येवंविधम् । यथायोगमिति यद्यस्य युज्यते स्पर्शनं ताडनं वा । यथावकाशमिति यथाप्रदेशं कक्षयोरुरसि पृष्ठे वा बालस्य विधेयम् ॥ ७ ॥

जब नायिकाके देखनेका अवसर प्राप्त हो उस समय मुख और आखोंके भावसूचक आकारके साथ उसे देखना चाहिये । उसे देखते देखते अपने शिरके बालोंको खोलकर बाँधना चाहिये । नाखूनोंसे अपने शरीर या हाथ आदिको खुजा दे । अपने गले आदिके जेवरको संभालनेके बहाने बजा दे । अँगूठा और प्रदेशिनीसे नीचेके होठको मसल दे। उसे देखते हुए जब कि वह अपनेको देख रही हो उस समय अपने मित्रोंके साथ नायकोचित गुणोंको बढ़ानेवाली बातें और तमासबीनियां करे । उस नायिकाकी बातें किसी दूसरी नायिकाके बहानेसे करे । 'मैं बड़ा दाता, बड़ा भोगी हूं' इस बातको नायिकापर प्रकट कर देनेके लिये इनकी बातें करे । अपने पार्श्ववर्ती किसी मित्रकी गोदीमें अपने गर्दनको रख, अँगड़ाईपूर्वक जँभाई लेकर भौहें चलाये, आप गद्गद होकर बोले एवम् नायिकाकी ओर इस प्रकार कान लगाये कि मानो मुझसे कुछ कह रही हो । जिसे देख रहा हो उसीका उद्देश लेकर उसके पार्श्ववर्ती उसीके बालकके साथ व दूसरे आदमीके साथ उसके मित्रकी कही बातें करे, अपनी तरफसे न बनाये । वह

भी द्व्यर्थक हो, कि एक अर्थ बालकके साथ सम्बन्ध रखे तो दूसरा अर्थ उस नायिकासे संबन्ध रखता हो । बातोंके करनेमें अपने आप अपने मनोरथ कह डाले, वह भी किसी दूसरेके मित्रके बहाने, कि 'दुर्घट मनोरथ है होगा वा नहीं?' नहीं जानता हूं । ' उसी नायिकाका उद्देश लेकर ' यह बात प्रत्येक कार्य्यके वाक्यमें लगानी चाहिये यानी इन कामोंमेंसे जो कुछ करे वह नायिकाका उद्देश लेकर करे । और २ भी जो कोई ऐसे योग हों उन्हें भी जो जिसपर (स्पर्श वा ताडन आदि) उपयुक्त हो, जैसा अवकाश हो कांखोंमें, छातीपर वा पीठमें वहीं बालकके वे कार्य्य कर देने चाहिये ॥ ७ ॥

तस्याश्चाङ्कगतस्य बालस्य लालनं बालक्रीडनकानां चास्य दानं ग्रहणं तेन संनिकृष्टत्वात्कथायोजनं तत्संभाषणक्षमेण जनेन च प्रीतिमासाद्य कार्यं तदनुबन्धं च गमनागमनस्य योजनं संश्रये चास्यास्तामपश्यतो नाम कामसूत्रसंकथा ॥ ८ ॥

नायिकाके गोदके बच्चेको प्यार करे, बच्चोंके खेलके खिलोने दे, फिर उससे ले ले, पास आकर उससे बात करे, जो मनुष्य उससे बोल सकता हो उसके साथ प्रेम गांठकर कार्य्य करे, उसके जाने आनेका कार्य्य बता दे, जहां वह उसे सुने ऐसे स्थानमें विना उसे देखे उसके साथ कामसूत्रकी गप्पें लगाये ॥८॥

तस्याश्चेति नायिकायाः । अङ्कगतस्य क्रोडस्थस्य लालनं मृदुता च सा (?) बालक्रीडनकानां यानुष्टु (?) गुटिकादीनाम् । तेनेति दानग्रहणसंबन्धेन संनिकृष्टत्वात्कथायोजनं कार्यम् । तेन सह प्रीतिमासाद्य संयोज्य कार्यं प्रयोक्तव्यमिति शेषः । तदनुबन्धं चेति कार्यानुबन्धम् । गमनागमनस्य योजनं येन लोकोऽनेन कार्येणास्य गमनागमनं नान्येनेति मन्यते । संश्रवे चास्या इति यत्र सा शृणोति तत्र कामसूत्रसंकथा विज्ञत्वख्यापनार्थम् । तत्रापि तामपश्यतो नामेति न किलाहमेनां पश्यामीति । अन्यथा तां पश्यतः कथयतो दुर्विदग्धता स्यात् ८॥

नायिकाकी गोदके बच्चेके साथ प्यार करना अपनी मृदुताको दिखाता है, बच्चोंके खिलोने शवारी, घोड़ागाडी व ऊँट, घाड़ आदि होते हैं । ऐसे ही और २ भी खेलके सामान दे । उन देने लेनेके संबन्धसे पासमें आकर बातोंका सिलसिला बाँधना चाहिये । उससे बातें कर सकनेवालेके साथ प्रेम बाँध उसके द्वारा कार्य्यका प्रयोग कर दे । कामके बहाने जाना, आना प्रारंभ कर

दे, जिससे दुनियाँ यह समझे कि यह कामके लिये जाता आता है। जहाँ वह सुने ऐसे स्थलमें कामसूत्रकी गप्पें तो अपने कामकलाकोविदपनेके दिखानेके लिये की जाती हैं। यहां भी इस रीतिसे कहे जिससे सुननेवाली यह न जान पावे कि मुझे देखकर कह रहा है। यदि वह यह भांप जायगी कि मुझे देखकर कह रहा है तो इसमें मूर्खता मालूम होगी ॥ ८ ॥

आभ्यन्तर परिचयके कारण।

आभ्यन्तरमधिकृत्याह—

भीतरके परिचयके अधिकारको लेकर कहते हैं कि—

प्रसृते तु परिचये तस्या हस्ते न्यासं निक्षेपं च निदध्यात्। तत्प्रतिदिनं प्रतिक्षणं चैकदेशतो गृह्णीयात्। सौगन्धिकं पूगफलानि च ॥ ९ ॥

× परिचयके बढ़ जानेपर उसके हाथमें न्यास और निक्षेप कर दे। उसे प्रतिदिन वा प्रतिक्षण अंशके रूपमें ग्रहण करता चला जाय, अतर आदि हो वा सुपारी हों ॥ ९ ॥

प्रसृते तु सर्वथोत्पन्ने परिचये। न्यासाः संस्थाप्याश्चिरकालग्राह्याः। निक्षेपं यदल्पकालग्राह्यम्। प्रतिदिनं न्यासः प्रतिदिनं निक्षेपकम्। तदेकदेशं स्तोकस्तोकेन गृह्णीयात्। तदेव यथाक्रमं दर्शयति—सौगन्धिकं सुगन्धिद्रव्याणां समूहः। तद्द्वारेण प्रतिदिनं न्यासं निक्षेपं च यदल्पकालग्राह्यं प्रतिक्षणं च दृश्यते ॥९॥

जब सब तरहसे परिचय हो जाय तो, जिस वस्तुको रखकर बहुत दिनोंमें ले वह न्यास तथा जिसे थोड़े ही समयमें ले ले उसे निक्षेप कहते हैं। न्यास और निक्षेप प्रतिदिन करे एवम् प्रतिदिन वा प्रतिक्षण उसको थोड़ा २ करके लेता रहे जिससे उसका संसर्ग बढ़ जाय। जो वस्तु थोड़ी २ करके प्रतिदिन और प्रतिक्षण लेनेकी है उन्हें बताते हैं, कि सुगन्धित वस्तुओंका समुदाय जिसकी आवश्यकता प्रतिदिन पड़ती है। सुपारियोंकी आवश्यकता पड़ती है। इसके द्वारा प्रतिदिन न्यास और निक्षेप करता रहे जो अल्पकालमें लिया जाय और प्रतिक्षण दीखे ॥ ९ ॥

× **"प्रणये निक्षेपमादध्यात् प्रति मुहुरहरहरथवा यस्य ग्रहणेन भवति संश्लेषः"** साधारण प्रणय होनेपर उसके पास ऐसी धरोहर राखे जिसके लिये प्रतिदिन अथवा हरवखत जाना आना हो; जिससे मिलना झुलना बढ़े।

तामात्मनो दारैः सह विस्रम्भगोष्ठ्यां विविक्तासने च योजयेत् ॥ १० ॥

उसे अपने घरकी स्त्रियोंके साथ एकान्तमें विश्वस्त गोष्ठीमें लगा दे ॥१०॥

विस्रम्भगोष्ठ्यां विविक्तासने चेति तामुपनिमन्त्र्यास्माभिः प्रच्छन्ने समुपविश्य पानगोष्ठी कर्तव्येत्यभिधाय स्वदारैः सह तत्र योजयेत् ॥ १० ॥

हमारे साथ बैठकर एकान्तमें पानगोष्ठी करनी चाहिये, इस प्रकार अपने घरकी स्त्रियोंसे उसे निमंत्रित करा दे, फिर उन्हें उसके साथ गोष्ठीमें युक्त कर दे ॥ १० ॥

नित्यदर्शनार्थं विश्वासनार्थं च ॥ ११ ॥

वे उपाय करे जिससे नित्य दीख जाय और विश्वास बढ़े ॥ ११ ॥

नित्यदर्शनार्थं विश्वासनार्थं चेति प्रतिक्षणं दर्शनार्थं स्वयं प्रयतेतेति वक्ष्यमाणेन संबन्धः ॥ ११ ॥

पुरुषको वे प्रयत्न करने चाहियें जिनसे उसे रोज देख ले और प्रतिदिन उसका अपने ऊपर विश्वास बढ़े । इन दोनों बातोंका नीचेके वाक्योंके साथ संबन्ध है । वे उसके रोजके दीख पड़नेके तथा विश्वासक कार्य्य हैं ॥ ११ ॥

सुवर्णकारमणिकारवैकटिकनीलीकुसुम्भरञ्जकादिषु च कामार्थिन्यां सहात्मनो वश्यैश्चैषां तत्संपादने स्वयं प्रयतेत ॥ १२ ॥

सुवर्णकार, रत्नकार, वैकटिक, नीली और कुसुंभके रंगने आदिके विषयमें उसके अर्थ काम हों तो अपने हाथके सुवर्णकारादिकोंसे अपने आप करा दे १२

वैकटिको रत्नानां परिशोधकः । नीलीरञ्जककुसुम्भरञ्जकौ प्रतीतौ । आदिशब्दात्त्वष्टृकांस्यकारादयः । तेषां कामार्थिन्यां सत्यामात्मवश्यैर्विधेयैः सुवर्णकारादिभिस्तत्संपादने सुवर्णादिकर्मसंपादने तदनुष्ठानं निरस्य सुवर्णादिकर्म स्वयमधिष्ठाय कारयेत् ॥ १२ ॥

रत्नोंके परिशोधकको वैकटिक कहते हैं । नीलगर और रंगरेजा तो प्रसिद्ध ही हैं । आदिशब्दसे बढ़ई और कसेरे आदिका ग्रहण होता है । यदि इनसे काम व अर्थ हो तो अपने हाथके सुनार आदिकोंसे उस कार्य्यके संपादन करनेमें उसके खड़े होनेको रोककर आप खड़ा होकर कराये ॥ १२ ॥

तदनुष्ठाननिरतस्य लोकविदितो दीर्घकालं संदर्शन-योगः ॥ १३ ॥

इस कामके करनेमें लगे हुएका जाहिरा बहुत देरतक देखनेभालनेका मौका मिल जाता है ॥ १३ ॥

संदर्शनयोगो न प्रच्छन्नयोगः स्यात् । अपि तु दीर्घकालं लोकस्य विदितः । अन्यथा लोकस्तं दृष्ट्वा सहसा विकल्पयति ॥ १३ ॥

इन कामोंके वहाने जो देखना होता है वह छिपकर नहीं होता; न छिप- नेकी आवश्यकता ही है, किन्तु बहुत समयतक सबके जाहिरा हो जाता है विना ऐसा किये दुनियाँ उसे एकदम देखकर संदेह करने लगेगी ॥ १३ ॥

तस्मिंश्चान्येषामपि कर्मणामनुसन्धानम् ॥ १४ ॥

जबतक वे पूरे न हो पायें कि दूसरे भी काम शुरू कर दे ॥ १४ ॥

तस्मिन्निति कर्मण्यनुष्ठीयमानेऽसमाप्त एवान्येषां कर्मणामनुसंधानं कर्तव्यं मा भूद्दर्शनविच्छेद इति ॥ १४ ॥

जो काम चल रहा हो उसके विना ही पूरे हुए ही दूसरे कामोंका भी अनुसंधान कर देना चाहिये; कहीं ऐसा न हो कि काम पूरा होते ही देख- नेका सहारा जाता रहे ॥ १४ ॥

येन कर्मणा द्रव्येण कौशलेन चार्थिनी स्यात्तस्य प्रयोग-मुत्पत्तिमागममुपायं विज्ञानं चात्मायत्तं दर्शयेत् ॥ १५ ॥

उसे जो कार्य्य, द्रव्य और कौशल चाहे, उसके प्रयोग, उत्पत्ति, आगम, उपाय और विज्ञानको अपने अधीन दिखा दे ॥ १५ ॥

येनेति कर्मणां पुष्कलेन ॥ १५ ॥

उसे जिस कर्मसमुदायकी आवश्यकता हो, जिस चीजकी जरूरत हो एवम् जिस कौशलको सीखना चाहे उस कर्मका प्रयोग, उस वस्तुको पैदा कर देना, उसी कलाकौशलके पूरे शास्त्रकी जानकारी और उपाय करना अपने अधीन बता दे ॥ १५ ॥

पूर्वप्रवृत्तेषु लोकचरितेषु द्रव्यगुणपरीक्षासु च तया तत्परिजनेन च सह विवादः ॥ १६ ॥

पुराने चालचलन व वस्तुके गुणोंकी परीक्षाओंमें उसके और उसके परि- जनोंके साथ वादविवाद करे ॥ १६ ॥

जो बातें एवम् रीतिरिवाज पुराने चले आते हों उनके ऊपर एवम् चीजके गुणोंकी परीक्षाओंमें उसके व उसके नौकरोंके साथ वादविवाद करनेसे तबीयत खुलती है ॥ १६ ॥

तत्र निर्दिष्टानि पणितानि तेष्वेनां प्राश्निकत्वेन योजयेत् ॥ १७ ॥

उस विवादमें जो कीमत बताई जाय तो उसके पूछनेके विषयमें इसे लगा दे ॥ १७ ॥

तथा तु विवदमानोऽत्यन्ताद्भुतमिति ब्रूयादिति परिचयकारणानि ॥ १८ ॥

उसके साथ विवाद करता हुआ तो उसे अत्यन्त अद्भुत बताये । ये परिचयके कारण हैं ॥ १८ ॥

इति परिचयकारणानि त्रयश्चत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ १८ ॥

यह बाह्य और आभ्यन्तर परिचयके कारणोंका बतानेवाला ४३ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ १८ ॥

संकेतके कुछ ढंग ।

नागर नागरियोंमें प्रायः संकेतसे अधिक कार्य्य लिया जाता है इस कारण संकेतसे समझने समझानेका ढंग बताते हैं । कामशास्त्रके ग्रन्थोंमें प्रायः छः तरहका संकेत रखा है उसे यहीं बताते हैं—

भाषासंकेत ।

पहिली इशारेबाजी बताते हैं कि पुराने नागर जिस प्रकार समझ समझा लिया करते थे, आज भी भद्रलोग इनका व्यवहार करते हैं । पुरुषको फल तथा स्त्रीको पुष्पके नामसे बोलते हैं । कुलमें अंकुर, ब्राह्मणमें दाडिम, क्षत्रीमें पनस, वैश्यमें कदलीफल, शूद्रमें आम, राजपुत्रमें दूसरा चाँद, भूपतिमें घटा, दुष्कुलमें कालपुष्प, सामन्तके पुत्रमें सर, युवामें मध्याह्न, बच्चेमें अपक्व, वृद्धमें पक्व, ब्राह्मणीमें कुन्दपुष्प, राजपुत्रीमें मालती, वैश्यपुत्रीमें मल्लिका, शूद्रपुत्रीमें कैरव, वणिक्पुत्रमें सरोज, मंत्रीकी लड़कीमें उत्पल, कामीमें भ्रमर, कामिनीमें चूतमंजरी, बुलानेमें अंकुश, रोकनेमें दीवार, रातमें ढका चाँद, दिनमें सूर्य्यप्रकाश, पहिले पहरमें शंख, दूसरेमें महाशंख, तीसरेमें पद्म, चौथेमें महापद्म, पंचममें राम, छठेमें विराम, सातवेंमें प्रवर, आठवें पहरमें प्रत्यूषका संकेत होता है । यानी नागरोंकी बातोंमें पुरुष आदिकोंको फल आदिसे

बोला जाता है । इनसे बोलनेकी जो रीति है उसे दिखाते हैं । उदाहरण—ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा बीचमें कामिनी दीवानकी लड़की खड़ी थी, जिसे चारोंवर्णोंके बालकोंके बीचमें खड़े हुए राजकुमारने देखा, इस बातको सांकेतिक भाषामें कहना हो तो इस प्रकार कहा जाता है कि—कुन्द, मालती, मल्लिका और कैरवके बीचमें उत्पल बागकी चूतमंजरी बना हुआ निराली बहार दिखा रहा था। जिसे, दाडिम, पनस, केला और आमके बीचमें चमकते हुए बालचाँदने देखा, उत्पलके आसपास भौंरे भिनभिना रहे थे । इसी तरह दूसरी २ बातें भी समझना चाहिये ।

अंगसंकेत ।

कुशल प्रश्नके उत्तर प्रत्युत्तरमें कान छूना चाहिये, चाह काम दिखानेमें शिरपर हाथ एवम् प्रेम है इस बातको कहनेमें सीनेपर हाथ, सम्मान सूचन करनेमें शिरपर हाथ रखना चाहिये । अवसरके पूछनेमें मध्यमाको तर्जनी उँगलीपर चढ़ाना चाहिये । अवसरके उत्तरकी 'हां' में हाथ जोड़ने चाहिये । बुलानेके लिये मुट्ठी मारकर हाथ जोड़ना। कनिष्ठा (छोटी) अँगुलीके पहिले पोरुएसे लेकर अँगूठेके आखिरी पोरुए तक पन्द्रह होते हैं । ये प्रतिपदासे लेकर पन्द्रहों तिथियोंका संकेत हो जाता है । अंगूठासे पूर्व, उसके पासकी अंगुलीसे दक्षिण, बिचलीसे पश्चिम तथा छोटी उँगलीके पासकी अंगुलीसे उत्तरका संकेत हो जाता है । बायाँ हाथ शुक्लपक्ष तथा दाहिने हाथकी ओर संकेतसे कृष्णपक्ष समझना चाहिये । उसका उपयोग गलीमें घूमते हुए नागरके लिये होता है, वह सामने खड़ी देखकर अपने अंगोंसे इन बातोंकी सूचना देता और लेता है । आज भी ये इशारे अच्छी तरह प्रचलित हैं ।

पुष्पमालाका संकेत ।

अनुरागमें लाल, विरागमें गेरुआ, स्नेहके अभावमें काले डोरासे गुँथी हुई मालाका व्यवहार करना चाहिये । यह माननीय पुरुषोंके साथ गलेमें माला डालते हुए चलता है, इससे उसे प्रेम, अप्रेम आदिका पता चल जाता है तथा दिखानेमें भी इसका प्रयोग होता है । यह भेजीभाजी भी जाया करती है ।

ताम्बूल संकेत ।

कौशल, अंकुश, कन्दर्प, पर्य्यंक और चतुरस्र, पांचप्रकारका पान लगाना होता है । पानके डाठुरे आदि निकालकर जो पान लगाया जाता है उसे

कौशल कहते हैं। अंकुशाकार अंकुश, बाणाकार कन्दर्प, गोलकाकार पर्य्यङ्क एवम् चतुःकोणाकार चतुरस्र होता है। स्नेहकी अधिकतामें कौशल, आपसमें अंकुश, मदनकी व्यथामें कन्दर्प और संभोगके संकेतमें पलंग नामक पानका बीड़ा दिया जाता है। कभी समय नहीं कहनेमें चौकोन, अप्रीति दिखानेमें सुपारीरहित पान एवम् प्रेममें सुपारी इलायची सहित पान देना चाहिये। विच्छेदमें उलटा सीधा लगाकर काले धागेसे बाँधे। संयोगके संकेतमें एक पानके मुखको दूसरे पानसे मिला दे एवम् लाल धागेसे बाँध दे। अत्यन्त प्रेममें टुकड़े २ जोड़ना, बीचमें केशर तथा बाहिरसें चन्दनका लेप करना चाहिये। जिन लोगोंमें आगन्तुकोंके लिये घरसे पान बनकर आते हैं. उन लोगोंमें तथा चतुर नागरोंमें इसका व्यवहार देखा जाता है। कभी २ तो पानमें आकारसूचक दूसरी चीजें भी चल जाती हैं।

वस्त्रसंकेत।

गर यह दिखाना हो कि कामसे जर्जर हूं तो छिद्रसमेत वस्त्र रखना चाहिये, अनुरागमें लाल तथा वैराग्यमें भगवा वस्त्र रखना चाहिये। वियोगको कहती बार छिन्न वस्त्र तथा मिलनेमें सूतेके साथ बन्धन, कामदशा बतानेमें गाँठें तथा एकके स्नेहमें एक तथा अनेकोंके स्नेहमें अनेक होनी चाहियें। यह उस हालतमें चलता है जब कि चिरप्रणयी एक हवेलीपर खड़ा हुआ है तो एक मिलनेका समय पूछ रहा है। उस समय ये चलते हैं। कभी २ तो इसका प्रयोग बड़ी २ जगहोंमें भी हो जाता है।

पोटली संकेत।

प्रेमकी सूचना देनेके लिये सुगन्धित वस्तु, सुपारी और खैरसार चलता है। अतिप्रेम बतानेके लिये छोटी इलायची, जातीफल और लवंग होती है। प्रेमके टूटनेमें प्रवाल, चिरकालकी संगतिमें प्रवाल जोड़ा, कामज्वरमें कटुद्रव्य तथा संगमके आशयमें मुनक्का चलती है। देह अर्पण करनेमें कपास, जीव-अर्पणमें जीरा, भयमें भिलावा, भयके अभावमें हरीतकीका संकेत करना चाहिये। मोमकी टिकिया बनाकर, उसपर पांचों अँगुलियोंके नाखूनके निशान करने चाहियें। उसपर लाल डोरा लपेटना चाहिये, उसे पोटली कहा करते हैं। मोंम कामकी दशासूचक तथा लालसूत्र अनुरागसूचक, एवम् पांचों अंगुलियोंका निशान कामदेवकी पांचों बाणोंकी मारका सूचक है।

अभियोग प्रकरण।

कृतपरिचयां दर्शितेङ्गिताकारां कन्यामिवोपायतो-

ऽभियुञ्जीतेति । प्रायेण तत्र सूक्ष्मा अभियोगाः । कन्या-नामसंप्रयुक्तत्वात् । इतरासु तानेव स्फुटमुपदध्यात् । संप्रयुक्तत्वात् ॥ १९ ॥

जिसके साथ परिचय कर लिया हो, जिसने ईशारे और आकार दिखा दिये हों उसे कन्याकी तरह उपायसे अभियुक्त कर ले । प्रायः करके इनमें सूक्ष्म अभियोग होते हैं, क्योंकि कन्याएँ संप्रयुक्त हुई तो होती नहीं; पर दूसरी नायिकाओंमें उन्हें स्फुट प्रयुक्त करे, क्योंकि वे तो हुई ही हैं ॥१९॥

........तेङ्गिताकारायाम् ॥ १९ ॥

जिससे परिचय हो जाय वह आँखों और मुखपर मुहब्बत लाकर इशारे करे । ऐसी परनारीको उसी तरह अपनाये जिसतरह कि कन्याको अपनाना बताया है । कन्याएँ मिलीझुली तो होती ही नहीं, इस कारण उनमें जो अभियोग होते हैं वे प्रायः बड़े ही सूक्ष्म होते हैं, किन्तु जो कन्याएँ नहीं होतीं वे खेलीखाई रहती हैं, इस कारण उनमें जो उपाय होते हैं वे स्फुट ही होते हैं ॥ १९ ॥

इशारोंपर एक दृष्टि ।

१ लाज करे, मुख फेरकर देखे, पैरसे जमीन कुचरे, स्थिर रहे, शरीर दिखाये, मन्दहास करे, देखते ही कटाक्ष करे, धीरे २ चले, चलते हुएके पीछे चले देखे, बातोंके बहाने ऊँचे प्रदेशको दिखा दे, उसके मित्रोंपर प्रेम करे, उसकी बातें पूछे कहे, कभी निगाह पड़नेपर सीना दिखा दे, अंगड़ाई तोड़े, जँभाई ले, विना साफसुथरे सामने नहीं आती, फूल आदि मागे, हाथसे हाथ मसले, बहानेसे घर आये, उसे देखते ही मुख और हाथ पावोंपर पसीना आजाय । कल्याणमल्लने इन्हें अनुरागिणीके लक्षणोंके नामसे दिया है पर विचार करके देखा जाय तो इनमेंसे अधिकांश 'इङ्गिताकार' में ही आगये हैं । पद्मश्रीजीने अयत्नसाध्य स्त्रियोंके कुछ इशारे बताये हैं उन्हें श्रीकल्याणमल्लजीने रताभिलापके चिह्नोंके नामसे दिया है पर वास्तवमें इन्हें भी इशारोंमें ही समझना चाहिये । कल्याणमल्ल बाहुमूल कहते हैं तो पद्मश्री इसके साथ काँख, उदर और कुचोंको देखे और दिखाये व अपने शरीरके वस्त्रोंको सँभाले । इसी तरह बालोंका पकड़ना कल्याणमल्लके यहां तथा पद्मश्रीके यहां बालोंका खोलना बाँधना अधिक है तथा आखोंसे पानी पद्मश्रीके यहां तथा कल्याणमल्लके यहां हाथ, मुखपर पसीना आना लिखा है । दाँतसे अपने होठको दबाये, कभी लजाये तो कभी लाज दूर करे, बालकको चूमे, अँगड़ाई जँभाई ले, गली रोके, हँसे, सखीका आलिङ्गन करे, प्यारी बोले, प्रत्युत्तर माँगे, खुलासा न बोले, मुखपर मन्दहास रहे, झूठी लज्जा करे, बहानेसे विलम्ब करे, सिर खुजाये । (यह तथा संकेत प्रचलित ग्रन्थोंसे ।)

संदर्शिताकारायां निर्भिन्नसद्भावायां समुपभोगव्यतिकरे तदीयान्युपयुञ्जीत ॥ २० ॥

जिसने आकार दिखा दिया हो, जिसका सद्भाव अपने प्रति प्रकट हो गया हो, उपभोगोंके व्यतिकरमें उसकी चीजोंका आप उपभोग करे ॥ २० ॥

निर्भिन्नसद्भावायामिति प्रकटितसंभृतभावायां सत्याम् । समुपभोगव्यतिकरे तदीयानीति नायिकावस्तूनि स्वयमुपयुञ्ज्यात्स्वानि च तामुपभोजयेत् ॥ २० ॥

जो अपने प्रति अपन भरे हुए भावोंको व्यक्त कर दे उस नायिकाकी चीजोंको आप भोग ले एवम् अपनी चीजोंको उसे भुगा दे । ये बातें उस समयकी हैं जब कि आपसकी इधर उधर होने लगे ॥ २० ॥

तत्र महार्हगन्धमुत्तरीयं कुसुमं स्यादङ्गुलीयकं च । तद्धस्तादगृहीतताम्बूलया गोष्ठीगमनोद्यतस्य केशहस्तपुष्पयाचनम् ॥ २१ ॥

इसमें महार्हगन्ध, उत्तरीय, कुसुम और अँगूठी स्वीकार करे । जब वह पान ले ले तो गोष्ठीमें जानेको उद्यत हो उसके शिरके फूल माँगे ॥ २१ ॥

तत्रेति परिवर्तमाने । महार्हगन्धमत्यन्तसुरभि । उत्तरीयं कुसुमं चात्मीयं स्यात्स्वीकुर्यादित्यर्थः । अंगुलीयकं च महार्हं स्यात् । तद्धस्तान्नायकहस्ताद्यदि तया ताम्बूलं गृहीतम् । गोष्ठीगमनोद्यतस्येति कर्तरि षष्ठी । केशहस्तः केशकलापः । तत्रत्यपुष्पयाचनम् । सिद्धकरमेतदिति ॥ २१ ॥

जब परिवर्तन होने लगे तो अत्यन्त सुगन्धित वस्तु, ऊपरके ओढ़नेका कपड़ा और फूल नायिकाके दिये हुए ले ले । अँगूठी बड़ी अच्छी होती है । जब वह अपने हाथका पान खा ले तो इसके बाद गोष्ठीमें जानेकी तयारीके समय उसके केशकलापके फूलोंको माँगे, कि मेरे लिये ये ही सिद्धि करनेवाले होंगे ॥ २१ ॥

तत्र महार्हगन्धं स्पृहणीयं स्वनखदशनपदचिह्नितं साकारं दद्यात् ॥ २२ ॥

इसमें श्रेष्ठ सुरभि व दूसरी इष्टवस्तु दे तो अपने नाखून व दाँतोंका निशान करके दे ॥ २२ ॥

स्वयं तु ददन्नायको यन्महार्हगन्धं स्पृहणीयं लोकस्य तदन्यहस्तेन यदा दद्या- त्तदा स्वनखदशनपदचिह्नितम् । यदा स्वहस्तेन तदा साकारम् । क्रियाविशेष- णमेतत् । एवं प्रकारद्वयेऽपि भावः सूचितो भवति ॥ २२ ॥

यदि नायक अपने हाथसे दे तो उस महासुरभि व लोककी इष्टवस्तुमें नाखून व दांतोंका निशान करके ही दे । जब अपने हाथसे दे तो साकार ही दे । साकार यह क्रियाका विशेषण है, इससे यह सिद्ध हो गया कि दोनों ही रीतियोंसे भाव सूचित होता है ॥ २२ ॥

अधिकैरधिकैश्चाभियोगैः साध्वसविच्छेदनम् ॥ २३ ॥

पहिले पहिलेसे उत्तर २ अधिक २ अभियोगोंको करके उसके डरको दूर करना चाहिये ॥ २३ ॥

अधिकैरधिकैः पूर्वपूर्वेभ्यः साध्वसविच्छेदनम् । प्रायेण परयोषितपरपुरुषेषु ससाध्वसा भवति ॥ २३ ॥

प्रायः परनारियाँ परपुरुषोंमें भयभीत ही हुआ करती हैं, इस कारण पूर्व २ से उत्तर २ अधिक अभियोग करने चाहियें ॥ २३ ॥

भीतरके अभियोग।

आन्तरानधिकृत्याह—

भीतरके अभियोगोंका अधिकार लेकर कहते हैं कि—

क्रमेण च विविक्तदेशे गमनमालिङ्गनं चुम्बनं ताम्बू- लस्य ग्राहणं दानान्ते द्रव्याणां परिवर्तनं गुह्यदेशाभि- मर्शनं चेत्यभियोगाः ॥ २४ ॥

क्रमशः एकान्तमें जाना, आलिंगन, चुम्बन, पानका देना, दानके अन्तमें द्रव्योंका परिवर्तन और उसके गुह्यदेशका स्पर्श ये अभियोग होने चाहियें ॥२४

क्रमेण चेति यदैकान्तेन गतसाध्वसा तदा विविक्तदेशगमनं यस्मिन्प्रच्छन्ने देशे तिष्ठति । तत्र चालिङ्गनादयः प्रयोक्तव्याः । गुह्यदेशाभिमर्शनं कक्षोरुमूल- विमर्दनम् । जघने उत्क्षिप्तकेन ॥ २४ ॥

जब यह जान जाय कि, मेरी ओरसे इसका भय निकल गया तो उसके पास अकेलेमें जाय, जिस गुपचुपकी जगह बैठी हो वहां आलिंगन आदि- कोंका प्रयोग करना चाहिये । वहां क्रमशः गुह्यदेश यानी काँख और उरुमू- लका मर्दन तथा उत्क्षिप्तकसे जघनका मर्दन करना चाहिये ॥ २४ ॥

न मिलनेकी जगह ।

अभियोगस्याविषयमाह—

जहां अभियोग न करना चाहिये उस जगहको बताते हैं, कि—

यत्र चैकाभियुक्ता न तत्रापरामभियुञ्जीत ॥ २५ ॥

जिस जगह एकसे मिल ल, उस जगह दूसरीसे न मिले ॥ २५ ॥

यत्र चेति गृहे । अपरामिति द्वितीयां नाभियुञ्जीत ॥ २५ ॥

जिस घरकी एक स्त्रीसे मिल ल या जिस घरमें एकसे मिल ले उस घरमें दूसरीके साथ न मिले ॥ २५ ॥

घरवाली रँगाली बुड्ढीको रँगना ।

तत्र या वृद्धानुभूतविषया प्रियोपग्रहैश्च तामुपगृह्णीयात् ॥ २६ ॥

वहां जो वृद्धा खेलीखाई हो उसे कुछ दे लेकर अनुकूल बना ले ॥२६॥

प्रियोपग्रहैश्चेति प्रियं यदा स्वसुखकारणं तदेवोपग्रहः । उपगृह्यते अनेनेति । उपगृह्य स्वीकृत्योपन्यस्यात् ॥ २६ ॥

जिस घरमें लाकर अपनेको मिलना हो उस घरमें कोई ऐसी बुड्ढी हो जिसने जवानीमें खूब व्यभिचार किया हो; उसे सुख देनेवाली वस्तुओंको देकर अपनी ले, क्योंकि वही उसके अनुकूल बनानेका साधन है । इसीसे काबूमें आती है । उसे अपना कर उसीके घर इन धन्दोंको करे ॥ २६ ॥

व्यभिचारके स्थानोंपर साहित्य ।

विश्वनाथजीने व्याभिचारके स्थान गिनाये हैं । वे कामसूत्रके बताये स्थानोंसे अधिक हैं, इस कारण उन्हें भी यहां दिखाते हैं कि—

सा०द०—"क्षेत्रं वाटी भग्नदेवालयो दूतीगृहं वनम् ।
मालयं च श्मशानं च नद्यादीनां तटी तथा ।
एवं कृताभिसाराणां पुंश्चलीनां विनोदने ।
स्थानान्यष्टौ तथा ध्वान्तच्छन्ने कुत्रचिदाशयः ।"

अरहर व ज्वार आदिके बड़े २ सस्योंवाले खेत, घरकी बगीची, फूटे व सूने मंदिर, दूतियोंका घर, माली आदिके घर, श्मशान, नदी गुहा आदि एकान्तके स्थान और वन ये व्यभिचारिणीयोंके व्यभिचारके स्थान होते हैं। इन सब स्थानोंमें दूतियोंके घरोंमें सुगमता पड़ती है, फिर भी उन दूतियोंके घर,

जिनकी कि जवानी ढल चुकी हो । इसी कारण कामसूत्रकारने दूतियोंका घर लिया है । दूतियोंके विषयमें इतना तो अवश्य कहूंगा कि इस कर्ममें प्रायः बड़ी २ ऊपरकी सरीफें देखी जाती हैं । सरकारका इतना कड़ा प्रबन्ध है तो भी कुट्टनखाने चलते ही हैं । कभी २ तो इनमें बड़े २ रोमहर्षण काण्ड हो जाते हैं । अपना तो जहांतक विचार पहुँचता है इनके विषयमें यही निश्चय है कि शहरोंमें कुट्टनखाने एवम् गावोंमें खेत इस प्रयोगमें आते हैं । अनेकों स्त्रियाँ खसमोंके लिये भी कुट्टिनीका कृत्य करती देखी सुनी जाती हैं । प्यारोंको प्रसन्न करनेवाली कुट्टिनियोंकी तो आज संख्या या फैसन मालूम कर लेना भी कठिन है । जो व्यवस्थित मंदिर हैं वे कदापि कुट्टन-खाने नहीं हो सकते । परकीय स्त्रीपुरुष उन्हीं मंदिरोंमें संयुक्त हो सकते हैं जिनमें कि सुनहट रहती है । दूतीघर नहीं तो निर्जनस्थान या वन भी संकेतस्थान होते हैं कि—

का०प्र०—" पश्य निश्चलनिस्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका ।
निरमलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव ॥ "

देख ! कमलिनियोंके पत्रोंके बीच बलाका निश्चल व निष्पंद विराज रही है; जिस प्रकार कि मरकतके निर्मल भाजनपर शंखकी शुक्ति विराजा करती है । इसमें निश्चय निष्पन्द कहनेसे उसने एकान्त बता दिया है । नदीके किनारे भी एकान्तके संकेतस्थल होते हैं, साहित्यमें इसका भी व्यवहार किया है कि—

का०प्र०—" उपपरिसरं गोदावर्य्याः परित्यजताध्वगाः ।
सरणिमपरो मार्गस्तावद् भवद्भिरवेक्ष्यताम् ॥
इह हि विहितो रक्ताशोकः कयाऽपि हताशया ।
चरणनलिनन्यासोदञ्चन्नवांकुरकञ्चुकः ॥ "

ऐ राहगीरो ! गोदावरीके किरानेको छोड़कर दूसरे रास्तेको देख लो, क्योंकि वहां किसी हताशाने अशोकके ठोकर मार दी जिससे उसपर अंकुर आ गये हैं । यहां नदी किनारे गई है पर उसे मिला नहीं है, इस कारण पैरकी ठोकर मारी है ॥

ध्यान देने योग्य बात ।

श्लोकावत्र भवतः—

अन्यत्र दृष्टसंचारस्तद्भर्ता यत्र नायकः ।
न तत्र योषितं कांचित्सुप्रापामपि लङ्घयेत् ॥ २७ ॥

इस विषयमें दो श्लोक हैं कि-जिसके पतिने जहां दूसरी किसी स्त्रीका व्यभिचार देखा हो वहां किसी सुलभ स्त्रीसे भी न मिले ॥ २७ ॥

यत्रेति यस्मिन्गृहे नायिकाया भर्ता अन्यस्यां योषिति दृष्टसंचारो दृष्टाभिगमो न तत्र गृहे सुप्रापामपि सुलभामपि लंघयेदधिगच्छेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

जिस घरमें नायिकाके पतिने किसी दूसरी स्त्रीका व्यभिचार देखा व सुना हो उस घरमें किसी सुलभा स्त्रीके साथ भी न मिले ॥ २७ ॥

न मिलने योग्य स्त्रियें ।

शङ्कितां रक्षितां भीतां सश्वश्रूकां च योषितम्
न तर्कयेत मेधावी जानन्प्रत्ययमात्मनः ॥ २८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे परिचयकारणान्यभियोगाः द्वितीयोऽध्यायः ।

शंकित, रक्षित, भीत और सासवाली स्त्रीको कभी न चाहे; यदि अपना विश्वास हो तो ॥ २८ ॥

शङ्कितामभियोक्तरि जाताशङ्काम् । रक्षितां शस्त्रिभिः । भीतां पत्युः । सश्वश्रूकां श्वश्र्वधिष्ठितां न तर्कयेत । जानन्प्रत्ययमित्यहमत्राशक्त इति निश्चयमगच्छन् । इत्यभियोगाश्चतुश्चत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ २८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे परिचयकारणान्यभियोगा द्वितीयोऽध्यायः ।

जिसकी उपाय करनेवालेमें शंका हो, जिसे रखानेके लिये सशस्त्र व्यक्ति हों, जो पतिसे डरती हो, जिसकी सास सदा जिसके पास रहती हो ऐसीकी ओर कभी हाथ न डाले, यदि अपना निश्चय हो कि मैं इसमें असमर्थ हूं ॥ यह अभियोग नामक ४४ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ २८ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके द्वितीय अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

भावपरीक्षा प्रकरण ।

सत्यप्यभियोगे धीराः प्रगल्भपरीक्षिण्यो याः स्त्रियस्ता न निर्भिन्नसद्भावास्त-तश्च न तासु विशेषाभियोग इति भावपरीक्षोच्यते—

अभियोग होनेपर भी धीर गहरी परीक्षा करनेवाली जो स्त्रियाँ होती हैं अपने सद्भावको जलदी प्रकट नहीं करतीं, इस कारण उनमें विशेष अभि-योग होना चाहिये, इस कारण भावपरीक्षा कहते हैं—

अभियोग करते हुए ही देखे ।

अभियुञ्जानो योषितः प्रवृत्तिं परीक्षेत । तथा भावः परीक्षितो भवति । अभियोगांश्च प्रतिगृह्णीयात् ॥ १ ॥

अभियोग करता हुआ स्त्रीकी प्रवृत्तिकी परीक्षा करे, जिससे भावकी परीक्षा हो जाय । वह जो अभियोग करे उनका उत्तर दे ॥ १ ॥

प्रवृत्तिं चेष्टां परीक्षेत । अनया हि परीक्षितया भावः परीक्षितो भवति । तत्कार्यत्वात् ॥ १ ॥

प्रवृत्ति यानी चेष्टाको पहिचाने । चेष्टाकी परीक्षा कर लेनेपर भावकी परीक्षा हो जायगी, क्योंकि भाव तो चेष्टाका कार्य्य है ॥ १ ॥

भाव न दिखानेवाली दूतीसे ।

कथं साधयेत्याह—

वह कैसे सिद्ध करनी चाहिये ? यह बताते हैं कि—

मन्त्रमवृण्वानां दूत्यैनां साधयेत् ॥ २ ॥

मंत्र न प्रकट करनेवाली चतुराको दूतीसे सिद्ध करे ॥ २ ॥

मन्त्रमवृण्वानामिति सांप्रयोगिकं भावमप्रकाशयन्तीं दूत्या साधयेत् । प्रग-ल्भत्वात् ॥ २ ॥

जो संप्रयोगके भावोंको प्रकट न करे उसे दूतीसे सिद्ध करे, क्योंकि प्रगल्भा स्त्री दूतीके द्वारा ही हाथ आती है ॥ २ ॥

दुविधामें फँसी ।

अप्रतिगृह्याभियोगं पुनरपि संसृज्यमानां द्विधाभूतमा-नसां विद्यात् । तां क्रमेण साधयेत् ॥ ३ ॥

अभियोगोंको विना स्वीकार किये भी फिर संसर्ग की हुईको दुविधामें फँसी जाने, उसे क्रमसे सिद्ध करे ॥ ३ ॥

अप्रतिगृह्याभियोगं नायकेन क्रियमाणं प्रत्याख्याय पुनरपि कियन्तो दिवसान्स्थित्वा संसृज्यमानां नायकेन संसर्गं यातां द्विधाभूतमानसां विद्यात् । परीक्षणीयत्वात्किं कुर्यामहं न वेति तां क्रमेण साधयेत् ॥ ३ ॥

नायकके किये हुए अभियोगोंका प्रत्याख्यान करके फिर भी कुछ दिनों तक ठहरकर फिर भी नायकसे संसृष्ट हो तो उसे इस दुविधामें फँसी जाने, कि 'मैं करूं वा नहीं' वह परीक्षा करती है या वह परीक्षाके योग्य है, इस कारण उसे क्रमसे सिद्ध करे ॥ ३ ॥

जबरदस्तीवाली ।

अत्र विशेषमाह—

इस विषयमें जो विशेष है उसे बताते हैं कि—

अप्रतिगृह्याभियोगं सविशेषमलंकृता च पुनर्दृश्येत तथैव तमभिगच्छेच्च विविक्ते बलाद्ग्रहणीयां विद्यात् ॥४॥

जो अभियोगोंको विना ग्रहण किये भी फिर पहिलेसे अधिक सिंगरी दीखे तो उसी तरह उससे मिले। उसे एकान्तम जबरदस्तीसे करानेवाली समझे ॥

सविशेषमिति यथा पूर्वमलंक्रियमाणा अतः सविशेषमलंकृता पुनर्नायकेन दृश्येत तथैवाभिगच्छेत् [च] नायिकां विविक्ते स्थितां बलाद्गृह्णीयाद्धठाद्गृह्यां विद्यात् ॥ ४ ॥

जैसे पहिले सिंगरी रहती थी, इशारेबाजी किये पीछे जब नायककी दृष्टि आवे तो अधिक सिंगरी आये तो आप भी उसके सामने सिँगर करके ही जाय । उसको एकान्तमें खड़ीको जबरदस्तीसे करानेवाली समझे ॥ ४ ॥

अत्यन्त परिचयसे साध्य ।

बहूनपि विषहतेऽभियोगान्न च चिरेणापि प्रयच्छत्यात्मानं सा शुष्कप्रतिग्राहिणी परिचयविघटनसाध्या ॥ ५॥

जो बहुतसे भी अभियोगोंको सह जाय और इसी तरह अधिककाल बीतनेपर भी अपने शरीरको न दे तो उसे सूखा अभियोग करनेवाली जाने, यह अत्यन्त परिचयसे सिद्ध की जा सकती है ॥ ५ ॥

धीरत्वाद्बहूनपि विषहते ये ये क्रियन्ते । न च चिरेणापीति—बहुभिरपि दिवसैः। शुष्कप्रतिग्राहिणीत्यर्थशून्यानभियोगान्प्रतिग्रहीतुं शीलमस्याः । अतिपरीक्षणीयत्वात् । परिचयविघटनसाध्येति परिचयापयनसाध्या ॥ ५ ॥

जो स्त्री इतनी धीर हो, कि अपने और दूसरेके सभी अभियोगोंको सह जाय पर अनेक दिनोंके बीत जानेपर भी अपनेको न दे तो जान जाय कि 'यह अर्थशून्य ही अभियोगोंको ग्रहण करती है यह अत्यन्त परीक्षा चाहती है' इसकी इस बातको अतिपरिचयसे दूर करके ही सिद्ध की जा सकती है ॥५॥

मनुष्यके चित्तकी अनित्यता ।

कथं तदपनयनात्सिध्यतीत्याह—

उसके दूर करनेपर कैसे सिद्ध हो सकेगी इस बातको बताते हैं कि—

मनुष्यजातेश्चित्तानित्यत्वात् ॥ ६ ॥

मनुष्यजातिका चित्त अनित्य है ॥ ६ ॥

मनुष्यजातेरिति तच्चित्ताभिधानम् । चित्तानित्यत्वादिति मनसश्चलत्वात् । यतो विच्छिन्ने परिचये पुनः स्वयं संधत्ते ॥ ६ ॥

मनुष्यजातिमात्रका चित्त अनित्य यानी चंचल होनेके कारण, एक बात पर स्थिर नहीं रहता है, इस कारण परिचयके टूट जानेपर भी फिर स्वयम् परिचय कर लेती है ॥ ६ ॥

चित्तकी चंचलतापर दृष्टान्त ।

कामसूत्रप्रणेता ही चित्तको चंचल मानते हों यह बात नहीं है, किन्तु सभी शास्त्रकारोंने चित्तको चंचल माना है। योगशास्त्र तो चित्तकी चंचलताको मिटानेके लिये ही प्रवृत्त हुआ है। बाकीसे सभी शास्त्रोंका भी यही कार्य्य रहा है, कि चित्तको सावधान करें । जिन व्यक्तियोंने जिन कर्मोंको नरकका साधन समझकर कभी स्वीकार नहीं किया कोई दिन ऐसा आया है कि वे भी उसके लिये लालायित देखे गये हैं, अतः इस मनका कभी विश्वास न करना चाहिये। केवल मनुष्योंने ही चित्तको चंचल समझा हो यह बात नहीं है, किन्तु देवता भी इसे चल ही समझते हैं, वह भी यहां तक कि इन्द्र जैसे देवराज अगस्त्य जैसे महात्माका भी विश्वास नहीं करते । एकबार महर्षि अगस्त्यजीने इन्द्रके लिये, देनेके विचारसे हवि तयार की तथा तयार होनेपर उसे इन्द्रके बदले मरुतोंको देना चाहा, इसपर इन्द्र आकर दुःख प्रकट करने लगा कि—

"न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभिसञ्चरेण्यमुताधीतं विनश्यति ॥"

जब मेरे लिये तयार की हुई वस्तु ही मुझे नहीं मिल रही है तो फिर भी मुझे मिल जायगी, इस बातको कौन जानता है, क्योंकि चित्त चंचल होता है। बहुत संभव है कि यह भी विचार टल जाय। चंचल चित्तका क्या ठिकाना है, क्यासे क्या कर डाले। महात्मा विश्वामित्रको मेनकाका कामी तथा बिल्वमंगलसे कामी सूरदास सरीखे महात्मा बन जाते हैं। इसी चित्तने बड़ी २ सदाचारिणियोंको कंजरीकी सूरतमें एवम् कंजरियोंको तपस्विनियोंकी सूरतमें दिखा दिया है, इसी कारण सन्तलोग इस पापी मनका कभी विश्वास नहीं करते। यही कारण है कि प्रोषितपतिकाको सदा सासुसुसरोंके पासमें रहनेके लिये कहा है। किसीके भी पीछे लगा जाय रातादिनका पीछा करना बुरा होता है फिर स्त्रियोंके विषयमें तो बात ही क्या है। जो व्यभिचारिणी होती हैं उनका तो यह हाल ही है कि "सालावृकाणां हृदयान्येता" उनके हृदय तो भेड़ियाके जिगर ही समझो, रही साधारण स्त्रियोंकी बात, उनके लिये भी यही बात है कि—

"रहो नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
तेन नारद नारीणां सतित्वमुपजायते ॥"

कुछ ऐसी भी हैं जो भूमण्डलका भूषण हैं। और २ देशोंसे भारतमें अब भी महाराजा चापकी महारानी जैसी निकल सकती हैं। पर ज्यों २ भारत अपनी मर्य्यादासे हटता जाता है चारित्र्य भी गिरते ही जाते हैं।

चतुर दूती योग्य ।

अभियुक्तापि परिहरति, न च संसृज्यते । न च प्रत्याचष्टे । तस्मिन्नात्मनि च गौरवाभिमानात् । सातिपरिचयात्कृच्छ्रसाध्या । मर्मज्ञया दूत्या तां साधयेत् ॥ ७ ॥

मिली हुई भी छोड़ देती है संसर्ग नहीं करती प्रत्याख्यान भी नहीं करती वह उसमें और अपनेमें दोनोंमें गौरव मानती है वह अत्यन्त परिचय होनेपर तकलीफसे मिलती ह। उसे चतुर दूतीसे सिद्ध करे ॥ ७ ॥

---

१ इस वाक्यका यही तात्पर्य्य है कि—उपाय तो जहां तहां रहे, संसर्ग करके भी फिर नहीं मिलती, यह संसर्ग नहीं करती इस वाक्यके योगसे पूर्वका तात्पर्य्य हो जाता है, इसी कारण फिर संसर्ग नहीं करती यह कहा नहीं तो 'मिलकर छोड़ देती है' इसी वाक्यसे पूर्वका तात्पर्य्य हल हो जाता, क्योंकि वह उसीके वश हैं।

अभियुक्तापि परिहरति । अभियोगं परिहृत्यापि काचित्संसर्गं यातापीत्याह । न च संसृज्यते इति तस्या आत्मन्यभिमानात् । न च प्रत्याचष्टे नायिका (यक) मेकान्तेन । तस्मिन्नायके च गौरवाभिमानात् । सातिपरिचयात्कृच्छ्रसाध्या तस्या ह्यतिधीराया अतिपरिचयेन गौरवाभिमानौ कृच्छ्रयन्स्फुटयति । मर्मज्ञया दूत्या साध्या । तद्वशत्वात् ॥ ७ ॥

कोई अभियोगको छोड़कर भी एवम् कोई संसर्गको पाई हुई भी फिर संसर्ग नहीं करती, क्योंकि उसे अपना गौरव आषित होने लगता है । एकदम उसका यह भी नहीं करती कि अपमान ही कर दे, क्योंकि वह नायकको भी अच्छा आदमी समझती है । यह बात निश्चित है कि जो अतिधीरा होती है वह अत्यन्तपरिचयसे गौरव और अभिमानोंको धीरे २ तोड़ती हुई स्फुट होती है ऐसी स्त्री मर्मज्ञा दूतीसे सिद्ध की जा सकती है ॥ ७ ॥

उपेक्षणीया ।

तत्र विशेषमाह—

इस विषयमें जो विशेष है उसे बताते हैं कि—

सा चेदभियुज्यमाना पारुष्येण प्रत्यादिशत्युपेक्ष्या ॥ ८ ॥

अपनेपर अभियोग करनेपर जो निठुरतासे उत्तर दे उसकी उपेक्षा कर दे॥

पारुष्येण प्रत्यादिशति निष्ठुरवाक्येण प्रत्याचष्टे । उपेक्षिताभियुञ्जीत ॥ ८ ॥

जो अपना निराकरण कठोर वाक्योंसे करे, उसपर उपेक्षाकी दृष्टिसे उपाय करे ॥ ८ ॥

इसमें भी विशेष ।

अत्रापि विशेषमाह—

इस विषयमें भी जो विशेषता है उसे बताते हैं कि—

पुरुषयित्वापि तु प्रीतियोजिनीं साधयेत् ॥ ९ ॥

जो कठोरता करके भी प्रीति जोड़ना चाहे उसे फिर सिद्ध कर ॥ ९ ॥

परुषमुक्त्वापि प्रीतियोजिनीं प्रीतियोजनशीलां साधयेत्पुनरभियुञ्जीत । तस्या जातविप्रतीसारत्वात् ॥ ९ ॥

जिसका ऐसा स्वभाव हो, कि पहिले कठोर बोले और पीछे प्रेम जोड़े, उसे फिर पानेके लिये उपाय करे, क्योंकि उसका वह विश्वासपात्र तो बन ही चुका है ॥ ९ ॥

सहनसे सिद्ध होनेवाली।

कारणात्संस्पर्शनं सहते नावबुध्यते नाम द्विधाभूत-मानसा सातत्येन क्षान्त्या वा साध्या ॥ १० ॥

किसी कारणसे स्पर्शनको इस तरह सहती हो मानो कि जानती ही नहीं; दुविधामें फँसी हुई वह, निरन्तर सहनसे सिद्ध होती है ॥ १० ॥

कारणादिति कुतश्चिन्निमित्तात्संस्पर्शनमभियोगं सहते । न शुष्कप्रतिग्राहिणीत्यर्थः । नावबुध्यते नामेति नायकाभिप्रायमजानतीव संस्पर्शनं सहते सैवंभूता द्विधाभूतमानसा परीक्षणीयत्वात्सातत्येन क्षान्त्या साध्येति । अविच्छेदेन संस्पर्शस्य क्षमणं कार्यमित्यर्थः ॥ १० ॥

किसी कार्य्यवश या किसी बहाने छूने व अभियोगोंको सह लेती है वह सूखे ग्रहण करनेवाली है । जो नायकके अभिप्रायको न जानती हुईकी तरह स्पर्श व अभियोगोंको सहती है उसे दुविधामें फँसी हुई समझनी चाहिये वह चिरकालतक परीक्षाके योग्य है या वह भी किसीको जाच लेना चाहती है । उसे निरन्तर शान्तिसे सिद्ध कर ले यानी निरन्तर स्पर्श वा अभियोग सहन कराना चाहिये अर्थात् उपायोंसे बाज न आना चाहिये ॥ १० ॥

अधिककांक्षिणीकी पहिचान ।

समीपे शयानायाः सुप्तो नाम करमुपरि विन्यसेत् । सापि सुप्तेवोपेक्षते । जाग्रती त्वपनुदेद्भूयोऽभियोगा-कांक्षिणी ॥ ११ ॥

समीपमें सोती हुईसीके ऊपर, सोतेहुएकी तरह ऊपर हाथ रखे । वह भी सोती हुईकी तहर उपेक्षा कर देगी । जागती हुई तो अधिक अभियोग चाहनेवाली उसे हटा देगी ॥ ११ ॥

समीपे शयानाया आन्तराभियोगेन प्रवृत्तिं परीक्षेत । सुप्तो नामेति कृतकमपदिश्यापनयति । किमर्थमित्याह—भूयोऽभियोगाकांक्षिणीति । अन्यथा किं सुप्तेनैव न्यस्तः किं वाभियोगार्थं कृतकसुप्तेनेति संदेहः ॥ ११ ॥

पासमें सोती हुईकी चेष्टाकी परीक्षा, भीतरके अभियोगसे कर ले । पास सोती हुईके ऊपर जब सोता हुआ बनकर हाथ फेरता है तो जब वह सोता समझती है तो सह लेती है पर जब यह ध्यान होता है, कि बनावटी नींद

है और मुझे जगी जानता है तो हटा देती है, इस हटानेका मतलब अधिक अभियोग चाहना है। नहीं तो सोतेने डाला वा बनावटी नींदवालेने डाला, इस विषयमें संदेह ही रहेगा ॥ ११ ॥

एतेन पादस्योपरि पादन्यासो व्याख्यातः ॥ १२ ॥

इस कथनसे पादके ऊपर पाद रखना भी बता दिया ॥ १२ ॥

एतेन हस्तन्यासेन ॥ १२ ॥

इस हाथ रखनेके विधानसे पैरोंके रखनेका विधान भी बतला दिया ॥१२

सुप्तालिङ्गन ।

तस्मिन्प्रसृते भूयः सुप्तसंश्लेषणमुपक्रमेत् ॥ १३ ॥

निर्द्वन्द हाथ, पैर रखने लगनेपर, सुप्त आलिंगन प्रारंभ करे ॥ १३ ॥

तस्मिन्निति हस्तन्यासे पादन्यासे च। प्रसृते निबन्धनत्वेन प्रवृत्ते। सुप्तसंश्लेषणमिति—कृतकसुप्ताया आलिङ्गनमेवोपक्रमेण (त) चुम्बनादिकम् ॥ १३॥

जब आनन्दसे विना किसी हिचकिचाटके साथ हाथ पैर रखने लग जाय तो वह बनावटी नींद लेती हुईका आलिंगन करे एवम् क्रमशः चुम्बनादिक करे ॥ १३ ॥

प्रगल्भा ।

तदसहमानामुत्थितां द्वितीयेऽहनि प्रकृतिवर्तिनीमभियोगार्थिनीं विद्यात्। अदृश्यमानां तु दूतीसाध्याम् १४

उसको न सहकर उठी हुए दूसरे दिन जैसीकी तैसीको अभियोग चाहनेवाली जाने एवम् जो प्रकृतिस्थ न दीखे तो दूतीसे सिद्ध करे ॥ १४ ॥

तदिति संश्लेषणम्। उत्थितां शयनात्। प्रकृतिवर्तिनीमकुपिताम्। अभियोगार्थिनीं विद्यात्।'दृश्यमाना पुनरभियुञ्जीतेत्यर्थः। अस्या अप्रगल्भत्वात्। अदृश्यमानान्तु प्रकृतिवर्तिनीं दूतीसाध्यां [विद्यात्] तद्विषयत्वात् ॥ १४ ॥

यदि आलिंगनको न सहकर शयनसे खड़ी हो जाय पर दूसरे दिन शान्त दीखे नाराज न दीखे तो जान ले कि अभियोग चाहती है, इस कारण फिर अभियोग करे, उसे जान ले कि यह प्रगल्भा है। जो ऐसी न दीखे दूसरे दिन भी तनी मालूम हो तो दूतीसे सिद्ध करे, क्योंकि ऐसे स्थल दूतियोंके ही हैं ॥१४

चिरमदृष्टापि प्रकृतिस्थैव संसृज्यते कृतलक्षणां तां दर्शिताकारामुपक्रमेत् ॥ १५ ॥

बहुतदिनोंमें देखनेके बाद भी प्रकृतिस्थ ही संसर्ग करती है । लक्षण करन और आकार दिखानेके बाद फिर उसे अभियोग करे ॥ १५ ॥

यदा तु तदसहमानोत्थिता चिरं बहून्दिवसान्दृष्टा सती पुनरपि प्रकृतिस्थैवाकुपिता संसृज्यते संसर्गं करोतीति यद्यप्येवं तथापि कृतलक्षणां तामिति जातावसरां दर्शिताकारामुपक्रमेताभियुञ्जीत । तस्या अतिशयेनाप्रगल्भत्वात् ॥ १९ ॥

वह विना सहे उठी हुई नायिका तो बहुत दिनोंके बाद देखनेपर प्रकृतिस्थ शान्तभावसे ही संसर्ग करती है । यदि यह बात हो तो भी उसका मौका देख, हाव भाव दिखानेपर ही मिले, क्योंकि वह अत्यन्त चण्डूल है १५

चाहनेवाली ।

अनभियुक्ताप्याकारयति । विविक्ते चात्मानं दर्शयति । सवेपथुगद्गदं वदति । स्विन्नकरचरणाङ्गुलिः स्विन्नमुखी च भवति । शिरःपीडने संवाहने चोर्वोरात्मानं नायके नियोजयति ॥ १६ ॥

विना अभियोग किये भी भावसूचक आकार दिखाती है तथा एकान्तमें अपनेको दिखाती है । बोलती है तो कंपके साथ गद्गद बोलती है । हाथ पैरों और मुँहपर पसीना आ जाता है, शिरके दबाने एवम् पैरोंके मसलनेमें अपनेको नायकके निमित्त लगा देती है ॥ १६ ॥

अभियुक्तेति । अभियुक्ता तावद्भावसूचकमाकारं दर्शयत्येव । तत्र च यदि वदति सवेपथु सगद्गदम् । स्विन्नकरचरणांगुलिः स्विन्नमुखी च भवत्येकान्तेनाहितभावत्वात् ॥ १६ ॥

विना मिली हो चाहें मिली हो, अपने भावको बतानेवाले मुख और आखोंके आकारको दिखाती है एवम् एकान्तमें अपने शरीरके गुप्तअंगोंको भी दिखा देती है । वहां कांपती हुई गद्गद् होकर बोलती है । हृदयमें एकदम सात्त्विकभावके उदय होजानेपर इन अंगोंपर पसीना आ जाता है । भावमें आकार ही इस प्रकार करने लग जाती है ॥ १६ ॥

चाहनेवालीका पैर दाबना ।

आतुरासंवाहिका चैकेन हस्तेन संवाहयन्ती द्वितीयेन बाहुना स्पर्शमावेदयति श्लेषयति च । विस्मितभावा ॥ १७ ॥

कामातुर हुई जब पैर दाबती है उस समय एक हाथसे पैर मसलती जाती है और दूसरे हाथसे स्पर्श बताती जाती है तथा एवम् नायकके स्पर्शके विना चकित हुई दूसरे हाथसे स्पर्श करती जाती है ॥ १७ ॥

आतुरेति । आतुरामेकान्तेन प्रगल्भयेत् । एवमवस्थापि विविक्ते नायकं दूतादभियुक्ते । संवाहिका चेति कदाचिदप्रगल्भा संवाहनद्वारेण प्रवृत्तिं दर्शयति । स्पर्शमावेदयतीत्यात्मीयं नायकं ज्ञापयति । विस्मितभावेति विस्मिताख्यो भावो यस्याः । स्पर्शं निवेदयमाना तावत्स्पर्शं विना जातविस्मया सती तेनैव द्वितीयबाहुना श्लेषयति श्लेषं करोति ॥ १७ ॥

अपने प्रति कामातुर हुई नायिकाको एकदम प्रगल्भता दिखाये, ऐसी हुई भी नायिका दूतके द्वारा नायकको एकान्तमें बुलाकर उसके साथ मिलनेके उपाय करती है । जो विशेष चण्डूल नहीं होती वह स्त्री कभी पैर मसलनेके द्वारा भी अपनी प्रवृत्तिको दर्शाती है । कभी अपने स्पर्शको नायकके प्रति बताती जाती है । यह करती हुई जितना वह चाहती है उतने स्पर्शके विना उसके हृदयमें अचरजका भाव पैदा हो जाता है, कि यह कैसा है फिर उसी भावसे दूसरे हाथद्वारा श्लेष करती है ॥ १७ ॥

निद्रान्धा वा परिस्पृश्योरुभ्यां बाहुभ्यामपि तिष्ठति । अलिकैकदेशमूर्वोरुपरि पातयति । ऊरुमूलसंवाहने नियुक्ता न प्रतिलोमयति । तत्रैव हस्तमेकमविचलं न्यस्यति । अङ्गसंदंशेन च पीडितं चिरादपनयति ॥ १८ ॥

अथवा नींदमें अन्धी होकर दोनों हाथोंसे भी उसका आलिंगन करके उरुओंसे खड़ी होती है । अपने लिलाटके एक देशको उरुओंपर गिरा देती है । जांघोंकी जड़को मसलनेमें लगनेपर, हाथोंको नीचेकी ओर नहीं करती । एक हाथको निरन्तर वहीं रखा रहने देती है, शरीरसे कुछ देर दबानेसे हटातीहै॥

वाशब्दो भिन्नक्रमे । उभाभ्यां बाहुभ्यां कृतकनिद्रा परिस्पृश्यापि ऊरुभ्यां तिष्ठति । अलिकैकदेशमग्रभागं पातयति । संवाहयन्ती न प्रतिलोमयति । तत्संवाहनं स्यात् । तत्रैवेत्यूरुमूले । अविचलनं न्यस्यति तन्न ज्ञाप्या (?) न व्यापारयति । मा भूज्जघनपार्श्वसंस्पर्श इति । अङ्गसंदंशेन चेत्यूरुद्वयसंदंशेन नायकेन पीडितं चिरादपनयति । मा भूदिच्छाविघातोऽस्येति ॥ १८ ॥

अथवा नींदका बहाना करके दोनों हाथोंसे अच्छी तरह छूकर भी उरुओंसे ठहरती है। अपने लिलारके अग्रभागको नायकपर गिरा देती है। मसलतीहुई भी हाथको जघनकी तरफ ही बढाया चाहती है नीचे नहीं ले जाती, एक हाथको तो वहां रख ही देती है। विना कहे उससे काम नहीं करती जब नायक यह चाहता है कि यह मेरा कहीं जघन न छू ले तो वह उसके हाथको अपनी दोनों जांघोंके बीचमें देकर दबाता है तो कहीं देरमें जियादा तकलीफ पड़नेपर छोड़ती है कि इसकी इच्छाका विघात न हो, जिससे यह कहीं नाराज न हो जाय ॥ १८ ॥

प्रतिगृह्यैवं नायकाभियोगान्पुनर्द्वितीयेऽहनि संवाहनायोपगच्छति ॥ १९ ॥

वह नायिका उसदिन इस प्रकार नायकके अभियोगोंका ग्रहण करके दूसरे दिन फिर पैर मसलनेके लिये आती है ॥ १९ ॥

नायकाभियोगानिति—तस्यामवस्थायामन्यदा वा नायकाभियोगान्दृष्ट्वा तदीयं भावं प्रतिगृह्य पुनःसंवाहनायोपगच्छति कार्यस्यानिष्पन्नत्वात् ॥ १९ ॥

इस अवस्थामें अथवा और किसी समय नायकके अभियोगोंको स्वीकार करके दूसरे दिन फिर पैर दबाने आती है, क्योंकि उसका काम पूरा नहीं हुआ ॥ १९ ॥

नात्यर्थं संसृज्यते । न च परिहरति ॥ २० ॥

अत्यन्त संसर्ग भी नहीं करती एवम् न छोड़ती ही है ॥ २० ॥

नात्यर्थमिति । कदाचिदतिधैर्याद्गूढभावेव प्रवृत्तिं दर्शयति, स्वयं नात्यन्तं संसृज्यते । न च परिहरत्यमुम् ॥ २० ॥

कभी २ अत्यन्त धीरवाली होनेके कारण भावको छिपाकर ही प्रवृत्ति दिखाती है स्वयम् अत्यन्त संसर्ग नहीं करती । पर उस नायकको एकदम छोड़ती भी नहीं ॥ २० ॥

विविक्ते भावं दर्शयति निष्कारणं चागूढमन्यत्र प्रच्छन्नप्रदेशात् ॥ २१ ॥

एकान्तमें बेबात भाव दिखाने लग जाती है। नर समुदायमें छिपेतौरपर भाव दिखाती है ॥ २१ ॥

विविक्ते भावं दर्शयति मान्यो ज्ञास्यति अन्यत्र प्रच्छन्नप्रदेशाजनसंबाधे गूढं भावं दर्शयति ॥ २१ ॥

दूसरा न जानेगा यह समझकर एकान्तमें भाव दिखाती है। एकान्तकी जगहसे दूसरी जगह जनसमुदायमें छिपे तौरपर भाव दिखाती है ॥ २१ ॥

कथमसौ गूढ इति.................... । इति ॥ २२ ॥

'वह कैसे गूढ है' इससे आगे टीका टूटी हुई है इस कारण ऐसी ही छोड़ते हैं।

मर्मज्ञा दूती योग्य।

संनिकृष्टपरिचारकोपभोग्या सा चेदाकारितापि तथैव स्यात् सा मर्मज्ञया दूत्या साध्या ॥ २२ ॥

जो पास रहकर सेवा करके भोगी जा सके वह इंगिताकार दिखानेपर भी ऐसेकी ऐसी रहती है। वह उसके रहस्योंके जाननेवाली दूतीसे सिद्ध की जा सकती है ॥ २२ ॥

थोथे चोंचले।

व्यावर्तमाना तु तर्कणीयेति भावपरीक्षा ॥ २३ ॥

जो इशारेबाजी करती हुई भी हटजाय उसपर विचार करना चाहिये, कि यह भीतरके मनसे कर रही है वा ऊपरके चोंचलेमात्र ही हैं ॥ २३ ॥

भावपरीक्षा पञ्चचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥

यह भावपरीक्षा नामक ४५ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ २३ ॥

द्वितीय और तृतीय अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

यहां अब द्वितीय और तृतीय अध्यायका उपसंहार कहते हैं, इस विषयमें पांच श्लोक हैं कि—

आदौ परिचयं कुर्यात्ततश्च परिभाषणम् ।
परिभाषणसंमिश्रं मिथश्चाकारवेदनम् ॥ २४ ॥

सबसे पहिले देखनेका सिलासिला जमाये। पीछे गहरी बातोंका ढंग पकड़े। बातोंमें ही परस्परके भावोंका निवेदन और पहिचान हो जानी चाहिये ॥ २४ ॥

प्रत्युत्तरेण पश्येच्चेदाकारस्य परिग्रहम् ।
ततोऽभियुञ्जीत नरः स्त्रियं विगतसाध्वसः ॥ २५ ॥

आकारका स्वीकार प्रत्युत्तरके साथ हो तो मनुष्य निर्भय होकर हाथ डाले ॥ २५ ॥

आकारेणात्मनो भावं या नारी प्राक्प्रयोजयेत् ।
क्षिप्रमेवाभियोज्या सा प्रथमे त्वेव दर्शने ॥ २६ ॥

जो स्त्री आकारके साथ अपने भावको पहिले ही जोड दे । वह तो पहिली बारके ही देखने भालनेमें जलदी ही रँग लेनी चाहिये ॥ २६ ॥

श्लक्ष्णमाकारिता या तु दर्शयेत्स्फुटमुत्तरम् ।
सापि तत्क्षणसिद्धेति विज्ञेया रतिलालसा ॥ २७ ॥

जिसे छिपे तोरपर इशारा किया जाय और परिस्फुट उत्तर दे वह भी उसी समय सिद्ध है उसे जान लेना चाहिये कि रति चाहती है ॥ २७ ॥

धीरायामप्रगल्भायां परीक्षिण्यां च योषिति ।
एष सूक्ष्मो विधिः प्रोक्तः सिद्धा एव स्फुटं स्त्रियः २८॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे
भावपरीक्षा तृतीयोऽध्यायः ।

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे भावपरीक्षा तृतीयोऽध्यायः ।

जो धीरा हो, चतुर न हो, बहुत परीक्षा करती हो तो ऐसी स्त्रियोंमें सूक्ष्म विधि कही है, क्योंकि स्त्रियाँ तो सिद्धसी ही हैं यह बात स्पष्ट ही है ॥ २८ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके तृतीय
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

---

१ संकेतकालमनसं विटं ज्ञात्वा विदग्धया ।
ईषन्नेत्रार्पिताकूतं लीलापद्मं निमीलितम् ॥

किसी जारने इशारेसे यह पूछा कि कब मिलोगी तो उससे उसने आँखको मींचकर खेलका खिला कमल बन्द कर दिया । यह रातिके मिलनेका संकेत हो गया ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

दूतियोंके कारनामोंका प्रकरण ।

……………योगासंभवस्तत्र दूतीप्रयोग इति दूतीकर्माण्युच्यन्ते—

इसी अधिकरणके दूसरे अध्यायके दूसरे सूत्रमें बता चुके हैं, कि जहां स्वयम् प्रयोग न कर सके वहां दूतीका प्रयोग करना चाहिये, इस कारण 'दूतियोंके कालेकारनामे' बताते हैं—

दूती साध्य ।

दर्शितेङ्गिताकारां तु प्रविरलदर्शनामपूर्वां च दूत्योपसर्पयेत् ॥ १ ॥

जिसने इशारे कर दिये और भाव दिखा दिया हो पर कभी २ दीखे, उसे अथवा जो अपूर्व स्त्री हो उसे, दूतीके द्वारा प्राप्त करे ॥ १ ॥

इङ्गिताकारौ दर्शयित्वा काचिदात्मानं न दर्शयति च कार्ययोगात्तामपूर्वां चापरिचिताम्। न दर्शिताकारामित्यर्थः । दूत्योपसर्पयेदात्मसमीपं ढौकयेत् ॥ १॥

कोई २ स्त्री ऐसी भी होती है, कि मुहँ और आखोंमें मुहब्बतकी लटक दिखाते हुए इशारेबाजी करके भी काम पड़नेपर अपने शरीरको नहीं दिखाती उसको एवम् जो बिलकुल अपरिचित हो कभी इशारे और मुँह एवम् आखोंकी रंगत न दिखाई हो उसे दूती द्वारा अपने पास बुला ले ॥ १ ॥

निसृष्टार्था, परिमितार्था और संदेशहारीके सामान्य कार्य ।

मूलभूतास्तिस्रो दूत्यः—निसृष्टार्था परिमितार्था पत्त्रहारी चेति । [तासां] सामान्येन कर्माण्याह—

यद्यपि अगाड़ी आठ तरहकी दूतियाँ बताई हैं पर जड़ ये तीन ही दूती हैं निसृष्टार्था, परिमितार्था और संदेशहारी । इन तीनों तरहकी दूतियोंके काम सामान्य रूपसे कहे देते हैं—

---

१ "दूती विधेयमधुना यादग् वक्ष्यामि तदपि संक्षेपात् ।
प्रथममतिशीघ्रयोगादाख्यानाद्यैर्विशेषयेदेनाम् ॥ १ ॥
श्रुतिशोभासौभाग्यदमन्त्रौषधिकान्यरतिरहस्यानाम् ।
घटयेत् कथाप्रसङ्गान् ब्रूयाद् विश्वासमुत्पाद्य ॥ २ ॥"

कोक कहते हैं कि दूतीको जो कार्य्य करने चाहियें उन्हें बताये देता हूं । पहिले तो अपनेको अच्छी दिखाये उसकी प्रशंसा करे, कहानी सुनाना प्रारंभ करे । कामसूत्र या जय-

सैनां शीलतोऽनुप्रविश्याख्यानकपटैः सुभगंकरणयोगैर्लोकवृत्तान्तैः कविकथाभिः पारदारिककथाभिश्च तस्याश्चरूपविज्ञानदाक्षिण्यशीलानुप्रशंसाभिश्च तां रञ्जयेत् ॥ २ ॥

दूती अच्छा स्वभाव दिखाकर इसके भीतर घुसे, पीछे कपट भरी बातोंसे, सुन्दर करने आदिके योगोंसे, दुनियाँकी बातोंसे, कवियोंकी बातोंसे, पराई नारी और पर पुरुषकी प्रीति सनी कहानियोंसे एवम् उसके सौन्दर्य्य, विज्ञान, चतुरता और शीलकी प्रशंसा करके, उसे अपनी स्नेहिनी बना ले ॥ २ ॥

शीलत इति—शीलेनादावनुप्रविश्य विश्वासार्थं शीलवती स्यात् । आख्यानकपटैरिति—यमुपदिश्याख्यानकानि चित्रलिखितानि । सुभगंकरणैर्योगैर्वक्ष्यमाणैः । लोकवृत्तान्तैः—पुराणनिबन्धनैः । कविकथाभिरिति—कविभिर्निबद्धाभिर्बिन्दुमतीप्रभृतिभिः । पारदारिककथाभिर्गौतमबृहस्पत्यादिदाराणामिन्द्रचन्द्रादिभिरपहरणकथाभिः । अनुप्रविश्य किं कुर्यादित्याह—तस्या इति—नायिकाया रूपं वर्णं संस्थानं च । [विज्ञानदाक्षिण्यं] शास्त्रकलासु दाक्षिण्यमानुकूल्यम् । शीलं सुस्वभावता । तेषां प्रशंसाभिः ॥ २ ॥

अपना विश्वास बधानेके लिये अपनेको उसे शीलवतीसी दिखाये, जिसका उद्देश लेकर आख्यान कहे, उन्हें चित्रमें लिखे दिखा दे, कि देख यह उनका फ़ोटू है । औपनिषद् प्रकरणमें 'सुभगंकरण' योग कहेंगे। पुराणोंमें लिखी हुई दुनियाँकी ऐसी ही बातें सुनाये । कवियोंकी बनाई हुई बिन्दुमती आदिकी किस्सेकहानी सुनाये । दूसरेकी लुगाई और दूसरेकी स्त्रीके प्रेमकी कहानी सुनाये। तथा गौतम, बृहस्पति आदिकी स्त्रियोंके इन्द्र और चन्द्र आदिसे हरनेकी बातें सुनाये। इस प्रकार उसकी विश्वासिनी बनकर क्या करे यह बताते हैं, कि उस स्त्रीके सौन्दर्य्य, लावण्य और सुडौलता उसकी जानकारी एवम् उसके कला कौशल व अच्छे स्वभावकी प्रशंसा करके उसे अपनी अनुरागिणी बनाले॥

पतिसे द्वेष गहाना ।

कथमेवंविधायास्तवायमित्थंभूतः पतिरिति चानुशयं ग्राहयेत् ॥ ३ ॥

—मंगला यह कहती है, कि नायककी कथाएँ सुनाये । श्रुति, शोभा और सौभाग्यके देनेवाले रतिरहस्य बताये और २ भी बातें सुनाये जब अपनेपर विश्वास हो जाय तो रंग जमाना प्रारंभ कर दे ।

इतनी अच्छी तुझे ऐसा पति कैसे मिला ? यह कह कर उसे पति पानेसे पश्चात्ताप और पतिसे द्वेष पैदा करा दे ॥ ३ ॥

कथमेवंविधाया यथोक्तगुणाया इत्थंभूतो वैरूप्यादिप्रकारमापन्नः । अनुशयं विप्रतीसारं ग्राहयेत् [न] भद्रकमापतितं यदहमनेनोढेति ॥ ३ ॥

(१) देख तू कितनी अच्छी और कितनी सुन्दर है । (२) तेरा पति कुरूप और काला कैसे हुआ ? ऐसी २ बातें बना, उसे पतिसे लड़ा दे और कहे कि यदि मैं इसे व्याही होती तो अच्छा न होता । मैं तो इसमें लात भी न मारकर दूसरेको पकड़ लेती ॥ ३ ॥

न तव सुभगे दास्यमपि कर्तुं युक्त इति ब्रूयात् ॥ ४ ॥

ऐ सुभगे (३) यह तो दास्यकर्म भी करने लायक नहीं है ॥ ४ ॥

सुभग इत्यामन्त्रणं जनसौभाग्यख्यापनार्थम् । दास्यमपि किमु तव पतित्वम् ॥ ४

तू तो सुन्दरी है, तुझे जनोंके सौभाग्योंकी क्या कमी है । यह तेरे तलुए भी सहरानेकी योग्यता नहीं रखता, पति बनना तो जहां तहां रहा ॥ ४ ॥

मन्दवेगतामीर्ष्यालुतां शठतामकृतज्ञतां चासंभोगशीलतां कदर्यतां चपलतामन्यानि च यानि तस्मिन् गुप्तान्यस्या अभ्याशे सति सद्भावेऽतिशयेन भाषेत ॥५॥

(४) यह बड़ा सीरा है, (५) ईर्ष्या करनेवाला है, (६) धूर्त है, (७) अहसान न माननेवाला,(८) संभोगको अच्छा न समझनेवाला, कदाचारी और चपल है । इन दोषोंके सिवा और भी जो उसमें गुप्त दोष हों उन सबोंको उसके पासमें आकर कहे । यदि पति उत्तम हो तो और भी अधिक दोष दिखाये ॥ ५ ॥

मन्दवेगतां च भाषेत यदि सा चण्डवेगा । उपलक्षणं चैतत् । शीघ्रवेगतां च यदि चिरवेगा । असंभोगशीलतामिति—विषयान्भोक्तुमशीलताम् । कदर्यतामहीनकायताम् । अन्यानि चेति पारुष्यनैर्घृण्यदाम्भिकत्वादीनि । तस्मिन्पत्यौ । अस्या अभ्याश इति नायिकायाः समीपे यथान्यो न शृणोति । सति सद्भाव इति विदग्धत्वे सति । अतिशयेन भाषेत येन सा तथैव प्रतिपद्यते ॥ ५ ॥

यदि स्त्री तेज हो तो उसके पतिको सीरा बताये । यह उपलक्षण है, इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि स्त्री देरतक ठहरनेवाली हो तो उसके पति के

शीघ्र ही स्खलित होनेवाला बताये । कह दे कि यह विषय भोग कर ही नहीं सकता पर चाह अधिक रखता है इनके सिवा और भी दोष दे, कि कठोर है, निर्दय है, कपटी है धूर्त है । इनके सिवा उसके पतिमें गुप्त दोष बताये । इन बातोंको इतनी सफाईसे इतने पाससे कहे कि कोई दूसरा न सुन सके । यदि उसकी पतिमें अच्छी बातें हों और वह अपना कहना मानती हो तो अत्यन्तदोष बताये, जिससे वह वैसा ही माने ॥ ५ ॥

येन च दोषेणोद्विग्नां लक्षयेत्तेनैवानुप्रविशेत् ॥ ६ ॥

जिस दोषसे उसे अकुलायी हुई देखे उसी दोषसे उसे पतिविमुख करदे ॥६

येन चेति प्रत्यक्षीकृतेन तद्दोषेण तेनैवैनामनुप्रविशेत् । कथितमेव मया यथायं दोषबहुल इति ॥ ६ ॥

(९) प्रत्यक्ष किये हुए जिस दोषसे उस स्त्रीको व्याकुल देखे, उसी दोषको लेकर कहे, कि अभी तो तुझे एक ही दोषका पता लगा है मैंने तुझे बताया है न ? कि इसमें दोष ही दोष भरे पड़े हैं । (१०) इस तरह पश्चात्ताप और पातेसे गहरा वैर करा दे ॥ ६ ॥

यदासौ मृगी तदा नैव शशतादोषः ॥ ७ ॥

यदि यह मृगी हो तो फिर पुरुषका शश होना दोष नहीं है ॥ ७ ॥

नैव शशतादोषः किं त्वश्वत्वदोषो वाच्यः ॥ ७ ॥

यदि इसका मदनमंदिर छोटा हो तो पुरुषका छोटा साधन बताना दोष नहीं हो सकता । उस समय पुरुषका साधन बड़ा बताना या होना ही दोष होगा । यही कहना चाहिये ॥ ७ ॥

एतेनैव वडवाहस्तिनीविषयश्चोक्तः ॥ ८ ॥

इसीसे वडवा और हस्तिनीका विषय भी कह दिया ॥ ८ ॥

एतेनैवेत्यनन्तरोक्तेन स्वजातीयन्यायेन । वडवाहस्तिनीविषययोगे न दोषो वृषत्वमश्वत्वं च । किं तु शशत्वं दोषः ॥ ८ ॥

अभी कहे गये इसी स्वजातीय न्यायसे वडवा और हस्तिनीके विषय योगमें अश्वपना और वृषपना दोष नहीं है, किन्तु शश होना दोष है ॥ ८ ॥

इसका संग्रह ।

" रूपंकलाविज्ञानं शीलं क तव क चायमीदृशोभर्ता ।
धिग्दैवमुचिताविमुखं तारुण्यं ते विडम्बयति ।

ईर्ष्यालुरकृतवेदी मृदुवेगः शाठ्यवसातिरविदग्धः ।
दासोऽपि ते न युक्तः पतिरसयाकष्टमित्याद्यैः ।
पतिदूषणगणवचनैर्वैराग्यं लम्भयेदेनाम्;
यस्मिन्नुद्विजते सा दोषे भूयस्तमेव पल्लवयेत् ।"

इस प्रकार इन सूत्रोंका संग्रह किया गया है बाकी बातोंका पतिके दूषण वचनोंसे संग्रह हो जाता है। जो श्लोकमें नंबर दीखते हैं उनका अर्थ सूत्रोंके उन्हीं नम्बरोंमें है इस कारण श्लोकार्थ भिन्न नहीं किया है ।

इसपर गोणिकापुत्र ।

दूत्योपसर्पयेदिति सामान्येनोक्तमत्र गोणिकापुत्रदर्शनमाह—

तो साधारण रीतिसे कह दिया कि दूतीसे पास बुलाये । अब इसीपर विशेषरूपसे कहे गोणिकापुत्रके मतको कहते हैं कि—

नायिकाया एव तु विश्वास्यतामुपलभ्य दूतीत्वेनोपसर्पयेत्प्रथमसाहसायां सूक्ष्मभावायां चेति गोणिकापुत्रः ॥ ९ ॥

नायिकाका ही विश्वास पात्र बनकर दूतीपनेसे अपने यहां बुला ले, जो पहिली ही वार साहस करती हो अथवा सूक्ष्म भाववाली हो। यह गोणिकापुत्रका मत है ॥ ९ ॥

विश्वास्यतामुपलभ्य दूतीत्वेनोपसर्पयेत् । कस्मिन्विषय इत्याह—प्रथमसाहसायामिति । या प्रथमं चारित्रं खण्डयति । सूक्ष्मभावायामस्फुटभावायाम् । एतदनुमतमप्रतिषिद्धत्वात् ॥ ९ ॥

विश्वास योग्य बनकर दूतीपनेसे बुलवाये । किस विषयमें ? इसका उत्तर देते हैं कि–'जो पहिली ही वार अपने शीलको बिगाड़ती हो अथवा जो अपने भावको खुलासा न करती हो ।' यह गोणिका पुत्रका मत सबके अनुमत है, क्योंकि इसका कहीं भी निषेध नहीं ह ॥ ९ ॥

नायककी ओर झुकानेका ढंग ।

सा नायकस्य चरितमनुलोमतां कामितानि च कथयेत ॥ १० ॥

वह दूती नायकके चरित्र, सीधापन और रमणके आदि, मध्य और अन्तके भावोंका वर्णन करे ॥ १० ॥

चरितमनुलोमतामानुलोम्यं कामितानि चेति त्रिविधं काभितं रतस्यारम्भे मध्येऽवसाने च ॥ १० ॥

(१) इसी प्रसंगमें (२) नायकके उत्तम चरित्र बताये, उसके आनुलोम्य (सीधे पनको कहे) एवम् सूत्रके बताये कामित (भावोंको) कहे, कि मिलनेके समय पहिले ऐसा होता है बीचमें उसका यह ढंग होता है तथा अन्तका यह हाल है ॥ १० ॥

प्रसृतसद्भावायां च युक्त्या कार्यशरीरमित्थं वदेत् ॥११॥

यदि नायिकाका सद्भाव हट जाय तो युक्तिके साथ अपने कार्य्यके स्वरूपको इस प्रकार कहे ॥ ११ ॥

प्रसृतसद्भावायां नायिकायां सत्याम् । अन्यथोक्ते दोषकरणमपि स्यात् । युक्त्या न यथाकथंचित् । यदर्थं दूतीकल्पस्तत्कार्यशरीरम् । इत्थमिति वक्ष्यमाणप्रकारम् ॥ ११ ॥

(३) यदि यह देख ले, कि इसका मुझपर विश्वास है और यह अपने सद्भावको हटाकर, मुझसे गप्पें करती है तो कहे विना इसके जाने कहनेपर दोष करना भी हो सकता है कहे तो युक्तिके साथ कहे इसी तरह न कहे । जिस कामके लिये दूतीकल्प कहा गया है, उस कार्य्यके स्वरूपको कहे उसके कहनेकी रीति नीचे बताई है कि— ॥ ११ ॥

शृणु विचित्रमिदं सुभगे, त्वां किल दृष्ट्वामुत्रासावित्थं गोत्रपुत्रो नायकश्चित्तोन्मादमनुभवति । प्रकृत्या सुकुमारः कदाचिदन्यत्रापरिक्लिष्टपूर्वस्तपस्वी । ततोऽधुना शक्यमनेन मरणमप्यनुभवितुमिति वर्णयेत् ॥१२॥

(४) ए परम सुन्दरि (५) मैं तुझे एक विचित्र बात सुनाऊं, (६) तू सुन (७) उस प्रसिद्ध खानदानका फलाना, (८) तुझे उस जगह देखकर, (९) पागल हो उठा है, (१०) वह प्रकृतिसे सुकुमार है, कभी किसी जगह उसने कष्ट नहीं उठाया । वह तपस्वी है, (११) वह तुझ विना पाये, (१२) तड़फ २ कर मर जायगा ॥ १२ ॥

विचित्रमिदं यदन्याभिः काम्यमानोऽपि त्वां दृष्ट्वापि चित्तोन्मादमनुभवति । एवं च सुभग इत्यामन्त्रणमर्थवद्भवति । किलेति त्वं दृष्टासीति परोक्षं ममेत्याह ।

इत्थं गोत्रपुत्रो न यस्य कस्यचित्पुत्रः । कार्यस्य बलीयस्त्वं दर्शयन्नाह—प्रकृत्येति । अन्यत्रेत्यन्यस्याम् । अपरिक्लिष्टपूर्वस्तद्वचन [कर] त्वात्स्त्रीणाम् । तपस्वीत्यनुकम्पायाम् । शक्यमनेन मरणमप्यनुभवितुं—विनश्य (ङ्क्षय) तीत्यर्थः १२

यह बात बड़ी विचित्र है कि, हम उसे चाहती है फिर तो भी तुझे देखकर, चित्तके पागलपनेका अनुभव करता है। इस प्रकार उसे 'ए सुभगे' यह कहना सार्थक होता है, कि तू इतनी सुन्दर है, कि जिसे हम चाहती हैं वह हमारी तरफ ऋजु न होकर तुझपर पागल हुआ जाता है। सूत्रके किल शब्दका यह तात्पर्य है कि तू उसने देखी है यह वही हमसे कहता है। वह ऐसे घरानेघरका लड़का है ऐसा वैसा नहीं है, कि ऐरोगैरोंका छोकड़ा हो। कार्यको बलीय (अधिक बलवान्) यानी अधिक करणीय दिखानेके लिये कहती है, कि वह स्वभावसेही बड़ा नाजुक है। उसने दूसरी जगह यानी किसी दूसरी सुन्दरीके विषयमें इतना कष्ट नहीं उठाया। तपस्वी कहना उसे दयापात्र दिखाना है। उससे मरणका अनुभव कर लेना हो सकता है, इसका मतलब यही है, कि वह तेरी चाहमें नष्ट हो जायगा ॥ १२ ॥

इसका संग्रह।

" नायक[2]गुणगण भणितिं कुर्य्यादेवं [1]प्रसंगेन ।
उत्पाद्य सौमनस्[3]यं ब्रूयात्[4]सुभगे शृणु[6]ष्व यच्चित्रम्[5] ॥
चित्रं किमपि व्यतिकरमसौ[8] युवा कुसुमसु[9]कुमारः ।
दृष्टिभुजङ्गीदष्ट[10]स्तव सखि! संदेहमारूढः ।
श्वसिति स्विद्यति मुह्यति सन्तापस्तस्य कोऽपि दुर्वारः ॥
त्वन्[11]मुखचन्द्रसुधारसमप्राप्य प्राणितो[12] नासौ ।
स्वप्नेऽपि तस्य सुभगे ! कदाऽपि नेदृग् विकारोऽभूत् ॥ "

पहिले जो उसने उसके पतिकी निन्दा प्रारम्भ कर राखी थी, उसी प्रसंगके वश होकर, नायकके गुणगणोंको सुनाये। दशवें सूत्रका तात्पर्य्य गुणगणोंके सुनानेमें ही आजाता है। ग्यारहवें सूत्रके भावको लेकर ही यह कहा है, कि उसका सद्भाव प्राप्त करके ही कहे। नं० ४ से लेकर बारहतक सब बारहवें सूत्रका भाव है। सूत्र देखकर कहा है तो कोक यह कहते हैं कि तेरी दृष्टिरूपी साँपने खा लिया है। साँपके काटे हुएको अमृत चाहिये वह तेरे मुखमें है यदि उसे न मिलेगा तो वह मरेगा ही। जिसे जहर चढता है वह श्वास लेता है, उसे पसीना आते हैं और मूर्च्छित भी होता ही है। ए सुन्दरि ! उस बिचारेने कभी स्वप्नमें भी ऐसा विकार नहीं देखा।

दुबाराका कार्य्य ।

तत्र सिद्धा द्वितीयेऽहनि वाचि वक्त्रे दृष्टयां च प्रसाद-मुपलक्ष्य पुनरपि कथां प्रवर्तयेत् ॥ १३ ॥

इसमें सिद्ध हो जानेपर दूसरे दिन वाणी, मुख और आखोंमें प्रसन्नता आकर फिर बातें शुरू कर दे ॥ १३ ॥

तत्रेति तस्मिन्नभिधीयमाने सिद्धा न प्रत्याख्याता । वाचि वक्त्रे दृष्टयां च त्रिष्वपि प्रसादं प्रसन्नताम् । कथां प्रवर्तयेत्सामान्याम् ॥ १३ ॥

(१) ऊपरके सूत्रोंकी कही हुई बातोंके कहनेपर भी वह बात न काटे तो उस दिन बातको यहीं तक छोड़कर, (२) दूसरे दिन वह आते ही प्यारसे बोले चहरा प्रसन्न मिले एवम् अपनेको देख कर आखोंमें खुशी छा जाय तो (३) फिर साधारण बातें चीतें प्रारंभ कर दे ॥ १३ ॥

श्रृण्वत्यां चाहल्याविमारकशाकुन्तलादीन्यन्यान्यपि लौकिकानि च कथयेत्तद्युक्तानि ॥ १४ ॥

जब वह बातें सुनने लगे तो अहिल्या, अविमारक और शकुन्तला आदि-कोंकी बातें तथा दूसरी २ परनारी और परपुरुषोंकी लौकिक बातें सुनाये॥१४

श्रृण्वत्यां स्वकथाम् । अहल्या गोतमभार्या तयोत्कण्ठितया देवराजः कामितः । अग्निहोत्रकेना (णा) ग्नि परिचरणे वधूर्नियुक्ता । सा च कुण्डादुत्थितेन मूर्तिम-ताग्निना कामिता । जातगर्भां च तां श्वशुरः कुलदोषभयादटव्यां तत्याज । प्रसूता च सह सुतेन (सा सुतम् । तं) शबरसेनापतिरपत्यबुद्ध्या संवर्धित-वान् । तत्पुत्रश्चाजाविकसमूहेन बालवयस्त्वात्क्रीडमानः परिभ्रमन् क्षीरपानान्महा-बलोऽभूत् । येन शिशुरेव हस्तग्रहणादजाविकं जघान । सेनापतिरप्यन्वर्थमस्य नाम चक्रेऽविमारक इति । ततः प्रवृद्धयौवनः कदाचिद्राज्ञोऽटव्यां समावासि-तस्य दुहितरं हस्तिना व्यापाद्यमानां तं हत्वा ररक्ष । ततो जातोत्कण्ठा [सा] स्वयमेव पाणिं ग्राहितवती । तद्युक्तानि पारदारिकयुक्तानि ॥ १४ ॥

(४) गौतमकी स्त्रीका नाम अहिल्या था, उसने बड़ी उत्कण्ठाके साथ देवराज इन्द्रको चाहा था । अग्निहोत्रकने अपनी बधूको अग्निकी परिचर्य्या करनेके लिये नियुक्त कर दिया था । वह कुण्डसे उठ खड़ेहुए अग्निदेवने चाही थी । जब उसकें गर्भ रह गया तो श्वसुरने कुलदोषकी बजहसे बनमें छोड़

दी । उसने पुत्र पैदा किया वह पुत्र उसके ही साथ था । उसके पुत्रको मिल सेनापतिने पुत्र मानकर बड़ा किया । वह लड़का बच्चा होनेके कारण भेड़ बकरियोंके समूहके साथ खेलता हुआ घूम फिर कर दूध पी पी बड़ा बलवान् हो गया, इस कारण बालक ही वह हाथसे पकड़ कर, मेंढा और बकरोंको मार डालने लगा । सेनापतिने भी उसका यथा गुण नाम 'अविमारक' रख दिया । वह कभी युवा होकर बनमें समावासित राजाकी लड़कीको जिसे कि हाथी मारे डाल रहा था उस हाथीको मारकर बचा दिया । इसे देख उस लड़कीके हृदयमें उसकी उत्कण्ठा हो गई । उससे उसे अपने आप अपना हाथ पकड़ा दिया । ऐसी बातोंके सिवा और २ भी परनारी और परपुरुषोंके प्रेमके विषयकी बातें सुना दे ॥ १४ ॥

वृषतां चतुःषष्टिविज्ञतां सौभाग्यं च नायकस्य । श्लाघनीयतां (या) चास्य प्रच्छन्नं संप्रयोगं भूतमभूतपूर्वं वा वर्णयेत् ॥ १५ ॥

नायकका वृषपना, चौंसठ कलाओंका ज्ञातापना, सौभाग्यशालिता, और उसकी उत्तमताको बतातेहुए उसके हुए अभूतपूर्व पहिलेके छिपे मिलनो झुलनोंको बताये ॥ १५ ॥

वृषतां व्यवाय (यि) ताम् । चतुःषष्टिविज्ञतामिति गीतादिकायां पाञ्चालिकायां विज्ञताम् । सौभाग्यं पुरुषेणाप्यभिलषत (?) इति । श्लाघनी [य] येति यां स्त्रियं श्लाघते । प्रच्छन्नं लोकस्याविदितम् । एवं चाभूतमपि भूतमिव जातम् ॥ १५ ॥

(५) नायककी सहवासकी शक्ति बताये, नायककी गाने, बजाने और मिलने झुलनेकी चौंसठ कलाओंकी निपुणता बताये । उसके भाग्यशालीपनेको बताये, जिसे कि पुरुष चाहा करते हैं । उसे कैसी २ स्त्रियाँ चाहती हैं यह भी बता दे । इसकी बातें दुनियाँ नहीं जानती । उसके नहींहुए मिलने झुलनोंको भी हुओंकी तरह कह दे एवम् जिसकी यह प्रसिद्धि हो कि यह किसीसे भी नहीं मिली, उसे भी झूठे ही कह दे, कि उसके मिलनेवाली है ॥ १५ ॥

इसका सामान्य संग्रह ।

इत्युक्ते यदि सदने पुनेरपरेद्युः समेत्य कथयेत् ।
वृत्तमहिल्यादीनां श्लाघ्यं स्त्रीसङ्गमभियोक्तुः ।

श्लोकका उत्तरार्ध तेरहवें श्लोकके भावको लेकर बनाया है । चौदहवें सूत्रका भाव चौथे नम्बरमें आगया है । पांचवें नम्बरमें पन्द्रहवें सूत्रका भाव है । अन्तर इतना ही है, कि जयमङ्गलाने पूरा लिख दिया है पर इन्होंने अनुवाद-मात्र ही किया है । श्लोकार्थ—यदि पहिले दिनकी बातें सह ली जायँ तो दूसरे दिन फिर आकर वैसी ही बातें बनाये । अहिल्यादिकोंके इतिहास तथा नायकके प्रशंसनीय परस्त्रीसंगोंको भी बता दे ।

इन बातोंमें आकारकी पहिचान ।

आकारं चास्या लक्षयेत् ॥ १६ ॥

दूतीको चाहिये कि नायककी बातोंके सुनानेके समय, उसकी भावभङ्गिकी परीक्षा करे ॥ १६ ॥

आह्नि (क्रि) यते गृह्यते भावो येनेति वाक्कायव्यापारोऽत्र गृह्यते ॥ १६ ॥

शरीर और वाणीके जिन व्यापारोंसे मनका भाव टपकता है उनको अच्छी तरह पहिचान ले, कि इसका भाव है वा नहीं ॥ १६ ॥

भावको बतानेवाले व्यापार ।

तदेव दर्शयन्नाह—

जिन बातोंसे दूती भावोंका पता लगा लेती हैं उन्हें बताते हैं कि—

सविहासितं दृष्ट्वा संभाषते ॥ १७ ॥

देखकर हँसती हुई बोलती है ॥ १७ ॥

सविहसितमिति संभाषणक्रियाविशेषणमेतत् ॥ १७ ॥

(१) ' हँसनेके साथ ' यह संभाषणक्रियाका विशेषण है, दर्शनका नहीं । इससे यह अर्थ होजाता है, कि देखकर हंसती हुई भाषण करती है ॥ १७ ॥

आसने चोपनिमन्त्रयते ॥ १८ ॥

सम्मानपूर्वक आसनपर बैठनेके लिये कहती है ॥ १८ ॥

उपनिमन्त्रयते इदमासनमास्यतामिति ॥ १८ ॥

(२) यह आसन है, इसपर बैठ जाओ, यह सत्कारपूर्वक कहती है ॥ १८ ॥

क्वासितं क्व शयितं क्व भुक्तं क्व चेष्टितं किं वा कृतमिति पृच्छति ॥ १९ ॥

---

१ " एवं प्रयुज्यमाने लक्षयितव्यस्तदीय आकारः " इस प्रकार प्रयोग करती बार उसके आकारको देखे ।

(३) कहां बैठी ? कहां सोई ? कहां भोजन किया ? कहां चेष्टा है ? क्या कर रही है ? क्या किया ? यह पूछती है ॥ १९ ॥

चेष्टितं भ्रान्तम् । कृतमवश्यकर्तव्यमिति पृच्छति । तेन द्वारेण नायकसंबद्धं किंचिदभिधास्यतीति ॥ १९ ॥

यानी तेरी चेष्टा तो भ्रमिसी रही है । अपना अवश्य करनेका कार्य्य पूरा कर दिया क्या ? इसके पूछनेका मतलब यही ह कि इस पूछनेसे यह नायकके संवन्धमें कुछ कहेगी ॥ १९ ॥

विविक्ते दर्शयत्यात्मानम् ॥ २० ॥

(४) एकान्तमें अपनेको दिखाती है ॥ २० ॥

विविक्ते दर्शयत्यात्मानं रहस्यं किञ्चिद्वक्ष्यतीति ॥ २० ॥

एकान्तमें इसलिये अपनेको दिखाती है कि कुछ रहस्य कहेगी ॥२०॥

आख्यानकानि नियुङ्क्ते ॥ २१ ॥

बातें शुरू करती है ॥ २१ ॥

आख्यानकानि नियुंक्तेऽधृतिकथनार्थं नायककथां वा करिष्यतीति ॥ २१ ॥

(५) अधीरताको कहनेके लिये गप्पें शुरू करती है । अथवा यह मतलब रहता है, कि बातें छिड़नेपर यह नायककी बातें कहेगी ॥ २१ ॥

चिन्तयन्ती निःश्वसिति विजृम्भते च ॥ २२ ॥

कुछ सोचती हुई गरमश्वास लेती और जँभाई लेती ह ॥ २२ ॥

चिन्तयन्तीत्यभ्युद्गत (तद्गत) मानसा निःश्वसिति । विजृम्भते मदनलालसा ॥

(६) उसमें अपना मन लगाकर सोचती है । उसीसे गरम श्वास लेती है । (७) जँभाइके बहाने अपने + सात्त्विकभावको प्रकट करती है । यह मदन (काम) की लालसासे होता है ॥ २२ ॥

प्रीतिदायं च ददाति ॥ २३ ॥

प्रीतिसे दिये जानेवाली चीजोंको देती है ॥ २३ ॥

प्रीतिदायमिति यत्प्रीत्या दीयते कटकमुत्तरीयं वा तदस्यै ददाति ॥ २३ ॥

+ कामसूत्रके ९६ वें पृष्ठमें मोट्टायितके उदाहरणम यह दिखा चुके हैं । किसी दूतीने नायककी तारीफ की है, इसपर नायिकाने शरीर तोड़ा और जँभाई ली है । उसने आकर उसकी इस दशाको नायकके सामने सुनाया है।

(८) गडूले, धोती, चुनरी आदि जो वस्तु प्रेमसे दी जाती हैं उन्हें उस दूतीको देती है ॥ २३ ॥

इष्टेषूत्सवेषु च स्मरति ॥ २४ ॥

इष्टोंमें और उत्सवोंमें उसे याद करती है ॥ २४ ॥

इष्टेषु कार्येषूत्सवेषु च स्मरति कथमद्य नायातेति ॥ २४ ॥

इष्ट कार्य्योंमें और उत्सवोंमें याद करती है, कि इस समय तुम क्यों नहीं आयीं ॥ २४ ॥

पुनर्दर्शनानुबन्धं विसृजति ॥ २५ ॥

फिर मिलनेकी कहलाकर छोड़ती है ॥ २५ ॥

पुनर्दर्शनानुबन्धमिति पुनर्मया द्रष्टव्यासीति प्रेषयति ॥ २५ ॥

(९) आप फिर मुझे मिलना यह कहकर भेजती है ॥ २५ ॥

साधुवादिनी सती किमिदमशोभनमभिधत्स इति कथामनुबध्नाति ॥ २६ ॥

(१०) आप साँचाधारी होकर यह क्या कहा करती हैं, यह बात कथामें लगा देती है ॥ २६ ॥

साधुवादिनीति त्वद्दर्शनं नामश्रवणमपि तं सुखयतीति दूत्या कथायां प्रावर्तितायामाह—साधुवादिनी सती किमिदमशोभनमयुक्तमभिधत्से इत्यभिधाय कथामनुबध्नाति प्रवर्तयति ॥ २६ ॥

जब दूती उससे यह कहती है, कि तेरा दीख जाना और नामका सुन लेना भी उसे सुखी करता है और बातें तो जहां तहां रहीं; तो वह आप साँचाधारी इत्यादि कहकर बातोंको शुरू करा देती है ॥ २६ ॥

नायकस्य शाठ्यचापल्यसंबद्धान्दोषान्ददाति ॥ २७ ॥

नायककी धूर्तता और चंचलता संबन्धी दोषोंको देती है ॥ २७ ॥

दोषान्ददातीति शठोऽसौ न निर्व्याजं व्यवहरति लोके । चपलश्च नैकस्यां रमत इति ॥ २७ ॥

(११) बड़ा धूर्त है, बेशर्म होकर योंही कहता फिरता है । बड़ी चंचल वृत्तिका है, एकपर तो कभी टिका ही नहीं रहा ॥ २७ ॥

पूर्वप्रवृत्तं च तत्संदर्शनं कथाभियोगं च स्वयमकथयन्ती तयोच्यमानमाकांक्षति ॥ २८ ॥

जहां २ उसने नायकको देखा या नायकने उसे देखा, इस बातको और जिस तरह बातोंकी योजना हुई इसको अपने आप विना कहे यह चाहे, कि यह सुनाये ॥ २८ ॥

तत्संदर्शनमिति नायकदर्शनं यत्तस्याः पूर्वप्रवृत्तं यत्र [यत्र] यदा यथा । कथाभियोगं च पुनः पुनः कथायोगं पूर्ववृत्तं स्वयमकथयन्ती लज्जया तयोच्यमानं दूत्या कथ्यमानं कांक्षति तेनापि सुखं स्थीयत इति ॥ २८ ॥

(१२) उसे जिस २ जगह नायकने वा उसने जैसे २ नायकको देखा, उन सब बातोंको एवम् बारंबार बातोंके सिलसिलेको शर्मके मारे न कहती हुई भी यह चाहती है कि यह मुझे सुनाती चली जाय। इन बातोंसे भी उसे सुख ही मिलता है ॥ २८ ॥

नायकमनोरथेषु च कथ्यमानेषु सपरिभवं नाम हसति । न च निर्वदतीति ॥ २९ ॥

नायकके मनोरथ कहे जानेपर तिरस्कार दिखाती हुई हँसती है; पर यह नहीं कहती कि उसका मनोरथ सिद्ध होगा ही ॥ २९ ॥

नायकमनोरथेष्विति स दिवसो भविष्यति यत्र पादपतनैः प्रसादिताया अधर पास्यामीत्येवमादिषु दूत्या कथ्यमानेषु सपरिभवमिव हसति दूरात् (दुराशा) शठस्य धूर्तस्येति । न च निर्वदति निश्चयेनाभिधत्ते सिध्यत्येव तस्य मनोरथ इति २९

दूती जब नायकके नामसे इस प्रकारकी बातें कहती है कि 'वह कौनसा दिन होगा जो उसके चरणोंमें शिर रख उसे मना उसका अधरामृत पान करूंगा' तो आप यह कहती हुई हँसती है कि उस धूर्तकी यह दुराशामात्र ही है। अनेक बातें होनेपर भी वह निश्चयपूर्वक यह नहीं कहती कि वह कामयाब होगा ही ॥ २९ ॥

विषयका संग्रह ।

दृष्ट्वा[२] ब्रवीति सस्मितमन्तिक एवोपवेशयति ।
पृच्छति[३] भोजनशयने आख्यानं[४] दिशति रहसि वा मिलति ॥
निःश्वसिति[६] जृम्भते वा स्ववित्तमस्यै ददाति किञ्चिद् वा ।
यान्तीमेष्यति पुनरिति वदति कथं साधुवादिनी भवती ॥
वक्ति किमप्यसमञ्जस[११]मित्युक्त्वा तत्कथां[१२] भजति ।
किन्न करोमि वचस्तव किन्तु शठोऽसावतीव मे भर्ता ॥

इन श्लोकोंमें कामसूत्रके भावोंको बतानेवाले आकारोंका संग्रह किया है। नंबर एकमें सत्रहवाँ, दोमें अठरहवाँ, तीनमें उन्नीसवाँ, चारमें बीसवाँ, पांचमें इक्कीसवाँ, छःमें और सातमें बाईसवाँ, आठमें तेईसवाँ, नौमें पची-सवाँ, दशमें छव्वीसवाँ तथा ग्यारहमें सत्ताइसवाँ एवम् बारहमें अट्ठाईसवां सूत्र आ जाता है। सूत्रके नम्बरोंके अनुसार इनका अर्थ समझना चाहिये। उनतीसवें सूत्रमें कामसूत्रकार तो यह कहते हैं कि नायकके मनोरथ कहे जानेपर तिरस्कार दिखाती हुई हँसती है पर कोकजी यह भी कहते हैं कि वह दूतीसे यह कहती है कि मैं तेरा कहना तो कर देती परन्तु मेरे मालिकका स्वभाव बड़ा ही खराब है वह जान जायगा तो मुश्किल हो जायगी। तथा अट्ठाईसका अनुवाद भी करते हैं कि—"हसति च तस्य विकारं श्रुत्वा भूयस्तु सोपहासेव"

आकारके पहिचाननेका फल।

विषये (शेषे) ण नायिकाया आकारे लक्षिते किं फलमित्याह—

नायिकाको झुकातीवार जो आकारकी पहिचान बता रहे हैं उसका क्या फल है? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं कि—

दूत्येनां दर्शिताकारां नायकाभिज्ञानैरुपबृंहयेत् ॥ ३० ॥

बताई हुए रीतिसे जिसके आकार देख ले दूती उसे नायककी पुरानी बातोंसे अनुरक्त करे ॥ ३० ॥

नायकाभिज्ञानैरिति नायकस्य तया सह पूर्वं व्यावृत्तानि तैरुपबृंहयेदत्यन्तमनुरक्तां कुर्यात् ॥ ३० ॥

सत्रहवें सूत्रसे लेकर पीछेके २९ वें सूत्र तक जो भाव बतानेवाले व्यापार बताये हैं, उन्हें देख लेनेपर, नायककी पुरानी रंगरेलीकी बातें सुना २ कर उसे पूरी अनुरक्त कर ले ॥ ३० ॥

असंस्तुतां तु गुणकथनैरनुरागकथाभिश्चावर्जयेत् ॥ ३१ ॥

विना परिचयवालीको तो प्रेमकी बातें और उसके गुण सुना २ कर उसकी ओर झुकाये ॥ ३१ ॥

असंस्तुतामित्यपरिचिताम्, अभिज्ञानासंभवात्। नायकस्य गुणकथनैरनुराग-कथाभिश्चावर्जयेत् ॥ ३१ ॥

जिसका नायकसे कोई परिचय ही नहीं है उस नायिकाके साथ नायककी

पुरानी बातें भी कहांसे आयगी ? क्योंकि कोई मुलाकात तो है नहीं । उसे नायकके गुण और प्रेमकी कथाएँ सुनाकर ही उसकी ओर झुकाये ॥ ३१ ॥

दूतीकर्मपर आचार्य्योंका मतभेद ।

अत्राचार्याणां मतभेदमाह—

दूतीकार्य्यपर जो आचार्य्योंका मतभेद है उसे बताते हैं कि––

नासंस्तुतादृष्टाकारयोर्दूत्यमस्तीत्यौद्दालकिः ॥ ३२ ॥

जो अपरिचित हैं जिसका भावसूचक आकार नहीं देखा गया उनका दूतीकर्म नहीं हो सकता, यह श्वेतकेतुका मत है ॥ ३२ ॥

नासंस्तुतादृष्टाकारयोरिति ययोर्न परिचयो न चाकारदर्शनं च तस्मिन्विषये न दूत्या कर्म विषयो वास्ति । यत्रेदमुक्तम्—'कृतपरिचयां दर्शितेङ्गिताकारां कन्यामिवोपायतोऽभियुञ्जीत' ॥ ३२ ॥

जिनमें न तो परिचय है एवम् न जिन्होंने भावसूचक आकारको ही देखा, उन स्त्रीपुरुषोंके विषयमें दूतीकर्म नहीं है, न वह इसका विषय ही है । अथवा वह उपायका विषय हो भी सकता है, नहीं भी । इस विषयमें द्वितीयाध्यायके अभियोग प्रकरणमें 'कृतपरिचयाम्' यह पहिला ही सूत्र रखा है ॥३२

असंस्तुतयोरपि संसृष्टाकारयोरस्तीति बाभ्रवीयाः ॥३३

विना जान पहिचानके भी मिले हुए आकारवालोंके विषयमें दूतीकर्म है यह बाभ्रवीय आचार्य्योंका मत है ॥ ३३ ॥

संसृष्टाकारयोस्तयोरसंस्तुतयोरप्यवस्थाकारस्यैव दूत्यं मित्रत्वात् । यथोक्तम्–'आकारेणात्मनो भावं या नारी प्राक्प्रदर्शयेत् । क्षिप्रमेवाभियोज्या सा प्रथमे चैव दर्शने' ॥ ३३ ॥

अपरिचित भी हों पर आपसमें इशारेबाजी हो जायँ तो उनके अवस्थाका आकार ही दूतीका कार्य्य है, क्योंकि वही उनका मित्र है । यह बात तीसरी अध्यायके संग्रहके अन्तमें कही भी है, कि–'जो स्त्री पहिली बारके देखनेमें ही अपना भाव दिखा दे उससे उसी समय मिल लेना चाहिये' ॥ ३३ ॥

संस्तुतयोरप्यसंसृष्टाकारयोरस्तीति गोणिकापुत्रः ॥३४॥

गोणिकापुत्रका मत है, कि अपरिचित और विना आकार मिले हुओंका भी दूतीकर्म होता है ॥ ३४ ॥

असंसृष्टाकारयोरिति व्यामिश्रभावत्वात्तदाकारोऽपि संसृष्टशुद्धो भवति । ततश्च ययोरपि । यत्रेदमुक्तम्—'धीरायामप्रगलभायाम्' इत्यादि ॥ ३४ ॥

मिला हुआ भाव होनेके कारण वह आकार भी ससग होनेपर शुद्ध हो जाता है । इस बातको भी उपसंहारके अन्तमें 'धीरायामप्रगल्भायाम्' इस श्लोकसे वताया है ॥ ३४ ॥

असंस्तुतयोरदृष्टाकारयोरपि दूतीप्रत्ययादिति वात्स्यायनः ॥ ३५ ॥

इसपर वात्स्यायन आचार्य्यका मत है कि—'विना परिचयके एवम् आपसके इशारे देखे हुओंका भी दूतीकर्म है, दूतीके विश्वासपर' ॥ ३५ ॥

दूतीप्रत्ययादिति दूतीसामर्थ्यादसंस्तुतयोरपि । अस्मिन्पक्षे त्रितयाभावेऽपि दूत्यमस्ति । यत्रेदं वक्ष्यति—'कौतुकाचानुरूपौ युक्ताविमौ परस्परस्य' इति ३५

यदि दूतीमें वल हो एवम् दूतीका दोनों विश्वास करते हों तो ये भी दूतीके विषय वन सकते हैं । पहिले मतमें विना परिचय और आकार मिले दूतीकर्मका निषेध था । दूसरा मत भले ही अपरिचित हों पर आकार मिल जाने चाहियें यह था । तीसरे पक्षमें जान पहिचानमें दूतीकर्म था । पर इस चौथे पक्षमें विना तीनों वातोंके भी दूतीकर्म किये जानेका विधान है ॥ ३५ ॥

वस्तुओंका भेजना ।

तासां मनोहराण्युपायनानि ताम्बूलमनुलेपनं स्रजमङ्गुलीयकं वासो वा तेन प्रहितं दर्शयेत् ॥ ३६ ॥

अपरिचितोंको मनोहर (१) भेंट, (२) पान, केशर, (३) माला, छाप और भेजा हुआ वस्त्र दिखाये ॥ ३६ ॥

तासामित्यसंस्तुतानाम् । मनोहराण्युपायनानि कोशलिकास्ताम्बूला[दी]नि ३६

कोशलिका और पान आदि ये मनोहर भेंट ही हैं ॥ ३६ ॥

तेषु नायकस्य यथार्थं नखदशनपदानि तानि तानि च चिह्नानि स्युः ॥ ३७ ॥

उनमें नायकके यथाप्रयोजन नाखून और दाँतोंके तथा वे वे चिह्न हों ॥३७॥

तेष्वित्युपायनेषु । यथार्थमिति यथाप्रयोजनं च संप्रयोगसूचकमेव चिह्नं स्यात् ॥

जो चीज भेजी जायँ, उन सबपर संयोगसूचक निशान होने चाहियें ॥३७॥

वाससि च कुङ्कुमाङ्कमञ्जलिं निदध्यात् ॥ ३८ ॥

कपड़ोंपर केसरके थापे रख दे ॥ ३८ ॥

कुंकुमाङ्कमञ्जलिमिति कुंकुमेनाङ्कितमञ्जलिं निदध्याद्यथा प्रतिबिम्बमुत्पद्यते। तत्त्वदाराधनपरोऽयं जन इति ख्यापनार्थम् ॥ ३८ ॥

वस्त्रोंपर इस प्रकार छापे रखे जिससे हाथोंके पूरे चिह्न वस्त्रपर उतर आयें। इसके रखनेका यही प्रयोजन है कि प्रयोज्यापर यह विदित करना कि—यह जन तेरा आराधन चाहता है ॥ ३८ ॥

पत्रच्छेद्यानि नानाभिप्रायाकृतीनि दर्शयेत्। लेखपत्रगर्भाणि कर्णपत्राण्यापीडांश्च ॥ ३९ ॥

अनेक तरहके अभिप्रायकी आकृतिवाले पत्रच्छेद्य करे। कर्णपत्र और आपीड भी इस रीतिसे वनाये कि उनमें लेखपत्र छिपाकर रखा जा सके ३९॥

नानाभिप्रायाकृतीनीति नानाभिप्राया रतिशोकक्रोधविस्मयादिभावसूचना आकृतिः संस्थानं येषाम्। लेखपत्त्रगर्भाणि मध्ये लेखपत्त्रं प्रक्षिप्य वेष्टितानि। आपीडांश्च लेखपत्त्रगर्भान् ॥ ३९ ॥

पत्रच्छेद्यके स्वरूप रति, शोक, क्रोध और विस्मयादिके भावके सूचक हों। कर्णपत्र और आपीडके भीतर खत लिखकर डाल दे फिर लभेड़ दे ॥ ३९ ॥

तेषु स्वमनोरथाख्यापनम्। प्रतिप्राभृतदाने चैनां नियोजयेत् ॥ ४० ॥

उन लेखोंमें अपने मनोरथको वताये ॥ ४० ॥

मनोरथाख्यापनमिति लिखित्वा च लेखा (खैः) आचक्षीत। प्रतिप्राभृतं प्रतिकोशलिका ॥ ४० ॥

मनोरथोंका जाहिर करना यह लिखकर लेखोंद्वारा कह ॥ ४० ॥

सूत्रार्थ-संग्रह।

इत्याकारप्रकटनमालोक्य प्राभृतं नियुंज्यात्।
ताम्बूलकुसुमलेपनदानैरुपबृंहयेद् भूयः ॥

जब यह जान जाय कि इसकी पूरी इच्छा है तो नायककी ओरसे नायिकाको प्रेमोपहार मिलने चाहियें। उनमें पान, फूल और लेपन होने चाहिये। और भी क्या २ भेंट होना चाहिये यह भी कामसूत्रने वता दिया है ॥

एवं कृतपरस्परपरिग्रहयोश्च दूतीप्रत्ययः समागमः ॥ ४१ ॥

इसप्रकार एक दूसरेके हृदयमें चाह पैदा करके दूतीके विश्वासवाला समागम होता है ॥ ४१ ॥

कृतपरस्परपरिग्रहयोरिति कृतान्योन्यस्वीकारयोः । दूतीप्रत्ययः (समागमः) तयैव तदानीं निर्दिश्यमानत्वात् ॥ ४१ ॥

आपसमें एक दूसरेके स्वीकार कर लेनेपर दूतीद्वारा समागम होता है, क्योंकि उस समय वही निर्देश करती है ॥ ४१ ॥

स तु देवताभिगमने यात्रायामुद्यानक्रीडायां जलावतरणे विवाहे यज्ञव्यसनोत्सवेष्वग्न्युत्पाते चौरविभ्रमे जनपदस्य चक्रारोहणे प्रेक्षाव्यापारेषु तेषु तेषु च कार्येष्विति बाभ्रवीयाः ॥ ४२ ॥

वह समागम तो (१) देवपूजनको जातीबार, देवयात्रामें, (२) वन विहारमें, (३) जलके तैरनेमें, (४) विवाहमें, (५) यज्ञ, (६) मृत्यु और (७) उत्सवमें, (८) अग्निके उत्पातमें, (९) चोरोंके हल्लेमें, राजके परिवर्तनमें, खेलतमासोंमें और उन उन कार्य्योंमें होता है, यह बाभ्रवीयोंका सिद्धान्त है ॥ ४२ ॥

देवताभिगमने देवतामभिपूजयितुं यद्गमनं तत्र । यात्रायां कस्याश्चिद्देवतायाः । जलावतरण इति यदा स्नातुं जनसमूहो जलमवतरति न चालक्ष्यते स्थानात्स्थानान्तरगमनम् । अग्न्युत्पाते दह्यमानात्प्रातिवेश्यगृहाद्गृहान्तरगमनं संभवति । चौरविभ्रमे चौराः किल पतन्तीति । अत्र सिध्यति (?) । चक्रारोपणे जनपदं निवेशयितुं स्वीकारारोपणे (?) । तदाह्यनुस्थापितप्रकारत्वात्स्त्रीजनो न सुखी भवति । तेषु तेषु च कार्येष्विति येषु येषु जनानां संमर्दः शून्यता वा ॥ ४२ ॥

जहां बहुतसी मिलकर देवपूजनको जा रही हों, किसी देवताकी यात्रामें । जब स्नान करनेके लिये जनसमूह जलमें तैरता है उसमें, एक जगहसे दूसरी जगह जाना नहीं दीख पड़ता । जब कि जलते हुए पड़ोसीके घरसे दूसरे घरमें जाना होता है । जब कि यह हल्ला मचता है कि डाकेवाले आ रहे हैं हुशियार हो जाओ । ऐसे मोकोंपर समागम सिद्ध हो सकता है । देशको अपने राज्यमें मिलानेको प्रजासे स्वीकार करानेके समय भी समागम हो सकता है, क्योंकि ऐसे समयमें कोई प्रकार तो उपस्थित रहता नहीं, इस कारण स्त्रियाँ सुखी नहीं रहतीं । अथवा उन कार्य्योंमें ऐसा हो सकता है जिनमें जनसमुदाय इकट्ठा होता है अथवा जनशून्य रहता हो ॥ ४२ ॥

संग्रह ।

" इति सुघटितसद्भावा व्यसनविवाहोत्सवे यागे ।
उद्यानयात्राजलावतारे हुतवहोत्पाते प्रविचिन्तितात्यये "

जब दूती देखे कि इनमें सद्भाव बँध चुका है तो इन २ समयोंमें उसे मिला दे। अनुवादकने चोर आदिके भयके समयोंका व्यसन शब्दसे ग्रहण कर लिया है।

दूतीके घर मिलना।

सखीभिक्षुकीक्षपणिकातापसीभवनेषु सुखोपाय इति गोणिकापुत्रः ॥ ४३ ॥

सहेली, साधनी, भिखारिनि, संन्यासिन और तपस्विन इनके घरमें मिलना-झुलना सुखके साथ हो सकता है। ऐसा गोणिकापुत्रका मत है ॥ ४३ ॥

सुखोपाय इति यदैवेच्छति तदैव भवति ॥ ४३ ॥

इनके घरमें तो जब चाहे तब समागम हो सकता है ॥ ४३ ॥

दूतियोंपर एक दृष्टि।

पहिले अधिकरणके पाँचवें अध्यायमें दूती व इनके गुणोंको बताया है, यहां इनका मुख्य विषय है, इस कारण यहां फिर स्मरण किया है । कल्याण-मल्लने इनका संग्रह किया है कि-

" मालाकारवधूः सखी च विधवा धात्री नटी शिलिपनी,
सैरन्ध्री प्रतिगेहिकाथ रजकी दासी च सम्बन्धिनी ।
बाला प्रव्रजिता च भिक्षुवनिता तक्रस्य विक्रेत्रिका,
मान्या कारुवधू विदग्धपुरुषैः प्रेष्या इमा दूतिकाः ॥"

गान्धिकी, स्थिर भाववाली कौली, चतुरपुरुषोंके यहां प्रायः शुकसारिका आदिकी प्रतिमा ये दूती होती हैं। इसमें जो नम्बर दिये हैं वे कोकको लेकर हैं। कोक कल्याणमल्लसे इतनी और अधिक मानते हैं। अनंगरंगने-रजकी, मालिनि, धात्री, योगिनी, प्रतिवेशिनी, सखी, गोपालिका, चेटी, नापिती इन्हें दूतीकर्मयोग्य बताया है। सम्बन्धिनी दूती—सम्बन्धिनी भी दूती कर्म कर सकती हैं, इसका कारण यह है, कि उसपर विश्वास बना रहता है। घरके आनेजानेमें किसी प्रकारकी शंका नहीं करते। इस कारण यह सबसे भयंकर होती है। कन्या संप्रयुक्तकमें यही शोचकर यह कहा है कि हो सके तो किसीको उसके पास छोड़ दे जो सम्बन्ध प्राप्त कर ले। जो दूतीके काममें

निपुण होती हैं उन्हें कोई सम्बन्ध मिल जाय तब तो उनका भाग्य ही जग गया । नहीं तो किसी न किसी तरहका सम्बन्ध पैदा कर ही लेती हैं । हमने 'वारवधूविवेचन' में देखा था कि वेश्या या चरित्रहीन माता या वेश्या माता अपनी लड़कीका कुट्टिनीपना बड़ी सावधानीके साथ कर जाती है । कामसूत्रकारने कुलटाको भी एक प्रकारकी वेश्या ही माना है । यदि ऐसी माता हो तो न जाने वह अपनी लड़कीसे क्या २ खेल खिला जाती है। यदि माता न भी हो तो भी ऐसी स्त्रियाँ बने जहां तक माता या बहिनका ही सम्बन्ध बनाती हैं । न जाने ये क्या २ कर करा डालती हैं । यही कारण है कि लोग ऐसी स्त्रियोंको कभी विश्वासपात्र नहीं मानते । संकेतस्थानोंमें दूतीका घर तो पहिले बता ही दिया गया है ।

तस्या एव तु गेहे विदितनिष्क्रमप्रवेशे चिन्तितात्ययप्रतीकारे प्रवेशनमुपपन्नं निष्क्रमणमविज्ञातकालं च तन्नित्यं सुखोपायं चेति वात्स्यायनः ॥ ४४ ॥

इसपर वात्स्यायन आचार्य्यका तो यह मत है, कि उस नायिकाके घर भी हो सकता है; यदि उसके घुसने और निकलनेका मार्ग विदित हो । जिससे मोंकेपर अपना बचाव किया जा सके ॥ ४४ ॥

तस्या एवेति नायिकायाः । निष्क्रम्यते प्रविश्यते च येन मार्गेण तदुभयं विदितं वीक्षितं यत्र गेह इति। तदप्यविज्ञातकालमनियतकालं प्रवेशनं निष्क्रमणं चोपपन्नं युक्तमनुपलक्ष्यमाणत्वाद्भवति। प्रवेशनं निष्क्रमणं चानित्यं तस्याः तदासंनिहितत्वात्। न सख्यादिगृहेषु । सुखोपायं च विदितमार्गत्वात्प्रतिविहितदोषत्वाच्च ॥ ४४ ॥

जिस घरमें जिस मार्गसे निकाला जा सके वह और जिससे घुसा जा सके वह देखे हुए हों । वह भी ऐसा हो कि जिसके जाने और आनेके समयका किसीको पता न हो कि कौनसे समय घुसता तथा कौनसे समय निकलता है तब ही छिपकर जाना आना हो सकता है । वह सदा पास ही है तो जाना और आना सदा नियत समयपर नहीं होता पर सखी आदिके घर ऐसा नहीं हो सकता, कि जब तबीयत चाहे तब चला जाय । यही उपाय सुखपूर्वक है, क्योंकि आने जानेका रासता मालूम है और दोषोंको दूर कर ही दिया है ॥ ४४ ॥

दूतीयोंके भेद ।

सामान्येन कर्माण्युक्त्वा दूतीभेदं प्रदर्शयन्नाह—

सामान्यरूपसे दूतियोंके काले कारनामे बताकर अब दूतियोंके भेद बताते हैं, कि—

निसृष्टार्था परिमितार्था पत्रहारी स्वयंदूती मूढदूती भार्यादूती मूकदूती वातदूती चेति दूतीविशेषाः ॥ ४५ ॥

निसृष्टार्था, परिमितार्था, पत्रहारी, स्वयंदूती, मूढदूती, भार्य्यादूती, मूकदूती और वातदूती ये दूतियोंके छः भेद हैं ॥ ४५ ॥

निसृष्टार्था दूती ।

नायकस्य नायिकायाश्च यथामनीषितमर्थमुपलभ्य स्वबुद्धया कार्यसंपादिनी निसृष्टार्था ॥ ४६ ॥

जो नायक और नायिकाकी सच्ची इच्छाके अनुसार मतलबको जानकर अपनी बुद्धिसे कार्य्य संपादन करे उसे 'निसृष्टार्था दूती' कहते हैं ॥ ४६ ॥

यथामनीषितमिति—यथेप्सितम् । इयमेवाकृतपरस्परपरिग्रहौ (यथा संप्रयुज्येतेति त्रिविधं कार्यं संपादयति ।) यथा तावनुरज्येते यथा कृतपरस्परपरिग्रहौ संप्रयुज्येते तत्त्रिविधं कार्यं संपादयति । दूती निसृष्टार्थेति इदं करणीयमित्येतावतोऽर्थस्य निसृष्टत्वात ॥ ४६ ॥

यही निसृष्टार्था दूती स्त्री और पुरुषोंके मनकी सच्ची चाहको ताड़कर, जैसे मिल जायँ उसी तरह तीन तरहके कार्य्यका संपादन करती है, यानी जिन्होंने परस्परमें परिग्रह नहीं किया वे मिल जायँ, इस तरह करती है। जिस प्रकार उनमें प्रेम हो जाय यह कारवाई भी करती है । आपसमें परिग्रह किये हुए मिल जायँ यह कार्य्य भी इसी दूतीका होता है । इससे केवल यही कहा जाता है, कि इस कामको कर दे और कुछ नहीं कहा जाता; बाकी यह सब आप ही कर गुजरती है, इस कारण इसे 'निसृष्टार्था दूती' कहते हैं ॥ ४६ ॥

१"बुद्ध्वैकस्य समीहितं आत्मधियैवारभेत या कार्यं सा हि निसृष्टार्थोक्ता॥"
जिसकी ओरसे कार्य्य करे उसके अभिलाषमात्रको जानकर अपने ही बुद्धिबलसे कार्य संपादन कर दे, वह ' निसृष्टार्था ' दूती है ।

अस्या विषयमाह—

यह दूती किस स्थलमें कार्य्य करती है इस बातको बताते हैं कि—
इसका विषय ।

सा प्रायेण संस्तुतसंभाषणयोः ॥ ४७ ॥

यह प्रायः जिनमें जानपहिचान व बातचीत है, उनका कार्य्य करती है ४७

संभाष्यत इति सभाषा संभाषणम्।[1] 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति ल्युट् । संस्तुतौ च तौ संभाषणौ च । यदि वा संस्तुतं च संभाषणं च ययोरस्तीति मत्वर्थीयोऽकारः । तयोः प्रायेण दृश्यते । अन्यतरप्रयुक्ता विषयशुद्धिगोचरत्वात् ॥४७॥

'संस्तुतसंभाषणयोः' इसके दो अर्थ किये हैं, कि या तो जिनकी दोनों तरफके वचन हों या बातें और जानपहिचान दोनों हों। यह दूती उनमें कार्य्य कर सकती है इसे नायक नायिका दोनों ही औचित्यका विचार करके प्रयुक्त करते हैं ॥ ४७ ॥

नायिकया प्रयुक्ता असंस्तुतसंभाषणयोरपि ॥ ४८ ॥

नायिकाकी भेजी हुई विना परिचय और विना बातचीतके भी कार्य्य करती है ॥ ४८ ॥

नायिकया च प्रयुक्तया प्रायेणासंस्तुतभाषणयोरपि परिचितावेव केवलं न तु संभाषणमनयोरस्ति । यत इदमुक्तम्—'आदौ परिचयं कुर्यात्ततश्च परिभाषणम्' इति । तथा संभाषमाणोऽपि नायकः संस्तवत्वात्सुसाधन इति प्रायेण दृश्यते । न तु नायकेति ॥ ४८ ॥

नायिका इसे औचित्यका विचार करके विना बातचीत हुए भी सामान्य परिचयमें भी भेज सकती है । इसीकारण यह कहा गया है कि—" सबसे पहिले परिचय होना चाहिये, फिर परिभाषण हो " यह बात परिस्फुट है कि जिस प्रकार बोल चालवाला नायक प्रस्तुत होनेके कारण भली प्रकार सिद्ध कर लिया जा सकता है, उसी तरह स्त्रियाँ सिद्ध नहीं हो सकती हैं ४८

---

१ 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'भाष व्यक्तायां वाचि' धातुसे ' संभाष्यते ' इस लौकिक विग्रहमें 'गुरोश्च हलः' इस सूत्रसे 'अ' प्रत्यय होकर 'संभाषा' शब्द बनता है । इसका पर्य्याय संभाषण दे रहे हैं, यह 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इस सूत्रसे 'ल्युट्' प्रत्यय होकर ' संभाषण ' शब्द बनता है । यह बात पहिले पक्षकी है । दूसरे पक्षमें मत्वर्थीय ' अ ' प्रत्यय करके निर्वाह किया है ।

कौतुकाच्चानुरूपौ युक्ताविमौ परस्परस्येत्यसंस्तुतयोरपि ॥ ४९ ॥

यदि निसृष्टार्था दूती दोना बराबरवालोंके मिलानेमें युक्त हों उन्हें वह विना देखे मिल भी मिला देती है ॥ ४९ ॥

प्रायेण युक्ताविमौ समानशीलवयस्त्वात्परसंयोजने युक्ताविति निसृष्टार्थाया यदा कौतुकमुत्पद्यते तस्माच्चासंस्तुतयोरपि द्रष्टव्या न तु प्रायेण । तथाविधार्थस्य कादाचित्कत्वात् ॥ ४९ ॥

यदि यह दूती अपनी इच्छासे प्रेरित होकर उन बराबरवालोंको मिलाना चाहती है, जो कि बराबरकी आयुके हैं तो प्रायः उनमें भी यह कर गुजरती है पर ऐसा कभी २ ही होता है ॥ ४९ ॥

परिमितार्था दूती ।

कार्यैकदेशमभियोगैकदेशं चोपलभ्य शेषं संपादयतीति परिमितार्था ॥ ५० ॥

कार्य्यके एक देश यानी अभियोगके एकभागको जानकर, बाकीका उपाय स्वयं कर ले तो वह ' परिमितार्था दूती ' होती है ॥ ५० ॥

कार्यस्याभियोगस्यैकदेशमसमापितमन्यतरस्मादुपलभ्य शेषमसमापितं संपादयतीति परिमितार्था । परिमितः परिच्छिन्नोऽर्थोऽस्या इति ॥ ५० ॥

नायक व नायिका दोनोंमेंसे किसीसे कार्य्य व अभियोगको विना पूरा सुने व पाये जितना बाकी हो उसे स्वयं संपादन कर देनेवाली ' परिमितार्था दूती ' हुआ करती ह । इसके इस नामका कारण यह है, कि इसका प्रयोजन परिमित रहता है, यानी इसे कार्य्य करनेका एकदेश तो मिल जाता है बाकीका ही ढूंढ़ना पड़ता है ॥ ५० ॥

इसका विषय ।

विषयमाह—

यह दूती किस जगह कार्य्य करती है, इस बातको बताते हैं कि—

सा दृष्टपरस्पराकारयोः प्रविरलदर्शनयोः ॥ ५१ ॥

---

१ "लिङ्गेनोन्नीय या कार्य्यं शेषं सम्पादयति स्वयमेवैषा परिमितार्थोक्ता।" जिसे कुछ उपाय और बातें बता दी जायँ बाकीका आप ही अन्दाज कर ले एवम् उस कार्य्यका संपादन कर दे तो " परिमितार्था " कहाती है ।

जहां स्त्रीपुरुषोंने आपसमें एकदूसरेकी प्रेमचेष्टाएँ देख ली हों पर कभी २ दीख पड़े तो उनमें यह अपना काय करती है ॥ ५१ ॥

दृष्टपरस्पराकारयोरित्याकारग्रहणेन दृष्टं परस्परं (?) नान्यत्किंचित्तयोः कार्यशेषं संभाषणम् । प्रविरलदर्शनयोरभियोगशेषम् ॥ ५१ ॥

'दृष्टपरस्पराकारयोः' जो इसमें आकारग्रहण किया है इसका यह तात्पर्य है कि-जिन्होंने आपसमें देख लिया, उनका और कुछ कार्य्यशेष संभाषण नहीं है । कभी २ एक दूसरेको दिखाई ही पड़ते हैं उनमें अभियोग शेष है ॥ ५१ ॥

पत्रहारी दूती ।

संदेशमात्रं प्रापयतीति पत्रहारी ॥ ५२ ॥

जो संदेशमात्रको प्राप्त करे उसे पत्रहारी कहते हैं ॥ ५२ ॥

संदेशमात्रमिति कार्यस्य स्थिरत्वात्तन्मात्रं पत्रेण वचसा [वा] प्रापयतीति पत्रहारीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

कार्य्यके स्थिर होनेसे केवल उतना ही पत्रद्वारा व वाणीसे इधरसे उधर और उधरसे इधर प्राप्त करावे उसे 'पत्रहारी' कहते हैं ॥ ५२ ॥

इसका विषय ।

कस्मिन्विषय इत्याह—

यह पत्रहारी दूती किस विषयमें होती है ? यह बताते हैं कि—

सा प्रगाढसद्भावयोः संसृष्टयोश्च देशकालसंबोधनार्थम् ॥ ५३ ॥

जिनमें गहरा प्रेम है अथवा जो मिल चुके हैं, उन्हें एक दूसरेके मिलने-झुलनेकी जगह समय बतानेके लिये होती है ॥ ५३ ॥

प्रगाढसद्भावयोः । संप्रयोगं प्रत्यभिमुखत्वात् । संसृष्टयोश्च कृतसंसर्गयोश्च द्रष्टव्या । किमर्थमित्याह—देशकालेति । अस्मिन्काले स्थाने वानयोः समागम इति प्रबोधनार्थमन्यतरेण युज्यते सा ॥ ५३ ॥

जो एक दूसरेसे मिलनेकी प्रतीक्षा करते हों अथवा जिनका संसर्ग हो चुका हो उनमें होती है । इसका कार्य्य क्या है ? यह बताते हैं कि इस

---

१ "संसृष्टयोस्तु नेत्री सन्देशं पत्रहारी स्यात्" जो परिचितोंके संदेशको इधर उधर पहुँचाये उसे 'पत्रहारी' कहते हैं ।

समय इस जगह हमारा तुम्हारा मिलना होगा, इस बातको एक दूसरेको समझानेके लिये एक दूसरा इसका प्रयोग करता है ॥ ५३ ॥

स्वयं दूती ।

स्वयंदूती (विश्लिष्टार्था) द्विविधा । तत्रैका परार्था या परेण प्रयुज्यते । द्वितीयात्मार्था सा स्वयंदूतीति द्वितीयं नाम लभते । तस्या विधिमाह—

स्वयंदूती दो तरहकी होती है—एक तो वह जो दूसरेके लिये दूसरेने प्रयुक्त की हो, दूसरी वह जो अपने लिये हो । जो अपने लिये होती है उसे स्वयंदूती कहते हैं। यह किस प्रकार करती है, इस बातका बताते हैं कि—

दौत्येन प्रहितान्यया स्वयमेव नायकमभिगच्छेदजानती नाम तेन सहोपभोगं स्वप्ने वा कथयेत् । गोत्रस्खलितं भार्यां चास्य निन्देत् । तद्व्यपदेशेन स्वयमीर्ष्यां दर्शयेत् । नखदशनचिह्नितं वा किंचिद्दद्यात् । भवतेऽहमादौ दातुं संकल्पितेति चाभिदधीत । मम भार्याया का रमणीयेति विविक्ते पर्यनुयुञ्जीत सा स्वयंदूती ॥ ५४ ॥

दूसरीने दूतीभावसे भेजी हुई स्वयम् ही नायकके साथ मिल ले । विना जानती हुईसी उसके साथ स्वप्नके सहवासको कहे । अपने पतन तथा इसकी स्त्रीकी निन्दा करे, उसके वहाने अपने आप ईर्ष्या दिखाये वा नाखून और दाँत लगाकर कुछ दे । और यह कहे कि मेरे मातापोंने पहिले आपको ही व्याहनेका संकल्प किया था । मुझमें और आपकी स्त्रीमें दोनोंमें सुन्दर कौन है । एकान्तमें जो सब ओरसे अनुयोग करे उसे ' स्वयंदूती ' कहते हैं ॥५४॥

दौत्येनेति दूतक्रियया अन्यया नायिकया प्रहिता या स्वयमेव नायकमभिगच्छेत्कामयेत्सा स्वयंदूतीति संबन्धः । अभिगमोपायोपदेशमाह—अजानती नामेति । अद्य स्वप्ने त्वयाहं किलोपभुक्तेति । गोत्रस्खलितं निन्देत् ईदृशं तदस्मदीयं नाम भूतं येन त्वया भार्याहूयत इति । भार्यां चास्य निन्देत्—युक्तमाह्वयितुं यदेयं रूपवती स्यात् । तद्व्यपदेशेनेति गोत्रस्खलितमपदिश्य स्वयमीर्ष्यां दर्शयति । नखादिचिह्नितं भावसूचनार्थम् । किंचिदिति ताम्बूलावसरे रागादिकम् (१) ददतीति चानुरागव्यापनार्थमिदं ब्रूयादित्याह—भवतेति । का रमणीयेति । (अथ) को ज्ञास्यतीति ॥ ५४ ॥

जिसे कोई दूसरी नायिका अपनी दूती बनाकर भेजे, किन्तु जो उसका ध्यान छोड़कर आप ही उससे मिल बैठे उसे "स्वयंदूती" कहते हैं। यह पूर्वापरी संबन्ध है। उस दूतीके मिलनेके उपाय बताते हैं कि–'विना-जाने हुए ही कह दे कि आज रातको आपने मुझे स्वप्नमें पाया, यह बिलकुल सच है' यह कहकर अपने पतनकी निंदा करे, कि आज हमारी ऐसी तकदीर है कि आप हमें न बुला, अपनी स्त्रीको ही बुलाते हैं। यदि वह सुन्दरी होती तो बुलाना भी ठीक था। इसी पतनके बहाने आप ही ईर्ष्या दिखाने लग जाय। अपने भावको जतानेके लिये वस्तुमें नाखून और दाँतोंके निशान करके उसे दे, पान देनेके समय रागादिकोंमें यही व्यवस्था करे और दे। पिताका देनेके संकल्पका नाम अपने प्रेमको दिखानेके लिये लिया जाता है तथा उसका प्रेम जाननेके लिये पूछा जाता है, कि तुम्हें कौन अच्छी लगती है। एकान्तमें इसलिये किया जाता है कि कौन जानेगा ॥ ५४ ॥

स्वयंदूतीसे मिलनेका स्थल।

तस्या विविक्ते दर्शनं प्रतिग्रहश्च ॥ ५५ ॥

उसका दर्शन और प्रतिग्रह एकान्तमें होना चाहिये ॥ ५५ ॥

उसे अकेलेमें ही दीखे तथा जब स्वीकार करे या संदेश ले दे तो कोई न होना चाहिये ॥ ५५ ॥

दूसरी तरहकी स्वयंदूती।

प्रतिग्रहच्छलेनान्यामभिसंधायास्याः संदेशश्रावणद्वारेण नायकं साधयेत् तां चोपहन्यात्सापि स्वयंदूती॥५६॥

प्रतिग्रहके बहाने दूसरी अभिसन्धान करके उसके संदेश सुनानेके जरियेसे नायकको सिद्ध कर ले उसको नायकतक न पहुँचने दे तो वह भी स्वयंदूती ही है ॥ ५६ ॥

स्वयंदूत।

एतया नायकोऽप्यन्यदूतश्च व्याख्यातः ॥ ५७ ॥

---

१ "दौत्यमिषेणान्यस्या नायकमेत्यात्मगुणभावान्।
व्याजेन वेदयन्ती स्वार्थं घटेत् स्वयंदूती।"

जो किसीके दौत्यके बहाने नायकके पास पहुँचकर किसी बहाने अपने गुणोंको निवेदन करे व अपना काम बना ले उसे 'स्वयंदूती' कहते हैं।

नायक भी जिस प्रकार दूसरेका दूत बनकर अपना काम बनाता है वह भी इस स्वयंदूतीके निरूपणसे कह दिया गया ॥ ५७ ॥

जो काम स्वयंदूती करती है वही 'स्वयंदूत' भी करता है॥ ५७ ॥

मूढ दूती ।

नायकभार्यां मुग्धां विश्वास्यायन्त्रणयानुप्रविश्य नायकस्य चेष्टितानि पृच्छेत् । योगाञ्शिक्षयेत् । साकारं मण्डयेत् । कोपमेनां ग्राहयेत् । एवं च प्रतिपद्यस्वेति श्रावयेत् । स्वयं चास्यां नखदशनपदानि निर्वर्तयेत् । तेन द्वारेण नायकमाकारयेत्सा मूढदूती ॥ ५८ ॥

नायककी भोलीभाली स्त्रीको विश्वास दिला, विना किसी कष्टके उसके दिलके भीतर घुसकर उससे नायककी बातें पूछे, योगोंको सिखाये, अभिप्राय सूचक सिंगार करे; पतिसे उसे नाराज कर दे, कि इस प्रकार कर यह सुना दे। आप उस स्त्रीके शरीरमें नाखून और दाँतोंके निशान कर दे। उसे क्लेशके द्वारा जो नायकको अपनी चेष्टा समझाये उसे 'मूढदूती' कहते हैं ॥ ५८ ॥

साकारं मण्डयेत् स्वाभिप्रायसूचनार्थम् । कोपमस्मिन्ग्राहयेत् आत्मनोऽपीर्ष्यां दर्शयितुम । चपलोऽयमन्यस्यां सक्तः किमस्ति येन न कुप्यसीति । एवं च प्रतिपद्यस्व यथाहमाचक्ष इति तां श्रावयेत् । तत्प्रतिकूलां मामनुकूलां ज्ञास्यतीति । स्वयं चास्यां भार्यायां नखदशनपदानि विदधीत, संप्रयोगाभिलाषख्यापनार्थम् । तेनेति क्लेशपथोक्तेन (?) द्वारेण । नायकमाकारयेदाकारं ग्राहयेत, येनासौ संप्रयोगार्थिनीति विद्यात् । सेति भार्या । मूढदूती दूत्यर्थापरिज्ञानादियं परीक्षा द्रष्टव्या ॥ ५८ ॥

इशारे सूचक मंडन करना अपने आशयको बतानेके लिये है । अपनी भी ईर्ष्या दिखानेके लिये स्त्रीको नाराज करे, कि 'यह बड़ा चपल है, दूसरीमें आसक्त रहता है फिर क्या बात है जो तू इसपर नाराज नहीं होती । मैं जैसा कहती हूं उस तरह कर' यह बात उसे सुनाये । न करनेपर अपनी अरुचि दिखाये, कि अब मैं तुझसे इसी बातपर नाराज हूं फिर प्रसन्न हो जाऊँगी यह तू देखेगी । आप भी नायकसे अपने मिलनेकी इच्छा दिखानेके

---

१ इसी तरह जो भेद दूतियोंके हैं, वे दूतोंके भी हो सकते हैं ।

लिये उसकी स्त्रीके नाखून और दाँत लगा दे । उन दोनोंकी लड़ाईके द्वारा अपने आशयको पूर्ण प्रकट कर दे, कि यह मुझसे मिलना चाहती है। उस स्त्रीकी वह भार्य्या 'मूढदूती' है। क्योंकि वह उसका इस प्रकार दूतीपना-कर गुजर रही है, कि जो उसे भी इसका पता नहीं। इसी तरह जिसे यह पता न चले कि दूतीपना किया जा रहा है और दूतीपना करे उसे 'मूढ-दूती' कहते हैं यही इस दूतीकी परीक्षा है ॥ ५८ ॥

इसका उत्तर इसी द्वारा ।

तस्यास्तथैव प्रत्युत्तराणि योजयेत् ॥ ५९ ॥

उसके देनेके जबाबको उसे ही दे दे ॥ ५९ ॥

तस्या इति नायिकायाः । तयैवेति मूढदूत्या । प्रत्युत्तराणि प्रत्यभियोगान् । यदि नायिका ॥ ५९ ॥

जो मूढदूतीसे कार्य्य ले रही हो, उसे नायकको जो उसके आकारका उत्तर देना चाहिये यानी बदलेका जो करना चाहिये वह उसीके साथ कर देना चाहिये यदि नायिका हो तो ॥ ५९ ॥

'नायकोऽप्यन्यदूतश्च व्याख्यातः' इत्युक्तं च तत्र गोचरे लज्जायां वा यदि स्वयं दौत्यं न प्रतिपद्येत तदा स्वभार्यया तामाकारयेदित्याह—

'छप्पनवें सूत्रमें नायकको भी अन्यका दूत होकर स्वयं दूतीके कार्य्य करने चाहियें' यह कह दिया है। यदि नायकको देखकर लज्जा हो या लज्जाके मारे स्वयम् दूतीपना न कर सके तो अपनी स्त्रीके द्वारा अपनी चेष्टाएँ बताये और अनुकूल करे, इसी लिये सूत्र करते हैं कि—

स्वभार्यां वा मूढां प्रयोज्य तया सह विश्वासेन योजयित्वा तयैवाकारयेत्। आत्मनश्च वैचक्षण्यं प्रकाशयेत् । सा भार्या दूती तस्यास्तयैवाकारग्रहणम् ॥ ६० ॥

---

१ "मुग्धां नायकभार्य्यां यत्नाद् विश्वास्य या रहः पृष्ट्वा ।
अभिलाषलिङ्गमादौ तेन द्वारेण नायकं गमयेत् ॥"

नायककी भोली स्त्रीको प्रयत्नके साथ अपनी विश्वासपात्र बना ले। फिर नायककी रति-चेष्टाका पता लगाये। फिर उसकी स्त्रीको इस प्रकार सजाये जो उससे सजानेवालीका पता लग जाय एवम् इसी प्रक्रियाके द्वारा नायकसे मिल ले तो वह नायककी उसकी 'मूढदूती' हुई।

अपनी बेसमझ स्त्रीको उसके साथ मिलाकर विश्वासपात्र बना उसीसे अपने भावको उसे समझाये । अपनी चतुरताको प्रकट करे तो उसे भार्य्यादूती कहते हैं । माशूकाका भाव उसी स्त्रीसे जाना जा सकता है ॥ ६० ॥

मूढामज्ञाम् । विज्ञा हि विकल्पयति मामनया योजयतीति । विश्वासेन हेतुना योजयित्वा तयैवाकारयेत्स्वभार्यया आकारं ग्राहयेत् । वैचक्षण्यं कलाकौशलं तयैव प्रकाशयेत् । सा भार्यादूती पत्रहारीप्रकारा । तयैव भार्यादूत्या तस्या नायिकाया आकारग्रहण प्रत्युत्तरं प्रथममित्यर्थः ॥ ६० ॥

समझदार होगी वह तो जान जायगी कि इस कामको मुझे इसके साथ मिलाता है, इस कारण बेसमझ ही चाहिये । कार्य्य करनेका साधन है, अपना विश्वासपात्र बना देना । उस स्त्रीको अपनीके द्वारा ही अपने भावको समझवा दे । अपने रतिकौशल आदिको उसीके द्वारा प्रकट करा दे । यह भार्य्यादूती पत्रहारी जैसी ही है । उस भार्य्यादूतीसे उस नायिकाके प्रथम प्रत्युत्तरको ग्रहण करे, जो कि उसने अपने इशारे आदिके बदलेमें दिया हो ॥ ६० ॥

मूकदूती ।

यदि स्वभार्याया न गोचरस्तदा किं प्रतिपद्येतेत्याह—

यदि वहां अपनी स्त्रीके मिलनेकी जगह न हो वा स्त्रीको न दीखे तो क्या करना चाहिये, इसके बारेमें कहते हैं कि—

बालां वा परिचारिकामदोषज्ञामदुष्टेनोपायेन प्रहिणुयात् । तत्र स्रजि कर्णपत्त्रे वा गूढलेखनिधानं नखदशनपदं वा सा मूकदूती । तस्यास्तयैव प्रत्युत्तरप्रार्थनम् ॥

जिसे भले बुरेका ज्ञान न हो ऐसी बालक परिचारिकाको शुद्ध उपायसे भेजे । उसके साथ जान पहिचान हो जानेपर मालामें वा कर्णपत्रमें गूढ लेखोंको रख दे और नाखून और दाँतोंके निशान कर दे । इस तरह जो

---

१ "अपि नायकः स्वभार्य्यां प्रयोज्य तद्वत् समायोज्य ।
प्रकटयति नागरत्वं तां भार्य्यां दूतिकां प्राहुः ॥"

यदि नायक किसीके पीछे अपनी स्त्रीको लगाकर उसकी विश्वासिनी बनाकर पीछे उसके द्वारा अपने आकारको व्यक्त करे तो इसे 'भार्य्यादूती' कहते हैं ।

कार्य्य करे उसे " मूकदूती " कहते हैं । उसके प्रतिउत्तरको उसी नायिकासे माँगे ॥ ६१ ॥

बालां वा परिचारिकां नायकोचिताम् । अदोषज्ञामधूर्ताम् । अदुष्टेनेति बालक्रीडनकाद्युपायेन । नायिकागृहं प्रतिदिनं प्रहिणुयात् । तत्रेति तस्यां जातपरिचयायां गूढलेखविधानं च वाचयित्वा मां नायकोऽप्याकारयतीति सा प्रतिपद्यते । नखदशनपदानि च स्रजि कर्णपत्रे वा निदध्यादिति योज्यम् । सा मूकदूती । अर्थानभिभावनात् । इयं पत्रहारीप्रकारा । तस्या नायिकायास्तथैव प्रत्युत्तरप्रार्थनम् । यदि तया कर्णपत्रात्पत्रं गृहीतं किमत्र मृगयसीति ॥ ६१ ॥

जो बालिका नोकरानी धूर्ता न हो एवम् नायिकाके पास भेजने लायक हो उसे बालक्रीडा आदिके उपायसे उसके घर प्रतिदिन भेज दे । यदि उस बालिका परिचारिकाके साथ गहरा परिचय हो जाय तो गूढलेख इसलिये भेजे जाते हैं कि जिनको बाँचकर यह जान जाय कि नायक भी चेष्टा करता है । ये निशान माला वा कर्णपत्रपर होने चाहिये । इस इधर उधरके करनेवालीको मूकदूती कहते हैं, क्योंकि वह इस बखेड़ेका मतलब नहीं समझ पाती । यह भी एकप्रकारकी संदेशहारिणी जैसी ही होती है, उस नायिकाके उत्तरको उसीसे मांगना चाहिये । यदि वह कर्णपत्रसे पत्र उठाकर ध्यानसे बाँचे तो उससे पूछे कि क्या ढूंढती हो ॥ ६१ ॥

वातदूती ।

यत्र बालाया अप्यगोचरस्तत्र किं प्रतिपद्येतेत्याह—

जहां यह बालिका भी वहांतक न पहुँचनेके कारण कामयाब न हो वहां क्या करना चाहिये ? इस विषयमें कहते हैं कि—

पूर्वप्रस्तुतार्थलिङ्गसंबद्धमन्यजनाग्रहणीयं लौकिकार्थं द्व्यर्थं वा वचनमुदासीना या श्रावयेत्सा वातदूती । तस्या अपि तथैव प्रत्युत्तरप्रार्थनमिति तासां विशेषाः ॥ ६२ ॥

---

१ बालां परिचारिकां वा दोषज्ञां प्रेषयेत्ततम् ।
तत्र स्रजि कर्णपत्रे गूढं सन्देशमालिख्य ॥

जिस बिचारीको कुछ भी पता नहीं है ऐसी बालक परिचारिकाको माला वा कर्णपत्रपर गूढ सन्देश लिखकर भेजे तो इसे ' मूकदूती ' कहते हैं ।

पहिलेकी बातोंके बोधकोंसे युक्त जिन्हें कि दूसरा आदमी न समझ सके, ऐसे द्व्यर्थक समझने योग्य वचनोंको जो उदासीन सुनाये उसे 'वातदूती' कहते हैं। उस नायिकासे अपनी बातका वही उत्तर माँगे । ये दूतियोंके भेद पूरे हुए ॥ ६२ ॥

पूर्वप्रस्तुतेति–नायिकानायकयोर्यत्पूर्वप्रस्तुतं वृत्तं तस्य चिह्नं तेनाभिज्ञानार्थं संबद्धं वचनम् । अन्यजनाग्रहणीयम्। तस्यामेव तदर्थस्य ग्रहणात्। अत्र म्लेच्छितकविकल्पकला द्रष्टव्या। लौकिकार्थं च लोकविदितार्थम् । द्व्यर्थमप्रस्तुतार्थस्यापि वाचकत्वात्। उदासीना या न कचित्प्रतिप्राययाए (श्रावयेत्) सा वातदूतीत्युच्यते । पत्रहारीप्रकारेव चेति । तयैव प्रत्युत्तरप्रार्थनं तस्य हि प्रश्नस्य प्रतिप्रश्नं याचेदित्यर्थः । तासां विशेषा निसृष्टार्थादीनां स्वयंदूत्यादयो विशेषाः। एवमन्येऽपि यथासंभवमत्रैव द्रष्टव्याः । यथाहुर्बाभ्रवीयाः—' पुत्रिका चित्ररूपाणि पशवः शुकसारिकाः । सर्वेषां गूढभावानां दूतकर्माणि कुर्वते ॥' इति॥ ६२॥

नायक और नायिका दोनोंकी जो पहिली चरित्र चित्रणा हो, उस वचनसे उसकी याद आ जाय। जिसे वही समझ सके, दूसरा पासवाला न जान सके,यानी उसके तात्पर्य्यका उसीमें ग्रहण हो। इस वातचीतमें म्लेच्छितकके विकल्पकी कलाका प्रयोग होना चाहिये! ऐसे शब्द हों जिन शब्दोंका सभी प्रयोग करते हों। जो अप्रस्तुत अर्थ हो उसे भी शब्द कहते हों। जो उदासीन हो, यानी जिसकी यह प्रसिद्धि न हो, कि यह ऐसी ऐसी है। ऐसी जो बातें सुनाकर उदासीनरूपसे कार्य्य कर गुजरे उसे 'वातदूती' कहते हैं। यह भी पत्रहारी जैसी ही है, यही अपने प्रश्नका नायिकासे उत्तर माँग ले। निसृष्टार्था आदि जो तीन प्रकारकी दूती बताई हैं उन्हींके स्वयंदूती आदिक भेद हैं। दूती दूतोंके दूसरे भेदोंको भी जो मिल सके उसको भी इसी तरह समझना चाहिये, जैसा कि बाभ्रव्यके शिष्य कहते हैं कि–'पुत्रिका, चित्र, पशु, तोता, मैंना ये गूढभाववाले सबोंका दूतकर्म करते हैं'॥

---

१ " द्व्यर्थं पूर्वं प्रस्तुतमथवा दुर्लक्ष्यमन्येन।
यन्मुग्धया कयाचिद् श्रव्योक्ता वातदूती सा ॥ "

नायक नायिका दोनोंकी आपसकी बातें द्व्यर्थक वाक्योंसे अथवा इस प्रकारसे कह दे, कि दूसरेकी समझमें न आये एवम् अपनी बात भी उदासीनोंकी तरह सुना दे तो इसे " वातदूती " कहते हैं।

साहित्यमें दूती।

कामसूत्रमें जिस प्रकार दूतियोंकी लीला सूत्रके रूपमें बताई है तो साहित्यने इसे भी पल्लवित करके दिखा दिया है । यदि कोई इन बातोंके लिये कामसूत्रके साहित्यांशको किसी दूसरे भावसे देखे तो यह उसकी भूल है, यदि वे भोजनरेन्द्रके संगृहीत सरस्वतीकण्ठाभरणके पांचवें परिच्छेदपर दृष्टि डालेंगे तो उन्हें इस बातका पता चल जायगा कि साहित्यमें किस प्रकार कामशास्त्रका पदार्थ कूट कूटकर भरा है । साहि० द० ने लिखा है कि—" लेख्यप्रस्थापनैः स्निग्धैर्वीक्षितैर्मृदुभाषितैः ।

दूतीसम्प्रेषणैर्नार्य्या भावाभिव्यक्तिरिष्यते ॥ "

प्रेमपत्रोंको भेजना, प्रेमपूर्वक देखना, मधुर भाषण करना एवम् दूती भेजना इन कामोंसे स्त्रीके भावका पता चल जाता है । यदि विचारके साथ देखा जाय तो दूतीकल्पका सार तो इसीमें आगया है । स्वयंदूती—कामसूत्र ३३६ वें पृष्ठमें—" अधरादि चुम्बनोंके साहित्यमें प्रयोग " इस शीर्षकमें नायकोपभुक्ता स्वयंदूती दिखाई है । ५५५ वें पृष्ठमें " सभी एकसी नहीं " के शीर्षकमें ग्रामीणा स्वयंदूती बताया है । साहित्य० ने इसका उदाहरण दिया है, कि—" पान्थ ! पिपासित इव लक्ष्यसे यासि तत्किमन्यत्र ।

न मनागपि वारक इहास्ति घनरसं पिवताम् ॥"

ए राहगीर ! प्यासासा क्यों जा रहा है, यहां तेरा कोई रोकनेवाला नहीं है । मेहका पानी पी लो । यह तो हुआ जाहिरा अर्थ, इसका भीतरी अर्थ यह है कि, ऐ राहगीर ! कामार्त दीखता है तो क्यों दूसरी जगह भज रहे हो ? यदि न हो सके तो एकवार ही रस पी लो, यहांके लिये रोकनेवाला नहीं है, बेखटके आ जाओ, यह स्वयंदूती है । कोई संकेत बता रही है, कि—" नुदति अनार्द्रमना श्वश्रूर्मा गृहभरे सकले ।

क्षणमात्रं यदि सायं भवति न भवति विश्रामः ॥"

सारे घरभरमें मुझे तो मेरी निर्दयी सास सताती रहती है, कभी होता है तो सामके समय विश्राम मिल जाता है । कोई तो इससे भी अगाड़ी बढ़ गई है,वह तो किसी राहगीरको अपने सोनेकी जगह भी बताने लगी है, कि—

" श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं गृहभरे सकले ।

मा पथिक रात्र्यन्ध ! शय्यायां निमंक्ष्यसि ॥ "

यहां सास सोती है, यहां मैं सोती हूं । ए रातके आँधरे राहगीर ! ऐसा न करना कि खाटोंमें लड़खड़ाकर गिर जाय । यहां इसी बहाने खाट बता दी कि रातको यहां आ जाना । हिन्दीके कवियोंने भी इसका प्रयोग किया है,

दो०-" स्वयंदूतिका दूतपन, करहि जु अपने काज ।
मग दुर्गम कारी निशा, पथिक बसहु इत आज ॥ "

क०-" दिन ना घरीको घन घेरि घहरान लागे,
अवनि अँधेरी है है आभा इन्दरनकी ।
पथिक थोरी ही थोरी उमरि अकेली बीर,
अकुलाइ नाईं गहौ गैल कन्दरनकी ॥
द्रुमन लतानमें दिखाति ये नजीक ही सी, दूर दूरताई सेतताई मन्दरनकी ।
कवि पजनेस कोसे दाहिनेहु ओसे कोसे, डगर नगीची बीच बाधा बन्दरनकी॥"

दो०-" वसो पथिक या पौरमें, यहां न आवै और ।
यह मेरो यह सासुको, यह ननदीको ठौर ॥ "

निसृष्टार्था—इसका कामसूत्रका पूरा पार्ट अदाँ मालतीमाधवकी कामन्दकीने किया है, इसकी कुछ छाया हम कन्यासंप्रयुक्तकमें दिखा चुके हैं। जिसे कामसूत्रके निसृष्टार्था दूतीके कृत्य देखनेकी इच्छा हो वह कामन्दकीको देख ले। इसके विषयमें अधिक विस्तार न करके केवल इतना ही इशारा दिये देते हैं, कि जो दूती मुखसे न कहनेपर भी अभिप्राय जानकर स्वतः ही सब कुछ कर गुजरती हैं वे सब निसृष्टार्था दूती ही हैं। चाहे वे सखी हों चाहे और कोई हों। **परिमितार्था**—इसे कुछ रास्ता बताना पड़ता है, पीछे बाकी ये सब आप सोच लेती ह। यह निसृष्टार्था दूतीसे थोड़ी ही कम होती है। कामन्दकीके बताये हुए उपायोंको बढ़ाकर जिन्होंने कार्यसंपादन किया है वे सब परिमितार्था ही हैं। इसी तरह दूसरी २ दूतियोंको भी समझना चाहिये। **स्थान**—कामसूत्रने तो दूतीका स्थानमात्र बता दिया है, किन्तु केशवदासजीने रसिकप्रियामें प्रत्येक दूतीका घर बताया है, इसमेंसे एक दोको उदाहरणमें दिखाते हैं, कि—" वेषकै कुमारिकाको व्रजकी कुमारिकानि, मांझ सांझ केशोदास त्रास पग पेलिकै। कामकी लतासी चल प्रेम पाससी अमल, राधिकाको बुद्धिबल कण्ठ भुज मेलिकै ॥ दौरि दौरि दुरि दुरि पूरि पूरि अभिलाष, लाख भांतिके अनूप रूप बहु पेलिकै । जनीके अजिर आज रजनीमें सजनी री, सांची कीन्ही श्याम चोरि मिहिचनि खेलिकै।" धायके घरके मिलनके विषयमें कहते हैं कि—

" आधी रात अधिक अँधेरी माँझ जै हौ कहां,
राधिकाकी आधी सेज सोइ रहौ नन्दलाल ! "

आधीरात हो गई अँधेरीमें कहां जाओगे ? हे नन्दलाल! राधिकाकी आधी खाटपर सो जाओ । इसके साथ उन्होंने प्रथम मिलनके स्थान बताये हैं, कि—

दो०—"जनी सहेली धाय घर, सूनै घरनि सँचार ।
अतिभय उत्सव व्याधि मिस, न्यौंतो सुवनविहार ।
इन हीं ठौरनि होत है, प्रथम मिलन संसार ।
केशव राजा रंकको, रचि राख्या करतार ॥"

कामसूत्रने जो मिलने मिलानेके ढंग बताये हैं, केशवदासजीने उन सबोंको रसिकप्रिया नामक ग्रन्थमें रख दिया है । यह दूतीकल्प व्यवहारका साधन एवम् कविताका प्राण तथा व्यवहारका सच्चा उपदेशक है । जो इसे जानते हैं उनका संसारी जीवन अच्छा गुजरता है, इसमें सन्देह नहीं है ।

तीनों तरहकी दूती कौन ?

यास्तिस्रो दूत्य उक्तास्ताः का इत्याह—

जो निसृष्टार्था आदि तीन तरहकी दूतियाँ बताई हैं वे कौनसी होती हैं ? इसका उत्तर देते हैं कि—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

विधवेक्षणिका दासी भिक्षुकी शिल्पकारिका ।
प्रविशत्याशु विश्वासं दूतीकार्यं च विन्दति ॥ ६३ ॥

विधवा, शकुन देखनेवाली, भिखारिन, महावर लगाने व बाल सँभालनेवाली, ये जलदी ही घुस जाती हैं, विश्वासपात्र बन जाती और दूतीके कार्य्यको प्राप्त हो जाती हैं ॥ ६३ ॥

प्रविशति । गृहमिति शेषः । विश्वासं दूतीकार्यं च विन्दति लभते ॥ ६३॥

इनकी घरके जानेमें रोकटोक नहीं होती, निराबाध घर चली जाती हैं, विश्वास और दूती कार्य्य सिद्ध कर लेती हैं ॥ ६३ ॥

दूतीके कार्योंका संक्षेप ।

संक्षेपेण दूतीकर्माण्याह—

पीछे जो कार्य्य बता चुके हैं अब उन्हींका सामान्यरूपसे कथन करते हैं कि—

विद्वेषं ग्राहयेत्पत्यौ रमणीयानि वर्णयेत् ।
चित्रान्सुरतसंभोगानन्यासामपि दर्शयेत् ॥ ६४ ॥

पतिसे द्वेष करा दे । जिससे मिलाना चाहे उसकी प्रशंसा करे । दूसरी स्त्रियोंके भी सामने चित्र सुरत और संभोगोंको दिखाये ॥ ६४ ॥

विद्वेषं ग्राहयेदिति तस्य रूपादिप्रशंसाभिः 'अनुशयं ग्राहयेत्' इत्यादिना । रमणीयानि वर्णयेत् । 'नायकस्य चरितमनुलोमतां कामितानि च कथयेत्' इत्यनेन । चित्रान्सुरतसंभोगान्दर्शयेत् (इत्यादिना) 'वृषतां चतुःषष्टिविज्ञतां संवर्णयेत्' इत्यनेन । अन्यासामपि तत्सखीनामग्रतो न केवलं नायिकायाः । यतस्तास्तस्यै कथयन्ति ॥ ६४ ॥

उसके रूप आदिकी प्रशंसा तथा पतिकी बुराई करके स्थायी द्वेष करा दे। इस बातको इसी अध्यायके तीसरे सूत्रमें कह चुके हैं कि–' पतिसे दीर्घ द्वेष करा दे । इसी अध्यायके १० वें सूत्रमें रमणीय बता चुके हैं । यही बड़ाईका साधन है । केवल उसी नायिकाके ही सामने नहीं, किन्तु दूसरी उसकी सखी सहेलियोंके सामने भी चित्र सुरत संभोगोंको दिखाये; जो कि वे उसके सामने कहें । इस बातको इसी अध्यायके १५ वें सूत्रमें दिखा चुके हैं, कि उसे चौंसठ कलानिधान बताये ॥ ६४ ॥

नायकस्यानुरागं च पुनश्च रतिकौशलम् ।
प्रार्थनां चाधिकस्त्रीभिरवष्टम्भं च वर्णयेत् ॥ ६५ ॥

नायकके अनुराग और रतिकौशलका वर्णन करे । उससे भी बड़ी बड़ियोंकी प्रार्थना तथा उसके दृढ निश्चयको भी बताये ॥ ६५ ॥

नायकस्यानुरागं वर्णयेत् 'शृणु विचित्रं ' इत्यादिना । पुनश्च रतिकौशलं वर्णयेत्प्रधानत्वादस्य । प्रार्थनां चाधिकस्त्रीभिः 'श्लाघनीयया चास्य प्रच्छन्नं संयोगं भूतमभूतपूर्वं वा वर्णयेत्' इत्यनेन ।अवष्टम्भं नायिकाविषयं निश्चयं तदङ्कशयनं श्मशानशयनं वा।.यदुक्तम्—'शक्यमनेन मरणमप्यनुभवितुम्' इति ६५

नायकके अनुरागवर्णनका कथन बारहवें सूत्रसे किया जा चुका है, उसे कहकर फिर रतिकौशल कहे, क्योंकि यही प्रधान है । बड़ी २ स्त्रियोंकी प्रार्थना भी बताये, इस बातको १५ वें सूत्रके ' श्लाघनीयया ' यहांसे लेकर 'वर्णयेत्' यहाँतक कह दिया है । उसका जो यह निश्चय है, कि या तो उसकी गोदमें सोऊंगा या श्मशानमें सोऊंगा यह भी बता दे, इस बातको बारहवें सूत्रके 'बहुत संभव है मरणका अनुभव कर ले' इस टुकड़ेसे कह दिया है ६५

प्रथमेऽधिकरणे पटुताद्यो गुणा उक्ता दूतानां तेषां पटुता प्रधानमिति दर्शनार्थमाह—

प्रथमाधिकरणके पांचवें अध्यायमें २१० व २११ वें पृष्ठमें दूतोंके पटुता आदि गुण बताये हैं, उन गुणोंमें मुख्य पटुता ही है वह अवश्य ही होनी चाहिये, इसी बातको दिखानेके लिये कहते हैं, कि-

असंकल्पितमप्यर्थमुत्सृष्टं दोषकारणात् ।
पुनरावर्तयत्येव दूती वचनकौशलात् ॥ ६६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे
दूतीकर्माणि चतुर्थोऽध्यायः ।

जिस बातका कभी ध्यान ही नहीं किया जा सकता, जो कि दोषोंके कारण दूर चला गया है, दूती ऐसे पदार्थको भी दूती सामने ला उपस्थित करती है ॥ ६६ ॥

दोषकारणादिति व्यावृत्तिकारणात् । नापानकयोग्य इत्यर्थः परित्यक्तः (?)। सरवकस्थितीनविचिन्तितः (?) । दूती पुनस्तमावर्तयत्यभिमुखीकरोति । वचनकौशलात्पटुतायोगात् । इति दूतीकर्माणि षट्चत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे दूतीकर्माणि चतुर्थोऽध्यायः ।

दूतीका यह बल होता है जो सहगोष्ठीके अयोग्य समझकर छोड़ दिया गया हो जो तालाबके बगुलेकी तरह वा जूठे प्यालेकी तरह पटकनेके योग्य बन गया हो तो दूती उसे फिर सामने ला खड़ी करती है । यह सब उसका वाक्चातुर्य्य ही है । यह दूती कर्म्मोंका छियालीसवाँ प्रकरण पूरा हुआ ६६॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके चतुर्थ
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

ईश्वरोंकी रँगरेलीका प्रकरण ।

ईश्वराणां परगृहप्रवेशाभावात्कामितं न संभवति । प्रायशस्तत्र कथमधिक्रियत इति तदनन्तरमीश्वरकामितमुच्यते ।

बड़े आदमी कभी दूसरेके घर नहीं जाया करते, इस कारण उनकी वे चाहें पूरी नहीं हो पातीं, जो कि साधारणोंकी दूसरेके घर आकर पूरी होती हैं, तब फिर वे अपनी चाहोंको किस तरह पूरी करें ? इस बातको बतानेके लिये समर्थोंकी साध पुजनेका ढंग बताते हैं ।

समर्थोंके परधर न जानेका कारण ।

यदाह—

समर्थ पुरुष क्यों बुरे कामोंको नहीं करते या करते हैं तो क्यों छिपावे हैं ? इसमें कारण बताते हैं, कि—

न राज्ञां महामात्राणां वा परभवनप्रवेशो विद्यते । महाजनेन हि चरितमेषां दृश्यतेऽनुविधीयते च ॥ १ ॥

राजा और महामात्रोंका दूसरेके घरमें जाना नहीं होता, क्योंकि महाजनोंका जो चरित देखा जाता है, उसकी सब नकल करते हैं ॥ १ ॥

जनसमूहेनैतेषां चरितं दृश्यते सर्वदा तदनुगतत्वात् । यदि दृष्टं तदा को दोष इत्याह—अनुविधीयते चेति । ‘ यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ’ इति ॥ १ ॥

जनसमूहमें इनके खोटे चरित नहीं देखे जाते, क्योंकि सदा सब उनके पीछे रहते हैं । यदि देखनेमें आ जायँ तो क्या दोष है ? इसका उत्तर देते हैं कि लोग इनकी नकल करेंगे, क्योंकि ‘ जिस कामको श्रेष्ठ पुरुष करते हैं उनके पीछे दूसरे भी उसी धन्देको किया करते हैं ’ ॥ १ ॥

इसीपर सूर्य्यका दृष्टान्त ।

तदेव दृष्टान्तेन दर्शयति—

इसी बातको निम्नलिखित दृष्टान्तसे परिस्फुट किये देते हैं, कि—

सवितारमुद्यन्तं त्रयो लोकाः पश्यन्ति अनूद्यन्ते च । गच्छन्तमपि पश्यन्त्यनुप्रतिष्ठन्ते च ॥ २ ॥

तीनों लोक उगते हुए सूर्य्यको देखते हैं, उसके उदय होनेपर ही सब नींद छोड़कर चैतन्य हो जाते हैं। चलते हुएको भी देखते हैं, उसके साथ सभी अपनी क्रियासे भी निवृत्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

सविता लोकेषु श्रेष्ठः । तमुद्यन्तं पश्यन्तीति चरितदर्शनम् । अनूद्यन्ते च तस्मिंस्तूद्गते सुप्ताः प्रबुध्यन्त इति चरितानुविधानम् । गच्छन्तमपि देशान्तरे पश्यन्तीति चरितदर्शनम् । अनुप्रतिष्ठन्ते च यथास्वं क्रियासु प्रवर्तन्त इति चरितानुविधानम् ॥ २ ॥

लोकोंमें सूर्य्य श्रेष्ठ है, इसी कारण उसके उदयको सब देखते हैं यही उसके चरित्रोंका दर्शन है। उसके प्रकाशित होनेपर सोनेसे जगते हैं यही सूर्य्यके चरित्रकी नकल है। एक जगहसे दूसरी जगह जाते देखते हैं यह उसके चरित्रोंका देखना है। जो जिसकी क्रिया है उसीमें प्रवृत्त हो जाते हैं यह चरितकी नकल है ॥ २ ॥

दृष्टान्तका समन्वय ।

तस्मादशक्यत्वाद्गर्हणीयत्वाच्चेति न ते वृथा किंचिदाचरेयुः ॥ ३ ॥

इस कारण अशक्य और निन्दनीय होनेसे उन्हें व्यर्थ कुछ भी न करना चाहिये ॥ ३ ॥

परगृहं प्रविश्य यद्यत्त (यदन्य) दाराभिगमनं तदशक्यम् । महाजनेन दृश्यमानत्वात् । गर्हणीयत्वाच्चेति—इतरोऽपि जनोऽनुविदध्यादिति शिष्टानां कुत्सनीयं तस्मात्तदर्थं न ते किंचिदनुष्ठानमाचरेयुः । निष्फलत्वात्स्वपरिग्रहेष्वपि सुखसंभवात् ॥ ३ ॥

दूसरेके घरमें घुसकर जो दूसरेकी स्त्रियोंके साथ सहवास करना है वह राजा लोकोंसे नहीं हो सकता, क्योंकि इस कामको बड़े आदमी नहीं करते। बड़े शिष्टपुरुष बुराई करने लग जायँगे तो उनकी देखादेखी दूसरे भी करने लग जायँगे, इस कारण उन्हें कुछ भी बुरा काम न करना चाहिये। उन्हें सब सुख अपनी स्त्रियोंमें ही मिल सकता है अतः यह करना व्यर्थ ही है ॥ ३ ॥

---

१ यही कारण है, कि धर्मयक्षने धर्मरायसे कहा है, कि—" **महाजनो येन गतः स पन्थाः** " महापुरुष जिस रास्तेसे चलते हैं वही जगका रास्ता बन जाता है।

आवश्यकतापर योग।

अवश्यं त्वाचरितव्ये योगान्प्रयुञ्जीरन् ॥ ४ ॥

जो जरूरी ही करना हो तो योगोंका प्रयोग करें ॥ ४ ॥

अन्यकारणवशात्स्थानान्तरयायिनो वा रागवशादाचरितव्ये । योगानिति प्रयोगान् ॥ ४ ॥

यदि ऐसा ही कारण हो कि किये विना न सरे वा स्थानसे किसी दूसरे स्थानपर जा रहा हो—यानी कामकी दशों दशाओंमेंसे काम एक स्थानसे दूसरे स्थान पर बढ़ता हो तो रागवश हो करना ही पड़े तो प्रयोगोंका प्रयोग करें॥४॥

छोटे अधिकारियोंकी बातें।

ते द्विविधाः—प्रच्छन्नाः प्रकाशाश्च। ईश्वरा अपि द्विविधाः—क्षुद्रा मुख्याश्च। तत्र क्षुद्रानधिकृत्य प्रच्छन्नमाह—

राजाओंके करनेके प्रयोग दो तरहके होते हैं—एक छिपे तथा दूसरे प्रकट। राजे भी दो तरहके होते हैं—एक क्षुल्लक तथा दूसरे मुख्य। इनमें छोटे अधिकारियोंके विषयमें कहते हैं कि—

ग्रामाधिपतेरायुक्तकस्य हलोत्थवृत्तिपुत्रस्य यूनो ग्रामीणयोषितो वचनमात्रसाध्याःताश्चर्षण्य इत्याचक्षते विटाः

गामके युवा मुखिया, अधिकारी व पटवारीके युवा पुत्रकी ग्रामीण स्त्रियाँ, वचनमात्रसे सिद्ध हो सकती हैं। विट लोग उन्हें 'चर्षणी' कहते हैं ॥ ५ ॥

ग्रामभुक्त्या युक्तस्याधिकृतस्य । हलोत्थवृत्तिर्ग्रामकूटः । तस्य ग्रामीणैः कर्षणहलिका दीयन्ते । तस्य पुत्रस्य । यून इति प्रत्येकं योज्यम् । यत्तेषामीश्वरत्वाद्वचनमात्रसाध्या नाभियोगमपेक्षन्ते किं सर्वा एवेत्याह—ताश्चर्षण्य इति संज्ञा इत्यर्थः ॥ ५ ॥

ग्रामाधिपतिका अर्थ तो गामका मुखिया है यह परिस्फुट है ही, पर जो 'आयुक्तकस्य' यह पड़ा हुआ है, कि जो गामके लगान आदि लेनेपर अधिकार रखता हो ऐसे युवककी एवम् जिसे गामके लोग जोतनेके हल व उसके लगान देते हैं जिन्हें अमीन व पटवारी आदि कहते हैं, उनके युवक पुत्रकी स्त्रियां बात मात्रकी अपेक्षा रखती हैं, अभियोगकी अपेक्षा नहीं रखतीं। क्या सभी ग्रामीण ऐसी होती हैं इसका उत्तर देते हैं कि सब नहीं होतीं जो हैं उन्हें चर्षणी कहते हैं। ये खेत आदिके कामोंको किया करती हैं ॥ ५ ॥

ताभिः सह विष्टिकर्मसु कोष्ठागारप्रवेशो द्रव्याणां निष्क्रमणप्रवेशनयोर्भवनप्रतिसंस्कारे क्षेत्रकर्मणि कर्पासोर्णातसीशणवल्कलादाने सूत्रप्रतिग्रहे द्रव्याणां क्रयविक्रयविनिमयेषु तेषु तेषु च कर्मसु संप्रयोगः ॥ ६ ॥

विष्टिकर्म्मोंमें उनके साथ कोठेके घरमें जानेपर, वस्तुओंके धरने निकालनेमें, घरकी सफाई करनेमें, खेतके काममें, कपास, ऊर्णा, अतसी, शण और वल्कलके देने, सूतके देने, एवम् वस्तुओंके बेचने खरीदनेमें तथा और भी ऐसे ही कामोंमें इनके साथ मिलना हो सकता है ॥ ६ ॥

ताभिरिति—चर्षणीभिः सह संप्रयोग इति वक्ष्यमाणेन संबन्धः । अत्रोपायमाह—विष्टिकर्मस्विति—सक्तमात्रेण (?) विना यानि पेषणकुट्टनरन्धनादीनि कार्याणि तानि विष्टिकर्माणि । कोष्ठागारप्रवेशे—तत्रत्यं कर्म कर्तुं प्रविष्टाभिः । द्रव्याणां धान्यादीनां कोष्ठागारान्निष्क्रामणे तत्र च प्रवेशे तत्र कर्म कर्तुं प्रविष्टाभिः । क्रियमाणे, भवनप्रतिसंस्कारे—गृहमण्डने । क्षेत्रकर्मणि बीजानां रक्षणोत्पाटनगदी....(?) । कर्पासस्योर्णाया अतसीशणवल्कलस्य च भाण्डागारात्सूत्रकर्तनाय दाने । सूत्रस्य च कर्तितस्य प्रतिग्रहे स्वीकारे कर्तनिकाभिः । द्रव्याणामिति धान्यादीनाम् । क्रयविक्रयविनिमयेष्विति क्रेतुं विक्रेतुं वा प्रविष्टाभिः । तेषु तेषु चेति राजकुलप्रवेशहेतुषु ॥ ६ ॥

'ताभिः सह' इन चर्षणी (पतित चमारी जातिनी आदिकोंके साथ) ऐसे समयोंमें संप्रयोग मिल जाता है। इस प्रकार 'उनके साथ' इस सूत्रके टुकड़ेका 'संप्रयोगः' मिला जा सकता है, इस अगाड़ीके पदार्थके साथ सम्बन्ध है । इनके साथ करनेके उपायोंको बताते हैं कि विष्टि आदि कर्म्मोंमें लगने और लगानेपर सक्तमात्रके विना भी कहनेमात्रसे ही हो जाता है। पीसना, कूटना और राँधना आदिक ' विष्टिकर्म ' कहाते हैं । घरके कोठेमें वहाँके कामको करनेके लिये घुसी हों । कोठेसे धान आदि निकालने और भरनेके लिये वहां घुसी हों । घरका लीपना, पोतना आदि करनेके लिये घुसो हों । खेतोंके निराने, काटने आदिके काममें । भण्डारसे कपास, ऊन, अतसी, सन और वल्कलको सूत कातनेके लिये देनेके समय, कातने वालियोंसे कते सूतको लेनेके समय, धान्य आदिको बेचने या खरीदनेके समय, इनके

कोठोंमें घुसी हुइयोंको। दूसरे जो ऐसे ही मोंके हों, जिनमें कि वे अपने यहां आयें। ये ऊपर बताये हुए मोंके उन्हें पा लेनेके हैं॥ ६ ॥

गवाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, नागर और चौधरी।

तथा व्रजयोषिद्भिः सह गवाध्यक्षस्य ॥ ७ ॥

व्रजकी स्त्रियोंके साथ गवाध्यक्षका कर लेना मामूली बात है॥ ७॥

गोपीभिर्गवाध्यक्षस्य दधिमथनादिकर्मसु ॥ ७॥

ग्वालिनोंके साथ गौओंके अध्यक्षका मिल लेना भी आसान है, दही मथने और दूध निकालने आदिके समय कर सकता है॥ ७॥

विधवानाथा प्रव्रजिताभिः सह सूत्राध्यक्षस्य ॥ ८ ॥

विधवा, अनाथा ओर संन्यासिनी (साधुनी) आदिके साथ सूत्राध्यक्षका मिलना भी आसान है॥ ८॥

स ह्यधिष्ठाय राजकीयसूत्राणि विधवादिभिः कर्तनिकाभिः कर्तयति ॥ ८॥

वह अधिष्ठाता बनकर राजके सूतको कातनेवाली विधवा आदिको देकर कताता है॥ ८॥

मर्मज्ञत्वाद्रात्रावटने चाटन्तीभिर्नागरस्य ॥ ९ ॥

नागर भी रातके समय रहस्यके जाननेके कारण गस्त देता हुआ रातके घूमनेवालीसे मिल लेता है॥ ९॥

नगरे नियुक्तस्य दाण्डपाशिकस्य स्त्रीमर्मज्ञत्वाद्रात्रावटने चाटन्तीभिः ॥ ९॥

हाथमें भाला और हथकड़ी लेकर गस्त देनेवाला भी रातके समय गस्त देता हुआ उन स्त्रियोंके साथ मिल सकता है, जिनके कि जाने आनेके हालको जानता हो॥ ९॥

क्रयविक्रये पण्याध्यक्षस्य ॥ १० ॥

बाजारका चौधरी बेचने और खरीदनेके समय काम बना सकता है॥१०॥

राजकीयपण्यानि क्रयितुं विक्रयितुं च नियुक्तस्य क्रेतृविक्रेतृस्त्रीभिः। संप्रयोग इति सर्वत्र योज्यम्॥ १०॥

जो राजकीय वस्तुओंके खरीदने और बेचनेके लिये नियुक्त रहते हैं, वे बेचने और खरीदनेवाली स्त्रियोंके साथ निराबाध मिल सकते हैं। छठे सूत्रसे 'संप्रयोग' की अनुवृत्ति आर ही है जिसका अर्थ हम 'मिल लेते हैं' ऐसा करते चले गये हैं॥ १०॥

बड़े २ अधिकारियोंकी रँग रेलियाँ।

मुख्यानधिकृत्य प्रच्छन्नमाह—

अबतक छोटे २ अधिकारियोंकी छिपी हुई रंगरेलियाँ बताई गयी थीं, अब बड़े २ अधिकारियोंकी भी छिपी रंगरेलियाँ बताते हैं, कि—

अष्टमीचन्द्रकौमुदीसुवसन्तकादिषु पत्तननगरखर्वटयोषितामीश्वरभवने सहान्तःपुरिकाभिः प्रायेण क्रीडा॥११

बहुलाष्टमी, कौमुदी और सुवसन्तक आदिके दिन राजधानी, जिले और तहसील आदिकी स्त्रियोंके साथ प्रायः राजभवनमें अन्तःपुरचारिणीयोंके खेल होते हैं॥ ११॥

साहित्यमें यक्षरात्रि आदि।

१ अष्टमीचन्द्रक—चैत्रकी चतुर्थीसे लेकर आठवीं चौथतक स्त्रियाँ करती हैं। जिस चौथको स्त्रियाँ यवोंके स्तरपर डोलती हैं उसे 'कुन्दचतुर्थी' कहते हैं। वसन्तके प्रारम्भमें 'सुवसन्तक' होता है, जिस चौथको स्त्रियाँ दोलापर बैठें उसे 'आन्दोलनचतुर्थी' कहते हैं। एक सपुष्प शाल्मलिपर चढ़कर 'धुनिमीलितक' आदि खेल 'शाल्मलीक्रीडा' कहाती है। तेरसको कामदेवकी पूजा 'मदनोत्सव' कहाता है। गन्धोदकसे भरे हुए वासनाडी आदिकोंको ले उनसे प्यारोंका अभिषेक 'उदकक्ष्वेडिका' कहाती है। जिसमें उत्तम स्त्रियाँ अशोकमें लात मारकर उसे पल्लवित करें वह 'अशोकोत्तंसिका' है। जिसमें स्त्रियाँ आमकी मंजरियोंको तोड़कर एक दूसरीको सजाएँ उसे 'चूतमंजरिका' कहते हैं। जिसमें स्त्रियाँ मदिराके कुल्लेसे बकुलको विकसित करके फिर उसके फूलोंको चुनती हैं उसे "पुष्पावचायिका" कहते हैं। तुझे प्यारा कौन है? इतना पूछ देनेपर जो प्रियजन पलाश आदिकी नई लताओंसे मारा जाता है उसे 'चूतलतिका' कहते हैं। पहिली वर्षासे उत्पन्न हुए नये तृणोंवाली जगहमें खड़ीखड़ी हुइयोंके नकली विवाह आदिके खेल 'नवपत्रिका' कहाती है। जिस सरमें नये कमल खिले हों उसमें जाकर खेलना 'बिसखादिका' है। शक्रोत्सवके दिन 'शक्रपूजा' होती है। आश्विनकी पौर्णमासीके दिन 'कौमुदी' उत्सव होता है। दीपमालिकाको 'यक्षरात्रि' कहते हैं। कच्चे शमीधान्य और शूकधान्योंको भूनकर खानेका नाम "अभ्यूषखादिका" है। नई ईखका प्रथम चूसना 'इक्षुखादिका' है। गरमीमें पानीमें तिरना 'तोयक्रीडा' कहाती है। नाट्य आदिका देखना "प्रेक्षा" कहाता है। रागको पदीप्त करनेके लिये माध्वीक आदिका पीना "मधुपान" है। इन खेलोंमेंसे यक्षरात्रि, कौमुदी और सुवसन्तक इन खेलोंको १५२ वें पृष्ठमें समस्याक्रीडामें बता चुके हैं। तथा सहकारभंजिका, अभ्यूषखादिका, बिसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्ष्वेडिका, पांचालानुयान, एकशाल्मली, कदम्बयुद्ध, इन्हें देशोंके खेल बताया है। इनके सिवा भोजराजने 'आन्दोलनचतुर्थी, अशोकोत्तंसिकादि' भी खेल बता दिये हैं। इन खेलोंको कामसूत्रने बताया ही है पर साहित्यने इनको ललित कविताओंमें कहा भी है। यह हम सरस्वतीकण्ठाभरणसे लिख रहे हैं।

कौमुदी कोजागरः । नागरकविटौ (नगरखर्वटौ) व्याख्यातौ । पत्तनादि-क्रमुपलक्षणार्थम् । द्रोणमुखश्च ; ईश्वरभवन इति यस्य नगरादि [न] विद्यते तस्य भवने । अन्तःपुरिका अन्तःपुरस्त्रियः ॥ ११ ॥

कोजागरका नाम कौमुदी है । नागरकी वस्तीके प्रकरणमें नगर और खर्वट बता चुके हैं । पत्तनादिक उपलक्षण हैं; इनसे द्रोणमुख आदिका भी ग्रहण हो जाता है । जिसके नगरादि हैं वहां वहां उसके घर रनिवासके रहनेवालियोंके साथ नगरादिकी स्त्रियोंका खेल होता है ॥ ११ ॥

तत्र चापानकान्ते नगरस्त्रियो यथापरिचयमन्तःपुरिकाणां पृथक्पृथग्भोगावासकान्प्रविश्य कथाभिरासित्वा पूजिताः प्रपीताश्चोपप्रदोषं निष्क्रामयेयुः ॥ १२ ॥

उस खेलमें जाम उड़नेके बाद, शहरकी स्त्रियाँ अपनी २ जानपहिचानके अनुसार अन्तःपुरकी स्त्रियोंके आरामतलबोंके जुदे २ स्थानोंमें घुसकर गप्पें करती हुई बैठती हैं । वे उनका आदर करती हैं, वहां पी खाकर सामके आसपास ही घरोंको आती हैं ॥ १२ ॥

तत्रेति—क्रीडायाम् । आपानकान्त इति—अन्तःपुरिकाभिः सर्वाभिः सह पेयं पीत्वा । तदन्ते विशेषविधिमाह—नगरस्त्रिय इति । अत्रापि नगरखर्वटद्रोणमुखस्त्रियश्च । भोगावासकानिति परिभोगप्रदेशान् । कथाभिरासित्वेति अन्तःपुरिकाभिः सह कथाभिः स्थित्वा । पूजिता अन्तपुरिकाभिः । प्रपीता इति प्रपीतमासां विद्यत इति मत्वर्थेऽकारः । उपप्रदोषं प्रदोषसमीपे निष्क्रामन्ति दिनं राजभवनेऽतिवाह्य ॥ १२ ॥

अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ बाहिरकी आई हुई स्त्रियाँ पहिले तो प्याले चढ़ाती हैं, इसके बाद जो विशेषता होती है उसे बताते हैं, कि—नगरकी स्त्रियाँ यानी नगर, खर्वट और द्रोणमुखकी स्त्रियाँ, उनके साथ गप्पें करती हुई उनके आरामके कमरोंमें बैठती हैं । वहां रनिवासकी स्त्रियाँ फिर उन्हें अच्छी तरह खिलाती पिलाती हैं, फिर वे कहीं सामके आसपास अच्छी तरह पी[1] हुई महलोंसे बाहिर निकल पाती हैं ॥ १२ ॥

---

१ प्रपीत शब्दसे मत्वर्थीय अकार और टप् होकर 'प्रपीता' शब्द बनता है । जिसका अर्थ यह होता है कि—जिन्होंका अच्छी तरह पिया हुआ है वह प्रपीता है ।

महलादि दिखानेका बहाना।

तत्र प्रणिहिता राजदासी प्रयोज्यायाः पूर्वसंसृष्टा तां तत्र संभाषेत ॥ १३ ॥

उन खेलोंमें राजाकी भेजी राजदासी जो कि राजाकी चाहकी वस्तुके साथ पहिले मिली हुई हो वह उनसे बात चीत करे॥ १३॥

तत्रेऽयष्टमीचन्द्रादिषु। प्रणिहिता राज्ञा प्रयुक्ता। प्रयोज्याया इति याभभिगन्तुमिच्छेत्। पूर्वसंसृष्टेति पूर्वमेव ग्रहयित्वा (?) संसर्गं कृतवती। तामिति प्रयोज्यां राजभवने प्रविष्टां भाषयेत्कुशलपूर्वकम् ॥ १३ ॥

बहुलाष्टमी आदिके उत्सवके खेलोंमें राजाकी नियुक्त की हुई वह दासी जिसने कि राजा जिससे मिलना चाहता है उसके साथ उसने पहिले ही मेलझोल कर लिया है, राजभवनमें आई हुई उसीके साथ कुशलपूर्वक बातें करे॥ १३॥

रामणीयकदर्शनेन योजयेत् ॥ १४ ॥

उसे अच्छी चीजोंके देखनेमें लगा दे ॥ १४ ॥

रामणीयकदर्शनेन चित्तहरणार्थम् ॥ १४ ॥

उसके चित्तके बैलानेके लिये उसे सुन्दर वस्तुओंके देखनेमें लगा दे ॥१४॥

प्रागेव स्वभवनस्थां ब्रूयात्। अमुष्यां क्रीडायां तव राजभवनस्थानानि रामणीयकानि दर्शयिष्यामीति काले च योजयेत्। बहिः प्रवालकुट्टिमं ते दर्शयिष्यामि १५

पाहिल ही उसके घर कह आये कि–'फलाने समयके खेलमें जब आप पधारेगी ता मैं आपको राजमहलकी सुन्दर २ चीजें दिखाऊँगी।' जब वह राजमहल आ जाय तो अपनी पहिली बातोंके अनुसार दिखाना प्रारम्भ कर दे। जब महिल दिखा चुके तो कहे कि चलिये बाहिर अब आपको प्रवालोंका फस दिखाऊँगी॥ १५॥

प्रागेवेति राजभवनप्रवेशात् स्वभवनस्थां ब्रूयादौत्सुक्यकारणार्थम्। अमुष्यामिति काले च प्रज्ञाते योजयेत्। रामणीयकरोचनान्याह–बहिरिति। प्रवालकुट्टिमम्॥

राजमहलमें आनेसे भी पहिले राजकी बाँदीका यह कार्य्य होना चाहिये, कि उससे उसके घरपर ही यह कह आये कि–'अमुक उत्सवपर जब आप

पधारेंगी तो मैं आपको रनिवासके बड़े २ महल तथा और भी देखने दिखानेकी चीजोंको दिखाऊँगी । ' इस बातके कहनेका यही मतलब होता है कि जिससे यह बात कही जाती है उसे महल जानेकी इच्छा हो जाती है, कि कब वह समय आये जिसमें मैं महलकी शैर करूं । जब वह ठीक मौकेपर पहुँच जाय तो बाँदीका यह कार्य्य होना चाहिये कि उसे सादर बातोंमें मस्त करती हुई महलकी सब चीजें दिखा दे । महलके दिखा देनेके पीछे दूसरी २ सुन्दर चीजोंके दिखानेका ढंग बताते हैं; उनसे कहे कि अब बाहिर चलिये मैं आपको प्रवालकुट्टिम दिखा दूं ॥ १५ ॥

मणिभूमिकां वृक्षवाटिकां मृद्वीकामण्डपं समुद्रगृहप्रासादान्गूढभित्तिसंचारांश्चित्रकर्माणि क्रीडामृगान् यन्त्राणि शकुनान्व्याघ्रसिंहपञ्जरादीनि च यानि पुरस्ताद्वर्णितानि स्युः ॥ १६ ॥

मणियोंके फर्स, वृक्षोंकी वाटिकाएँ, अंगूरकी वेलोंके मण्डप, सुरंगसे जानेके जलघरके महल, दस्तकारी, चित्रकारी, क्रीडामृग, यंत्र, तरह २ के पक्षी, बघेरे और सिंह आदिके पींजरे आदिक जो भी कुछ पहिले कह रखा हो सभी दिखाये ॥ १६ ॥

मणिभूमिकां स्फटिकाद्याकारकृतं कुट्टिमं भूमिम् । वृक्षवाटिकां पुष्पफलसमृद्धाम् । मृद्वीकामण्डपं द्राक्षामण्डपम् । समुद्रगृहप्रासादानिति—गूढभित्तिमध्यगतत्वात् जलसंचारा येषु समुद्रगृहेषु प्रासादेष्वपि निष्कासनप्रवेशनलक्षणसंचारानिति योज्यम् । यन्त्राणि सजीवानि निर्जीवानि घटितान्यन्यानि च यानि कौतुकानि । क्रीडार्था ये मृगाः । शकुनकान् हंसादीन् । व्याघ्रपञ्जरान्व्याघ्राधिष्ठितान् । कस्याश्चिदेव कचित्कौतुकमुत्पद्यत इत्यनेकोपदर्शनम् ॥ १६ ॥

स्फटिक मणियोंके आकारकी मणियोंका बनाया हुआ फर्स, फूल और फलोंसे परिपूर्ण हुई वृक्षोंकी वाटिकाएँ, अंगूरकी वेलोंका बांस आदिके सहारेसे बनाया हुआ मण्डप जिन समुद्रगृहोंमें और समुद्रप्रासादोंमें भी पानी गुप्त भीतोंके बीचमें होकर जाता और आता है उन्हें, बनाये हुए निर्जीव और सजीव यत्र तथा दूसरे यंत्र जिन्हें देखकर कौतुक पैदा हो एवं खेलके लिये जो मृग हों उन्हें, हंसआदिक पक्षी, जिनमें बघेरे और सिंह बैठे हुए हों ऐसे पिंज-

ड़ोंको उसे दिखाये। इन अनेकों चीजोंके दिखानेका इसलिये उपदेश दिया है कि किसीको कभी कौतुक होता है तथा किसीको कभी किसी दूसरी ही चीजको देखकर होता है ॥ १६ ॥

एकान्तमें राजप्रेम प्रगट करना।

एकान्ते च तद्गतमीश्वरानुरागं श्रावयेत् ॥ १७ ॥

एकान्तमें मौका देखकर उसमें जो राजाका प्रेम हैं उसे सुना दे ॥ १७ ॥

एकान्त इति। अनुग्रहोचितत्वादेव प्रवेशोऽपि तस्या उचित इति ॥ १७ ॥

अनुग्रह करनेके योग्य होनेके कारण ही उसका राजमहलमें प्रवेश भी योग्य हो है ॥ १७ ॥

संप्रयोगे चातुर्यं चाभिवर्णयेत् ॥ १८ ॥

सहवासमें जो राजाकी चतुरता है उसे भी सुना दे ॥ १८ ॥

दासी राजाको चौंसठकलाओंमें परिपूर्ण प्रवीण बताये ॥ १८ ॥

अमन्त्रश्रावं च प्रतिपन्नां योजयेत ॥ १९ ॥

जब वह राजासे सहवास कर चुके तो उसे यह समझाकर भेजे कि किसीको बताना मत ॥ १९ ॥

स्वयंकी उपस्थिति।

अप्रतिपद्यमानां स्वयमेवेश्वर आगत्योपचारैः सान्त्वितां रञ्जयित्वा संभूय च सानुरागं विसृजेत ॥ २० ॥

इस तरह न मिलनेवालीको राजा आप ही उपचारोंसे शान्त करे, फिर अनुरक्त करके मिले पीछे सप्रेम ही उसे छोड़े ॥ २० ॥

राजाको जिसकी चाह है वह दासीके कहनेसे अपने पास न आये तो राजा आप ही उसके पास आकर स्वागत सत्कारसे शान्त करे। फिर उसे बातें सुना सुनकर अपने अनुकूल बनाकर ही सहवास करे। पीछे प्रेमपूर्वक ही उसे उसके घर भेजे। तेरहवें सूत्रसे १९ वें सूत्रतकके बताये हुए प्रयोग और इस प्रयोगमें राजा जिसे चाहता है उसे राजमहल आ जानेपर ही सुगमता रहती है तभी दोनों होते हैं ॥ २० ॥

प्रेम करना।

प्रयोज्यायाश्च पत्युरनुग्रहोचितस्य दारान्नित्यमन्तःपुरमौचित्यात्प्रवेशयेत्। तत्र प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण ॥ २१ ॥

यदि उसका पति राजाकी कृपाके योग्य हो तो उसके घरकी दूसरी लुगाई पताइयोंको उचित रीतिसे राजमहलोंमें लाये, यह काम भी राजाकी भेजी हुई पूर्व मिली दासी ही पूर्वकी तरह करती है ॥ २१ ॥

तत्रेति प्रविष्टायां प्रयोज्यायाम। प्रणिहिता राजदासीत्यनेन पूर्वोक्तेन समानम् । प्रयोगद्वयेऽप्यत्र प्रयोज्यानुप्रवेशस्य सुकरत्वात् । दास्येव प्रयुक्ता ॥२१॥

जिसको राजा चाहता हो यदि वह महल आ जाय तो उसीके साथ राजाके प्रेमकी बात करनी चाहिये, दूसरी उसके घरकी औरतोंको तो सम्मानपूर्वक दिखा देना ही चाहिये। यदि भला घर हो तो इन दोनों कामोंमें यहां प्रयोज्यका प्रवेश ही अच्छा रहता है। यह काम भी दासीका ही होना चाहिये २१

रानियों द्वारा प्रेम ।

अन्तःपुरिका वा प्रयोज्यया सह स्वचेटिकासंप्रेषणेन प्रीतिं कुर्यात् । प्रसृतप्रीतिं च सापदेशं दर्शने नियोजयेत् । प्रविष्टां पूजितां पीतवतीं प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण ॥ २२ ॥

अन्तःपुरकी चतुर रानी चेरी भेजकर उसके साथ प्रेम कर ले, जिसे कि राजा चाहता हो। जब प्रीति बढ़ जाय तो बहानेसे देखनेके लिये भी नियुक्त कराये । आनेपर सत्कार हो जाय तो साथमें जाम पिलाकर बेहोश कर दे, फिर राजदासी पहिले जैसा कहा है वैसा ही करे ॥ २२ ॥

चेटिका त्वीश्वरप्रयुक्तान्तःपुरिका । संप्रेषणेन प्रीतिं कुर्यादात्मनो विश्वासासंभवात् । प्रसृतप्रीतिं प्रयोज्यां यादृशं (?) सापदेशं च किंचित्कार्यमपदिश्य तयैव चेटया दर्शनेऽपि नियोजयेत् यथा मां द्रष्टुमागच्छतीति ॥ २२ ॥

राजाने जिससे कहा हो वह रानी चेरी भेजकर प्रेम करे, क्योंकि राजकुलका जलदी विश्वास नहीं होता । प्रेम बढ़ जानेपर ऐसे ही मूडके किसी कामको बता उसी चेरीसे देखनेके निमित्त नियुक्त कराये कि मुझे देखने आयगी क्या ? जब वह आजाय तो स्वागत सत्कारके पीछे अपने साथ प्याले पिलाकर मस्त कर दे, राजाकी भेजी दासी उसकी लल्लोचप्पो करके राजासे मिला दे ॥ २२ ॥

विज्ञान दिखानेके बहाने महल बुलाना ।

यस्मिन्वा विज्ञाने प्रयोज्या विख्याता स्यात्तद्दर्शनार्थ-

मन्तःपुरिका सोपचारं तामाह्वयेत । प्रविष्टां प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण ॥ २३ ॥

राजा जिसे चाहता हो वह स्त्री जिस विज्ञानमें प्रसिद्ध हो, उसे दिखा-नेके लिये अन्तःपुरकी स्त्रियाँ उसे उपचारके साथ बुलायें । जब वह राज-महलमें आजाय तो राजदासी उसे राजासे उसी रीतिसे मिला दे जैसे कि पहिले बता चुके हैं ॥ २३ ॥

यस्मिन्चेति गीततन्त्रीविज्ञाने। विख्याता प्रवीणा। सोपचारमिति वस्त्रादिदा-नपूर्वकमाह्वयेत्। अत्र च प्रयोगद्वये प्रवेशस्य संभवात् अन्तःपुरिका द्वितीया प्रयुक्ता॥

वह जिस गाने बजाने आदिमें प्रसिद्ध हो उसे उपचार यानी वस्त्र आदिके दान सहित बुलाये । विशेष बात यह है कि इसमें और दोनों प्रयोगोंमें राज-महलमें प्रवेश होना संभव होनेसे इसको करनेवाली राजासे प्रेरित हुई दूसरी रानी है ॥ २३ ॥

पीडित व स्वार्थियोंकी भार्याओंको बुलानेका ढंग ।

उद्भूतानर्थस्य भीतस्य वा भार्यां भिक्षुकी ब्रूयात् असा-वन्तःपुरिका राजनि सिद्धा गृहीतवाक्या मम वचनं शृणोति । स्वभावतश्च कृपाशीला तामनेनोपायेनाधि-गमिष्यामि । अहमेव ते प्रवेशं कारयिष्यामि । सा च ते भर्तुर्महान्तमनर्थं निवर्तयिष्यतीति प्रतिपन्नां द्वित्रि-रिति प्रवेशयेत् । अन्तःपुरिका चास्या अभयं दद्यात्। अभयश्रवणाच्च संप्रहृष्टां प्रणिहिता राजदासीति समानं पूर्वेण ॥ २४ ॥

जिसका बुरा होना संभव हो ऐसे और डरे हुए व्यक्तिकी स्त्रीसे भिखारिन कहे कि–' राजा इस रानीका बड़ा कहना मानता है, यह मेरे वाक्यको ग्रहण करती हुई सुनती है । स्वभावसे ही दयालु है, इस उपायसे मैं उससे मिलूंगी, मैं वहां तेरा प्रवेश करा दूंगी, वह तेरे पतिके इस बड़े भारी अनर्थको रोक देगी, इस प्रकार समझाकर तयार होनेपर उसे दो तीन बार राजमहलमें घुसा दे, वह रानी उसे अभय दे दे । जब वह पतिके अभयदानसे प्रसन्न हो जाय तो राजाकी भेजी हुई दासी पूर्व बताई हुई प्रक्रियाके अनुसार राजासे मिला दे ॥ २४ ॥

उद्भूतानर्थस्य त्विति—अर्थप्रतिघाति यत्कार्यं तदुत्पन्नं यस्य । भीतस्य चेति यो राजकुलाद्भीतस्तस्य जायां भिक्षुकी राजप्रणिहिता ब्रूयात् । तस्मिन्प्रयोगे तृतीयापरा प्रयुक्ता । सा ह्येवंविधं कार्यं बुद्ध्वा प्रयोज्यामन्तःपुरिकया योजयति । राजनि सिद्धा प्रसादयितृका (प्रसादवित्तका) । गृहीतवाक्येति सा यदाह तद्राजा करोति मम वचनं शृणोतीत्यात्मनो गृहीतवाक्यतामाह । स्वभावतः कृपाशीलेत्युक्त्या वाभावं (स्वभावं) दर्शयति । तामनेनेति तदानीं बुद्धिविकल्पितेनोपायेन । कथं मम प्रवेश इति चेदाह—अहमेवेति । अनर्थमित्युपलक्षणार्थम् । भयं च निवर्तयिष्यति । द्विस्त्रिरिति प्रवेशयेत्पश्चाज्जातपरिचया स्वयमेव प्रवेक्ष्यति । अभयमस्यै दद्यात् । अभयं निवेदितवत्यै संप्रहृष्टां न तूद्विग्नां संभाषेत ॥ २४ ॥

जिसका अर्थ-नाशकारी अनर्थ आ उपस्थित हुआ हो, जो राजघरानेसे डर रहा हो उसकी स्त्रीसे राजाकी भेजी हुई जोगिनि दूती उसे बहकानेकी बातें करे । इस काममें तीसरी और रहती है । वह इस प्रकार कार्य्य जानकर प्रयोज्याको अन्तःपुरचारिणीके साथ मिला देती है । इसके ही लिये यह कहा जाता है कि यह राजाके मनानेका ढंग जानती है, यह जो कहती है वही राजा करता है ।उसका भी यह कार्य्य होना चाहिये कि उस प्रयोज्यासे कहे कि मैं जो कहती हूं राजा वही करता है । राजा तो बड़े कृपालु हैं, इस तरह बातें बनाकर फिर उसे अपना भाव दरसाना चाहिये । यदि वह दुःखिता यह पूछे कि—' मैं राजातक कैसे पहुँच सकती हूं तो वह कहे कि, मैं तुझे अपनी तरकीबोंसे राजातक पहुँचा दूंगी, तू चिन्ता न कर ' इसके सिवा दूसरी २ भी रंगभरी बातें बनानी चाहियें, जिससे उसका डर निकल जाय । दो तीन बार साथ ले जाना चाहिये, बुला लेना चाहिये फिर तो वह आप ही भीतर घुस जायगी । उसे अभय मिलना चाहिये । जब अभय मिलनेपर वह प्रसन्न हो जाय तो फिर उससे बतलाये, यदि प्रसन्न न दीखे तो अगाड़ीका किस्सा न चलाये ॥ २४ ॥

एतया वृत्त्यर्थिनां महामात्राभितप्तानां बलाद्विगृहीतानां व्यवहारे दुर्बलानां स्वभोगेनासंतुष्टानां राजनि प्रीतिकामानां राज्यजनेषु पंक्ति (व्यक्ति) मिच्छतां सजातैर्बाध्यमानानां सजातान्बाधितुकामानां सूचकानामन्येषां कार्यवशिनां जाया व्याख्याताः ॥ २५ ॥

इसीसे नौकरी चाहनेवाले, प्रधान, सेनापति और दरबारियोंसे जले हुए, बलवान्से लड़े हुए, व्यवहारमें दुर्बल, अपने भोगसे असन्तुष्ट, राजामें प्रीति चाहनेवाले, राज्यके जनोंमें प्रसिद्धि चाहनेवाले, जातवालोंके सताये, भाइयोंको सतानेकी इच्छावाले, चुगलखोर और दूसरे २ कामोंमें परवशहुओंकी भी स्त्रियाँ कह दीं ॥ २५ ॥

एतयेति उद्भूतानर्थभीतजायया । वृत्त्यर्थिनां जीवनार्थिनाम् । महामात्राभितप्तानां महामात्रैः प्रभवद्भिः पीडितानाम् । बलाद्विगृहीतानां राजवत्त्वात् । व्यवहारे दुर्बलानां न्यायबलाभावात् । स्वभोगेन तावन्मात्रेणासंतुष्टानामधिकमिच्छताम् । राजनि प्रीतिकामानां कश्चित्परिभवं मम मा कार्षीदिति । राज्यजनेषु पंक्ति (व्यक्ति) प्रसिद्धिमिच्छतां राज्ञः प्रसाद्योऽयमिति । सजातैर्दायादैः । सूचकानामुद्भाषकाणाम् । कार्यवशिनामिति कार्यार्थिनाम् । जाया व्याख्याताः । अत्रापि भिक्षुकी ब्रूयादिति योज्यम् । एते प्रच्छन्नयोगा अत्यक्तजितस्वकुलासु स्त्रीषु ॥ २५ ॥

गतसूत्रमें जो अपने बड़े भारी अनर्थकी शंकासे डरे हुएकी स्त्रीके महल पहुँचनेकी बात बता दी, उसी तरह—जो जीविका चाहते हैं, जो राजकर्मचारियोंसे जले हुए व बलवानोंसे टकराये हुए हैं, कि 'राज है क्या बिगाड़ लेगा । अगाड़ी कुछ करेगा तो राजा तो है ।' जिन्हें न्यायका बल नहीं यानी व्यवहारके चोर हैं । जिन्हें राजसे जो कुछ प्राप्त हो रहा है उससे अधिक चाहनेवाले हैं, जो राजासे प्रेम चाहते हैं कि 'कहीं हमारा अनादर न कर दे ।' जो राजकीय पुरुषोंमें प्रसिद्धि चाहते हैं कि—इसे राजा मानता है'। जो हिस्सेदारोंके सताये हुए हैं । जो चुगलखोर हैं, जिन्हें कि राजसे कुछ कार्य्य है उसकी स्त्रियोंके साथ भी पूर्वकी व्यवस्था होती है । ये छिपे योग हैं, इनमें मिलनेवाली ऐसी रहती हैं कि जिसने अपने परिवारका परित्याग न किया हो॥२५

घरमें डालनेकी रीति ।

अन्येन वा प्रयोज्यां सह संसृष्टां संग्राह्य दास्यमुपनीतां क्रमेणान्तःपुरं प्रवेशयेत् ॥ २६ ॥

किसी दूसरेके साथ संसर्ग करती हुईको गिरफ्तार करा कर, दासी बना, क्रमशः महलमें रख ले ॥ २६ ॥

येन केनचित्संसृष्टा कृतसंसर्गा । संग्राह्येति नागरकेण विधिना ग्राहयित्वा । दास्यमुपनीतामिति—प्रकाशविनष्टाया वेश्याविशेषत्वात् । तां सामान्यस्त्रियं कारयित्वा क्रमेणान्तःपुरं प्रवेशयेत् । न सहसा निरन्तरमेव । मा भूदेतत्कृतः प्रयोग इति ॥ २६ ॥

राजा जिसे चाहता हो उसे नागरोंकी रीतिसे किसीके साथ संसर्ग करती हुई पकड़वा ले । जो उजगर विनष्ट हो जाती है वह एक तरहकी वेश्यासी ही हो जाती है, इस तरह उसे सामान्यस्त्री बनाकर क्रमशः अन्तःपुरमें घुसा ले सहसा न घुसाये, कि एकदम निरन्तर महलमें ही रख छोड़े ॥ २६ ॥

प्रणधिना चायतिमस्याः संदूष्य राजनि विद्विष्ट इति कलत्रावग्रहोपायेनैनामन्तःपुरं प्रवेशयेदिति प्रच्छन्नयोगाः । एते राजपुत्रेषु प्रायेण ॥ २७ ॥

गुप्तचरोंके द्वारा उसके पतिको राजद्रोही सिद्ध करा, उसके भविष्यको नष्ट करके स्त्रीके रोकनेके उपायोंसे उसे अन्तःपुरमें रख ले । ये छिपे प्रयोग हैं, ये प्रायः राजपुत्रोंमें ही होते हैं ॥ २७ ॥

प्रणधिना चारेण संदूष्य संभूतेनैव दोषेण । अन्यथा अदुष्टदूषणमधर्माय भवति । एवं चास्य कलत्रावग्रहो न दोषाय । एतद्योगद्वयमत्याजितस्वकुलासु । एते राजपुत्रेषु प्रायेण न तु राज्ञः । तस्य मण्डले प्रतिष्ठितत्वात्कादाचित्काः स्युः ॥ २७ ॥

यदि वह राजविद्रोही हो तब ही उसके शिर राजविद्रोहका इलजाम लगवाये क्योंकि विना दोषके दोष लगवानेमें अधर्म होता है । यदि राजद्रोही है राजासे अकारण द्वेष करता है तो उसके परिवारको रोक रखनेमें कोई दोष नहीं है । ये दो योग उनके लिये हैं, जिन्होंने अपने कुलका त्याग न कर दिया हो । ये योग प्रायः राजपुत्रोंके विषयमें देखे जाते हैं, राजा इन्हें नहीं करते, क्योंकि वह मण्डलमें प्रतिष्ठित है, इस कारण उसमें ये कभी २ होते हैं ॥ २७ ॥

दूसरेके घर जानेमें दोष ।

ननु परभवनप्रवेशेनापि च्छन्नयोगाः संभवन्ति यदा दूत्या प्रयोज्यां संकेत्य प्रच्छन्नः प्रविशति । न च तदानीं चरितं महाजनेन दृश्यतेऽनुविधीयते चेत्यत्राह—

यहां यह आशंका होती है, कि दूसरेके घरमें घुसजानेसे भी गुप्त योग हो सकते हैं जब कि दूतीसे प्रयोज्याको संकेत कराकर घुसता है। इस तरह उस रूनय बड़े आदमियोंसे चरित्र भी नहीं देखा जाता ; एवम् छिपा रहनेके कारण कोई नकल भी न कर सकेगा, इसका उत्तर देते हैं कि—

न त्वेवं परभवनमीश्वरः प्रविशेत् ॥ २८ ॥

इस तरह भी राजा किसीके घर न जाय ॥ २८ ॥

प्रविशेत्प्रच्छन्नोऽपीत्यर्थः ॥ २८ ॥

राजा छिपकर भी कभी व्यभिचार करने न जाय ॥ २८ ॥

कोट्टराजकी धोबीसे व जयसेनकी दरोगासे हत्या।

अत्र विवृतं दोषं दर्शयति—

दूसरेके घर जानेमें जो प्रसिद्ध दोष हैं उन्हें दिखाते हैं कि—

आभीरं हि कोट्टराजं परभवनगतं भ्रातृप्रयुक्तो रजको जघान । काशिराजं जयसेनमश्वाध्यक्ष इति ॥ २९ ॥

दूसरेके घरमें गये कोट्टराज आभीरको भाईके भेजे हुए धोबीने मार डाला। काशीराज जयसेनको सईसोंके दरोगाने मार डाला ॥ २९ ॥

गूर्जराते कोट्टं नाम स्थानं तस्य राजानमाभीरनामानम् परभवनगतमिति—श्रेष्ठि=सुमित्रस्य भार्यामधिगन्तुं तद्भवनगतं जघान ॥ २८ ॥

गुजरातमें एक कोट्ट नामक स्थान है, वहांके आभीर नामके राजाको जो कि सेठ वसुमित्रकी स्त्रीसे सहवास करनेके लिये उसके घर गया था, सेठके भाईके भेजे धोबीने वहीं खतम कर दिया इसी तरह जयसेन भी मारागया ॥ २९ ॥

राजाओंकी खुली रँगरेलियाँ।

प्रकाशास्तु योगा राज्ञः प्रायेण द्रष्टव्याः । यदाह—

राजाओंको तो प्रायः खुलेयोग देखने चाहियें उन्हें ही बताते हैं कि—

प्रकाशकामितानि तु देशप्रवृत्तियोगात् ॥ ३० ॥

उजगरकी रँगरेलियाँ तो देशाचारके अनुसार होती हैं ॥ ३० ॥

देशप्रवृत्तियोगादिति यो यस्मिन्देशे समाचारः पूर्वैः स्थापितस्तद्योगादिति । अतो दृश्यमानान्यपि कामितानि महाजनेन नानुविधीयन्ते । राज्ञामेव तत्राधिकारात् ॥ ३० ॥

पहिलोंने जिस देशमें जो रीति चला दी, उसी रीतिके अनुसार महा- -पुरुषोंकी जानकारीमें भी रँगरेलियाँ राजा कर सकता है। उसकी कोई -नकल भी नहीं कर पाता, क्योंकि वे बातें राजाके लिये ही रिजर्व होती हैं॥

आन्ध्रकी रीति।

प्रत्ता जनपदकन्या दशमेऽहनि किंचिदौपायनिकमुप- गृह्य प्रविशन्त्यन्तःपुरमुपभुक्ता एव विसृज्यन्त इत्या- न्ध्राणाम् ॥ ३१ ॥

आन्ध्रदेशकी रीति है, कि—'विवाहके दशदिनबाद लड़कीको कुछ भेंट देकर, राजमहलमें भेज देते हैं, वे वहाँसे उपभोग करके ही छोड़ते हैं' ॥३१॥

प्रत्ता इत्यूढा। औपायनिकमुपायप्रयोजनं वस्त्रादि। उपभुक्ता राज्ञा संप्र- युक्ताः। विसृज्यन्ते त्यक्ष्यन्ते इत्यान्ध्राणां प्रवृत्तिः ॥ ३१ ॥

आन्ध्रदेशके लोग जब उनकी लड़कीका व्याह होजाता है तो उसके दशवें दिन राजाकी मुलाकातके लिये वस्त्रादिक भेंट देकर राजाके यहां भेज देते हैं, वे उसे भोगकर फिर जहांकी तहां कर देते हैं ॥ ३१ ॥

वात्सगुल्मककी रीति।

महामात्रेश्वराणामन्तःपुराणि निशि सेवार्थं राजानमु- पगच्छन्ति वात्सगुल्मकानाम् ॥ ३२ ॥

दाक्षिणके वात्सगुल्मक देशमें दीवान, सेनापति आदिकोंकी स्त्रियाँ, रातको सेवाके लिये राजाके यहाँ आती हैं ॥ ३२ ॥

महामात्राणामीश्वरा मुख्यास्तेषामन्तःपुराणि स्त्रियः। सेवार्थमिति कर्तुं (रन्तुम्)। वात्सगुल्मकानामिति दक्षिणापथे सोदर्यौ राजपुत्रौ वत्सगुल्मौ ताभ्यामध्यासितो देशो वात्सगुल्मक इति प्रतीतः। तत्रभवानामियं प्रवृत्तिः॥ ३२

इनके राजा ही प्रधान हैं, इस कारण ये अपने अन्तःपुर यानी अपने जनान- खानेमें जो लचीली होती है उसे राजासे रमण करनेके लिये भेजदेते हैं उनके यहां उनसे छोटोंकी आती हैं। दक्षिण देशमें वत्स और गुल्म दोनों सहोदर भाई थे। उन्होंने जिस देशको अधिकृत किया वह वात्सगुल्मक कहाता है वहांके रहनेवालोंका यही हाल है ॥ ३२ ॥

विदर्भकी रीति।

रूपवतीर्जनपदयोषितः प्रीत्यपदेशेन मासं मासार्धं वातिवासयन्त्यन्तःपुरिका वैदर्भाणाम् ॥ ३३ ॥

विदर्भदेशकी ऐसी चाली है, कि रानियाँ प्रजावर्गकी सुन्दरास्त्रियोंको प्रेमके वहाने महीना २ पन्द्रह २ दिनतक रख लेती हैं ॥ ३३ ॥

रूपवतीरिति प्रशंसायां वतिः । प्रीत्यपदेशेनेति प्रीतिस्तत्रापदेशः । संप्रयोगस्तु प्रयोजनम् ॥ ३३ ॥

रूपवती यहां 'वाति' प्रशंसामें है यानी जिनके सौन्दर्य्यकी प्रशंसा सुनती हैं उनको महलमें रखनेका प्रेमका वहाना करती हैं एवम् राजाके साथ सहवास कराना इसका प्रयोजन रहता है ॥ ३३ ॥

अपरान्तकी रीति ।

दर्शनीयाः स्वभार्याः प्रीतिदायमेव महामात्रराजभ्यो ददत्यपरान्तकानाम् ॥ ३४ ॥

अपरान्तदेशमें यह रीति है, कि अपनी सुन्दरी स्त्रीको राजा वा प्रधान आदिकी प्रेम भेंटमें दे देते हैं ॥ ३४ ॥

ये लोग अपनी स्त्रीको राजाको दे देते हैं ॥ ३४ ॥

सौराष्ट्रकी रीति ।

राजक्रीडार्थं नगरस्त्रियो जनपदस्त्रियश्च सङ्घश एकशश्च राजकुलं प्रविशन्ति सौराष्ट्रकाणामिति ॥ ३५ ॥

सौराष्ट्रमें यह रीति है, कि नगर और देशकी स्त्रियाँ संघके रूपमें और एक २ करके भी राजमहलोंमें जाती हैं ॥ ३५ ॥

नगरं यत्र राजधानी तत्र स्त्रियो नगरस्त्रियः । ततो बाह्या जनपदस्त्रियः । सङ्घश इति संभूय । एकश इत्येकैकशश्च सौराष्ट्रकाणामिति ॥ ३५ ॥

नगर राजधानीका नाम है । वहाँकी स्त्रियां और उससे बाहिरके देशकी स्त्रियाँ, संघके रूपमें यानी सब इकट्ठी हो और एकशः यानी एक २ के रूपमें अर्थात् अकेली २ भी जाती हैं ॥ ३५ ॥

अन्ययोग ।

उक्तमनुक्तं चोपसंहरन्नाह—

विना कहेहुए और कहे हुओंका उपसंहार करतेहुए कहते हैं—

श्लोकावत्र भवतः—

'एते चान्ये च बहवः प्रयोगाः पारदारिकाः ।
देशे देशे प्रवर्तन्ते राजभिः संप्रवर्तिताः ॥ ३६ ॥

इसके दो श्लोक होते हैं, कि—'ये और दूसरे बहुतसे पारदारिक प्रयोग हैं वे देश देशमें प्रवृत्त होते हैं, उन्हें वहांके राजाओंने प्रवृत्त किया है' ॥ ३६ ॥

एते चेति अन्ये चैतत्प्रकाराः। पारदारिकाः परदारप्रयोजना एते देशे देशे प्रवर्तन्ते, पूर्वराजभिः संप्रवर्तितत्वात् ॥ ३६ ॥

ऐसे ही दूसरे २ भी परदारोंके साथ रंगरेली करनेके प्रयोग हैं। इन्हें पहिले राजाओंने अपने २ देशमें चलाया है, वे आज भी प्रचलित हैं ३६ ॥

राजधर्म व्यभिचारका नहीं।

जो प्रजाको प्रसन्न राखे उसका नाम राजा है। राजाकी प्रजा पुत्रवत् होती है। उसकी सगी पुत्रीसे भी अधिक प्रजाजनोंकी सन्तानें हुआ करती हैं। जब वह चारोंवर्णोंका गुरु है तो उसका भी यह काम होना चाहिये, कि सबकी बहिन बेटियोंको अपनी बहिनबेटियोंसे भी अधिक समझें, चाहें वे कैसी भी हों। यही है भी सत्य, जब वह सबका पिता है तो सब उसकी सन्तानें ही हुईं; फिर उसका व्यवहार सबके साथ वही होना चाहिये जो बापका बेटोंसे होता है। पुराने राजा—भारतके पहिले राजाओंका यही व्यवहार था, प्रजा उनकी सन्तान और वे प्रजाके सच्चे पिता थे, यहां तक कि सन्तानसे भी अधिक उनके लिये प्रजा थी। प्रजाके साथ दुर्व्यवहार करनेवाले पुत्रको भी वे नहीं सह सके थे, यही कारण है कि आज यह दीनदीन भारत उनके नामको जपता २ भी नहीं अघाता। महाराजा दशरथ प्रजाकी रक्षा करनेके लिये शनिदेवके सामने तक चले गये थे। उन लोगोंका यह भाव नहीं था कि राज्य मेरी भोग्य वस्तु है, किन्तु यह ध्यान था कि यह मेरी सेव्य वस्तु है। दण्ड द्वेषभावसे नहीं, किन्तु—"निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्" मर्य्यादाकी रक्षा व पापोंको शुद्ध करनेके लिये दण्ड दिया करते थे। क्या शान्तनु बलपूर्वक या धोखेबाजीसे मल्लाहकी लड़की नहीं ले सकते थे ? पर उन्होंने ऐसा कामार्तदशामें भी नहीं किया। उसे अपने तख्तोताजकी भेंट देकर ही प्रसन्न किया। इन सब इतिहासोंके देखनेसे एवम् भारतके पुराने ढंगके राजाओंका आज भी वही वर्तन देखनेसे यह प्रतीत होता है कि—भारतीय राजा इस कर्मकी बराबर दूसरा कोई भी बुरा कर्म नहीं समझते थे। तब मुझे यह विश्वास नहीं होता, कि भारतके प्राचीनकालमें किसी राजाने ऐसी प्रथा प्रचलित की हो, कि जिसमें वह प्रजावर्गकी बहिन बेटियोंके साथ इस

तरह कामवासना पूरी करके अपना मुँह काला कर सके। किसीकी नकल की—हो तो हो सकता है, कि भारतके पतनकालके प्रारंभमें या पतनके बीच किसी उद्दण्डने अपने राज्यके बीच ऐसी रिवाज किसी दूसरे देशके देखादेखी प्रचलित की हो और वह किसी वीरहृदयका कोप भाजन होकर परम गतिको प्राप्त हो गया हो। श्रीवात्स्यायनने उसी समयके प्रचारको लेकर लिख दिया है, न तो इन देशोंमें अब ह एवम् न पहिले था ही। कहांसे आया—भारतकी बिगड़ी दशामें इसे बर्बाद करनेको कुछ पड़ोसी चले आये थे, उस समय देश द्वेष, अनैक्य और अहंमन्यताका खजाना बन गया था, उन्होंने जितना भी स्वेच्छाचार हो सका किया, देशको जितना भी भ्रष्ट कर सकते थे किया। बलात्कार और नारीहरण तो उनके यहां एक शानका कृत्य समझा जाता था। ऐसे अत्याचारियोंको भारतीयोंने कभी अपना शाह नहीं माना। उन्होंने तख्तोताजके नामपर जो हो सकता था वह किया। भारतीयोंने उनसे सीखा। नहीं तो नौकर भी तो अपना बेटा जैसा ही होता ह, उसके परिवारको चरित्रहीन बनाना अपनी पुत्रवधूको आदर्शहीन करना है। जो ऐसा करते हैं उनके पास तख्तोताज कभी सही सलामत नहीं रह सकता एवम् जिन्होंने ऐसा किया उनके पास भी दो दिन ही रहा है। मैं इस बातके लिये ब्रिटिशसत्ताको धन्यवाद देता हूं, कि—"उसके नैतिक वर्तनमें इन बातोंकी गन्ध भी नहीं है" न उनके अधिकारमें रहनेवाला कोई मण्डलेश्वर ही ऐसा काम सार्वजनिक रूपमें कर सकता है। वैसे तो कालका प्रभाव है पापी और पुण्यात्मा सर्वत्र ही रहते हैं।

जयाकांक्षीके लिये नहीं।

न त्वेवैतान्प्रयुञ्जीत राजा लोकहिते रतः।
निगृहीतारिषड्वर्गस्तथा विजयते महीम् ॥ ३७ ॥'

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे
ईश्वरकामितं पञ्चमोऽध्यायः।

प्रजाओंके हितैषी राजाओंको इनका प्रयोग न करना चाहिये, उसे तो इस प्रकार चलना चाहिये, कि दुश्मनोंपर विजय पाकर भूमिमें जय २ कार प्राप्त करे ॥ ३७ ॥

स महीपतिर्न विजयते अनिगृहीतारिषड्वर्गत्वात् । विजयस्य कारणं कामक्रोधलोभमानमदहर्षजय इति । ईश्वरकामितं सप्तचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे ईश्वरकामितं पञ्चमोऽध्यायः ।

जो राजा परदाररत रहते हैं उसका जय जयकार कभी नहीं होता । क्योंकि उन्होंने अपने भयंकर वैरियोंके छः टोलोंको तो जीता ही नहीं हैं । काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष, इन छओंका षड्वर्ग कहाता है । सबसे ज्यादा तो दुश्मन ये ही हैं । जो राजा इनपर विजय पा लेते हैं, उन्हींका जमींपर जय जयकार होता है, वे ही भूमिको जीतते हैं । यह ईश्वरोंकी रंगरेलियां नामक ४७ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

इति श्री पं० दीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके पंचम अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अन्तःपुरिका वृत्त प्रकरण ।

यथेश्वराणां परभवनप्रवेशो नास्ति तथान्तःपुरिकाणां नागरकाणां चान्तःपुरप्रवेश इति ।

जिस प्रकार राजा किसीके घर बुराकर्म करनेके लिये नहीं जा सकते, इसी तरह महलोंकी रहनेवाली स्त्रियाँ भी बाहिर नहीं जा सकतीं । न यही होता है, कि उनके पास कोई छैला घुसजाय ।

राजमहलमें जाना तथा रानीआदिकोंकी लीलाएँ ।

(अन्तःपुरिकाणां नागरिकाणां) चेत्युभयथाप्यन्तःपुरिकावृत्तमुच्यते ।

पर रंगरेलीके लिये वहां भी सापेक्ष्यता है । वहां नायकका प्रवेश और उनकी रंगरेली ये दोनों बातें चाहिये । अतः अब दोनों तरहका राजमहलोंका वृत्त कहा जाता है ।

महलकी स्त्रियोंकी लीलाएँ ।

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

इन दोनोंमें भी पहिले महलकी स्त्रियोंका समाचार बताते हैं, क्योंकि वहांके रहनेवालियोंका हालचाल पहिले एवम् छैलाके घुसनेकी बात पीछे है-

नान्तःपुराणां रक्षणयोगात्पुरुषसंदर्शनं विद्यते पत्युश्चैकत्वादनेकसाधारणत्वाच्चातृप्तिः । तस्मात्तानि प्रयोगत एव परस्परं रञ्जयेयुः ॥ १ ॥

राजमहलोंमें रहनेवालियोंके रक्षणके योगसे पुरुष दर्शन नहीं होता। पति एक रहता है वह भी बहुतासियोंका एक जैसा, इसकारण तृप्ति नहीं होती इसी कारण वे आपसमें प्रयोगसे एक दूसरीको तृप्त करें ॥ १ ॥

नान्तःपुराणामिति । तस्मादन्तःपुरिकाणामित्यर्थः । तासां पतिरस्त्येवेति चेदाह—पत्युश्चैकत्वादिति । एकोऽपि तृप्तिं कुर्यादिति चेदाह—अनेकसाधारणत्वाच्चेति । स हि तासां साधारणः कथं तृप्तिं कुर्यात् । प्रयोगत एवेति । प्रयोगतः । परस्परमिति या रतिमन्यस्यां कुर्यात्तस्यामन्येति ॥ १ ॥

अन्तःपुरका तात्पर्य्य महलके भीतरकी स्त्रियोंसे है, क्योंकि जड़ महलोंकी क्या तृप्ति होगी । उनका पति है ही फिर भी तृप्ति क्यों नहीं होती ? इसका उत्तर देते हैं, कि ' उनका पति एक होता है । ' क्या एक तृप्ति नहीं कर सकता ? इस शंकाका उत्तर देते हैं—वह बहुतासियोंका एकसा ही स्वामी है फिर सबकी कैसे तृप्ति कर सकेगा ? वे आपसमें प्रयोगसे तृप्त हों यानी जो दूसरीमें रति करे उसमें दूसरी करे ॥ १ ॥

प्रयोग विधि ।

प्रयोगमाह—

वे किस तरह आपसमें तृप्ति करें ? इस बातको बताते हैं कि—

धात्रेयिकां सखीं दासीं वा पुरुषवदलंकृत्याकृतिसंयुक्तैः कन्दमूलफलावयवैरपद्रव्यैर्वात्माभिप्रायं निवर्तयेयुः ॥ २ ॥

धात्रेयी, सखी अथवा दासीको पुरुषकी तरह सजाकर आकृतिवाले कन्द, मूल और फलोंके अवयवोंसे, अपद्रव्योंसे अपने अभिप्रायको निवृत्त करें ॥२॥

पुरुषवदलंकृत्येति—तत्र हि पुरुषबुद्ध्यातिमात्रे भावे तृप्तिरतिशयितवती भवति । आकृतिसंयुक्तैरिति—पुरुषेन्द्रियसंस्थानवद्भिः । कन्दमूलफलावयवैरिति—तत्र कन्दा आलुककदल्यादीनाम् । मूलं तालकेतकीनाम् । फलमलाबुकर्कटिकादीनाम् । एतानि

संशोध्य ग्राह्याणीति । अवयवग्रहणे फलं दर्शयति—आत्माभिप्रायमिति—रागभावं निवर्तयेयुः । केवलं श्रद्धाविनो [दनं] न तथाविधः कामः स्यादप्राधान्यात् ॥२॥

उसमें पुरुषकी बुद्धि कर लेनेपर भावके अतिमात्र होजानेपर अत्यन्त तृप्ति होजाती है । आकृतिवाले यानी पुरुषके उपस्थकी आकृतिवाले, आलुक और कदली आदिक कन्द, ताल और केतकी आदिका मूल, तूमा, ककड़ी आदि फल, इन चीजोंको शोधकर लेना चाहिये । इन्हींसे उपस्थ बनाया जाता है। इनके अवयवोंके ग्रहणका फल दिखाते हैं, कि इनसे राग और भावकी शान्ति करें । यह केवल कामकी श्रद्धाका विनोद है, यह अप्रधान होनेके कारण काम नहीं कहलाता ॥ २ ॥

पुरुषप्रतिमा अव्यक्तलिङ्गाश्चाधिशयीरन् ॥ ३ ॥

जिनमें डाढी मूँछ कुछ नहीं ऐसा पुरुष देहोंके साथ सोयें ॥ ३ ॥

पुरुषप्रतिमाः पुरुषदेहा. । अव्यक्तलिङ्गा अजातश्मश्रुत्वात्स्त्रीरूपाभासा इत्यर्थः ३

जो डाढ़ी मूँछ कुछ भी न होनेके कारण स्त्री जैसे दीखें ऐसे पुरुष देह हों (इन्हें स्त्री भषम रखकर सो लिया करें) ॥ ३ ॥

प्राच्योंमें अपद्रव्योंका प्रयोग ।

एकोऽपि तृप्तिं कुर्याद्यः कामार्तासु कृपाशीलो यथा प्राच्यानामित्याह—

अकेला भी तृप्ति कर सकता है जो कि कामार्त स्त्रियोंमें कृपाशील हो जैसा कि प्राच्योंमें होता है, इसी बातको बताते हैं कि—

राजानश्च कृपाशीला विनापि भावयोगादायोजितापद्रव्या यावदर्थमेकया रात्र्या बह्वीभिरपि गच्छन्ति । यस्यां तु प्रीतिर्वासकः ऋतुर्वा तत्राभिप्रायतः प्रवर्तन्त इति प्राच्योपचाराः ॥ ४ ॥

कृपाशील राजा विना भी भावयोगके अपद्रव्यको लगाकर जबतक तृप्ति नहीं होती एक ही रातमें बहुतोंके साथ भी सहवास करते हैं, किंतु जिसपर प्रेम हो वा जिसका ऋतु व वासक हो वहाँ भावपूर्वक सहवास करते हैं, यह प्राच्योंका उपचार है ॥ ४ ॥

---

१ यद्यपि निमूछो पुरुषकी प्रतिमाके साथ सोनेका भाव भी इन शब्दोंसे व्यक्त होता है पर शाही महलोंमें स्त्रीवेषधारी निमूछे पुरुषोंकी अनेकों बातें मिलती हैं ।

विनापि भावयोगादित्यजातसंप्रयोगेच्छा अपि । आयोजितापद्रव्या इति कटयामाबद्धकृत्रिमसाधनाः । यावदर्थं यावत्तृप्ति बह्वीभिरपि स्त्रीभिः सह गच्छन्ति संप्रयोगमिति । अभिप्रायतो भावेनेत्यर्थः । अयमन्तःपुरविषये योग उक्तः ॥ ४॥

भले ही मिलनेकी इच्छा न हो तो भी कमरमें बनावटी उपस्थ बाँधकर, जब वे तृप्त नहीं होतीं तब तक बहुतसी स्त्रियोंके साथ भी मिल लेते हैं, पर जिसका ऋतु आदि होता है उनके साथ विना अपद्रव्यके बाँधे रागपूर्वक मिलते हैं, यह प्राच्यके दयालु राजाओंका व्यवहार रहता है। यह अन्तःपुरके विषयमें योग कह दिया गया ॥ ४ ॥

विना स्त्रियोंवाले पुरुषोंकी कामशान्ति ।

स्त्रीयोगेणैव पुरुषाणामप्यलब्धवृत्तीनां वियोनिषु विजातिषु स्त्रीप्रतिमासु केवलोपमर्दनाच्चाभिप्रायनिवृत्ति-र्व्याख्याता ॥ ५ ॥

स्त्रियोंके इस प्रयोगसे ही जिन पुरुषोंको स्त्रियाँ नहीं मिलती उनके अभिप्रायकी शान्ति, योनिरहितोंमें, विजातियोंमें और स्त्रियोंकी प्रतिमाओंमें तथा केवल उपमर्दनमें कह दी ॥ ५ ॥

यथा स्त्रीणां क्वचित्पुरुषबुद्धिषु स्वाभिप्रायनिवृत्तिरेवं पुरुषाणामपि केषामित्याह—अलब्धवृत्तीनामिति—ये स्त्रियं न प्राप्नुवन्ति । वियोनिषु—चलोरुकरव्यादिषु (?) । विजातिषु—एडीवडवादिषु । स्त्रीप्रतिमासु—स्त्रीप्रकृतिषु समुत्कीर्णस्त्रीलिङ्गादिषु । केवलमुपमर्दनाच्चेति—सिंहाक्रान्तकरेण वा साधनस्य मन्थनादेव केवलात् । यथोक्तम्—' भुवि विन्यस्तहस्ताभ्यामवष्टभ्योत्कटासनः । बाहुमध्ये विमृद्नीयात्सिंहाक्रान्तस्त्वयं विधिः ॥' अस्थानेषु शुक्रविसृष्टिर्विधर्म इति चेत् सत्ताभिधाने (?) कथम् ? तत्र प्रायश्चित्तविधानादिति चेदिहापि विहितत्वात् ॥ ५॥

जैसे कभी स्त्रियोंके अभिप्रायकी निवृत्ति, पुरुष बननेवाली स्त्रियोंमें हो जाती है उसी तरह पुरुषोंकी भी होती है । किनकी होती है ? इस बातका उत्तर देते हैं, कि जिन्हें स्त्रियाँ नहीं मिलतीं । उनकी इच्छाकी शान्ति हिलते हुए ऊरुओं और मुट्ठी आदिमें, भेड़, बकरी और घोड़ी आदिमें, स्त्रियोंकी उन प्रतिमाओंमें जिनमें कि स्त्रियोंके सब चिह्न हों और सिंहाक्रान्त

करसे साधनके मथनेसे होती है । सिंहाक्रान्त—'जमीनमें दोनों हाथ टेक कर अपने शरीरके वजनको उसपर थामकर कुकुड्डू होकर बैठे । साधनको दोनों बाहोंके बीचमें देकर मसले, सिंहाक्रान्तोंमें यह विधि होती है ।' जो जगह वीर्य्यपात करनेकी नहीं है वहां वीर्य्यपात करना महापाप है तो यह सप्राभिधानमें फिर कैसे इन बातोंको कह रहे हो ? इसका उत्तर देते हैं कि वहां प्रायश्चित्तका विधान किया है तो यहाँ भी विधान और प्रायश्चित्त दोनों ही कह दिये हैं ॥ ५ ॥

भीतर घुसाना ।

बहिर्विषयमाह—

बाहिरके विषयको बताते हैं कि वहां नागर कैसे पहुँचते हैं, कि—

योषावेषांश्च नागरकान्प्रायेणान्तःपुरिकाः परिचारिकाभिः सह प्रवेशयन्ति ॥ ६ ॥

अन्तःपुरकी रहनेवाली प्रायः दासियोंके साथ नागरोंको स्त्रीके वेशमें घुसा लेती हैं ॥ ६ ॥

परिचारिकाभिरिति । प्रदोषे परिचरितुमन्तःपुरं प्रविशन्तीभिः ॥ ६ ॥

जो रातको रानियोंकी सेवा करनेके लिये आती हैं वे अपने साथ अपनेमेंसे किसीके वेशमें नागरोंको भी महलोंमें घुसा लेती हैं ॥ ६ ॥

तेषामुपावर्तने धात्रेयिकाश्चाभ्यन्तरसंसृष्टा आयतिं दर्शयन्त्यः प्रयतेरन् ॥ ७ ॥

उनको इसके लिये तयार करनेके वास्ते, रानीकी धायकी अन्तरंग छोकड़ियोंको चाहिये, कि उन्हें होनेवाले लाभोंको समझायें ॥ ७ ॥

तेषामिति–नागरकाणां उपावर्तने–अभिमुखीकरणे, प्रयतेरन् । अभ्यन्तरसंसृष्टा इति–तासु नागरकाणां यथार्थबुद्धिर्न बाह्यासु । आयतिमिति–आगामिफलमेवं भविष्यतीति ॥ ७ ॥

जो रानीकी अन्तरंग हैं उन्हींकी बातको नागरजन सच्ची समझेंगे, जो अन्तरंग नहीं हैं उनकी बातें सच्ची न समझी जायँगी । अतएव उन्हें ही

---

१ यह अनेक रोगोंका कारण है अतः सर्वत्र इसका निषेध है, इसे आतुर मूर्ख कर बैठते हैं । द्विज पुरुषोंको सदा इसका बहिष्कार करना चाहिये ।

नागरोंको भीतर झुकानेके लिये प्रयत्न करना चाहिये । यदि काम न बनता दीखे तो भविष्यके सब्जबाग दिखायें कि यह लाभ होगा यह होगा ॥ ७ ॥

सुखप्रवेशितामपसारभूमिं विशालतां वेश्मनः प्रमादं रक्षिणामनित्यतां परिजनस्य वर्णयेयुः ॥ ८ ॥

वे उसे बहकाती बार आरामसे घुसने और निकलनेकी विधि, भवनकी विशालता तथा महलोंके पहिरेदारोंका प्रमाद एवम् राजा व राजकुमार आदिका सदा पास न रहना बतावें ॥ ८ ॥

अपसारभूमिम्—अपक्रमगमार्गम् । विशालतामिति—विस्तीर्णं न ज्ञायते क्व क्वि वर्तत इति । प्रमादम्—असावधानताम् । अनित्यतामिति—राजपरिजनो न नित्यं संनिहित इति ॥ ८ ॥

जानेकी विधि, निकल भागनेका रास्ता बता दे । कह दे कि महल इतना बड़ा है, कि वहां किसीको पता ही नहीं चल सकता । यह भी कह दें कि पहिरेदारोंसे बिलकुल न डरना चाहिये, क्योंकि वे बड़े प्रमादी हैं । राजपरिजन भी सदा पास नहीं रहता ॥ ८ ॥

विना प्रबन्धके न ले जाय ।

न चासद्भूतेनार्थेन प्रवेशयितुं जनमावर्तयेयुर्दोषात् ॥ ९ ॥

यदि आने जानेका ढंग न हो तो मनुष्यको भीतर जानेके लिये तयार न करे, क्योंकि इसका दोष है ॥ ९ ॥

असद्भूतेनेति—विनाभावेन सुप्रवेशितां विना । जनमिति—नागरकम् । आवर्तयेयुः—अभिमुखीकुर्युः । दोषादिति—विनाभावमदुष्टदूषणे आत्मनः सुप्रवेशिताद्यभावे च जनस्यापकारः ॥ ९ ॥

असद्भूत अर्थके द्वारा यानी विधिपूर्वक आने जानेका उचित प्रबन्ध न हो सके तो महलके भीतर जानेके लिये न ललचाये, न ले ही जाये, क्योंकि विना मार्गके अथवा जिसमें व्यभिचारका भाव नहीं है, उसे व्यभिचारी बनानेमें दोष है तथा उसका बुरा भी हो सकता है ॥ ९ ॥

इसपर वात्स्यायनका निषेध ।

द्वितीयं वृत्तमधिकृत्याह—

महलमें जानेकी इच्छा रखनेवालोंके विषयको लेकर कहते हैं कि—

नागरकस्तु सुप्रापमप्यन्तःपुरमपायभूयिष्ठत्वान्न प्रविशेदिति वात्स्यायनः ॥ १० ॥

नागर तो भले ही चाहे अन्तःपुर सुप्राप्य हो पर न घुसे, क्योंकि इनमें अधिक हानिकी ही संभावना है ॥ १० ॥

अपायभूयिष्ठत्वादिति—बहूनां विनाशकारणानां संनिधानात् ॥ १० ॥

जितना लाभ नहीं उससे कितने ही गुने अधिक नाशकी सामा वहीं पास ही है, इस कारण महल न जाय ॥ १० ॥

महल न घुसनेके कारण ।

महर्षि वात्स्यायन जो राजमहलमें न घुसनेके लिये कह रहे हैं, इसका पहिला कारण तो वही है जो कि वे पीछे प्रतिपादन कर आये हैं, कि—"राजाका परिवार चारों आश्रमों व चारों वर्णोंके गुरुका परिवार रहता है, अतः वह गुरुपत्नीकी तरह त्याज्य है" यह बात उस अवस्थाकी है जब कि उसका अन्तःपुर सुप्राप्य समझा जाय । किन्तु सिवा इस बातके वहां दूसरा भी कारण है, कि महलमें घुसना या इस प्रकारकी चेष्टा करता पकड़ा जाय तो सीधे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता है । आजतकका इतिहास बता रहा है, कि जो पुरुष ऐसी चेष्टामें पकड़ गये या जिनपर इस तरहका सन्देह हुआ वे यावज्जीवन जेलखानोंमें ही सड़कर मरे । जिन्हें मौतका भी डर नहीं जिनके कि प्रारब्ध भोगोंने इस ओर प्रेरित कर दिया है जैसा कि सायणने कहा है कि—

"अपथ्यसेविनश्चौरा राजदाररता अपि,
जानन्त एव स्वानर्थान् यतन्त्यारब्धभोगतः ॥"

जिनकी तकदीरमें कुछ भलाबुरा बदा है वे राजमहलकी तरफ बुरी नजर करते हैं । दूसरी चेष्टा उन लोगोंकी होती है जो बराबरके राजकुमार आदि होते हैं । मेरी समझमें तो प्रजावर्गके लोगोंके लिये काचित्क ही है । इन उपायोंको वे राजकुमार अपने प्रयोगमें लाते हैं जो किसीके सौन्दर्य्यको सुनकर उसके पानेके लिये निकल खड़े होते हैं । वे 'येन केन' महल घुसनेकी चेष्टा करते हैं यदि पकड़े जाते हैं तो जानपर खेल जाते हैं, इस लीलाको कहां तक कहूं कहीं २ तो भोज जैसे वीरोंको भी अध्यापक बनकर ही कार्य्य चलाना पड़ा है ये उन्हीं लोगोंके कार्य्य हैं प्रजावर्गके नहीं, इसी कारण साधारण युवकोंके लिये वात्स्यायन इनकार करते हैं ।

ध्यानमें रखने योग्य ।

अत्र विशेषमाह—

महलमें जानेके समय जिस बातको सोचना चाहिये उसे बताये देते हैं कि—

सापसारं तु प्रमदवनावगाढं विभक्तदीर्घकक्ष्यमल्पप्रमत्तरक्षकं प्रोषितराजकं कारणानि समीक्ष्य बहुश आहूयमानोऽर्थबुद्ध्या कक्ष्याप्रवेशं च दृष्ट्वा ताभिरेव विहितोपायः प्रविशेत् ॥ ११ ॥

भजनेकी गैल हो, चारों ओर गाढा प्रमदवन हो, अलग २ बड़ी २ लम्बी २ कक्षाएँ हों, थोड़ेसे असावधान रक्षक हों, राजासाहिब बाहिर गये हों, ऐसे समयमें महल जानेके कारणोंका विचार करके, बहुत बारके बुलाने पर अर्थकी बुद्धिसे कक्षाप्रवेश जानकर उन्हींके बताये हुए उपायसे महलमें घुसे ११

प्रमदवनं क्रीडावनं तेनावगाढं गहनम् । कक्ष्या प्रकोष्ठकानि । प्रोषितराजकं राज्ञोऽन्यत्र गतत्वात् । कारणान्यभिगमनस्य । बहुश आहूयमानोऽर्थबुद्ध्या । कक्ष्याप्रवेशं दृष्ट्वा अनेन मार्गेण मया प्रवेष्टव्यमिति । ताभिरिति—या उपावर्तन्ते । विहितोपाय इत्येवंवेषोऽस्मिन्काले गृहीत्वा चेदमिति ॥ ११ ॥

प्रमदवन क्रीडावनका नाम है, वह उससे गहरा बना हो, यानी प्रमदवन सघन हो जिसमें ढूंढा भी न पाये । कक्षा प्रकोठोंका नाम है । राजा जब बाहिर दौरेपर जायँगे तब ही महल राजासे खाली रह सकता है, विना बाहिरके तो राजा महल आयेंगे ही । जो परदारगमनके कारण कामशास्त्रने बताये हैं उन्हें देखकर ही उसी मतलबको लेकर बहुत बारके बुलानेपर ही यह प्रवृत्ति होती है । वह भी मैं इस मार्गसे जा आ सकता हूं इस बातको जानकर ही जाय । जो महलमें जानेके लिये ललचा रही हैं उन्हीं दासियोंसे सब उपाय जानकर जाय कि इस समय इस वेषसे आना तभी राजमहलमें जाय, अन्यथा नहीं ॥ ११ ॥

शक्तिविषये च प्रतिदिनं निष्क्रामेत् ॥ १२ ॥

यदि महलसे रोज आ सके तो रोज ही आ जाना चाहिये ॥ १२ ॥

शक्तिविषये चेति—येन प्रवेशेन प्रतिदिनं निष्क्रमितुं शक्तिस्तस्मिन्सति । इदमुपावर्तनस्य वृत्तम् ॥ १२ ॥

जिस प्रवेशके द्वारा प्रतिदिन निकलनेकी शक्ति हो उस प्रवेशके होनेपर रोज ही बाहिर चला आये । यह बाहिर आनेकी बात पूरी हुई ॥ १२ ॥

यस्तु स्वयमुपावर्तते तस्य वृत्तमाह—

जो अपनी मरजीसे आप ही राजमहलमें जाना चाहे वह कैसे पहुँचे ? इस बातको बतानेके लिये उसके घुसनेकी विधि कहते हैं कि—

बहिश्च रक्षिभिरन्यदेव कारणमपदिश्य संसृज्येत ॥ १३॥

बाहिरके रक्षकोंके साथ किसी कामके बहानेसे मेल कर ले ॥ १३ ॥

बाह्या ये रक्षिणः । अन्यदेवेत्यमुकसंबन्धेन मम त्वं भ्राता भगिनीपतिर्वेति । संसृज्येत प्रीतिं कुर्यात् । येन तेषां तन्निवारणे शैथिल्यं स्यात् ॥ १३ ॥

'इस सम्बन्धसे आप मेरे भाई व जीजा लगते हो' इस तरह कहकर उनसे प्रेम कर ले, जिससे वे उसके निवारण करनेमें शिथिलता करने लगें ॥ १३ ॥

अन्तश्चारिण्यां च परिचारिकायां विदितार्थायां सक्तमात्मानं रूपयेत् । तदलाभाच्च शोकमन्तःप्रवेशिनीभिश्च दूतीकल्पं सकलमाचरेत् ॥ १४ ॥

भीतरके जानेवाली जिस नौकरानीको यह पता चल जाय, कि यह मुझपर आसक्त है उसे अपनी अत्यन्त आसक्ति दिखाये । यदि वह किसी दिन न मिले तो शोक दिखाये । उससे दूतीपनेके सारे कामोंको ले ॥ १४ ॥

विदितार्थायामिति मय्यनुरक्त इति विदितार्थायां शक्तिं (सक्तं) रूपयेत्प्रकाशयेदाकारसंवरणार्थम् । एवं च दार्ढ्यार्थमाह—तदलाभादिति । परिचारिकाया अप्राप्तेः शोकं प्ररूपयेदित्यर्थः । अन्तःप्रवेशिनीभिश्चेति—बाह्याभिरन्तःपुरप्रवेशनशीलाभिः स्त्रीभिः करणभूताभिः । दूतीकल्पं दूतीविधिं यथोक्तम् १४

जो भीतर जानेवाली यह समझ रही हो कि यह मुझपर दीवाना है तो आप भी अपने असली रहस्यके छिपानेके लिये उसके प्रेमको दिखा दे । इस तरह ही दृढ प्रेम करनेके लिये कहते हैं कि—"जब वह न मिले तो बड़ा रंज दिखाये, जिससे यह निश्चय हो जाय कि मैं इसे सबसे ज्यादा प्यारी लगती हूं ।" इसी तरह बाहिर रहनेवाली जो राजमहलमें जानेवाली हों उन स्त्रियोंको भी अपना साधन बना दूतीकल्पमें कही हुई सब विधियोंको कराये॥

---

१ महाराजा भर्तृहरिके राजमहलमें दरोगा दासीकी ही साजिससे पहुँचा था । ये बाहिर भीतर जाती रहती हैं । राजमहलोंमें बड़े २ अनर्थ इन्हींकी कृपासे हो जाते हैं । अतएव पहिले राजा एकपत्नीव्रती थे ।

राजप्रणिधींश्च बुध्येत ॥ १५ ॥

राजाके गुप्तचरोंको अपनी दृष्टिमें अवश्य जचा राखे ॥ १५ ॥

राजप्रणिधींश्चेति—राजचरान् बुध्येतात्मसंरक्षणार्थम् ॥ १९ ॥

अपनी आत्मरक्षाके लिये राजाके गुप्तचरोंको अवश्य निगाहमें राखे॥१५॥

दूत्यास्त्वसंचारे यत्र गृहीताकारायाः प्रयोज्याया दर्शनयोगस्तत्रावस्थानम् ॥ १६ ॥

यदि दूती न जा सके तो अपने आकारको ग्रहण किये हुई इष्ट वस्तुका दर्शन जहांसे हो सके वहां खड़ा होना चाहिये ॥ १६ ॥

यत्र यस्मिन्प्रदेशे दूरस्थाया एव दर्शनयोगः । गृहीताकाराया इति । अन्यथा सत्यपि दर्शनयोगेऽवस्थानं निष्फलमेव स्यात् ॥ १६ ॥

अपने इशारोंके बदलेमें जिसने स्वीकार सूचक इशारे कर दिये हों वह जहां खड़े होकर दूरसे दीखे वहां खड़ा होना चाहिये। यदि आखें मिलो हुई न हों तो दर्शनका योग होनेपर भी खड़ा होना फिजूल ही है ॥ १६ ॥

तस्मिन्नपि तु रक्षिषु परिचारिकाव्यपदेशः ॥ १७ ॥

वहां खड़े होकर भी मिले हुए महलके रक्षकोंको उसी परिचारिकाके देखनेका बहाना करे ॥ १७ ॥

तस्मिन्नपि तु प्रदेशे स्थितेन रक्षिषु परिचारिकाव्यपदेशः कार्यः । यस्यामात्मनः सक्तोऽतिनिरूपितः (?) ॥ १७ ॥

उस जगह खड़े हुएको भी महलके रक्षकोंके निमित्त परिचारिकाका बहाना करना चाहिये, जिसके कि बारेमें अपनेको आसक्त बता चुका है ॥ १७ ॥

चक्षुरनुबध्नन्त्यामिङ्गिताकारनिवेदनम् ॥ १८ ॥

जिसकी चाह है वह अपनेपर वारंवार दृष्टि डाले तो आप भी अपने भाव व इशारे करे ॥ १८ ॥

चक्षुरनुबध्नन्त्यामिति—पुनः पुनः पश्यन्त्यां प्रयोज्यायाम् । इङ्गिताकारनिवेदनं भावसूचनार्थम् ॥ १८ ॥

अपनी प्रेमिका यादि अपनेको वारवार देखे तो अपने भावको जतानेके लिये इशारे व आकार दिखाये ॥ १८ ॥

यत्र संपातोऽस्यास्तत्र चित्रकर्मणस्तद्युक्तस्य द्व्यर्थानां गीतवस्तुकानां क्रीडनकानां कृतचिह्नानामापीनकाना (कस्य) मङ्गुलीयकस्य च निधानम् ॥ १९ ॥

जहां उसका घूमना फिरना हो वहां उसके चित्रके साथ अपना चित्र बनाकर रख दे । द्व्यर्थक गीत वस्तुओंको, निशान किये खिलोनोंको ऐनरोंको छापको रख दे ॥ १९ ॥

संपात इति—यत्रोद्देशे सम्यग्जननम् । तद्युक्तस्येति प्रयोज्यायुक्तस्य । सानुरागमात्मानं फलके भित्तौ (वा) विलिख्य निदध्यात् । द्व्यर्थानामिति यानि प्रयोज्याविषयमनुरागं सूचयन्ति । गीतवस्तूनां खण्डगाथावर्णादीनाम् । क्रीडनकानां पुत्रिकाकन्दुकादीनां कृतचिह्नानाम् । आपीनकस्य (?) नखदशनपदाङ्कितस्य । अंगुलीयकस्य नामाङ्कितस्य ॥ १९ ॥

जहां इसकी दृष्टि पड़े वा जाय वहां जिसकी चाह हो उसके साथ प्रेमपूर्वक अपने चित्रको भींतपर लिखकर रख दे । जो दो अर्थवाले खण्ड, गाथा व शब्द आदि हों जो कि प्यारेके प्रेमको उसे बतायें उन्हें भी एवम् नाखून और दाँतोके बड़े २ निशानोंवाली गुडियां और गेंदें आदि रख दे तथा नाम खुदी अँगूठी भी रख दे ॥ १९ ॥

प्रत्युत्तरं तया दत्तं प्रपश्येत् । ततः प्रवेशने यतेत ॥२०॥

उसके दिये हुए उत्तरको देखे फिर भीतर जानेका प्रयत्न करे ॥ २० ॥

प्रत्युत्तरं चेति तयान्यया वा दत्तं प्रकर्षेण पश्येत् । तत इति ल्यब्लोपे पञ्चमी । त्यक्तं क्रमणम् (?) ॥ २० ॥

उसकी तरफसे दूसरी जो उत्तर दे उसे अच्छी तरह देखे, इसके बाद अनुकूलतापर भीतर जानेआनेका प्रयत्न करे ॥ २० ॥

---

१ अपहारवर्म्मा सुरंगके द्वारा राजकन्याके महल पहुँचा है और सोती हुईकी तसबीर खींचकर उसके चरणोंके नीचे अपनी तसवीर खींच दी है, साथ ही एक पद्य भी लिख दिया है कि—"यह अनुचर तव पायँ परि, यावत है कर जोर । रतिप्रसंग थकि हीय लगि, सोय करहु नित मोर ॥" इसके सिवा उसने चकवा चकवीका चित्र दीवारपर लिखकर धर दिये एवं अँगूठी भी उसे पहिनाई है ।

२ सूत्रमें जो 'ततः' शब्द है, इसमें 'ल्यप्' के लोपमें पंचमी है,कि निकलनेका मार्ग देखकर फिर घुसे ॥

यत्र चास्या नियतं गमनमिति विद्यात्तत्र प्रच्छन्नस्य प्रागेवावस्थानम् ॥ २१ ॥

जिस जगहके बारेमें उसे निश्चय खबर लगे वहाँ पहिलेसे ही छिपकर बैठ जाय ॥ २१ ॥

रक्षि (त) पुरुषरूपो वा तदनुज्ञातवेलायां प्रविशेत् ॥२२॥

अथवा पहिरेदारके रूपमें रहकर बताये हुए समयमें महलमें घुस जाय॥२२॥

आस्तरणप्रावरणवेष्टितस्य वा प्रवेशनिर्हारौ ॥ २३ ॥

अथवा दरी गलीचोंमें लिभेड़कर भीतर किया और बाहिर भेजा जा सकता है ॥ २३ ॥

पुटापुटयोगैर्वा नष्टच्छायारूपः ॥ २४ ॥

पुट और अपुटके योगोंसे अपनी छाया और रूपको लुप्त करके घुसा जा सकता है ॥ २४ ॥

पुटापुटैरिति मंजूषायां सपिधानायां प्रक्षिप्तस्य योगैराम्नायागतैः । नष्टच्छायारूपस्येति । कश्चिद्रूपमेव तिरस्करोति न च्छायाम् । यो रूपमपि न पश्यते ॥ २४ ॥

यदि विधिके अनुसार योग तयार करके मंजूषामें छिपककर बैठा जाय तो छाया और रूप दोनों ही नहीं देखते । योग दो तरहके होते हैं--कुछ तो ऐसे हैं जो छायाको ही नष्ट करते हैं एवम् कुछ ऐसे हैं जिनसे रूप भी नहीं दीखता तथा कुछ ऐसे भी हैं जिनसे न तो रूप दीखता है एवम् न छाया ही दीखती है ॥ २४ ॥

तत्रायं प्रयोगः—नकुलहृदयं चोरकतुम्बीफलानि सर्पाक्षिणि चान्तर्धूमेन पचेत् । ततोऽञ्जनेन समभागेन पेषयेत् । अनेनाभ्यक्तनयनो नष्टच्छायारूपश्चरति । (अन्यैश्च जलब्रह्मक्षेमाशिरःप्रणीतैर्बाह्यपानकैर्वा) ॥२५॥

---

१ पहिरेदारके रूपमें वहीं तक पहुँचा जा सकता है जहां तक कि पहिरेदार जा सकता है, इसके आगे तो दासीका रूप ही काम देता है ।

अपने छाया और रूपको नष्ट करनेमें यह प्रयोग होता है कि-" नकुलका हृदय, चोरकतुम्बीके फल, सांपकी आँखें, इन तीनों चीजोंको पुटपाककी रीतिसे निर्धूम पकाकर, इन तीनोंके बराबर अंजन मिलाकर पीस ले, इस अँजनके आँजनेपर परछाँई और रूप दोनों ही नहीं दीखते " वह मन चाहे जहां विचर सकता है । जलब्रह्म, क्षेमशिर प्रणीत बाह्य पानक भी हैं ॥२५॥

रात्रिकौमुदीषु च दीपिकासंबाधे सुरङ्गया वा ॥ २६ ॥

रातिकी चाँदनीमें दिये लिये जानेवालोंके साथ या सुरंगसे भी जाया जा सकता है ॥ २६ ॥

रात्रिकौमुदीषु चेति सुखरात्रिकासु वा । दीपिकासंबाधे गृहीतदीपिकानां समूहे । तद्वेषधारिणः । सुरङ्गया वा अन्तःपुरोद्भिन्नया । प्रवेशनिर्हारौ सर्वत्र योज्यौ ॥ २६ ॥

दिवाली आदिके दिन जब कि अनेकों आदमी मसालें लेकर इधर उधर घूम रहे हों, उनमें अपना भी वैसा ही वेश बनाकर, उनमें मिलता हुआ घुस जाय या सुरंगके रस्ते चला जाय और चला आये। गुप्तप्रवेशके योगोंमें चली जाना और चला आना सर्वत्र अन्वित है ॥ २६ ॥

साधारणोंका महल जाना ।

तत्रैतद्भवति—

'द्रव्याणामपि निर्हारे पानकानां प्रवेशने ।
आपानकोत्सवार्थेऽपि चेटिकानां च संभ्रमे ॥
व्यत्यासे वेश्मनां चैव रक्षिणां च विपर्यये ।
उद्यानयात्रागमने यात्रातश्च प्रवेशने ॥

---

१ कोई रोचक और तुम्बीफल तथा कोई चोरक और तुम्बीफल लिखता पढता है। हमारी समझसे तो ये तीन चीजें हैं इनमें एक चोरकतुम्बी भी है। एकबार एक योगीके दर्शन हुए थे, उन्होंने मुझे चोरकतुम्बी एक फल बताया था। इस योगको हमने दूसरे २ तंत्र मंत्रोंके ग्रन्थोंमें बहुत खोजा पर नहीं मिला । महाराजा नल तो देवताओंकी दी हुई तिरस्करणी विद्यासे ही दमयन्तीके पास पहुँच गये थे ।

२ यह घुसना भी उसी समय हो सकता है जब कि पहिले कुछ संकेत हो चुका हो, यदि नहीं तो फिर जाना खतरेसे खाली नहीं है। सुरंगके रास्तेका जाना अपहारवर्माकी तरह ठीक है पर इसमें भी सावधानीकी आवश्यकता है ।

दीर्घकालोदयां यात्रां प्रोषिते चापि राजनि ।
प्रवेशनं भवेत्प्रायो यूनां निष्क्रमणं तथा ॥ २७ ॥

इस विषयमें यह होता है कि–वस्तुओंके भीतर बाहिर करनेके समय, हाथोंसे ठेला आदिके भीतर लेजाने निकालनेके समय, पीनेके उत्सवोंमें, दासियोंके इधर उधर घूमनेके समय, मकानके बदलने और पहिरेके परिवर्तनके समय, उद्यान यात्रामें जाते तथा उससे आती बार एवम् राजाके लम्बे दौरे जानेके समय, युवा प्रायः राजमहलमें घुसते और निकलते हैं ॥ २७ ॥

तत्रेति प्रवेशननिर्हारयोरेतद्वक्ष्यमाणमुपायान्तरं भवति । द्रव्याणामिति—सारदार्वापानकानां युग्मादीनां करैर्निर्हारे प्रवेशने च तन्मध्यवर्तिनोऽपि प्रवेशनं निष्क्रमणं चेति सर्वत्र योज्यम् । आपानकमुत्सवः । चार्थेऽपिः । चेटिकानां च संभ्रमे इतस्ततो गमने । तद्वेश्मव्यत्यास इति चकाराद्युद्यानतश्च । दीर्घकालोदयामिति दीर्घकाल उदयः फलं यस्यां न पात्रसाध्यं स तु न भवतीत्यर्थः॥ २७॥

राजमहलमें घुसने और वहांसे निकलनेके उपाय ये निम्न लिखित होते हैं कि–"सारदारु, छकड़ा आदि जब हाथोंसे भीतर ले जाये जाते हों उस समय उनके बीचमें जो रहता है वह भी भीतर जा सकता है एवम् बाहिर जानेके समय बाहिर चला जाता है । इस घुसने और निकलनेकी सर्वत्र योजना करनी चाहिये, क्योंकि बताये हुए मौकोंमें घुसता और निकलता है । आपानक उत्सवकी पीनेकी गोष्ठीका नाम है, उसके लिये भी जाती आती बार जाता आता है । जब चेरी कामकी जलदीसे इधर उधर भगती फिरती हैं, ऐसे अवसरपर, घरोंको बदलनेपर, वनविहारको जातीवार तथा वहांसे आतीवार । जिस यात्रामें राजा जाकर चिरकालतक वापिस न आ सके वह यात्रा ऐसी नहीं हो जिसमें राजा जाकर ही आ जाय । जिसमें जाकर जलदी आनेका भय रहता है उस यात्रामें प्रवेश नहीं होता ॥ २७ ॥

ननु या नैवंविधा अन्तःपुरिकास्ताभिर्मन्त्रो भिद्येतेत्याह—

इसपर यह शंका होती है कि जो महलकी स्त्रियाँ मिली हुई नहीं हैं वे रहस्यको प्रगट कर देंगी तो फिर कैसे होगा ? इसका उत्तर देते हैं कि—

परस्परस्य कार्याणि ज्ञात्वा चान्तःपुरालयाः ।
एककार्यास्ततः कुर्युः शेषाणामपि भेदनम् ॥
दूषयित्वा ततोऽन्योन्यमेककार्यार्पणे स्थिरः ।
अभेद्यतां गतः सद्यो यथेष्टं फलमश्नुते ॥ २८ ॥

अन्तःपुरकी स्त्रियाँ आपसके कामोंको जानकर फिर एक कामपर लक्ष्य करके बाकी स्त्रियोंको भी मिला ले। आपसमें एकको एक खराब करके सबके चरित्र एकसे हो जानेपर फिर कोई किसीकी नहीं कहती, इससे सब अपने चाहे हुए फलको पा लेती हैं ॥ २८ ॥

परस्परस्येति । कार्याणि रहस्यानि । अन्तःपुरालया अन्तःपुरिकाः । एककार्या इति । एकस्या यत्कार्यं तत्संभूयास्माभिर्निष्पाद्यमिति । शेषाणां भेदनं कुर्युर्यथा ता अपि समानधर्मिण्यः स्युः । किं फलमिति चेदाह—दूषयित्वेति । एककार्यार्पण इति—एकं चारित्रखण्डनाख्यं कार्यं परस्परस्यार्पयति योऽन्तःपुरिकासङ्घः । अभेद्यतां गतो मन्त्रभेदाभावादेव स्थितिः (स्थिरः) । इदमन्तःपुरिकावृत्तं प्रच्छन्नमुक्तम् ॥ २८ ॥

आपसमें एकके रहस्योंको एक २ जानकर अन्तःपुरकी रहनेवाली सभी स्त्रियाँ मिलकर 'एकके कार्य्यको हम सबको सिद्ध करना चाहिये' इस विचारसे जो बाकी बची हुई हैं उनको भी फोड़ लें जिससे वे भी अपने जैसी ही हो जायँ । इसके करनेका क्या फल है ? यह बताते हैं कि जो अन्तःपुरचारिणी जनोंका समुदाय आपसमें एक एकके चरित्र–खण्डनरूप कार्य्यको करती हैं इससे सबके चरित्र खण्डित हो जानेपर फिर कोई किसीके चरित्रकी बुराई नहीं करती । यह निश्चित सिद्धान्त है । यह राजमहलकी रहनेवाली स्त्रियोंका छिपा हुआ हाल कह दिया ॥ २८ ॥

रानीयोंकी लीलाएँ ।

प्रकाशं तु देशप्रवृत्त्या । यदाह—

खुली रंगरेलियाँ ता देशाचारके अनुसार होती हैं। इस प्रकरणमें उन्हें ही बताते हैं कि—

---

१ यह होता भी इसी रीतिसे है, क्योंकि इन सबको अभिलाष तो रहता ही है। इस कारण लक्ष्यपर मिल जाती हैं। जो नहीं मिली हुई होती एरम् उनका मिलाना जरूरी समझा जाता है तो उसके साथ छलबल करके उसे भी मिला लिया जाता है, फिर तो यही होता है कि—'तू कहे न मेरी और मैं कहूं न तेरी'।

२ जो हमने राजाओंके विषयमें कहा है वही बात हम रानियोंके विषयमें भी कहते हैं। जिस समय लिखा गया है उस समय ऐसा होता होगा उसीको लेकर लिख दिया है। जब पतिपत्नी भी छिपकर ही संप्रयुक्त होते हैं तो परकीय तो क्योंकर सरेआम रंगरलियाँ कर सकते हैं।

तत्र राजकुलचारिण्य एव लक्षण्यान्पुरुषानन्तःपुरं प्रवेशयन्ति नातिसुरक्षत्वादापरान्तिकानाम् ॥ २९ ॥

अपरान्तिकोंके राजकुलोंमें विचरनेवाली स्त्रियाँ ही व्यवायक्षम पुरुषोंको राजमहलोंमें घुसा देता हैं, क्योंकि महल अत्यन्त सुरक्षित नहीं रहते ॥२९॥

तत्रेति। राजकुलचारिण्यो या राजकुले चरन्ति स्त्रियः। लक्षण्यानिति—वैरत्यादि (?) लक्षणैः साधवः तव तत्ता (?) इत्यर्थः। नातिसुरक्षत्वादिति नात्यन्तं स्वा राजकीया तत्र रक्षास्ति ॥ २९ ॥

जो स्त्रियाँ राजमहलोंमें जाती आती हैं वे ही सुघड़ व्यवायक्षम पुरुषोंको घुसा देती हैं, क्योंकि वहाँ राजाकी अत्यन्त रक्षा नहीं रहती ॥ २९॥

क्षत्रियसंज्ञकैरन्तःपुररक्षिभिरेवार्थं साधयन्त्याभीरकाणाम्

आभीरकोंके यहां क्षत्रियनामक राजमहलके रक्षकोंसे ही अपने मतलबको सिद्ध करती हैं ॥ ३० ॥

क्षत्रियसंज्ञकैरिति नान्यै (व) रक्षिभिः। तेषां तत्राभ्यन्तरप्रवेशात्। अर्थमिति संप्रयोगं साधयन्ति राजकुलचारिण्य एव ॥ ३० ॥

राजमहलमें आने जाने वाली स्त्रियाँ ही जो महलके रक्षक क्षत्रिय होवे हैं उन्हें भीतर घुसाया जा सकता है, इस कारण उन्हें ही अन्तःपुरचरियोंसे मिलाकर सहवास करा देती हैं ॥ ३० ॥

प्रेष्याभिः सह तद्वेषान्नागरकपुत्रान्प्रवेशयन्ति वात्सगुल्मकानाम् ॥ ३१ ॥

वत्सगुल्मके राजघरानोंमें चेलियोंके भेषमें उनके साथ नागरोंको घुसा लेती हैं ॥ ३१ ॥

प्रेष्याभिरिति—दासीभिः। तद्वेषान्—दासीवेषान्। प्रवेशयन्ति राजकुलचारिण्य इति वर्तते ॥ ३१ ॥

इस सूत्रमें भी पूर्वसूत्रसे 'राजघरोंमें आने जाने वाली' इस टुकड़ेकी अनुवृत्ति आती है। इससे यह अर्थ होता है, कि महलमें आने जाने वाली स्त्रियाँ, दासियोंके साथ दासियोंके ही वेषमें नागरोंका राजमहलमें घुसाकर मिला देती हैं ॥ ३१ ॥

स्वैरेव पुत्रैरन्तःपुराणि कामचारैर्जननीवर्जमुपयुज्यन्ते वैदर्भकाणाम् ॥ ३२ ॥

विदर्भदेशके राजघरानोंमें अपने औरस पुत्रको छोड़कर इच्छानुसार राजकुमारोंसे भी मिल बैठती हैं ॥ ३२ ॥

स्वैरिति राजापेक्षया । कामचरैरित्यनिषिद्धसंचारैः । जननीवर्जमिति मुख्यमातरं मुक्त्वा । उपयुज्यन्तेऽभिगम्यन्ते ॥ ३२ ॥

राजकी अपेक्षासे दूसरी रानियोंको पैदा हुए भी कुमार सभीके होते हैं । जिस राजकुमारकी जिसके पास आनेजानेकी मनाई न हो उसके साथ आनन्दके साथ सहवास कर बैठती हैं, पर राजपुत्र अपनी सगी मासे नहीं मिलता ३२

तथा प्रवेशिभिरेव ज्ञातिसंबन्धिभिर्नान्यैरुपयुज्यन्ते स्त्रैराजकानाम् ॥ ३३ ॥

स्त्रीराजोंमें महलकी स्त्रियाँ अपनी जातिके सम्बन्धियोंसे ही मिलती हैं, दूसरेसे नहीं मिलतीं ॥ ३३ ॥

स्त्रीराजः स्त्रीपुरी तत्र भवानाम् ॥ ३३ ॥

स्त्रीराज स्त्रीपुरीको कहते हैं, वहां होनेवालेके यहां ऐसा होता है ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणैर्मित्रैर्भृत्यैर्दासचेटैश्च गौडानाम् ॥ ३४ ॥

गौडोंके यहां ब्राह्मण, मित्र, भृत्य, दास और चेटोंसे मिल लेती हैं ॥३४॥

मित्रैर्भृत्यैरिति । मित्रैर्भृत्यैश्च । दासचेटैरिति । दासा गृहजातास्ततोऽन्ये चेटाः । गौडानामिति । गौडाः कामरूपकाः प्राच्यविशेषाः ॥ ३४ ॥

जो अपने घर ही दासियोंसे उत्पन्न होते हैं वे दास कहाते हैं एवम् जो आये हुए सेवक होते हैं वे चेट कहाते हैं, गौड कामरूपको कहते हैं। यह एक प्राच्य विशेष ही हैं ॥ ३४ ॥

परिस्पन्दाः कर्मकराश्चान्तःपुरेष्वनिषिद्धा अन्येऽपि तद्रूपाश्च सैन्धवानाम् ॥ ३५ ॥

सिन्धियोंके यहां पहरेदार व जिन नौकरोंका महलमें आना जाना वर्जित नहीं एवम् दूसरे भी जो भीतर आनेजानेवाले हैं उनसे सहवास करती हैं ३५

परिस्पन्दाः प्रतिहाराः । कर्मकराः शयनासनचमरादिकर्मान्तिकाः । अन्येऽपि तद्रूपा येऽनिषिद्धसंचाराः । उपयुज्यन्त इत्यर्थकत्वाद्विभक्तिविपरिणामेन संबन्धः । सैन्धवानामिति—सिन्धुनामा नदस्तस्य पश्चिमेन सिन्धुदेशस्तत्र भवानाम् ॥ ३५ ॥

परिस्पन्द और प्रतीहार ये द्वारपालके नाम हैं। शयन आसन और चमर आदि कर्मके करनेवाले कर्मकर (नौकर) कहाते हैं। इनके सिवा और भी भीतर आने जाने वाले जा मनुष्य रहते हैं उनके साथ राजमहलकी स्त्रियाँ मिल लेती हैं। सिन्ध नामक एक नद है उसके पश्चिममें सिन्धदेश है। वहांके राजघरानोंका यह हाल है। पूर्व सूत्रसे इसमें 'उपयुज्यन्ते' की अनुवृत्ति आती है जिससे यह अर्थ होता है कि 'सहवास करती है' इसीसे कर्मकर आदिक प्रथमान्तोंका तृतीयान्त हो जाता है ॥ ३५ ॥

अर्थेन रक्षिणमुपगृह्य साहसिकाः संहताः प्रविशन्ति हैमवतानाम् ॥ ३६ ॥

हैमवतोंके यहां धनसे राजमहलके रखवालोंको अनुकूल बना साहसी लोग इकट्ठे होकर घुस जाते हैं ॥ ३६ ॥

अर्थेनोपगृह्य, रक्षिणः लुब्धत्वात्। साहसिका निर्भया नान्ये। संहता एकीभूय। हैमवतानामिति हिमवद्द्रोणीभवानाम् ॥ ३६ ॥

महलके रखवाले लोभी होते हैं, इस कारण धनसे अपना लिये जाते हैं। जो निर्भय होते हैं वे ही मिलकर घुसते हैं दूसरे नहीं घुस पाते। यह बात हिमालयके राजघरानोंकी है ॥ ३६ ॥

पुष्पदाननियोगान्नगरब्राह्मणा राजविदितमन्तःपुराणि गच्छन्ति। पटान्तरितश्चैषामालापः। तेन प्रसङ्गेन व्यतिकरो भवति वङ्गाङ्गकलिङ्गकानाम् ॥ ३७ ॥

वंग, अंग और कलिंग देशमें नगरके ब्राह्मण फूल देने जाहिरे तौरपर राजमहलोंमें जाते हैं। रानियाँ उनसे परदा डालकर बातेंचीतें करती हैं, इसी प्रसंगसे वहां कुछ उलटापलटा भी हो जाता है ॥ ३७ ॥

नगरब्राह्मणा इति तत्रैव नगरे ये ब्राह्मणास्ते पुष्पाणि दातुमन्तःपुरे गच्छन्ति। राजविदितमिति राजप्रज्ञातम्। पटान्तरितश्चैषामालापो न ताभिः साक्षाद्दृश्यमानाभिरिति देशस्थितिभेदेनेति। पुष्पदानप्रसङ्गेन व्यतिकरः संप्रयोगः। लोमराहित्यात् (?) पूर्वेणाङ्गो महानद्याः पूर्वेण कलिङ्गः गौडविषयाद्दक्षिणेन (वङ्गः) ॥ ३७ ॥

---

१ एकबार अकबरको भी अपने महलमें ऐसा ही सन्देह हुआ सुना जाता है व्यसन अनिर्मर्याद होते हैं, व्यवहार तो अधिरू प्रवृत्तिको लेकर हुआ करते हैं।

जो ब्राह्मण नगरमें रहते हैं वे पूजाको फूल देनेके लिये राजमहलके भीतर जाते हैं, इस बातको राजा भी जानता रहता है । इनके साथ बीचमें परदा डालकर बातें होती हैं, आमनेसामने दीखते हुए नहीं, क्योंकि वहांका देशाचार ही ऐसा है । इसी फूल देनेके प्रसंगसे धीरे २ रंगबाजी भी शुरू हो जाती है । अल्पलोमसे पूर्व अङ्ग, महानदीसे पूर्व कलिंग व गौडसे दक्षिण वंग है ॥ ३७ ॥

संहत्य नवदशेत्येकैकं युवानं प्रच्छादयन्ति प्राच्यानामिति । एवं परस्त्रियः प्रकुर्वीत । इत्यन्तःपुरिकावृत्तम् ३८

प्राच्यमें ऐसा होता है, कि–नौ दश जनी मिलकर एक २ युवकको घरमें छिपा लेती हैं । यदि जाना ही पड़े तो इस प्रकार परदारगमन करे । यह राजमहलोंकी रंगरेलियोंका प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

संहत्य नवदशेतीत्यत्रेतिशब्दः प्रकारे । एकैकं युवानं व्यवायक्षमं प्रच्छादयन्ति न यथा दृश्यते । एवमित्युक्तेन पारदारिकेण विधिना प्रकुर्वीताभिगच्छेत् । इत्यन्तःपुरिकावृत्तमष्टचत्वारिंशं प्रकरणम् ॥ ३८ ॥

प्राच्योंके यहाँ तो यह रीति है, कि–नौ २ दश २ स्त्रियाँ मिलकर जो सहवास करनेमें सक्त हो ऐसे एक एक युवकको इस प्रकार छिपा करके रखती हैं जो दूसरोंको न दीखे । पारदारिककी रीतिसे ही परस्त्रीगमन करे । यह अन्तःपुरकी रंगरेलियाँ नामक ४८ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

प्रकरणोंका उपयोग ।

इन दोनों प्रकरणोंका साहित्यमें समानरूपसे उपयोग होता है । रावण आदिके राजसत्ताके मदके अत्याचार 'ईश्वरकामित' का ही उग्ररूप समझा जा सकता है । अत्याचारी समर्थ पुरुषोंके गुप्तव्यभिचार व बलात्कारोंकी कहानियाँ एवम् बड़े २ रोचक उपन्यास इसी प्रकरणसे भरे पड़े हैं । इतिहासोंका गुप्त–स्त्रीहरण भी इसीकी एक छटा है । दशकुमारचरित्रमें लिखा है कि पुष्पोद्भव बालचन्द्रिकाके साथ दासी स्त्रीके वेशमें दारुवर्म्माके घर घुस गया है तथा रातको भूतके नामसे दारुवर्म्माको पछाड़ दिया है । राजवाहन अवन्तिसुन्दरीके घर किस प्रकार दाखिल हुआ है, किस विचित्रताके साथ उसका विवाह हुआ है ? कादम्बरीमें किंजल्क किस प्रकार चित्ररथके भाईके महल दाखिल हुआ है एवम् किस प्रकार महाश्वेताने चन्द्रापीडसे कादम्बरीको मिला दिया है ? जो बातें इस अध्यायमें दिखाई हैं वे

बातें इतिहास और संसारके व्यवहारमें समाई हुई हैं। यह मैं नहीं कहता कि ईश्वर और अन्तःपुर सबकी यही दशा है किन्तु जो लिखा है वह असंभव भी नहीं है। शाहीमहिलोंमें ये लीलाएँ विशेष देखनेमें आती हैं। एकबार औरंगजेबकी नेकनाम पुत्रीने एक नौजवानको बागमें छिपा लिया था। पिताकी सवारी भी उधर आ निकली तो उसे कुछ शक हुआ। उस अपने प्रेमीसे उसने कहा कि यदि मेरे लिये दिलमें मुहब्बत है तो इस बर्तनमें छिप जाओ मुँहसे उफ तक न करना। वह छिप गया। इतनेमें बादशाह भी आगया। उसने पूछा कि बेटी! क्या है ? तो यही उत्तर हुआ कि इसमें पानी है। उसे आगपर चढ़ा दिया गया वह उससे प्रेमपर विना मुँहसे उफ किये खाककी मुट्ठी हो गया। एकबार एक शाहजादीका दीवाना दासी बनकर ही उसके सासरे रहकर शराब पिलाता रहा है। ऊषाकी सहेली चित्रलेखा अनिरुद्धको द्वारिकासे उड़ा लाई थी। कबन्धका प्रयोग तो हजारों ही जगह देखते हैं। इस सबके दिखानेका हमारा एक ही प्रयोजन है कि कामसूत्रके प्रणेताने जो ईश्वरकामित लिखा है वह तो दिग्दर्शन मात्र है। राजसत्ताके अभिमानी महलोंकी दीवानी तो इससे भी अधिक कर गुजरी हैं। सुलेमानका पिता दाऊदनबी जब अपने पापोंको याद करते थे तो रो उठते थे। आगरेकी कुछ इमारतें भी हमें ऐसे ही इतिहासोंका स्मरण दिलाया करती हैं। आजके राजाओंके महलोंमें ये दशाएँ होती हैं पर पुराने समयमें ये बातें नहीं थीं। पाहिले राजा एकपत्नीव्रती थे. उनके महलोंका भी निराला ही व्रत था। आज जो छिपे व्याभिचार देखने सुननेमें आते हैं पाहिले समयोंमें इनका नाम भी नहीं था। जो राजकन्याएँ ऐसा कर बैठती थीं वे फिर उसीके साथ विवाह कर लेती थीं। उनके महल शाहजादियोंके महल नहीं होते थे कि बेहोश किया और खून करके खाईमें फिंकवा दिया। यदि थोड़े शब्दोंमें कहूं तो यह कह सकता हूं कि न्यायी और सदाचारी राजा व उसके शिक्षित राजमहल जिस प्रकार सब गुणोंकी खान रहते हैं उसी तरह अत्याचारियोंके महल भी हजार पापोंके उद्भव रहते हैं। न जाने ऐसे पापियोंके यहां कितनी अबलाएँ चरित्रहीना बना डाली जाती हैं, कितनी वेश्याओंसे भी निकंमी होकर बैठती हैं एवम् कितनियोंको अपना शरीर दुर्गतिके हवाले करना पड़ता है! इसे यम महाराजके सिवा दूसरा नहीं जान सकता। पर अन्तमें बुरेका नतीजा बुरा ही होता है। यही कारण है कि महर्षि वात्स्यायनजी इन दुष्कर्म्मोंके लिये इनकार कर रहे हैं कि जयाकांक्षी नरपतिको ये कर्म न करने चाहियें।

अपनी स्त्रियोंकी रक्षाका प्रकरण ।

यथा परस्त्रियमेभिरुपायैरभिगच्छेत्तथा तद्दारानपरोऽपीति दाररक्षितकमुच्यते । दाररक्षाप्रयोजनमस्येति । यदाह—

जिन उपायोंसे जो परस्त्रीरमण कर सकता है उसकी स्त्रीके साथ दूसरा भी उन्हीं उपायोंसे मिल सकता है, इस कारण इस प्रकरणको कहते हैं। अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करना ही इसका प्रयोजन है कि—

एभ्य एव च कारणेभ्यः स्वदारान् रक्षेत् ॥ ३९ ॥

इन्हीं कारणोंसे अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करे ॥ ३९ ॥

एभ्य एवेति तथासिद्धपुरुषेभ्यः। यैश्च द्वारदेशावस्थानादिभिः कारणैरभियोगमात्रसाध्यत्वं यानि च परिचयकारणानि अभियोगदूतीकर्माणि ईश्वरकामितमन्तःपुरिकावृत्तं च तेभ्यो रक्षेत् । तत्रायं प्रथमोपायो यद्रक्षानिवेशनम् ॥ ३९ ॥

परनारियोंमें जो सिद्धपुरुष बताये हैं उनसे, द्वारपर खड़ा रहना आदि जो कारण स्त्रियोंको अभियोगमात्रसे साध्यत्व बतानेके हैं, जो कि परिचयके कारण, उपाय और दूतियोंके कालेकारनामें, राजाओंकी रंगरेलियाँ तथा राजमहलोंकी लीलाएँ बताई हैं इनसे अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये। उनसें बचानेका पहिला यह उपाय है कि स्त्रियोंका रक्षण उचित रीतिसे होना चाहिये ॥ ३९ ॥

स्त्रियोंकी रक्षाका उपाय ।

यदाह—

रक्षकोंके बारेमें आचार्य्योंका मत है कि—

कामोपधाशुद्धान्रक्षिणोऽन्तःपुरे स्थापयेदित्याचार्याः ४०॥

कामकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए रक्षकोंकी स्थापना करे। यह आचार्य्योंका मत है॥

कामोपधेति । कामविषये या परीक्षा तया शुद्धान् ॥ ४० ॥

'जो कामके विषयकी परीक्षाम पूरे पास उतरे हुए हों उन्हें रक्षक बनाये' ॥ ४० ॥

ते हि भयेन चार्थेन चान्यं प्रयोजयेयुस्तस्मात्कामभयार्थोपधाशुद्धानिति गोणिकापुत्रः ॥ ४१ ॥

कामकी परीक्षामें पास हुए आदमी भी भय और लोभसे दूसरेको लगा सकते हैं, इस कारण जो काम, भय और धनकी परीक्षामें पास उतरें हों उन्हें ही स्त्रियोंका रक्षक बनाये; यह गोणिकापुत्रका मत है ॥ ४१ ॥

ते हीति । यद्यपि स्वयं कामोपधाशुद्धा नाभिगच्छन्ति तथापि भयेन लोभेन चान्यं प्रयोजयेयुस्तदशुद्धिसंभवात्तस्मादेतादृशानित्यर्थः ॥ ४१ ॥

यद्यपि स्वयम् कामकी परीक्षामें सदाचारी साबित हों कि आप न व्यभिचार करें पर कभी डर और लोभसे दूसरेको महलमें घुसा दें मुमकिन है कि उनमें यह अशुद्धि रह गई हो, इस कारण काम, भय और लोभपर भी जिन्होंने विजय पा रखा हो ऐसे पहरेदार रखने चाहियें ॥ ४१ ॥

अद्रोहो धर्मस्तमपि भयाज्जह्यादतो धर्मभयोपधाशुद्धानिति वात्स्यायनः ॥ ४२ ॥

स्वामिद्रोह न करना धर्म है उसे भी भयसे छोड़ सकता है, इस कारण जो निर्भीक धर्मात्मा हों उन्हें स्त्रियोंका रक्षक बनाये, यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ ४२ ॥

धर्मोपधाशुद्धो न परदारानभिगच्छति, नार्थलोभात्स्वामिद्रोहमाचरति, भयात्तु धर्मं परित्यजेदिति ॥ ४२ ॥

जो धर्मकी परीक्षामें पास हो जाता ह वह धर्मात्मा पुरुष न तो पराई नारीके साथ सहवास करके पाप ही कमाता है एवम् न धनके लोभसे स्वामीके साथ द्रोह ही करता है, अतएव कहीं भयसे धर्म न छोड़ दे इस कारण उसकी यह भी परीक्षा ले लेनी चाहिये ॥ ४२ ॥

रक्षणका उपाय परीक्षण माननेवालेका खण्डन।

स्वदारेषु परीक्षणमपि रक्षणोपाय इति केचिदाहुः । [तदाह—]

कोई २ अपनी स्त्रियोंके विषयमें परीक्षा ले लेना भी स्त्रीरक्षाका एकमात्र उपाय है ऐसा कहते हैं इसी बातको नीचेके सूत्रसे कहते हैं कि—

परवाक्याभिधायिनीभिश्च गूढाकाराभिः प्रमदाभिरात्मदारानुपदध्याच्छौचाशौचपरिज्ञानार्थमिति बाभ्रवीयाः ॥ ४३ ॥

परपुरुषके कहे हुए वाक्योंका बहाना करके कहनेवाली, अपने तात्पर्य्यको छिपा लेनेवाली स्त्रियोंसे अपनी स्त्रियोंकी परीक्षा कर ले, कि उसमें कितनी पवित्रता या कितनी अपवित्रता है; ऐसा बाभ्रव्यके चेलोंका सिद्धान्त है॥४३॥

परवाक्येति । अमुकस्त्वय्यनुरक्तः स एवमाह मम प्राणसमा धार्यतामिति । गूढाकाराभिरिति सा न जानाति पत्या प्रत्युक्तेति । तयोपदध्यात्परीक्षेत । अप्रतिपन्नायाः शौचं प्रतिपन्नायाश्चाशौचं ज्ञातं भवति ॥ ४३ ॥

जिन्हें वह न पहिचान सके कि मेरे पतिने सिखाई है ऐसी स्त्रियोंके द्वारा अपनी स्त्रियोंसे कहलवाये कि—'फलाना आदमी तुममें अधिक अनुरक्त है, वह कहता है कि फलानी तो मेरे प्राणोंके बराबर है वह चाहे जिला दे चाहे मार डालें !' यदि स्त्री झुके तो जान ले कि सदाचारिणी नहीं है, न झुके तो जान ले कि सदाचारिणी है ॥ ४३ ॥

दुष्टानां युवतिषु सिद्धत्वान्नाकस्माददुष्टदूषणमाचरेदिति वात्स्यायनः ॥ ४४ ॥

दुष्ट तो युवतियोंमें सिद्ध ही रहते हैं, इस कारण अकस्मात् अदुष्टोंका दूषण न करे। यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ ४४ ॥

दुष्टानामिति विनाशकारणानामित्यर्थः । एवं मन्यते तथाहि—विनाशकारणेषु सत्सु स युवा परीक्षावान् स्यात्, असत्सु वा । तत्र पूर्वस्मिन्पक्षे दूष्याणां दूषणमाचरेत् । उत्तरत्र नेत्याह—नाकस्मादिति । अविद्यमानविनाशकारणानामित्यर्थः । अदुष्टशोधः । बुद्धिबोधनस्य (शुद्धशोधनस्य) दोषवत्त्वात् । यथोक्तम्—'न शोधनमदुष्टस्य विशेषेणाम्भसश्चरेत् । कदाचिद्विप्रकृष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ॥' तस्माद्विनाशकारणान्येव निरूप्यन्ते येभ्यो व्यावर्तन्ते ॥ ४४ ॥

विनाशके जो कारण हैं वे तो स्त्रियोंमें स्वतःही सिद्ध हैं ऐसा यह मानता है, यानी जिन कारणोंसे स्त्रियां विगड़ती हैं वे सहज दोष हैं एवम् स्त्रियोंको खराब करनेमें नीच सिद्धहस्त होते ही हैं, इस कारण अब यह विचार करते हैं, कि स्त्रियोंमें विनाशके कारण होनेपर वह परीक्षा सफल होगी वा न होनेपर। यदि हैं फिर उसने देखे तो होते हुओंको देखा या किया यदि नहीं हैं तो उस पक्षमें नहीं, उसी पक्षको लेकर कहते हैं कि यदि नाशके कारण नहीं हैं फिर भी उनका शोधन होता है तो वह स्वयं ही बुरा होता है। कहा भी है कि—" जो दुष्ट नहीं है उसका पानीसे विशेषरूपसे शोधन न करे कदाचित् ऐसा हो जाय कि दूर करनेकी दवा न मिले " इस कारण विनाशके कारणोंपर ही विचार करते हैं जिनसे स्त्रियाँ रोकी जा सकें ॥ ४४ ॥

विनाशके कारण ।

तान्याह—

स्त्रियोंके बिगड़नेके कारण गिनाते हैं कि—

अतिगोष्ठी निरङ्कुशत्वं भर्तुः स्वैरता पुरुषैः सहानियन्त्रणता प्रवासेऽवस्थानं विदेशे निवासः स्ववृत्त्युपघातः स्वैरिणीसंसर्गः पत्युरीर्ष्यालुता चेति स्त्रीणां विनाशकारणानि ॥ ४५ ॥

+ अत्यन्त गप्पेंसप्पें करना, किसीका दबाव न रहना, पतिसे स्वतंत्रता पाना, पुरुषोंके साथ खुली बातें, पतिके विदेश जानेपर अकेली रहना, विदेशमें रहना, अपनी जीविकाका चला जाना, कुलटाओंका साथ करना, पतिसे ईर्ष्या करना ये कारण स्त्रियोंके बिगड़नेके हैं ॥ ४५ ॥

अतिगोष्टी स्त्रीभिः सह गोष्ठी । भर्तुः स्वैरता—भर्त्रा स्वातन्त्र्येण व्यवहारिता । पुरुषैः कैश्चिदनियन्त्रणा नियन्त्रणाभावः । प्रवासेऽवस्थानं भर्तरि प्रोषिते यदेकाकिन्यावस्थातव्यम् । स्ववृत्त्युपघातः—स्वशरीरस्थित्युपघातः । स्वैरिण्याः पुंश्चल्याः संसर्गः । पत्यावीर्ष्यासंभव इति विनाशकारणानि । एषु सत्सु परदाराभिमर्शयोगसंभवात् ॥ ४९ ॥

स्त्रियोंके साथ गप्पें उड़ाना, पतिसे स्वतंत्र व्यवहारकी आज्ञा पाना, किन्हीं भी पुरुषोंकी रोकटोकका न रहना, पतिके विदेश चले जानेपर घरमें अकेलीका रहना, जिससे शरीरका निर्वाह होता था उसका न रहना, व्यभिचारिणियोंके साथ संसर्ग रखना, पतिमें द्वेषबुद्धि रखना ये बिगड़नेके कारण हैं। इन कारणोंके रहनेपर परनारी हत्याई जा सकती है ॥ ४५ ॥

+ " पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट् ॥ "

मद पैदा करनेवाली वस्तुओंका पान, बुरे पुरुषोंके साथ संसर्ग, पतिके साथ विरह, इधर उधर घूमना, कुसमयकी नींद और दूसरेके घर रहना ये छः बातें स्त्रियोंको व्यभिचारिणी बना देती हैं। "अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्य्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् " पुरुषोंको चाहिये कि स्त्रियोंको सदा अपने अधीन रखें, कभी भी स्वतंत्र न करना चाहिये, क्योंकि स्वतंत्र होनेपर विषयोंमें फँस जायँगी। ' न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ' किसी भी अवस्थामें कभी भी स्त्रियाँ स्वतंत्र रहने लायक नहीं ।

स्त्रियोंके भ्रष्ट होनेके कारणोंपर कामशास्त्र ।

स्त्रियोंके भ्रष्ट होनेके कारणोंपर कामशास्त्रने जो विचार व्यक्त किये हैं उन्हें दिखाते हैं । पद्मश्री कहते हैं कि— "उद्यान, तीर्थ, नटयुद्ध, उत्सव, यात्रा आदि, देवल, बन्धुघर और क्षेत्र आदिमें घरकी स्त्रियां गन्दी शुहबतकी औरतोंकी गन्दी बातें न सुने इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये ।" इसके सिवा ये यह भी बताते हैं कि— "जवानीकी अँधेरी, कामकी प्रबलता, हलका बरजाका अभाव, इन बातोंके साथ यदि दूतियोंकी रंगीली बातें लग जायँ तो फिर वे कुलाचारका ध्यान नहीं रखतीं ।" जो स्त्री सुन्दर व युवा पुरुषको देखकर चंचल न हो एवम् कुछ इशारे न कर पाये उसे उत्तम समझना चाहिये । इन कारणोंके सिवा जिस रतिनिपुणा स्त्रीका पति छोटे व मृदु साधनका व शीघ्र ही स्खलित होनेवाला होता है उसकी स्त्री भी उसके काबू नहीं रहती । कर्णाटक देशमें नीचरतसे घबराकर स्त्रीने पतिको खतम कर दिया था । कल्याणमल्लजीने भी बताया है कि— "पिताके घर रहना, व्यभिचारिणियोंका साथ, पतिका प्रवास, रोग व पतिका बुढ़ापा, दूसरेके घर रहना, दुष्ट पुरुषोंमें रहना, जीविकासे दुःखी होना ये स्त्रियोंके भ्रष्ट होनेके कारण हैं ।" जो भ्रष्ट होजाती है उसे पति अच्छा नहीं लगता, उसके पास पति न हो तो सुखी एवम् पति हो तो दुःखी रहती है । शय्या-पर आजानेसे सो जाती है, चूंमनेपर मुँह पूंछता ह । उसके मित्रोंसे द्वेष करती है उनका मान नहीं चाहती । पतिपर दारिद्र आजाय, उसके कष्टका समय हो, असमयक्षतादिका भय हो, उद्वेग हो, क्रोध हो, पति दुर्बल हो तो प्रायः ऐसी दशामें अज्ञान स्त्रियाँ पतिसे चित्त हटा लेती हैं । यही कारण ह कि तुलसीदासजीने कहा है कि—"धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपातिकाल परखियहि चारी ।" इससे यह सुतराम् सिद्ध हो जाता है कि ये स्त्रियोंके भ्रष्ट होनेके कारण हैं । विज्ञजन इनका सदा ध्यान रखें ।

उपसंहार ।

अधिकरणार्थमुपसंहरन्नाह—

अधिकरणके पदार्थोंका उपसंहार करते हुए दिखाते हैं, कि—

संदृश्य शास्त्रतो योगान्पारदारिकलक्षितान् ।
न याति च्छलनां कश्चित्स्वदारान् प्रति शास्त्रवित् ४६

जिस तरह जारपुरुष दूसरेकी स्त्रियोंको बहकाते हैं उन बातोंको इस शास्त्रसे जानकर रहस्यका समझनेवाला कोई भी पुरुष अपनी स्त्रियोंके विषयमें कभी नहीं ठगा जा सकता ॥ ४६ ॥

पारदारिकलक्षितानिति—पारदारिकेऽधिकरणे ये प्रोक्तास्तैर्लक्षितान् । अन्यथा कथमतः (?) शास्त्रतः पश्येत् ॥ ४६ ॥

इस पारदारिक अधिकरणमें जो योग बताये हैं उन्हींके द्वारा इस मकारीका लक्ष्य करके कि जार लोगोंकी इसी तरहकी मकारियाँ होती हैं, विना इसके इस शास्त्रसे उसे कैसे लखेगा ॥ ४६ ॥

पाक्षिकत्वात्प्रयोगाणामपायानां च दर्शनात् ।
धर्मार्थयोश्च वैलोम्यान्नाचरेत्पारदारिकम् ॥ ४७ ॥

पारदारिकमें जो प्रयोग बताये हैं वे पाक्षिक हैं। परनारीके पीछे लोग मरते देखे जाते हैं। इसमें धर्म और अथ बुरी तरह नष्ट होता है, इस कारण पराईनारीके बखेड़ोंसे सदा बचना चाहिये ॥ ४७ ॥

पाक्षिकत्वादिति यदान्यकारणानि पश्येत् । अपायानां च शरीरोपघातादीनाम् । वैलोम्यादिति विपक्षत्वात् । परदारप्रयोजनप्रयोगं नाचरेदिति ॥ ४७ ॥

परनारीके साथ सहवास करनेके जो २ कारण बताये हैं तथा यह भी कहा है कि जीवनकी चिन्ता पड़ जाय तभी जाय नहीं तो इस पापकर्मसे सदा बचे। यह भी कहा गया है कि इस पापसे अनेकों मिट गये। यह कर्म धर्म और धनका तो वैरी ही है। इस कारण परनारीके प्रसंगमें बताये गये उपायोंको कभी भी न करना चाहिये ॥ ४७ ॥

तर्हि किमर्थं तदधिकरणमुक्तमिति चेत्तदाह—

यदि यही बात है तो इस आधिकरणको क्यों कहा ? इसका उत्तर देते हैं कि—

तदेतद्दारगुप्त्यर्थमारब्धं श्रेयसे नृणाम् ।
प्रजानां दूषणायैव न विज्ञेयोऽस्य संविधिः ॥ ४८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे
आन्तःपुरिकं दाररक्षितकं षष्ठोऽध्यायः ।

---

१ ऋषिको यह इष्ट नहीं है कि संसारकी मर्य्यादा भ्रष्ट हो, न उन्हें यही इष्ट है कि लोगोंको परदारगमनकी रीतियां बताई जायँ, क्योंकि सृष्टिका कल्याण चाहनेवाले किसी भी व्यक्तिकी ऐसी इच्छा होना असंभव है फिर ऋषि तो क्यों ऐसा चाहेंगे ? फिर किस लिये इसे कहा ? इसका वे एक ही उत्तर देते हैं कि—इसे कहा नहीं, किन्तु परदारनिरत जो करते हैं उससे बचनेके लिये उनका रहस्य खोल दिया है। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि जहां कहीं विधि लिङ् दिया दीखता है उसका उसमें तात्पर्य्य नहीं है केवल उनकी जो कृत्य परंपराएँ चलतीं हैं उसकी लरी बताने मात्रका तात्पर्य्य है फिर भी उसमें स्थान २ पर सावधान करते चले हैं।

इस अधिकरणको तो इसलिये कहा है कि पुरुष अपनी स्त्रियोंकी रक्षा कर सकें जिससे नरसृष्टिका कल्याण हो । इसकी विधिको कभी भी प्रजाको दूषित करनेके लिये कभी मत समझना ॥ ४८ ॥

तदेतदिति । नहि तदर्थं मुख्यं विधानमित्यर्थः । इति दाररक्षितकमेकोनपञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां पारदारिके पञ्चमेऽधिकरणे आन्तःपुरिकं दाररक्षितकं षष्ठोऽध्यायः ।

इस अधिकरणके कहनेका मुख्य यही तात्पर्य नहीं कि संसार भ्रष्ट किया जाय, किन्तु पुरुषोंको स्त्रियोंके रक्षण करनेकी शिक्षा देना है । यह दाररक्षितक नामक उनंचासवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके षष्ठ
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

समाप्तं चेदं पारदारिकं नाम पञ्चममधिकरणम् ।

वैशिकं षष्ठमधिकरणम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सहायगम्यागम्यगमनकारणचिन्ता प्रकरण ।

तिसृभिर्नायिकाभिः समागमोपाय उक्तः । वेश्याभिः सह वक्तुं तदधिकरणमुच्यते । तत्र सहायादिनिरूपणे व्यापारपूर्वकत्वादुत्तरव्यापारस्येति सहायगम्यागमनकारणचिन्तोच्यते ।

भार्य्या, परनारी और पुनर्भूसे मिलनेके उपायोंको कह चुके, अब वेश्याओंके साथ समागम होनेके उपायोंको कहनेके लिये, इस 'वैशिक अधिकरण' को कहते हैं । इसमें सहायक, गम्य, अगम्य और गमनके कारणोंपर विचार करनेके बाद अगाड़ीका काम चलता है, इस कारण सबसे पाहिले वेश्याओंके सहायक उनके मिलने, और न मिलने योग्य व्यक्ति और गमनके कारणोंपर विचार करते हैं, यही इस प्रकरणके प्रथम कहनेका कारण है ।

वैशिककी प्रयोक्त्री ।

पुंवेश्ययोस्तुल्येऽपि रतिफले वेश्याया एव प्रयोक्तृतया तत्राधिकारः, न पुंसः । तत्प्रतिबद्धत्वाज्जीविकायास्तदाह—

यद्यपि रतिसुख पुरुष और वेश्या दोनोंको एकसा ही होता है तो भी वेश्याकी जीविका इन्हीं कामोंसे है, इस कारण इसके प्रयोगोंको करनेका वेश्याओंको ही अधिकार है । वेश्यानायकोंका नहीं; यही बात नीचेके सूत्रसे दिखाते हैं, कि—

रति और जीविकाके लिये वेश्याकी सृष्टि ।

वेश्यानां पुरुषाधिगमे रतिर्वृत्तिश्च सर्गात् ॥ १ ॥

पुरुषोंकी प्राप्ति होनेपर वेश्याओंको रति और जीविका तो सृष्टिसे ही है १॥

पुरुषस्याधिगमे प्राप्तौ । सतीति शेषः । रतिर्विसृष्टिसुखं वृत्तिर्जीविका अर्थोपादानात् । सर्गादिति सृष्टेः । एषैव हि सृष्टिर्यत्कामोऽर्थागमः ॥ १ ॥

वेश्याओंको यदि अपना कामुक मिल जाय तो उससे धन मिलेगा जिससे वह जीविका भी उनकी है तथा सहवाससे रतिसुख भी है । वेश्याओंका निर्माण ही इन दोनोंके लिये है, कि उनके धन और काम दोनों हों ॥ १ ॥

स्वाभाविक और कृत्रिम प्रवृत्ति ।

रतितः प्रवर्तनं स्वाभाविकं कृत्रिममर्थार्थम् ॥ २ ॥

रतिके कारण प्रवृत्त होना स्वाभाविक तथा धनके लिये प्रवृत्त होना कृत्रिम है ॥ २ ॥

रतित इति तत्र द्वयोः फलयोर्यदा रतिमभिसंधाय प्रवर्तनं तदा स्वाभाविकम् । तत्र रागस्य सहजत्वात् । यदा त्वर्थमभिसंधाय तदा कृत्रिमम् । रागाभावात् ॥

धन और रतिसुख इन दोनों फलोंमेंसे जो रतिसुखके लिये पुरुषमें प्रवृत्ति करना है वह तो स्वाभाविक ह, क्योंकि उसमें सहज राग है । यदि वह धनका लक्ष्य रखकर पुरुषोंमें प्रवृत्त होती ह तो वह सब भावभंगियाँ बनावटी दिखाती है, क्योंकि लोभ है, राग नहीं है । इन सूत्रोंसे सिद्ध हो गया कि इसका प्रयोग वेश्याएँ करती हैं ॥ २ ॥

नकलीको असली दिखाना ।

तदपि स्वाभाविकवद्रूपयेत् ॥ ३ ॥

जहां बनावटी राग दिखाये वहां भी स्वाभाविककी तरह ही दिखा दे ॥ ३ ॥

तदपीति । तदपि कृत्रिमं स्वाभाविकवद्रूपयेत्प्रकाशयेत्कान्तानुवृत्त्या ॥ ३ ॥

बनावटी प्रेमको भी उसके अनुसार चलकर स्वाभाविककी तरह ही दिखा दे (ये बातें इसी अधिकरणके दूसरे अध्यायमें कहेंगे) ॥ ३ ॥

इसका कारण ।

किमर्थं तत्राह—

अर्थके प्रेमको भी सहजप्रेमकी तरह क्यों दिखाये? इसके विषयमें कहते हैं कि—

कामपरासु हि पुंसां विश्वासयोगात् ॥ ४ ॥

मनुष्यकी आसक्ति अपनी प्रेमिका मानकर ही होती है ॥ ४ ॥

कामेति । स्नेहेन मयि वर्तत इति पुंसां विश्वासयोगः सक्तियोगः न त्वर्थपरासु ४

जब मनुष्य यह समझता है कि यह मुझमें प्रेम करती है तब ही वह उसपर आसक्त होता है एवम् तब ही उसका विश्वास उसपर होता है । जो लोभके वश हैं उनमें उसका विश्वास नहीं होता ॥ ४ ॥

प्रेमके समय लोभ न दिखाना ।

कामपरतां च ख्यापयन्ती नार्थरूपतामपि ख्यापयेदित्याह—

जब वेश्या किसी पुरुषपर अपना प्रेम प्रकट करे तो उसके साथ लोभको भी प्रकट न करने लग जाय इसी बातको कहते हैं, कि—

अलुब्धतां च ख्यापयेत्तस्य निदर्शनार्थम् ॥ ५ ॥

उसके दिखानेके लिये निर्लोभता दिखाये ॥ ५ ॥

अलुब्धतामिति । स्वाभाविकत्वस्य ख्यापनार्थम् । एवं च सति सक्ताद्वित्तादानमपि स्वाभाविकं सिद्धं भवति ॥ ५ ॥

अपने रागको सहज राग जतानेके लिये वेश्याको चाहिये कि, लोभिनीपना न दिखाये । ऐसा रूपक बनानेमें अपने आशिकसे धन खींचना भी स्वाभाविक सिद्ध हो जायगा ॥ ५ ॥

उपायोंसे धन निकालना ।

तत्रापि विनोपायेन नाददीतेत्याह—

इस तरह भी विना उपायके धन न ले, इस बातको बतानेके लिये सूत्र करते हैं कि—

न चानुपायेनार्थान् साधयेदायतिसंरक्षणार्थम् ॥ ६ ॥

अपने प्रभावको रखनेके लिये विना उपायके अर्थ सिद्ध न करे ॥ ६ ॥

न चेति । उपायान्वक्ष्यति—आयतीति । आयतिः प्रभावः ॥ ६ ॥

आयति प्रभावको कहते हैं । धन खींचनेके उपाय इसी अधिकरणके तीसरे अध्यायमें बतायेंगे ॥ ६ ॥

उसकी रहन सहन ।

नित्यमलङ्कारयोगिनी राजमार्गावलोकिनी दृश्यमाना न चातिविवृता तिष्ठेत् । पण्यसधर्मत्वात् ॥ ७ ॥

सदा शृङ्गार किये रहे, राजमार्गको देखा करे । आप भी ऐसी रहे जो सबकी दृष्टि पड सके । पर अत्यन्त खुली न रहे, क्योंकि यह भी विकनेकी वस्तु जैसी ही है ॥ ७ ॥

नित्यमिति सदालंकृता स्यात् । अन्यथा आयतिहानिः । निरुज्ज्वलत्वात् । राजमार्गावलोकिनी गम्यैर्यथा दृश्येत्तथा । तत्रापि दृश्यमाना नातिविवृता प्रकटा । पण्यसधर्मत्वादिति । अतिप्रकटस्यादुर्लभत्वादित्यर्थः ॥ ७ ॥

सदा ही अच्छे कपड़े और जेवर पहिने रहे नहीं तो प्रभाव न पड़ेगा, क्योंकि विना साफसुथरा रहे प्रभाव नहीं पड़ता । राजमार्गोंपर इसलिये नजरें डालती रहे कि जिन्हें वह चाहती है उनसे चौनजरे हो जायँ । दीखती

हुई भी इतनी चौड़े न आये कि वे उसे योंही हाथकी चीज समझने लग जायँ, क्योंकि वह तो खरीदनेकी चीज जैसी ही है, अति प्रकटको लोग दुर्लभ नहीं समझते ॥ ७ ॥

वेश्याओंके सहायक ।

तत्र सहायचिन्तामाह—

सहायक गम्य आदिका विचार करती वार सबसे पहिले सहायकोंका विचार करते है, कि—

यैर्नायकमावर्जयेदन्याभ्यश्चावच्छिन्द्यादात्मनश्चानर्थं प्रतिकुर्यादर्थं च साधयेन्न च गम्यैः परिभूयेत तान् सहायान् कुर्यात् ॥ ८ ॥

वेश्याओंको अपने सहायक उन लोगोंको बनाना चाहिये जो नायकको उसकी तरफ झुका दें, दूसरी नायिकाओंसे नायकको जुदा कर दें, अपने आये अनर्थको मिटा दें, मतलब सिद्ध कर दें, जिन्हें उसके गम्य दबा न सकें ८

आवर्जयेदभिमुखीकुर्यात् । अवच्छिन्द्यात्संसृष्टमाकर्षयेत् । सहायान्कुर्याद्यथोक्तकार्यसाधकानित्यर्थः ॥ ८ ॥

उन्हें उसके सामने झुका दें यानी उसकी चाह पैदा कर दें । दूसरियोंसे लगे हुएको खींच लायें एवम् सूत्रमें जो २ कार्य्य बताये हैं, उन २ कामोंको सिद्ध कर सकनेवालोंको अपना सहायक बनायें ॥ ८ ॥

ते त्वारक्षकपुरुषा धर्माधिकरणस्था दैवज्ञा विक्रान्ताः शूराः समानविद्याः कलाग्राहिणः पीठमर्दविटविदूषकमालाकारगान्धिकशौण्डिकरजकनापिताभिक्षुकास्ते च ते च कार्ययोगात् ॥ ९ ॥

अपनेको बचानेवाले छैला, हाकिम वकील आदि, ज्योतिषी, साहसी, शूरवीर, बराबरके जानकार, कला सीखनेवाले, पीठमर्द, विट, विदूषक, मालाकार, गन्धी, कलार, धोबी, नाई और भिखारी तथा और जो कोई सहायता देने लायक हों वे उसके सहायक होते हैं ॥ ९ ॥

आरक्षका नागरकादयः । धर्माधिकरणस्थाः प्राड्विवाकादयः । उभयेऽप्यनर्थघातिनोऽर्थसाधकाः । दैवज्ञा इति । तया संयोगे ते वृद्धिर्भविष्यतीति गम्यं प्रोत्साह्य योजयन्ति । विक्रान्ताः शरीरापेक्षाः साहसिकाः । ततोऽन्ये शूराः ।

उभयेऽनर्थं घ्नन्त्यर्थं च साधयन्ति । समानविद्या इति । ते विद्वान्तोऽस्यास्त्वर्थं साधयन्ति । कलेति । ये नायिकातः कलां गृह्णन्ति ते तद्विज्ञतां प्रकाशयन्तो गम्यान्योजयन्ति । पीठमर्दादयः स्वकर्मभिरर्थकृतः परभवनप्रवेशाद्गम्यं योजयन्ति । कश्चिदेव किंचित्कार्यं साधयतीति तद्वशादन्येऽपि स्युः । सहायाः प्रियहिताभ्यामनुवर्तनीयाः न त्वभिगम्याः । तदभिगमने स्वार्थमेवैते कुर्युर्न तदर्थम् ॥ ९ ॥

अपने मददगार छैला तथा वकील हाकिम आदि ये दोनों अनर्थके नाशक तथा अर्थके साधक हैं । ज्योतिषी, वेश्या जिससे मिलना चाहती है उसे यह कहकर बहकाते हैं कि इसके मिलनेसे तेरी बड़ी वृद्धि होगी । जो शरीरसे अधिक साहसी हैं वे बड़े कामके होते हैं, जिनमें साहस और कुव्वत दोनों बाते हैं वे शूरवीर कहाते हैं, ये दोनों अनर्थको नष्ट करते और अर्थको सिद्ध करते हैं । बराबरके ज्ञानवाले इसपर प्रेम करके इसके अर्थको सिद्ध कराते हैं । जो इससे कला सीखते हैं वे इसके गुणोंको प्रकट करके इसके मिलने लायक दूसरोंको इससे मिला देते हैं । पीठमर्दसे लेकर जो भिखारी आदि हैं वे अपने २ कामोंसे इसका प्रयोजन सिद्ध करते हैं। इनसे दूसरे भी मिल सकते व सहायक हो सकते हैं । जो सहायक हों उनका प्रिय और हितसे सन्मान करना चाहिये, यह न हो कि इनसे मिलने लग जाय; नहीं तो ये अपने मतलबको ही बनायेंगे, उसके मतलबको सिद्ध न करेंगे ॥ ९ ॥

धनके लिये मिलने योग्य ।

गम्यचिन्तामाह—

उसके मिलने लायक कौन हैं, इस बातको बताते हैं कि—

केवलार्थास्त्वमी गम्याः—स्वतन्त्रः पूर्वे वयसि वर्तमानो वित्तवानपरोक्षवृत्तिरधिकरणवानकृच्छ्राधिगतवित्तः । संघर्षवान् सन्ततायः सुभगमानी श्लाघनकः पण्डकश्च पुंशब्दार्थी । समानस्पर्धी स्वभावतस्त्यागी । राजनि महामात्रे वा सिद्धो दैवप्रमाणो वित्तावमानी गुरूणां शासनातिगः सजातानां लक्ष्यभूतः सवित्त एकपुत्रो लिङ्गी प्रच्छन्नकामः शूरो वैद्यश्चेति ॥ १० ॥

केवल अर्थके लिये तो ये व्यक्ति गम्य हैं—'स्वतंत्र हो, नई जवानी हो, धनी हो, तत्काल देनेवाला हो, जिसके हाथमें पूरा अधिकार हो, जिसे पहि-

लोंका खूब धन मिल गया हो, संघर्षवाला हो, सदाकी आमदनीवाला हो, अपनेको सुन्दर समझता हो, अपनी बड़ाई चाहता हो । वास्तवमें क्लीब हो पर अपनेको पुरुष प्रसिद्ध करना चाहता हो । बराबरवालोंमें स्पर्धा रखनेवाला, देनेके स्वभाववाला, राजा वा राजाके बड़े २ राजपुरुषोंमें सिद्ध भाग्यको प्रमाण माननेवाला, धनको तुच्छ समझनेवाला, बडोंकी आज्ञा न माननेवाला, बराबरवालोंमें प्रधान, धनी, साधुवेषी, छिपे अय्याश, शूरवीर और वैद्य ॥ १० ॥

केवलः प्रीतिरहितोऽर्थो येभ्यः इति रतियशसी अर्थः प्रयोजनं येभ्यः । स्वतन्त्रो गुरुष्वपरायत्तः । न वृद्धो न दरिद्रः । अपरोक्षेति । परोक्षवृत्तेस्तु यदा ततः किञ्चिदेष्यति तदा दास्यतीति कदर्थितं दानं स्यात् । अधिकरणवानध्यक्षो योऽर्थाधिकारेऽधिकृतः सोऽर्थदः । अकृच्छ्रेति । अन्वयाधिगतं निधिलाभाद्वावाप्तं धनं येन । अन्यथा कृच्छ्रप्रदः स्यात् । संघर्षवानिति स्पर्धावानन्येन गम्येन बहु ददाति । संततायः शौल्किको वार्धुषिकश्च । सुभगाभिमानीति । दुर्भगोऽपि यः सुभगमात्मानमभिमन्यते । दुर्भगत्वमात्मनोऽप्रकटयितुं नायिकामन्यतो व्यावर्तयन् बहु ददाति । श्लाघनिकः स्वश्लाघाकर्तुर्बहुप्रदः । पण्डको नपुंसकः । स पुंस्त्वख्यापनार्थं बहु ददाति । समानस्पर्धी कुलविद्यावित्तवयोरन्यतरं स्पर्धते तदपेक्षयाधिकं ददाति । स्वभावतस्त्यागी सोऽवश्यं ददाति दातृस्वभावत्वात् । सिद्धो ग्राह्यवचनः । स यदि स्वयं न ददाति राजानममात्यं वाभिधाय दापयति ममेयं प्रीतेति । दैवप्रमाणो भाग्यक्षयेण क्षीयते नोपभोगेन संपदिति मन्वानो बहु ददाति । गुरूणामिति । तदधीनस्य पराधीनत्वादबहुदातृत्वम् । लक्ष्यभूतः प्रधानभूतः स दाता । एकपुत्र इति । बहु प्रयच्छन्नपि न पितृभ्यां स निवार्यते नान्यत्र यासीदिति । लिङ्गी प्रव्रजितः । प्रच्छन्नकामी प्रकटं न कामयते लोको मा ज्ञासीदिति । सकामेन बाध्यमानो बहु ददाति । शूरो यः सहायभावेनोपचरितो वित्तवांश्च । वैद्यस्य दातृत्वाभावेऽपि व्याधितायाश्चिकित्साकारित्वाद्दातृत्वमेव ॥ १० ॥

वेश्याके दो तरहके मिलनेवाले होते हैं—एक तो वे जिनस प्रीति रहित धनकी प्राप्ति है, एक वे हैं जिनसे रति और यश सिद्ध होता है । इन दोनोंमें धनके लिये जिनसे मिलती है उन्हें बताते हैं । अपने मा बाप आदिके आधीन न हो, न बूढा और न दरिद्र ही हो । जिसकी आमदनी दीख रही है ऐसा हो, जो ऐसा है कि जो उससे कुछ मिल जायगा तो देगा इससे दान बिगड़ भी

जायगा । जिसके हाथमें धन रहता है वह दे भी सकता है । जिसे पहिलोंका मिला हो या कहीं खजाना हाथ लग गया हो, नहीं तो कष्टके साथ देगा । दूसरेके साथ होड़ाहोड़ीमें दूसरोंसे अधिक दे देता हो । जिसे मालगुजारी किराया या व्याजकी पूरी आमदनी हो । जो दुर्भग होकर भी अपनेको सुभग मानता हो, वह अपने दुर्भगपनेको ढकनेके लिये नायिकाको दूसरोंकी तरफसे खींचता हुआ बहुत दे देता है । जिसे तारीफ अच्छी लगती है वह अपनी बड़ाईके लिये बहुत दे देता है । नपुंसक भी अपना मर्दपना प्रसिद्ध करनेके लिये बहुत दे देता है । बराबरके कुलीन धनी विद्वानोंमें जब होड़ाहोड़ी चलती है तो एकसे बढ़कर ही देता है । जो स्वभावसे ही त्यागी होता है वह त्यागी होनेके कारण अधिक देता है । जिसकी बात राजा वा राजाके प्रधान मानते हैं वह यदि आप नहीं देता तो राजा वा प्रधानसे बहुत दिला देता है, कि 'यह बड़ी अच्छी और मुझे प्यारी लगती है' । जो यह मानता है कि संपत्ति भोगसे नष्ट नहीं होती, भाग्यसे नष्ट होती है वह बहुत देता है । जो मा बापके अधीन रहता है वह अधिक नहीं दे सकता । जो बराबरवालोंमें मुख्य रहता है वह अपनी मुख्यताकी रक्षाके लिये बहुत देता है । जो इकलोता बेटा होता है उसे बहुत देते हुए भी मा बाप नहीं रोकते कि इसीके काम आ रहा है दूसरे कहां जाता है । जो संन्यासी साधु वा जाहिराका महात्मा रहता है वह भी बहुत देता है । जो छिपे रुस्तम हैं उजगर होना नहीं चाहते कि दुनियां हमें न जाने वह कामसे अकुलाया हुआ बहुत देता है । जो शूरवीर है सहायके भावस सत्कार किया गया है धनवान् है । वैद्य देता नहीं पर तो भी इलाज कर देना ही उसका देना है ॥ १० ॥

गुणके कारण मिलनेयोग्य या नायकोंके गुण ।

प्रीतियशोऽर्थास्तु गुणतोऽधिगम्याः ॥ ११ ॥

जिनसे रति और यश प्रयोग न होता है वे तो गुणकी खातिर किये जाते हैं ॥ ११ ॥

यतो गुणवद्भ्य एव प्रीतिर्यशश्च भवति ॥ ११ ॥

गुणियोंके ही मिलनेसे प्रीति और यश होता है, इस कारण गुणियोंसे प्रेम किया जाता है ॥ ११ ॥

नायकोंके गुण ।

उभयोरपि गुणान्वैशिके वक्ष्याम इत्युक्तम्—

यह हम पिछिले अधिकरणमें कह चुके थे, कि दोनोंके गुणोंको वैशिक अधिकरणमें कहेंगे; इस कारण दोनोंके गुण कहते हैं—

महाकुलीनो विद्वान्सर्वसमयज्ञः कविराख्यानकुशलो वाग्ग्मी प्रगल्भो विविधशिल्पज्ञो वृद्धदर्शी स्थूललक्षो महोत्साहो दृढभक्तिरनसूयकस्त्यागी मित्रवत्सलो घटागोष्ठीप्रेक्षणकसमाजसमस्याक्रीडनशीलो नीरुजो-ऽव्यङ्गशरीरः प्राणवानमद्यपो वृषो मैत्रः स्त्रीणां प्रणेता लालयिता च । न चासां वशगः स्वतन्त्रवृत्तिरनिष्ठु-रोऽनीर्ष्यालुरनवशङ्की चेति नायकगुणाः ॥ १२ ॥

बड़े घरानेवाला, विद्वान्, सब संकेतोंका ज्ञाता, कवि, कहानियोंमें चतुर, गप्पी, चतुर, अनेक तरहकी दस्तकारीका ज्ञाता, बड़ोंका सेवक, महाशय, बड़ा उत्साही, दृढ भक्तिवाला, अनिन्दक, त्यागी, मित्रवत्सल, घटा, गोष्ठी, प्रेक्षणक, समाज और समस्यामें खेलनेवाला, निरोग, सीधा शरीरवाला, बलवान्, शराब न पीनेवाला, वृष, मैत्र, स्त्रियोंका प्रणेता और लालन करनेवाला, स्त्रियोंके वश न होनेवाला, स्वतंत्रवृत्ति, सहृदय, ईर्ष्यारहित और निःशंक ये नायकोंके गुण हैं ॥ १२ ॥

विद्वान्—आन्वीक्षिक्यादिज्ञः। सर्वेति—पाषण्डसमयपरिज्ञानात् । कविः संस्कृतादिकाव्यकृत् । प्रगल्भः प्रतिभाववान् । शिल्पम्—लेख्यादि । वृद्धदर्शी विद्यावयोवृद्धानामुपासकः । स्थूललक्षः महेच्छः । महोत्साह इति—महत्त्वं च योगान्तरमहत्त्वयोगात् । यथोक्तम्—‘ शौर्यममर्षता शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः । ’ घटागोष्ठयौ व्याख्याते । प्रेक्षणकं नटादिदर्शनम् । समाजः पानगोष्ठी । समस्याक्रीडा संभूय क्रीडा । अव्यङ्गमहीनम् । प्राणो बलम् । अमद्यपो ब्राह्मणोऽर्थाल्लभ्यते । वृषो व्यवायक्षमः । मैत्रः करुणावान् । प्रणेयित्व (प्रणेतृत्व) मुपदेशेन तासां समुदाचारेषु स्थापनम् । लालनं तासां शरीरस्थितिवैकल्यसंवरणम् । अनवशङ्की निःशङ्कमारम्भवान् । नायकगुणा इति गुणिद्वारेण गुणाभिधानमत्र प्रकरणायत्तत्वात् । गम्यगुणा इति वक्तव्ये नायकग्रहणं सामान्यसंज्ञाप्रतिपत्त्यर्थं तच्च पूर्वोक्तगुणा वक्ष्यन्त इति तद्व्याख्यातम् । भवत्पेक्षयेव (?) नायको न गुणान्तरयोगात् । कन्यापुनर्भूपरदारवेश्यापेक्षया यथाक्रमं वरो जारः सिद्धो गम्यश्चेति संज्ञान्तरं लभते ॥ १२ ॥

आन्वीक्षिकी आदि विद्याओंका विद्वान्, पाखण्डोंके सब संकेतोंका वेत्ता, संस्कृत हिन्दी आदिमें कविता करनेवाला, प्रतिभाशाली, लेख्य आदिकी दस्तकारीमें हुशियार, विद्या और वयसे जो बड़े हैं उनका उपासक, महाशय, दूसरे योगोंके महत्त्वके योगसे उत्साही, यह कह भी चुके हैं कि–"शूरवीरता, किसीसे अपमान न सहना, फुर्ती और चतुरता ये उत्साहके गुण हैं" घटा और गोष्ठी बता चुके हैं। नट आदिके तमासे देखना प्रेक्षणक है। पानकी गोष्ठीका नाम समाज है। मिलकर जो क्रीडा होती है वह समस्या क्रीडा कहाती है। अव्यङ्ग यानी अदीन अर्थात् कोई भी कम न हो। प्राण नाम बलका है। शराब न पीनेवाला तो ब्राह्मण ही होता है। जिसमें सहवासकी शक्ति है वह वृष कहाता है। करुणावालेको मैत्र कहते हैं। जो स्त्रियोंको उचित उपदेश देकर उनके कामोंमें लगा देते हैं। जो उनके शरीरकी खराबियोंको दूर कर दे या ढकनेके उपाय बता दे। जो निःशंक प्रारंभ करनेवाला हो। ये नायकोंके गुण हैं। यद्यपि गुणी नायक बताये हैं, किन्तु उनके द्वारा ही गुण बता दिये, क्योंकि गुणोंका ही प्रकरण छिड़ा हुआ है। यद्यपि 'ये गम्यके गुण हैं' यह लिखना था पर जो नायकोंके गुण हैं यह जो लिख दिये हैं वह सामान्यसंज्ञाकी प्रतिपत्तिके लिये हैं और वह पहिले कहा हुआ है कि गुण कहेंगे, इस कारण नायकोंके गुणके नामसे कह दिये हैं। जो गुण नायकमें मिलें उन्हींकी अपेक्षासे वह नायक है। यह बात नहीं है कि दूसरे गुणोंसे वह नायक है। कन्या, पुनर्भू, परनारी और वेश्याकी अपेक्षासे यथाक्रम इनका वर जार सिद्ध होता है वही गम्य भी है। यह उसकी दूसरी संज्ञा सिद्ध होती है ॥ १२ ॥

नायिकाके गुण ।

नायिकायाः पुना रूपयौवनलक्षणमाधुर्ययोगिनी गुणेष्वनुरक्ता न तथार्थेषु प्रीतिसंयोगशीला स्थिरमतिरेकजातीया विशेषार्थिनी नित्यमकदर्यवृत्तिर्गोष्ठीकलाप्रिया चेति [नायिकागुणाः] ॥ १३ ॥

---

१ ये वेश्याके मिलने वालोंके ही गुण नहीं, किन्तु नायकमात्रके गुण हैं, किसी भी स्त्रीका यारा हो, ये बातें उसमें अवश्य होनी चाहियें।

÷ नायिकाके गुण बताते हैं—यह सुन्दरी लावण्यवती, सौभाग्यसूचक चिह्नोंवाली, मधुरभाषिणी, नायकके गुणोंमें अनुरक्त रहनेवाली हो पर उसके धनमें नहीं, रतिके संभोगके स्वभाववाली, दृढमति, एक ढंगकी, विशेष चाहनेवाली, सदा ही पवित्रतासे गुजारा करनेवाली, गोष्ठी और कलासे प्रेम करनेवाली (ये नायिकाके गुण हैं) ॥ १३ ॥

नायिकायाः पुनरिति । रूपं वर्णसंस्थानं यच्छोभनम् । लक्षणं सौभाग्यसूचकम् । माधुर्यं प्रियवाक्यत्वम् । तैर्योगः स यस्यास्तद्योगिनीति । तेषु (गुणेषु) नायकसंबन्धिष्वनुरक्ता न तथार्थेषु तदीयेषु । प्रीतिसंयोगशीलेति प्रीतिग्रहणं बाह्यसंयोगनिवृत्त्यर्थम् । रतिसंभोगशीलेत्यर्थः । स्थिरमतिः कर्तव्यमिति निश्चित्यार्थान्करोति । एकजातीयेत्येकप्रकारा न मायाविनी । विशेषार्थिनी न यत्रक्वचनवस्तुनि रमते । अकदर्यवृत्तिरात्मवृत्त्यनुरोधेनार्थसंचयः । तत्रापि न कदाचिदित्याह—नित्यमिति । गोष्ठीकलाप्रियेति गोष्ठी या क्रीडामात्रैककार्या । नायिकाया गुणा इति योज्यम् । अत्रापि पूर्ववद्वेश्याया इति नोक्तम् ॥ १३ ॥

जिसका रंग अच्छा हो, शरीर सुडौल हो उसे सुन्दरी कहते हैं । लावण्य अंगोंकी चमकका नाम है । जिसके सौभाग्यके चिह्न हों, जिसकी बोली प्यारी हो, ये बातें जिसमें हों वह इन बातोंवाली कहायगी । जिसपर आसक्त हो, वह उसके गुणोंमें आसक्त हों, उसके धनोंपर न हो । रतिके संभोगको चाहनेवाली हो, बाहिरकी आरामतलवीपर मरनेवाली लोभिन न हो, न बाह्य संभोग ही चाहती हो। यह मेरा काम है इसे अवश्य करूंगी यह सोचकर निश्चय करके उसको करनेवाली हो । इक रंगा हो यह न हो कि ढोंग धतूरे करे । विशेष वस्तुपर रीझनेवाली हो यह न हो जी चाहे जिसपर मरने लग जाय । बुरे कामसे धन इकट्ठा करना न चाहे अपनी निजी वृत्तिके अनुसार ही धन चाहे । यह बात न हो कि यह कभी ही करे, किन्तु सदा इसी बातपर ध्यान रखनेवाली हो । जिसे वह कला और गोष्ठी पसन्द हो जिसमें इकट्ठे होकर खेल खेलते हैं। ये नायिकाके गुण हैं। गुणीद्वारा गुण कह दिये गये हैं, इनमेंसे जो बात वेश्यामें होनी चाहियें वे उसके गुण हैं१३

÷ ये भी नायिकामात्रके गुण हैं । इसका यह तात्पर्य्य नहीं कि वेश्याके हों। स्वकीया, परकीया और सामान्य नायिका, सभीमें यथासंभव इन गुणोंको देखना चाहिये।

दोनोंके साधारण गुण ।

एतद्वयोरप्यसाधारणतामाह—

नायक और नायिका होनेके साधारण गुण बताते हैं कि—

नायिका पुनर्बुद्धिशीलाचार आर्जवं कृतज्ञता दीर्घदूरदर्शित्वं अविसंवादिता देशकालज्ञता नागरकता दैन्यातिहासपैशुन्यपरिवादक्रोधलोभस्तम्भचापलवर्जनं पूर्वाभिभाषिता कामसूत्रकौशलं तदङ्गविद्यासु चेति साधारणगुणाः ॥ १४ ॥

बुद्धि, शील,आचार, सरलता, दूसरेका अहसान मानना, दूरकी सोचना, वाद न करना, देश कालको देखना, नागरोंके गुणोंमें निपुण रहना और दैन्य, अतिकी हँसी, आपसमें लड़ाई कराना, दूसरेकी बुराई, क्रोध, लोभ, अभिमान, चापल इन दोषोंसे रहित, पहिले बोलना, कामसूत्रकी चतुरता, उनकी अंगविद्याओंकी हुश्यारी, ये दोनोंके साधारण गुण हैं ॥ १४ ॥

बुद्धिः प्रज्ञा । शीलं स्वभावता (१) आचारो देशे काले चेदं प्रयुज्यत इति । नागरकता नागरकवृत्तानुष्ठानम् । दैन्यं याच्ञा । अतिहासो नित्यप्रहसनता । पैशुन्यं परस्परसंभेदनम् । परिवादः परदोषोदाहरणम् । चापलमधैर्यम् । वर्जनं त्यागः । तेन गुणा एवोक्ता दैन्यादयः । पूर्वाभिभाषिता यावदेव परो न संभाषते । कामसूत्रे कौशलं ज्ञानम् । अत्र न गुणिद्वारेण गुणाभिधानम् ॥ १४॥

बुद्धि प्रज्ञा यानी अक्ल, शील स्वाभाविक आचार, इस देशमें और इस समय यह करना चाहिये यह जान लेना देशकालज्ञान है । नागरिकोंकी जो चर्य्या बताई गई है उसके अनुसार चलना नागरपना है । दैन्य भिखमँगेपनको कहते हैं । सदा बेबात हँसते रहना नित्यहास है । दो प्रेमियोंको आपसमें लड़ादेनेका नाम पिशुनता है ! दूसरेके दोषोंका उदाहरण देना परिवाद है । धीरताके त्यागका नाम चपलता है । छोड़ देना या दोषोंसे रहित यह वर्जनके अर्थको लेकर ही कहा है यानी दैन्यसे लेकर चापलतकके दुर्गुण उसमें न होने चाहियें । इन सब दुर्गुणोंका त्याग भी गुणमें आ जाता है, इस कारण इन्हें गुणोंमें रखा है । जबतक अपनेसे दूसरा मिलनेवाला न बोल

---

१ ये गुण स्त्रीपुरुष दोनोंमें ही होने चाहिये, इसमें सभी नायिका और सभी नायक आ गये समझना चाहिये । ' नायिका पुनः ' यह पाठ क्वाचित्क है ।

पाये उससे पहिलेसे बोल उठना । कामसूत्रके विषयमें पूरा ज्ञान हो । यहां सीधे गुण गिनाये हैं । गुणियोंके द्वारा गुण नहीं कहे जैसा कि पीछे किया है ॥ १४ ॥

नायक नायिकाओंका दोष ।

गुणविपर्यये दोषाः ॥ १५ ॥

जो गुण बताये हैं, उनकी उलटी बातें हों तो वे दोष हो जाते हैं ॥ १५ ॥

साधारणादन्यतरत्वादन्यलिङ्गनिदर्शनेन हि गुणाभिधाने साधारणानां विपर्यये दोषादौ कुलेय (?) त्वादयो वैरूप्यादयो दौर्बुद्ध्यादयश्च । तद्योगान्नायकोऽप्यनायक इत्युच्यते । सत्स्वपि गुणेषु दोषान्तरयोगादगम्या इति ॥ १९ ॥

साधारणोंसे अत्यन्त भिन्न होनेके कारण, भिन्न हेतुके दिखानेके द्वारा ही गुणोंके कथनमें, साधारण आदिक गुणोंके उलटा होनेमें, दोष आदि सँभालती बार कुलहीनता, निर्बुद्धिपना और कुरूपीपना दोष हैं, इन दोषोंके योगसे नायक भी अनायक कहाता है। इसी तरह नायिकामें भले ही गुण हों किन्तु दोष[१] आ घुसें तो वह उनसे अगम्या ही बन जाती है ॥ १६ ॥

न मिलने योग्य ।

अगम्यचिन्तामाह—

जिनसे उसे न मिलना चाहिये उन्हें बताते हैं कि—

क्षयी रोगी कृमिशकृद्वायसास्यः प्रियकलत्रः परुषवाक्कदर्यो निर्घृणो गुरुजनपरित्यक्तः स्तेनो दम्भशीलो मूलकर्मणि प्रसक्तो मानापमानयोरनपेक्षी द्वेष्यैरप्यर्थहार्यो विलज्ज इत्यगम्याः ॥ १६ ॥

क्षयी, कुष्ठी, गूसे कीडेवाला, मुखसे जिसके बदबू आये, जिसे अपनी स्त्री प्यारी हो, कठोरभाषी, दुराचारी, निर्दय, मा बापका निकाला हुआ, चोर, कपटी, जादूटोनामें लगा रहनेवाला, मान और अपमानको न समझनेवाला, धनके लिये वैरियोंसे भी मिल जानेवाला, निर्लज्ज, ये मिलने लायक नहीं होते॥१६॥

---

१ चाहें स्त्री हो वा पुरुष हो कोई भी हो । उनमें कोई ऐसा दोष हो तो उनके सभी गुणोंपर पानी फिर देता है । यही कारण हैं कि राजनीतिमें कहा है कि—"एकोऽपि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ।"

क्षयो राजयक्ष्मा । रोगशब्दः सामान्यवाच्यपि लोकप्रसिद्ध्या कुष्ठवाची । द्वयोरपि सांक्रामिकत्वात् । कृमिशकृदिति पुरीषमक्षिकेति प्रसिद्धा । सा हि यस्मिन्व्रणे पुरीषं मुञ्चति तत्र कृमिर्भवति तद्वद्यच्छुक्रसंसर्गाद्या हि गर्भमाधत्ते सा स्त्री जरां धत्ते । वायसास्यो दुर्गन्धमुखः । यद्वा काकः शुच्यशुचौ मुखं निक्षिपति एवं निर्विचारं स्त्रीः कामयते स तासामनभिगमनीयः स्यात् । प्रियकलत्र इति तस्यान्यत्रानासक्तेः नाप्यर्थदः । परुषवाक् असह्यत्वात् (वाक्) । कदर्यो य आत्मानं भृत्यांश्च संपीडयार्थसंचकः । निर्घृणो निर्दयः । उभावप्यदातारावकार्यकरौ च । मूलकर्म कार्मणम् द्वेष्यैरप्यर्थहार्यो यो द्वेष्यैरप्यर्थलोभात्संधत्ते स लुब्धः कथं ददाति ॥ १६ ॥

क्षय राजयक्ष्माको कहते हैं । रोग शब्द सब रोगोंका बोधक है तो भी यहां लोकप्रसिद्धिके वश कुष्ठवाचक है, क्योंकि ये दोनों संक्रामक रोग हैं (इन दोनों रोगोंके रोगियोंसे प्रायः स्त्रियाँ नहीं मिला करतीं) कृमि—कीडा तथा शकृत् गूका नाम है । ऐसी पुरीषमक्षिका होती है वह जिस घावपर वीट करती है वहां कीड़े पड़ जाते हैं, उसी तरह ऐसे पुरुषके साथ संसर्ग होने पर जो स्त्री गर्भधारण कर लेगी वह जलदीसे जलदी बुड्ढी हो जायगी । जिसके मुँहसे बदबू आये उसे 'वायसास्य' कहते हैं अथवा जैसे कउआ अच्छी बुरी सब जगह मुँह डाल देता है उसी तरह वह भी अच्छी बुरी चाहने और न चाहनेकी सभी स्त्रियोंको विवेकशून्य होकर चाहता है । ऐसे पुरुषोंसे और तो क्या वेश्याओंको भी न मिलना चाहिये । जिसे अपना घर प्यारा होगा उसकी दूसरीमें आसक्ति न होगी अत एव वह कुछ न देगा । कठोर २ बोलनेवाला सहनशील न होगा । जो अपनेको और निजी नौंकरोंको पीडित करके धन इकट्ठा करता है वह लोभी क्या देगा । निर्दय भी ऐसा ही होता है । ये दोनों न तो देते हैं एवम् न काम ही करके देते हैं । मूलकर्म कार्मण यानी जादूटोनेका नाम है । जो धनके लोभसे वैरियोंसे भी मिल लेता है वह लोभी कैसे देगा ॥ १६ ॥

मिलनेके कारण ।

यैः कारणैरभिगमनं तत्र चिन्तामाह—

जिन कारणोंसे मिला जाता है, उन कारणोंके विषयमें विचार करते हैं, कि—

रागो भयमर्थः संघर्षो वैरनिर्यातनं जिज्ञासा पक्षःखेदो धर्मो यशोऽनुकम्पा सुहृद्वाक्यं ह्रीः प्रियसादृश्यं धन्य-

ता रागापनयः साजात्यं साहवेश्यं सातत्यमायतिश्च गमनकारणानि भवन्तीत्याचार्याः ॥ १७ ॥

राग, भय, अर्थ, संघर्ष, वैर निकालना, जाननेकी इच्छा, पक्षके लिये, खेद, धर्म, यश, अनुकंपा, प्यारेके वाक्य, लज्जा, प्यारेका सादृश्य, धनीपना, रागकी शान्ति, सजातिपना, साथका रहना, प्रभाव, ये गमनके कारण होते हैं यह आचार्य्योंका मत है ॥ १७ ॥

राग इति क्वचित्स्वाभाविक उत्पन्नः । भय व्यापादनभयम् । अर्थो भूम्यादिलाभः । संघर्षः स्पर्धा । यथा देव [द] त्तया अनङ्गसेनयेति । ततो हि समाकृष्य स्पर्धया मूलदेवः कामितः । वैरं निर्यातयन्ती क्वचिदभिगच्छति । जिज्ञासेति विदग्धोऽयमिति श्रूयते तत्किं तथैवेति । पक्ष आश्रयः यमाश्रित्य कार्यं साधयति । खेदः परिश्रमः । संप्रयोगो हि जीविका । तत्र चाकृतखेदा सहसा क्वचित्क्वचित्प्रवृत्ता विमर्दं न सहते । धर्मोऽकिंचनविद्वद्ब्राह्मणाभिगमनात् । यशः कस्यांचित्तिथौ कामसत्रप्रदानात् । अनुकम्पा अकामयमानायां त्वयि म्रियेऽहमित्येववादिनि दया भवति । सुहृद्वाक्यं मम प्रीतकः समायातस्तेन सहाद्य शयितव्यमिति । ह्रीर्यो गुरुस्थानीयः स लज्जयाभिगम्यते । प्रियसादृश्यं मत्प्रियस्यायं सदृश इति । धन्यतेति पुण्यवानयं यतो धनवान्रूपवांश्च । रागापनयः शुक्रधातोरुद्रिक्तस्य कंचिदभिगम्यापनयनम् । साजात्यं सजातिरयमिति विप्रतिपन्नायाः कुलयोषितोऽभिगमनकारणमेतत् । साहवेश्यं सहवेशकोऽयमिति । आयतिः प्रभावः । प्रभवन्तमधिगम्य ॥ १७ ॥

कहीं स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हो जाय, जिससे कटजानेका भय हो, जिससे भूमि आदि अर्थोंका लाभ हो । जिसके ऊपर किसीसे होड़ हो जैसे कि देवदत्ताकी अनङ्गसेनाके साथ थी, इसी कारण उसने उससे खींचकर मूलदेवको चाहा। वैरके निकालनेके लिये भी कहीं रंगरेलियाँ होती हैं। लोग जिसे बड़ा चतुर बताते हैं यह वैसा ही है वा नहीं । यह पक्षपाती है पक्ष ले लेगा तो बड़ा कार्य्य करेगा । खेद परिश्रमका नाम है, वेश्याकी जीविका संप्रयोग ही है जिसने सहवासमें अभ्यास न कर रखा होगा कभी २ प्रवृत्त होगी वह बलवान्की रिगड़ापट्टी न सह सकेगी । इस कारण अभ्यास भी कराती हैं जिससे कि वे सब प्रकारके उपमर्दोंके सहनेलायक बन जायँ।

जो कामार्त निर्धन विद्वान् ब्राह्मण आये तो उसके साथ मिलनेसे धर्म होगा, इस कारण या किसी तिथिमें कामसत्रके देनेसे यश होगा इस कारण भी रमती है यदि तू मुझे न चाहेगी तो मरजाऊँगा इस प्रकारके कहनेवाले पर दया होती है । यह मेरा मित्र तेरेसे मिलने आया है, इसके साथ सोना पड़ेगा अपने सुहृदके इस कहनेसे भी मिलती है। जो गुरुकोटिमें होता है उसके साथ लाजसे भी मिला जाता है । जो अपने प्यारे जैसा होता है वह इसी कारण मिलने योग्य होता है । धनवान् और रूपवान्को इन्हीं कारणोंसे पुण्यवान् मान कर मिलती है । शुक्रधातुके वेगको भी किसीसे मिलकर शान्त करती है । पासकी कुलस्त्री किसी पासकेको जातका मानना भी उसके अभिगमनका कारण होता है । यह एक मुहल्ला या पासका है इससे या प्रभावीसे प्रभाव बढानेके लिये भी मिलती है । ये मिलनेके कारण हैं, ऐसा आचार्य्योंका मत है ॥ १७ ॥

रागका प्राबल्य ।

मिलनेके जो कारण बताये हैं ये कुलस्त्रियोंके भी होजाते हैं । जहां कहीं उन्हें स्वाभाविक इतना राग उत्पन्न होजाता है कि अपनेको नहीं सँभाल सकतीं तो अवश्य पापके गड्ढेमें डूब मरता है । कमजोर आत्माकी स्त्रियाँ डरके मारे भी अपना सतीत्व दे बैठती हैं । पर जितनी रागके कारण खराब होती हैं उतनी भयके कारण नहीं होतीं । जिन राजमहलोंमें काल भी आकर न डरा सके, जहां वायु भी प्रवेश करते सकुचाये, जहां सूर्य्यकी किरणोंका भी ताप पैदा करनेका साहस न हो वहां भी रागदेवने प्रविष्ट होकर सतियोंके सत डिगा दिये । आज और प्राचीन कालमें केवल इतना ही अन्तर है कि पहिले व्यभिचार बुरा डूब मरनेका कर्म था, इसे कूपपतन समझा जाता था, किन्तु आज कलि भगवान्ने सबकी बुद्धियोंको रसातलमें भेज दिया है । सबका एक ही ध्यान है । आज बुरेकाम अमीरीके चोंचले समझे जाते हैं । प्रचुर साधन और स्वातन्त्र्य मिले पीछे मनुष्य अपनी वृत्तियोंपर अधिकार भी नहीं रख

---

१ पहिले अधिकरणमें यह बताचुके हैं कि राजा और वेश्या अर्थप्रधान हैं यदि धन मिलता हो तो ये धनकी हैं किसीकी भी नहीं हैं । फिर भी अच्छे बुरे सभीमें होते हैं, हो सकता है जो हिन्दू वेश्या हो उसमें ये भाव निकल आयें ।

२ अत्यन्त आसक्ति दिखानेसे तो कुलस्त्रियोंको भी फिसलते देखा है । किसीको लेकर स्त्रीके दिलमें यह भाव पैदा होजाना कि यह मुझपर जान दिये बैठा है बड़ा नुकसान करता है, इस कारण स्त्रियोंपर ऐसे पुरुषोंकी दृष्टि भी न पड़ने देनी चाहिये ।

पाता, क्षणिक सुखके धोखेमें स्थायी दुःख खरीद लेता है । पहिले स्त्री पुरुषोंका नियमित जीवन था, स्त्री और पुरुष संयोगके समय जिन भोग विलासोंकी सामग्रियोंमें लिप्त रहते थे वियुक्त दशामें दोनोंका वह हाल नहीं रहता था । उनमें वियोगकी दशामें नाममात्रकी भी शोखी नहीं रहती थी । हनुमान्जीने जब भगवान् रामकी वियोग दशा सीताजीसे वर्णन की है तो बताया है कि–' ए मातः ! राम आपके वियोगमें व्रतियोंकी तरह जीवन बिताते हैं और तो क्या भोजन भी उनका हविष्यान्न ही होता है।' यही दशा पतिसे वियुक्ताओंकी भी रहा करती थी, जिसपर माँग सँभाली जाती थी यह वह पास नहीं तो माँग भी नहीं सँभाली जाती न शृङ्गार किया जाता है एवम् न भोजनही उत्तेजक होता है । मेरे यह लिखनेका तात्पर्य्य यह है कि राग स्त्रीपुरुषमात्रका प्रेरक है, यह किसीमें नियत नहीं अनियत है । यह सभीको मर्य्यादासे हटा देता है । जिनका संयमी जीवन है जो सत्असत्का विवेक रखते हैं एवम् जिन स्त्रीपुरुषोंमें धर्मनिष्ठा है इनके हृदयमें राग अधिकार नहीं जमा पाता, नहीं तो इसने सबको लूटकर थोथा बनाकर ही दुनियाँसे भेजा है ।

इसपर वात्स्यायन ।

अर्थोऽनर्थप्रतीघातः प्रीतिश्चेति वात्स्यायनः ॥ १८ ॥

अर्थ, अनर्थकी हानि और प्रीति ये गमनके कारण हैं, यह वात्स्यायनका मत है ॥ १८ ॥

अत्राह शास्त्रकारः—परिगणनमेतत्प्रदर्शनं वा । तत्र परिगणनं चिकित्सा मैत्री शोकापनयः कलागम इत्येवमादीनामपि संभवात् । प्रदर्शने चार्थोऽनर्थप्रतीघातः प्रीतिरिति तावद्वक्तव्यम् सर्वेषामत्रैवान्तर्भावः । संघर्षजिज्ञासापक्षखेदधर्मयशःसुहृद्वाक्यरागापनया अर्थे । भयं वैरमनुकम्पा अनर्थप्रतीघाते । शेषाः प्रीतौ । ह्रीरपि प्रीत्यंशमेव स्पृशति ॥ १८ ॥

इस विषयमें शास्त्रकार कहते हैं, कि—' यह परिगणन और प्रदर्शन है । इन दोनोंमें चिकित्सा, मैत्री, शोकको दूर करना और कलाओंका जानना इत्यादि कलाएँ भी परिगणनमें आजाते हैं । प्रदर्शनमें अर्थ, अनर्थका प्रतीघात और प्रीति यही कहना चाहिये, जितने भी गमनके कारण हैं, उन सबका

---

१ कलाओंमें कलार्थिनियोंकी आसक्ति देखी जाती है एवम् ये साधारणोंसे कुछ अच्छी रहती हैं । इस आसक्तिकी छटा स्टेजपर काम करनेवालियोंमें देखनेको मिलेगी ।

इन्हींके भीतर अन्तर्भाव हो जाता है, । संघर्ष, जिज्ञासा, पक्ष, खेद, धर्म, यश, सुहृद्वाक्य और रागशान्ति अर्थके भीतर गतार्थ हो जाते हैं । भय, वैर और अनुकम्पा अनर्थके प्रतीघातमें गतार्थ होते हैं । बाकी बचे प्रीतिके भीतर आजाते हैं । लज्जा भी प्रीतिके अंशका ही स्पर्श करती है ॥ १८ ॥

अर्थस्तु प्रीत्या न बाधितः । अस्य प्राधान्यात् ॥ १९ ॥

अर्थ तो प्रीतिसे नहीं बाधा जाता, क्योंकि अर्थ प्रधान है ॥ १९ ॥

अर्थस्त्विति अर्थप्रीत्योर्यथास्वं विषयेषु युगपत्प्रत्युपस्थितेः प्रीतिविषयं-त्यक्त्वार्थविषयमधिगच्छेदित्यर्थः ॥ १९ ॥

विषयोंमें यथाक्रम अर्थ और प्रीति दोनों उपस्थित हों तो प्रीतिके विषयको छोड़कर अर्थके विषयको प्राप्त करे, यह इस सूत्रका तात्पर्य्य है ॥ १९ ॥

भयादिषु तु गुरुलाघवं परीक्ष्यमिति सहायगम्यागम्य-(गमन) कारणचिन्ता ॥ २० ॥

भय आदिक जो गमनके कारण बताये हैं उनमें गुरुता और लाघवकी परीक्षा कर ले । ये सहाय, गम्य, अगम्य और गमनके कारणोंका विचार पूरा हुआ ॥ २० ॥

गुरुलाघवमग्रे वक्ष्यति । इति सहायगम्यागम्यगमनकारणचिन्ता पञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ २० ॥

गुरुता और लाघव अगाड़ी कहेंगे । ये सहाय, गम्य, अगम्य और गमनके कारणोंकी चिन्ताका पचासवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ २० ॥

योग्यको अपनी ओर झुकानेका प्रकरण ।

एवं सहायं निरूप्य गम्यमभिमुखीकुर्यादिति गम्योपावर्तनमुच्यते—

इस प्रकार सहाय गम्य आदिका निरूपण करके विचारके मिलने योग्यको अपनी ओर झुकाये, अतः अब मिलने योग्यको अपनी ओर झुकानेकी विधियाँ बताते हैं कि—

---

१ यह बात वेश्याकी ही है कि प्रीतिसे पहिले अर्थ देखती हैं । यही कारण है कि इन्हें 'पण्यस्त्री' कहा गया है । इनमें भी सब एकसी नहीं होती पर बड़ी संख्या ऐसियोंकी ही है । वैसे तो दृष्टपंचपुरुषा भी एक प्रकारकी कंजरी ही है पर परदारोंका प्राथमिक पतन प्रायः प्रीतिके लिये ही अधिक पाया जाता है या वासनाएँ भी उन्हें बुरे रासतेपर पटक देती हैं ।

सहसा न मिलना ।

उपमन्त्रितापि गम्येन सहसा न प्रतिजानीयात् । पुरुषाणां सुलभावमानित्वात् ॥ २१ ॥

मिलने लायक पुरुष मिलनेकी प्रार्थना भी करे तो भी सहसा न मिले, क्योंकि पुरुष सुलभ वस्तुका अपमान करते और दुर्लभको चाहा करते हैं २१

स्वयमुपावर्तितेन नायकेन प्रार्थिता न सहसा गच्छेत् । सुलभावमानित्वात्पुनःपुनरुपमन्त्रिता गच्छेदिति ॥ २१ ॥

नायक स्वयम् अपनी ओर खींचकर प्रार्थना करे तो भी जलदी ही न मिल बैठे, क्योंकि पुरुष अनायास मिली वस्तुका अपमान कर बैठते हैं । जब वह बारबार चाहें तब भी मिले ॥ २१ ॥

भाव जानना ।

भावजिज्ञासार्थं परिचारकमुखान्संवाहकगायनवैहासिकान्गम्ये तद्भक्तान्वा प्रणिदध्यात् ॥ २२ ॥

नायकके भावोंको जाननेके लिये मुख्य नौकर, पैर दाबनेवाले, गाना सुनानेवाले और विदूषकको तथा दूसरे भी जो उसके सच्चे सेवकर्[2] हों उन्हें नियुक्त करे ॥ २२ ॥

भावजिज्ञासार्थमिति । वैहासिको विदूषकः । तस्य गम्यस्य । भक्तान्सेवापरान् । प्रणिदध्यान्नियुञ्जीत ॥ २२ ॥

सूत्रके वैहासिक शब्दका अर्थ विदूषक है । तद्भक्त—यानी गमन करने योग्य पुरुषके सच्चे नौकर या सेवक, इनका प्रणिधान—नियुक्त करना है। ये बातें तब ही हों जब कि भावके जाननेकी इच्छा हो । ये नायकके नजदीकी होते हैं, इनसे भावका पता जलदी ही लग जाता है ॥ २२ ॥

तदभावे पीठमर्दादीन् । तेभ्यो नायकस्य शौचाशौचं रागापरागौ सक्तासक्ततां दानादाने च विद्यात् ॥ २३ ॥

---

१ इसी बातको स्त्रीपुरुष शीलावस्थापन प्रकरणमें भी कहा है ।

२ आज जो वेश्याओंके पास नौकर रहते हैं, वेश्या उन्हें भाई तथा दूसरे लोग उनसे भडुआ कहते हैं, पर जो रईसाने ढंगकी होती हैं उनके यहां दूसरे २ भी नौकर रहते हैं, परन्तु इस प्रकारके कार्य्योंके करनेवाले प्राय उच्चकोटिके पुरुष नहीं होते न ऐसे उत्तम प्रकृतिके ही होते हैं ॥

इनके अभावमें पीठमर्द आदिकोंको नियुक्त करे । इनके द्वारा अपने प्रति नायकके जो शौच, अशौच, राग, अपराग, शक्तता, अशक्तता, दान और अदान हों उन सब बातोंको जान ले ॥ २३ ॥

पीठमर्दादिशब्दाद्विटमालाकारगान्धिकशौण्डिकादयः सहायाः । भावोऽभिप्रायः । तस्मिन्ननेकप्रकारेऽपि प्राधान्याच्छौचादिभावेष्वेव येनायं वेत्ति जिज्ञासनमिति । नायकस्येति गम्यसंज्ञकस्य । शुचिसमुदाचारान् शौचं भावम् । तद्विपरीतमशौचम् । यतः कश्चित्स्वयं ममोपरि कष्टं प्रयुंक्ते प्रयोजयति नोभयं वेति । रागः संयोगेच्छा तद्विपरीतमपरागम् । शक्ततां वक्ष्यमाणलक्षणां तद्विपरीतामशक्तताम् । दानं दातृत्वं तद्विपरीतमदानम् ॥ २३ ॥

पीठमर्द शब्दके साथ जो आदि शब्द है उससे विट, मालाकार, गन्धी और शौण्डिक आदिको समझना चाहिये जो कि उसके सहायक हैं । भाव अभिप्राय यानी उसकी भीतरी मनसाको कहते हैं । भाव अनेक प्रकार होता है तो भी उसमें प्रधानरूपसे शौचादिक भावोंके विषयमें ही जो जिसे जाने उससे उसी बातको जानलेना चाहिये । जिन्हें मिलने लायक बता चुके हैं वे होने चाहियें । उसके शुचि आदि सब भाव जानने चाहिये । शुचिताके भावका नाम शौच है, उससे जो विपरीत है उसे अशौच कहते हैं । इससे ही पता चलता है कि कोई मुझपर स्वयम् कष्टका प्रयोग करता है कराता है वा दोनों ही बातें नहीं है । मिलनेकी इच्छाका नाम राग तथा मिलनेकी इच्छाके न होनेका नाम अराग है । शक्तताका लक्षण अगाड़ी करेंगे । वह हो तो शक्तता तथा उससे विपरीतका नाम अशक्तता है । देनेकी शक्ति और स्वभावका नाम दान तथा इससे विपरीतका नाम, अदान है ॥ २३ ॥

चाहनेवालेसे प्रीति ।

संभावितेन च सह विटपुरोगां प्रीतिं योजयेत् ॥ २४ ॥

जिसमें अपनी चाहकी बातोंका संभव हो उसके साथ विटके उपाय पुरस्सर प्रीति लगा ले ॥ २४ ॥

संभावितेन चेति भावान् ज्ञात्वा प्रवर्तते । विटपुरोगामिति विटो हि जीर्णनागरकवृत्तः । तेन पूर्वप्रणिहितेन प्रीतिं योजयेत् ॥ २४ ॥

उसके भावोंको जान अपने अनुकूल भाव देखकर प्रेम करे, यदि अपनी चाहकी वस्तु वहाँ हो तो । जिसने छैलपनेमें सब धन इतस्ततः कर दिया हो

पर तबियत न भरी हो उसे विट कहते हैं, उसे पहिले लगाकर उसकी मारफत आप उससे प्रेम करे ॥ २४ ॥

प्रीति लगानेके उपाय ।

योजितायां विधिमाह—

प्रीति लगानेके बाद उपाय बताते हैं कि—

लावककुक्कुटमेषयुद्धशुकशारिकाप्रलापनप्रेक्षणककला-व्यपदेशेन पीठमर्दो नायकं तस्या उद्वसितमानयेत् २५

पीठमर्दका यह काम होना चाहिये, कि लवा मुरगा और मेंढाकी लड़ाई, तोता मैना आदिकी बातें सुनने, तमासे देखने और कलाओंके बहाने नायकको उसके घर ले जाय ॥ २५ ॥

लावकादीनां युद्धं शुकादिप्रलापनम् । प्रेक्षणकं नटादिदर्शनम् । कलागीतादिका । उद्वसितं गृहम् ॥ २९ ॥

लवा आदिकी लड़ाई तथा तोता, मैना आदिकी बोली एवम् नटादिकोंका तमाशा देखने अथवा गाना बजाना सुनानेके बहाने वेश्याके घर ले जाय॥२५॥

तां वा तस्य ॥ २६ ॥

अथवा वेश्याको उसके घर ले जाय ॥ २६ ॥

तां वेति नायिकां वा तस्योदवसितम् । तद्ग्रयनेति (१) ॥ २६ ॥

अथवा अधिक आदरणीय हो तो वेश्याको उसकी बैठकमें पहुँचाना चाहिये ॥

घरआयेका सत्कार ।

आगतस्य प्रीतिकौतुकजननं किंचिद्द्रव्यजातं स्वय-मिदमसाधारणोपभोग्यमिति प्रीतिदायं दद्यात् ॥ २७ ॥

अपने घर आये हुएको आप स्वयम् ऐसी कुछ वस्तुओंको प्रेमोपहारमें दे जो सर्व साधारणोंको जिन्हें देखकर प्रीति और कौतुक पैदा हो ॥ २७ ॥

यत्प्रीतिं जनयति तस्मै हितत्वात् । कौतुकं चादृष्टपूर्वत्वात् । द्रव्यमेव द्रव्यजातम् । स्वयमित्यनुरागख्यापनार्थं नान्येन । असाधारणेति भवत एवेदमुपभोगार्हं नान्यस्येत्युक्त्वा प्रीतिदायं यत्पु [न] दीयते ॥ २७ ॥

---

१ ये बातें वेशमें बसनेवालियोंकी नहीं होतीं । जो साधारण आबादीके बीच बसती हुई य धन्दे करती हैं उनकी हुआ करती हैं।

जो जिससे प्रेम पैदा करना चाहें उसके प्रति उसके दियेसे प्रेम पैदा हो जाय । वह प्रेमोपहार ऐसा हो जो उसने न देखा हो जिसे देखकर अचरज मालूम हो । वह किसी वस्तुका होना चाहिये । अपने हाथसे देनेमें अधिक प्रेम प्रतीत होता है, इस कारण अपने हाथसे दे, दूसरेके हाथसे न दिलाये । देती वार कह दे कि यह आपके ही योग्य है सर्व साधारणके लिये नहीं, इस प्रकार कहकर फिर जो दिया जाता है उसे प्रेमोपहार कहते हैं ॥२७॥

मजलिशका आदर ।

यत्र च रमते तया गोष्ठ्यैनमुपचारैश्च रञ्जयेत् ॥ २८ ॥

और जिस जगह उसका मनोरंजन हो वहां उपचारोंसे इसे राजी करे२८

यत्र चेति काव्यगोष्ठ्यां कलागोष्ठ्यां वा । उपचारैः स्रक्त म्बूलादिभिः २८॥

जिस शायरीकी मजेलिश या गानेबजाने आदिकी मैफिलमें वह हो वहां उसका माला, पान आदिसे सत्कार करना चाहिये ॥ २८ ॥

इसका आजके नाटकोंमें उपयोग ।

लाला बनारसी दासजीने एक रणधीर प्रेममोहिनी नाटक लिखा है, इसमें उन्होंने दिखाया है कि वीररणधीरपर एक कलानुरागिणी वेश्या दीवानी हो उठी थी, उसने जितने भी उपाय हो सकते थे वीर रणधीरको पानेके लिये सभी कर डाले। रणधीरको मोह भी हुआ पर वह वीरहृदय अपने वीरव्रतसे विचलित न हुआ । अन्तमें प्रेममोहिनीके पिताने दरबार किया जिसमें रणधीर भी उपस्थित हुआ, वहां वेश्यासे इसका विशेष प्रेमसम्मान हुआ तथा वहां इसने भी एक बेशकीमती हार उपहारमें दे दिया । इसके बाद रणधीर मैफिलसे उठकर चलदिया है, उन्हें उठता देख उनपर अतिप्रेम प्रकट करनेके लिये वेश्याने गाया है कि–

कुश्तए हसरते दीदार है यारब किसके,
नख्ले ताबूतपर जो फूल लगे नरगिसके ।
वह चला जान चली दोनों यहांसे खिसके,
उसको थामूँ कि इसे पैर पडूं किस किसके ॥

---

१ वेश्या नायकोंकी यह दशा रहती है, कि कई जने मिलकर या समर्थ पुरुष अकेला भी वारवधूका नाच गान कराता है, उस समय वह अपने हाथसे उन्हें पान आदि खिलाती है जिन्हें यह प्रथम प्राप्त होता है वे अपने शिरपर विशेष ताज समझते हैं । ऐसे मौकोंपर अपना बनानेके लिये वेश्याएँ दूसरोंका भी सत्कार कर डालती हैं ।

पाव तुरवत पै मेरी देख सँभलकर रखना,
चूर है सीस ए दिल संगे सितमसे पिसके ।
किस परीरुए सितमगरसे मिला दिल अपसोच,
किसपै दीवाना हुआ होश गये है किसके ॥
लज्जते मर्गसे हिजराँसे हुआ है कि खुदा,
य मजा हो न नसीबोंमें किसी वेहिस्के ।
क्यों न हम शमैकी मानिन्द जलें दूर खडे,
जब उदू बादसे गरभी हो तेरी मजलिसके ॥

इस प्रकारके ऊपर ढलनेवाले गानोंसे ये युवकों पर प्रेम प्रकट करके उन्हें अपने पंजेमें फंसा लेती हैं । पर सज्जन इनकी लीलाओंमें नहीं फँसते, रणधीर पंजेमें नहीं आया है किसी कविने कहा है कि—

गणिका गणिक समान है, निज पञ्चाङ्ग दिखाय ।
जन मनमोहन धनहरन, विधिने दिये बनाय ॥

इनकी मायाका क्या ठिकाना है । महात्मा शृङ्गी ऋषिसे वनमें मोह लिये, फिर दूसरेका तो कहना ही क्या है । जो अप्सराएँ मुनियोंको ठगने चलती हैं वे हैं क्या, एक प्रकारकी स्वर्गकी वेश्या ही तो हैं वे ही ठगने आती हैं । यह नहीं होता कि इन्द्र अपनी इन्द्राणीसे इन कामोंको लेता हो । विज्ञ लोग अप्सराओंको भी वेश्या ही मानते हैं तब ही विक्रमने कहा था कि-
इसमें आपका क्या बिगड़ता है ' ॥

प्रीतिको मजबूत करनेके उपाय ।

प्रत्यवच्छेदनार्थं विधिमाह—

जिस तरह प्रीतिको दृढ किया जाता है उस विधिको बताते हैं कि—

गते च सपरिहासप्रलापां सोपायनां परिचारिकाम-भीक्ष्णं प्रेषयेत् ॥ २९ ॥

नायकके चलेजानेपर मन्दहासके साथ हँसती हुई बोलनेवाली परिचारि-काके हाथमें कुछ प्रेमोपहार देखकर बारंबार भेजे ॥ २९ ॥

सपरिहासेति सक्रीडप्रकृष्टालापा हि प्रीतिं वर्धयति । सोपायनामभिज्ञानार्थं सह ढौकनिकया प्रेषयेत । तत्राप्यभीक्ष्णम् अन्तरा नायकप्रवेशो माभूदिति २९

जो खेल या नाजोनजाकतके साथ लंबीलंबी गप्पें उडाती है वह प्रेमको बढा सकती है, इसी कारण ऐसी परिचारिका भेजनी चाहिये । इस बातकी

पहिचानके लिये कोई ढौकनिका–निशानी या गमनसूचक वस्तु देकर भेजे। वह भी वारंवार भेजे जबतक कि नायक न आये, या इतनी वार भेजे जबतक कि बीचमें नायक न आये ॥ २९ ॥

स्वयं जाना।

सपीठमर्दायाश्च कारणापदेशेन स्वयं गमनमिति गम्योपावर्तनम् ॥ ३० ॥

पीठमर्दको साथ ले कारणके बहाने स्वयम् जाय। यह अपने मिलने लायकको अपनी तरफ झुकानेका प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३० ॥

सपीठमर्दायाश्चेति। पीठमर्दो हि मन्त्री संप्रयोगस्य घटयिता। कारणापदेशेन गमनमिति सहसा गमने हि हेया स्यात् ॥ ३० ॥

पीठमर्द ही सलाहगीर होता है यही दोनोंकी रंगरेलीका जोड़तोड़ लगानेवाला है। किसी कामके बहाने जाना चाहिये; एकदम चली जानेमें हेया समझी जायगी ॥ ३० ॥

उपसंहार।

उक्तमनुक्तं श्लोकैराह—

जो बात कह चुके एवम् जो कि इस विषयमें कहना अत्यावश्यक है उन सबको श्लोकोंसे कहे देते हैं—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

ताम्बूलानि स्रजश्चैव संस्कृतं चानुलेपनम्।
आगतस्याहरेत्प्रीत्या कलागोष्ठीश्च योजयेत् ॥ ३१ ॥

इस विषयमें श्लोक हैं कि संस्कृत पान, माला, चन्दन अतर आदि आते हुएको प्रेमके साथ दे एवम् गाने बजानेकी तथा शायरीकी मैंफिल शुरू कर दे ॥ ३१ ॥

संस्कृतमिति सर्वत्र योज्यम। कलागोष्ठीश्चेति चशब्दात्काव्यगोष्ठी च ॥ ३१ ॥

संस्कृत शब्दको सबके साथ लगाना चाहिये, इसका यह तात्पर्य्य है, कि सुधारे बनाये सुन्दर पान, माला, चन्दन और अतर आदि दे। मैंफिल लगा-

---

१ पहिले ऐसी होती थीं कि कविता भी अच्छी तरह कर लिया करती थीं। अब भी ऐसी हैं पर इनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है।

कर गाना बजाना शुरू कर देना । कलागोष्ठी तथा इसके साथ जो 'च' शब्द है इसका तात्पर्य्य शायरीसे भी है ॥ ३१ ॥

लेन देन ।

द्रव्याणि प्रणये दद्यात्कुर्याच्च परिवर्तनम् ।
संप्रयोगस्य चाकूतं निजेनैव प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥

प्रेमके निमित्त द्रव्य दे और ले । मिलनेके भीतरी इशारोंको आप ही प्रकट करे ॥ ३२ ॥

द्रव्याणीति प्रीतिकौतुकजनकानि । परिवर्तनमुत्तरीयांशुकानामंगुलीयानाम् । तत्रापि प्रणये सति । अनुत्पन्नप्रणयाया दानं परिवर्तनं च कपटं ज्ञायते । आकूतमभिप्रायम् । प्रयोजयेत्प्रकाशयेत् ॥ ३२ ॥

प्रीति और कौतुकको उत्पन्न करनेवाली, चूहरी दुपट्टे और छाप आदि चीजें दे और ले । यह बात प्रेम होनेपर करे, जिससे प्रेम हुआ नहीं वह इन कामोंको करे तो दूसरा कपट समझेगा । आकूत अभिप्रायका नाम और योजन प्रकट करना है, यानी मुखसे न कहकर रंगरेलीके भीतरी ऐसे ढंग बताये जिनसे वह भीतर ही भीतर समझ जाय ॥ ३२ ॥

आ आकर जानेवालेपर रंग जमाना ।

यस्तु कथंचिदागत्यागत्य गच्छति । यत्र योज्यमानं लाघवं जनयति तत्र कथं योजयेदित्याह—

जो तो किसी तरह आ २ कर चला जाय उसमें इन बातोंकी योजना लघुता पैदा करेगी, वह उसे कैसे अपनेमें लगाये, इस विषयमें कहते हैं कि—

प्रीतिदायैरुपन्यासैरुपचारैश्च केवलैः ।
गम्येन सह संसृष्टा रञ्जयेत्तं ततः परम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे सहायगम्यागम्यचिन्ता गमनकारणं गम्योपावर्तनं प्रथमोऽध्यायः ।

जो प्रीतिकी वस्तु दी जाती हैं उनसे, पीठमर्द आदिकी बातोंसे और केवल रंगरेलीसूचक भावोंसे अपने चाहे हुए व्यक्तिके साथ पहिल संसर्ग करके पीछे उसे अनुरक्त करे ॥ ३३ ॥

प्रीतिदायैरिति । प्रीत्यर्थं यानि दीयन्ते । उपन्यासैः पीठमर्दादिकृतैः । अत्रैव किं न सुप्यत इति । केवलैः शुद्धैः ये संप्रयोगमेव सूचयन्ति । संसृष्टा

संप्रयुक्ता । ततः परमित्यनन्तरप्रकरणानुसंधानम् । इति गम्योपावर्तनमेकपञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणे सहायगम्यागम्याचिन्ता गमनकारणं गम्योपावर्तनं प्रथमोऽध्यायः ।

निराले प्रेमोपहारोंसे, आप वहां अब कहां जाकर सोयेंगे यहीं सो जायँ, ऐसी पीठमर्द (भडुए) आदिकी बातोंसे तथा उन ढंगोंसे जो केवल यानी शुद्ध हैं विना किसी रोकटोकके मिलनेको ही बताते हैं । जब वह सहवास कर ले तो इसके बाद इस प्रकरणमें जो बातें हैं उन्हें बर्ते । यह 'मिलने योग्य' को अपनी ओर झुकानेका इक्यावन प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

इति श्री पं०द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके प्रथम अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

कान्तानुवृत्त प्रकरण ।

उक्तमपि संबन्धं स्पष्टीकुर्वन्नाह—

मिलनेवालोंको चुनकर प्रेम लगाने एवम् उसे मजबूत करनेतककी बात तो कह चुके, किन्तु उनके साथ वर्ताव क्या करे इस बातको नहीं बताया, इस कारण यहां अब इस बातपर विचार करते हैं ।

एकचारिणीका वर्ताव ।

उनमें यह एकके साथ ही रहनेवाली कुछ खीपनेका गौरव रखती है, इस कारण ग्रन्थकार उसका वर्ताव पाहिले कहते हैं कि—

संयुक्ता नायकेन तद्रञ्जनार्थमेकचारिणीवृत्तमनुतिष्ठेत ॥ १ ॥

नायकके साथ संयुक्त होनेपर उसे अनुरक्त करनेके लिये एकचारिणीवृत्तको करे ॥ १ ॥

---

१ चारित्रके विषयमें यह सबसे अधिक गौरव रखती है, क्योंकि कुलस्त्रियाँ भी तो एकचारिणी ही होती हैं । यदि गणिका हो और एकचारिणी हो तो फिर उसका और भी गौरव हो जाता है । गाना बजाना करती हुई भी एकचारिणी सुननेमें आई हैं ।

एकचारिणीवृत्तमनुतिष्ठेद्येकचारिणी स्यात् । तथा चोक्तं प्राक्—'वेश्या वाप्येकचारिणी' इति ॥ १ ॥

जो एकके साथ ही सम्बन्ध रखती हो तो एकचारिणीवृत्तको करे, इस बातको भार्याधिकारिक अधिकरणके पहिले अध्यायके उपसंहारमें कहा है कि—' अथवा एकचारिणी वेश्या भी इस एकचारिणीके वृत्तको अखत्यार करे ' । यह एक चारिणी उत्तम है । यही कारण है कि इसको सबसे पहिले रखा है, और २ वेश्याएँ तो कैसी भी हों पर इस एकचारिणीकी योग्यता नहीं रखतीं ॥ १ ॥

बहुचारिणीका संक्षेपसे कान्तानुवृत्त ।

यदा तु नैकचारिणी तदा कान्तानुवृत्तमुच्यते । संप्रयुक्तस्य गम्यस्य कान्तत्वात् । तच्च संक्षेपेण विस्तरेण च । तत्र पूर्वमुद्धाटिततद्धीना (?) माह—

जो वेश्या एकसे नहीं रहती अनेकोंके साथ रहती है उसे अपने प्यारोंके अनुसार चलना चाहिये, इसी कारण ' प्यारेके अनुसार चलना ' इस प्रकरणको कहते हैं, क्योंकि जिससे वह मिलना चाहती थी वही यदि उसे मिल गया तो वही उसका प्यारा बन गया । यह संक्षेप और विस्तारसे दो तरहके हैं, इन दोनोंमें वेश्याके अधीन जो वर्ताव है उसे संक्षेपसे कहते हैं कि—

रञ्जयेन्न तु सज्जेत सक्तवच्च विचेष्टेतेति संक्षेपोक्तिः ॥ २ ॥

उसे अनुरक्त कर ले पर आप आसक्त न हो, किन्तु आसक्तकी तरह सब चेष्टाएँ करे । यह वेश्याके अधीनका चरित्र संक्षेपरूपसे कह दिया ॥ २ ॥

रञ्जयेदिति । सक्तमिवात्मानं प्रकाशयेदित्यर्थः ॥ २ ॥

विना भी आसक्त हुए अपनेको पूर्ण आसक्तकी तरह प्रकट करे; जिससे नायक उसे अपनी दीवानी समझे ॥ २ ॥

उसीका विस्तारसे कान्तानुवृत्त ।

विस्तारात्तमपि—

संक्षेपसे तो यही बात है, कि वह बेरंग दिखाये जो आनेवाले पर जादू पड़ जाय, यदि इसे विस्तारके साथ जानना चाहते हो विस्तारके साथ भी बताये देते हैं ।

पारतन्त्र्यकी पीड़ा ।

प्रथमं परतन्त्रा स्यात् । व्याधिं चात्मनः प्रकाशयेत् ।

सर्व प्रथम परतंत्र रहे एवम् मिलनेवालेंके साथ प्रेममें आये तो परतन्त्र-

वाकी तकलीफ दिखाये कि-'क्या बताऊँ मैं तो आपको बहुत चाहती हूं पर पराधीन हूं क्या करूं' ?

माकी आड़के कार्य्य ।

माभूत्कार्यहानिरित्याह—

वेश्याका मुख्य कार्य्य धन खींचना होता है एवम् जब प्रेमका पार्ट अदाँ किया जाता है उस समय लोभपर लात मारकर दिखाई जाती है तो आसक्ति दिखानेमें कहीं ऐसा न हो जाय कि अर्थोपार्जनमें विघ्न हो जाय ? इस बातको लेकर कहते हैं, कि—

मातरि च क्रूरशीलायामर्थपरायां चायत्ता स्यात् ॥ ३ ॥

× क्रूर स्वभाववाली महालोभिनी माके अधीन रहे ॥ ३ ॥

मातरीति । आयत्ता स्यान्न वचनमतिक्रमेदित्यर्थः ॥ ३ ॥

ऐसी मा जैसे कहे उसी तरह करे, यह अधीन होनेका तात्पर्य्य है ॥ ३ ॥

तदभावे मातृकायाम् ॥ ४ ॥

यदि सगी मा न हो तो बनाई हुई माके अधीन हो ॥ ४ ॥

मातृकायां कृतकमातरि ॥ ४ ॥

मातृकाका तात्पर्य्य मानी हुई मासे है ॥ ४ ॥

सा तु गम्येन नातिप्रीयेत ॥ ५ ॥

---

१ वेश्या जिस समय अपनी बालिकाको वेश्यापनेका अभ्यास कराती है, उस समय उसका भी नारीहृदय ही रहता है, किन्तु ज्यों २ उसे विमर्द सहने योग्य बनाया जाता है, त्यों २ उसका हृदय भी वेश्याहृदय बन जाता है, इस कारण पहिली चाह चाह ही होती है पर पीछेकी चाहें मुँहकी ही रह जाती हैं ।

× ऐसी मा अथवा बनावटी मासे वेश्याओंके चरित्रोंकी अच्छी दिखावट हो सकती है । अपनी मनोवृत्तियोंको इसकी आडमें छिपाये रहती हैं । कार्य्य साधनमें ऐसी मा बड़ी सहायक होती है । वेश्याओंकी कारगुजारियाँ अधिकांशमें इसी माकी ही आड़में चलती हैं, यही कारण है वेश्याओंको इस माको हर तरह रखना पड़ता है ये बड़ी जालिम होती हैं । कुट्टनखानोंकी अध्यक्षा दूतीकार्य्य करनेवाली चुड़ेलनि ऐसी ही सम्बन्ध पैदा करती हैं । दूतियोंके घर व कुट्टनखानोंमें जो पहुँचती हैं वे दुनियाँको धोखा देनेके लिये मा या बहिन आदि कहती ही पहुँचती है । एक विवेचकने किसी प्राचीनग्रन्थके आधारपर लिख डाला है । यदि विचारके साथ देखा जाय तो इसमें सत्यकी मात्रा अधिक है ।

÷ वह तो वेश्याके मिलनेवालेके साथ अतिस्नेह नहीं दिखाती ॥ ५ ॥

सा त्विति सत्या कृतका वा। नातिप्रीयेत नातिस्निह्येत । अयमप्युद्देशः। यदि प्रीयेत कार्यमेव हन्यादित्यर्थः ॥ ५ ॥

चाहे सगी हो और चाहे बनावटी मा हो; ये दोनों अपनी बेटीके मिलनेवालेके साथ अत्यन्त अनुराग नहीं दिखातीं, इसका यही उद्देश है, कि अतिप्रेम दिखायेगी तो कार्य्यका ही नुकसान कर लेगी ॥ ५ ॥

माकी कारगुजारी।

अप्रीयमाणाया व्यापारमाह—

प्रेम न रखनेवाली उक्त माके व्यवहार बताते हैं कि—

प्रसह्य च दुहितरमानयेत् ॥ ६ ॥

+ मिलनेवालेके पास बैठी हुई अपनी लड़कीको बलपूर्वक ले आये ॥ ६ ॥

प्रसह्य च दुहितरमानयेदिति । गम्यमभिभूय कार्यवशाद्गम्यान्तरं नयेदित्यर्थः ॥ ६ ॥

लड़की एकमिलनेवालेके साथ मिल रही हो समय लग गया हो या अधिक लाभवाला दूसरा मिलनेवाला आ गया हो तो पहिलेको धता बताकर दूसरे स्थानमें दूसरेके पास छोड़ आये ॥ ६ ॥

तत्र तु नायिकायाः संततमरतिर्निर्वेदो व्रीडा भयं च॥७॥

जब मा ऐसा करे तो वेश्या अपने नायकसे इस बातके लिये अप्रेम, दुःख, लज्जा और भय दिखाये ॥ ७ ॥

÷ अपनी लड़कीको मिलाते हुए भी ये मिलनेवालेको डरा हुआ ही रखती हैं, क्योंकि उनके उपचारमें वेश्या अधिक समय लगानेसे बच जाती है, अनेकों प्रेमके रिश्तोंको इसके नामसे टाल देती हैं, इसकी आड़में धन भी खींच सकती हैं। साधारणसे साधारण मिलनेवालोंमें भी जुदा करने एवम् नायकको लटकता हुआ भेजनेमें इसका बड़ा उपयोग होता है।

+ यह व्यवहार प्रायः उस समय होता है जब वेश्या और उसका मिलनेवाला एक कमरेमें होते हैं एवम् दूसरा मिलनेवाला दूसरेमें बैठकर अपनी प्रेमिकाका इन्तजार करता है । उसके अनुरागको बढ़ाने तथा कायम रखनेके लिये वेश्या यह रंग दिखाती है। वेश्याकी मा कमरेके बाहिर होकर ही आवाज दिया करती है एवम् वेश्या अन्तमें माका डर दिखाकर झटपट बाहिर होती है। संपन्नोंके यहां मिलनेवाले भी सहसा एक एकको नहीं जान पाते।

तत्र त्विति तस्मिन्गमने सति । नायिकायाः कालविशुद्ध्यर्थमाह—संततमिति । अरतिरसुखं रम्येऽपि स्यात् । निर्वेदो निर्विण्णता । व्रीडा कथं मया द्रष्टव्य इति । भयं किं मयि प्रतिविधास्यतीति ॥ ७ ॥

जब वेश्याकी माता पहिले मिलनेवालेके पाससे उठाकर दूसरे मिलनेवालेके पास लेने आये तो वेश्या जिसके पास बैठी होती है उससे छोड़कर जानेमें अरुचि दिखाये कि मुझे यह बड़ा बुरा लगता है एवम् उठनेमें दुःख प्रकट करे। नाजके साथ लाज कि अब आप मुझे कब मिलेंगे और न उठनेमें माका यह डर दिखाये कि मैं न जाऊंगी तो मा मुझसे लड़ेगी । ये बातें निरन्तर दिखाये इसमें भूल न हो । ऐसा करनेसे उसके उठने एवम् उसे समय न देनेके परितापका वेश्याकी तरफका परिमार्जन हो लेगा एवं वह फिर आयेगा और मिलनेका समय दे देगा ॥ ७ ॥

माकी आज्ञाका मान ।

न त्वेव शासनातिवृत्तिः ॥ ८ ॥

कभी भी ऐसा न करे कि माका कथन न माने ॥ ८ ॥

नत्वेवेति । काममरत्यादयः स्युर्न पुनराज्ञामतिक्रमेदित्यर्थः ॥ ८ ॥

भले ही अरुचि आदिकोंका दिखाना खूब ही हो पर ऐसा कभी न करे कि माकी कही न माने (न माननेमें उसकी हानि है चाहे मन हो या न हो उठकर फौरन कमरेके बाहिर हो जाना चाहिये) ॥ ८ ॥

तकलीफका बहाना ।

व्याधिं चैकमनिमित्तमजुगुप्सितमचक्षुर्ग्राह्यमनित्यं च ख्यापयेत् ॥ ९ ॥

विना कारणकी एक, अनिन्दित, नेत्रोंसे न दीखनेवाली एवम् सदा न रहनेवाली, व्याधिको बता दे ॥ ९ ॥

व्याधिं चेति । किंविशिष्टमित्याह—एकमित्यनन्यं ख्यापयेत् । कृतको ज्ञायते । अनिमित्तमाकस्मिकम् । अनिन्द्यमजुगुप्सितम् । निन्दिते ह्यनभिगमनीया स्यात् । अचक्षुरिति । इन्द्रियोपलक्षणार्थं चक्षुर्ग्रहणम् । शिरोर्तिमुदरशूलं च । अनित्यमस्थायिनम् ॥ ९ ॥

सबसे पहिले तो यह कहा कि अपने शरीरमें तकलीफ बता दे वह कैसी हो, इसी बातको कहते हैं कि—एक ही बताये बहुतसी नहीं, बहुत बतानेपर

बनावट मालूम होगी । कोई कारण न बताये अकस्मात् हुई बता दे । वह भी बुरी व्याधि न बताये, क्योंकि उसके बतानेपर नायक अपने मिलनेलायक न समझेगा । जो आखोंसे न दीख सके यह कहना इन्द्रियमात्रका उपलक्षक है, कि जिसका आखें आदि इन्द्रियाँ ग्रहण न कर सकें ऐसा शिरका दर्द व उदर-शूल हो सकता है । तकलीफ भी स्थायी न बताये अनित्य बताये ॥ ९ ॥

बहानेका फल ।

अस्मिन्ख्यापिते किं फलमित्याह—

इसके बहानेका क्या फल है ? इस बातको बताते हैं, कि—

सति कारणे तदपदेशं च नायकानभिगमनम् ॥ १० ॥

मिलनेके कारण उपस्थित होनेपर व्याधिका बहाना करना मिलनेवालेसे न मिलना है ॥ १० ॥

सतीति । कारणे कारणान्तराभिगमने । तदपदेशं व्याध्यपदेशम् ॥ १० ॥

मिलनेवाला आया हो और मिलनेका कारण भी उपस्थित हो फिर भी न मिलना हो तो तकलीफका बहाना किया जाता है ॥ १० ॥

इसकी रीति ।

अनभिगमने च व्याधिपीडाख्यापनार्थं विधिमाह—

मिलनेवालेसे तकलीफके बहाने न मिलनेकी तरकीब बताते हैं कि—

निर्माल्यस्य तु नायिका चेटिकां प्रेषयेत्ताम्बूलस्य च ११॥

वहांके व्यवहारमें आनेवाली वस्तु व पान आदि देकर नौकरानीको भेजे ११

निर्माल्यस्य चेति कृते इत्यध्याहार्यम्। नायिकेत्युक्ते न माता चेटिकां प्रेषयेत् । अनेनापि सुखं स्थास्यामीत्युक्त्वा ताम्बूलस्योपयुक्तस्य वा कृते ॥ ११ ॥

'निर्माल्यके' और ताम्बूलके साथ 'कृते=लिये' का अध्याहार करना चाहिये । इसका यह तात्पर्य्य होता है कि इन दोनों बातोंके लिये नौकरानीको भेजे । यह काम नायिकाका ही होना चाहिये; उसकी माका न होना चाहिये,

---

१ इसका यह कारण है, कि स्थायी बतानेपर नायक फिर उसी तरह देखेगा तो उसे यह सन्देह हो जायगा, कि इसने मुझसे बहाना किया था यह सच्ची नहीं है ।

२ इसके साथ दूसरे २ बहाने भी किये जाया करते हैं । इस मार्गके पथिकोंके साहित्यमें तो शिरदर्द और मेंहदी (रजस्वला) होने का बहाना भी चलता है । ये ऐसा उस मौकेपर करती हैं, जब कि किसीके पास घिर जाती हैं ।

क्योंकि सूत्र नायिकाको भेजे कहता है। देतीवार नौकरानी कहे कि उसने कहा है कि 'आप इन इलायची आदिको ले लेंगे तो इससे मैं सुखी रही आऊंगी ॥ ११ ॥

मोहक मिलन।

व्यवाये तदुपचारेषु विस्मयः ॥ १२ ॥

सहवासमें सहवासके निमित्त नायकके किये हुए उपचारोंमें आश्चर्य्य प्रकट करे ॥ १२ ॥

व्यवाये मैथुने नायकसंबन्धिनि। तदुपचारेषु मैथुनोपचारेषु सरकताम्बूलादिभिः (षु) विस्मयो न तु भूतपूर्वं सर्वमेतदिति ॥ १२ ॥

नायकके साथ जब संयोग हो उसके पहिले जो नायक रंगीले प्याले आदि प्यारे पान आदि खिलाये, उनपर अचरज प्रकट करे, कि ऐसा निराला ठाट मैंने आज ही देखा, यह न कहे कि ये बातें तो अनेकोंवार हो चुकी हैं ॥ १२ ॥

चतुःषष्ट्यां शिष्यत्वम् ॥ १३ ॥

संप्रयोगकी जा आलिङ्गन आदि चौंसठ विद्याएँ हैं उनमें उसकी चेली बन जाय ॥ १३ ॥

चतुःषष्ट्यां पाञ्चालिक्यां शिष्यत्वं तद्विज्ञाय (१) कर्तव्यं शिक्षय मामिति १३

आप अनजानसी होकर रंगरेलीकी जो आलिङ्गन, चुम्बन, आसन आदि चौंसठ कलाएँ हैं उन्हें उससे पूछे कि-' मैं नहीं जानती, जैसे बताओगे वैसे करूंगी ' ॥ १३ ॥

तदुपदिष्टानां च योगानामाभीक्ष्ण्येनानुयोगः ॥ १४ ॥

नायक जिन योगोंको बताये आप उन्हीं योगोंका उसपर प्रयोग करे॥१४

योगानामिति चातुःषष्टिकानां तेनोपदिष्टानामाभीक्ष्ण्येनानुयोगः। पश्चात्तस्मिन्नेव नायके पुनःपुनर्योज्या इत्यर्थः। येनावगच्छेदस्मत्सुखार्थमेवास्या यत्न इति ॥ १४ ॥

---

१ यद्यपि वेश्या कैसी भी हो उसे पांचालिकीका कुछ ज्ञान तो अवश्य ही रहा आता है पर यह इसलिये भोली बनी रहती है कि इसका भोलापन उस समय अच्छा लगता है। बिहारी दासने इसका खाका खींचा है कि-" रससुत लेति अनन्तगति, पुतरी पातुर राय।"

नायक पांचालिकी चतुःषष्टिमेंसे जिन २ कलाओंको उसे बताये आप भी जब उससे मिले उन्हीं रँगरेलियोंको उसपर प्रयोग करे, जिससे नायक जाने कि यह मेरे सुखके लिये ऐसा करती है ॥ १४ ॥

तत्सात्म्याद्रहसि वृत्तिः ॥ १५ ॥

जैसा प्यारेको अनुकूल पड़े एकान्तमें उसके साथ वैसा ही बर्ताव करे १५

तत्सात्म्यादिति । यथा तस्य सुखं तथैकान्ते वर्तेत इत्यर्थः ॥ १५ ॥

वेश्याका एकान्तका बर्ताव प्यारेको प्रसन्न करनेका होना चाहिये ॥ १५॥

इसपर साहित्य ।

जिस प्रकार कामसूत्रकार इसकी विलासचातुरी दिखाते हैं तो साहित्यक इसका प्रयोग करते हैं । यहां इसी बातको दिखाते हैं, कि—

" गाने वाद्ये च नृत्ये च भाषणे दर्शने रतौ ।
अद्वितीयाऽऽहिता धात्रा गणिका भुवनत्रये । "

ब्रह्माजीने गान, वाद्य, नृत्य, भाषण, दर्शन और रतिमें गणिकाको संसारमें निराला ही पैदा किया है ।

" क स भावः क वा हावः परिष्वङ्गविधिः क सः ।
यस्या दर्शनमात्रेण निर्वृत्तिर्गणिका परा । "

गणिकाके हाव, भाव और रतिलीला व आलिंगन करनेकी विधियोंका क्या कहना है ! यदि वह चाहे तो देखते ही देखते मनुष्यको मिनटोंमें स्खलित कर दे । गणिका रतिलीलामें इतनी चतुर होती है ।

" नागरिकारतिसौख्यं प्रभवति वेत्तुं यथा न दुर्मेधाः ।
गणिकासङ्गामोहे न तथा सुकृती सुखे जातु । "

जिस प्रकार मूर्ख अविदग्ध पुरुष नागरीकी रतिलीलाका आनन्द नहीं ले सकते उसी तरह जिसके सुकृत नहीं हैं वे पुरुष गणिकाके साथका आनन्द नहीं पा सकते । साहित्यक इतना ही कहकर नहीं माने, किन्तु यह भी कह डाला है कि—

" यदि स्यात् स्वप्रिया भोगे प्रमोदस्तात्त्विकः स्थितः ।
किं तर्हि कृतिनोऽभूवन् गणिकारतिलोलुपाः । "

यदि वास्तवमें अपनी पत्नीके गमनमें ही सच्चा आनन्द था तो फिर क्या बात थी जो पुरूरवा जैसे चक्रवर्ती उर्वशी जैसी वेश्याके पीछे पागल बने फिरे ? ये अनजान उसीके सामने बनती हैं जो जानता है किन्तु जो नहीं जानता उसके लिये रतिपण्डिताका कार्य्य कर जाती हैं । मैंने दिव्यसूरिचरितमें

देखा है । भक्तांघ्रिरेणुक पीछे लगी हुई वेश्या देवदेवीने और क्या किया था यही किया था । उनसे पैर दाबतीवार जिस भावभंगियोंके साथ यह कहा था कि—

" हितं परं ब्रूहि ममेति किं तत् तत्पादसंवाहनमारचन्ती ।
सा काममभ्यर्णगतं कटाक्षैः सन्धत्स्व बाणान् धनुषीत्यवादीत् । "

कुछ मुझसे भी मेरे हितकी बात कह दें, इसका महत्त्व या तो उनके अन्तःकरणने समझा होगा या इसे साहित्यके रसिक ही समझ सकते हैं । अतः ये चेली भी बनती हैं और गुरू भी बनती हैं । पकड रखना चाहती है तो हल्ला मचाती है कि–" मां मुंच मुंचेति " छोड़ो छोड़ो । इसका एक ही लक्ष्य रहता है कि जिस तरह हो उस तरह मिलनेवालेको अपने वश कर लिया जाय । कुलस्त्रियाँ सच्चा भाव रखती हैं बनावट नहीं रखतीं; पर यहां सचाईका स्पर्श नहीं बनावट ही बनावट है ।

मनोरथोंका मायाजाल ।

मनोरथानामाख्यानम् ॥ १६ ॥

अपने मनोरथोंको एकान्तमें ही कहे ॥ १६ ॥

मनोरथेति । रहसीत्यनुवर्तते । मम मनोरथा एवमासन् कदा त्वया सह दीर्घरजन्यां सपरिहासः संप्रयोगः स्यात् ॥ १६ ॥

जब मिलनेवाला अपनी ओर कुछ झुक जाय उस समय एकान्तमें उससे कहे कि–' बहुत समयसे मेरे हृदयमें यह इच्छा लगी हुई थी, कि वह समय कब आयेगा जो आपके साथ हँसती खेलती हुई मिलनेझुलनेमें बड़ी २ रातें बिताऊंगी ' वह दिन आज ईश्वरने दिखा दिया ॥ १६ ॥

गुह्यानां वैकृतप्रच्छादनम् ॥ १७ ॥

गुप्त अंगोंकी कुरूपताको छिपाये ॥ १७ ॥

---

१ इन कामोंको कुलकामिनी और वेश्या आदि सब ही किया करती हैं—

" वह दिन कब होगा पायेंगी प्रियतमका फिर दरशन आखें,
इन कदमोंको कब धोएंगी गंगा और जमुना बन आंखें ।
तुम जाते हो धीरज देकर ये आती हैं हैरानी लेकर,
कुछ दिनमें बस आजाएँगी विन अंजन ये विरहिन आखें । "

[यह किसी वर्तमान कविकी कृति है ।]

गुह्यानामिति कक्षोरुजघनानां यद्वैकृतं वैरूप्यं किंचित्तस्य, प्रच्छादनम्। स्प्रष्टुं न ददातीत्यर्थः। मा भूद्वैराग्यमस्येति ॥ १७ ॥

कक्षा, ऊरु, और जघन (मदनमंदिर) आदिपर जो कोई कुरूपता झलकानेवाले दाग आदि हों तो उन्हें छिपाये रहे, न छूने दे एवम् न दिखाये, क्योंकि उन्हें दिखाने या छुवानेसे वैराग्यका डर है ॥ १७ ॥

शयने परावृत्तस्यानुपेक्षणम् ॥ १८ ॥

यदि मिलनेवाला करवट बदलकर सोये तो आप उसके मुखकी ओर मुख करके सोये ॥ १८ ॥

शयने परावृत्तस्यानुपेक्षणम्। स्नेहख्यापनार्थमभिमुखं स्वपेदित्यर्थः ॥ १८ ॥

शय्यापर करवट बदले हुएके मुखकी ओरको अपना मुख रखना चाहिये, जिससे मिलनेवालेको प्रीति मालूम हो। यानी नींद लेती बार उसकी ओर मुँह करके नींद लेनी चाहिये ॥ १८ ॥

आनुलोम्यं गुह्यस्पर्शने ॥ १९ ॥

गुप्त अंगके छूनेमें अनुकूलता राखे ॥ १९ ॥

गुह्यस्पर्शने आनुलोम्यं कक्षां वराङ्गं च स्पृशन्तं न वारयेत्। माभूत्संप्रयोगेच्छाविघात इति ॥ १९ ॥

यदि मिलनेवाला काँख या वराङ्ग—मदनमंदिरको छूये तो उसे न रोके, क्योंकि कहीं वह मिलनेकी इच्छासे छूए और रोकनेपर इच्छाका विघात हो १९

सुप्तस्य चुम्बनमालिङ्गनं च ॥ २० ॥

सोते हुएका भी चुम्बन और आलिंगन करे ॥ २० ॥

सुप्तस्य चुम्बनमालिङ्गनं च, येन स्नेहात्स्वप्तुमपि न ददातीति जानीयात् २०

जब वह सोने लगे या सोता हो तो उस समय भी उसका चुम्बन और आलिङ्गन करे, जिससे वह यह समझे कि 'मुझे मारे प्रेमके सोने भी नहीं देती' ॥ २० ॥

देखनेके हाव भाव।

वृत्तं च प्रत्यक्षे परोक्षे वेति प्रत्यक्ष एव बहिर्गतं वृत्तमाह—

छिपेतोर और उजगरके भेदको लेकर वेश्याओंके दो तरहके चारित्र हैं, इनमेंसे जो प्रत्यक्षमें ही बाहिरके चालचलन होते हैं उन्हें बताते हैं कि—

प्रेक्षणमन्यमनस्कस्य। राजमार्गे च प्रासादस्थायास्तत्र विदिताया व्रीडा शाठ्यनाशः ॥ २१ ॥

अपने अटापर चढ़ी हुई ही बड़ी सड़कपर विचित्ता होकर जाते हुएको देखे, यदि उसकी नजर अपने ऊपर पड़ जाय तो शरमा जाय ॥ २१ ॥

प्रेक्षणमित्यन्यचित्तं पश्येत् । किमयमुत्कण्ठयोद्वेगाद्वान्यमनस्क इति राजमार्गे वर्तमानस्य प्रेक्षणम् । तत्रापि प्रासादस्थायाः । कर्त्रर्थेयं षष्ठी । तत्रेति प्रेक्षणे विदिताया नायकस्य मम पश्यतीति व्रीडा लज्जा स्यात् । सैव शाठ्यनाश इत्युच्यते । तद्धेतुत्वादस्याः । यदि व्रीडां न दर्शयेत् कृतकस्नेहोऽस्याः यन्मामसकृत्पश्यतीति शाठ्यं संभाव्येत ॥ २१ ॥

विचित्तेको जाते हुए देखे कि–यह किसीकी चाहमें विचित्ता हो रहा है या इसे कोई उद्वेग लगा हुआ है ’ । देखना भी बड़ी आम सड़कपर होना चाहिये । वह भी ऊपर झरोखेमें बैठी हुई । जब यह जान जाय, कि–मुझपर उसकी भी निगाह पड़ गई तो लजा जाय । इस लजा जानेका नाम ही शठताका नाश है, क्योंकि शाठ्यके नाश होनेपर ही शर्म आती है । यदि लाज न दिखायेगी बार २ देखती रहेगी तो वह समझेगा कि इसका बनावटी प्रेम है जो मुझे बारंबार देखती है, इससे शठताकी संभावना होगी कि बड़ी बनी हुई है ॥ २१ ॥

शत्रु मित्रसे बर्ताव ।

तद्द्वेष्ये द्वेष्यता । तत्प्रिये प्रियता । तद्रम्ये रतिः । तमनु हर्षशोकौ । स्त्रीषु जिज्ञासा । कोपश्चादीर्घः ॥ २२ ॥

उसके वैरीसे वैर, प्रेमीसे प्रेम, उसको सुहानेवाली जगहमें रति, उसके साथ रंज खुशी, स्त्रियोंके विषयमें जाननेकी इच्छा और थोड़ी देरका क्रोध होना चाहिये ॥ २२ ॥

तद्द्वेष्येत्यादिनानुलोम्यं ख्यापितं भवति । तद्रम्य इति यद्यसावसंप्रयोगशीलस्तदा रम्ये प्रदेशेऽनया धृ(र)तिः कार्या । येन तद्गतस्य संप्रयोगेच्छा भवति । स्त्रीषु जिज्ञासा अन्यासु स्त्रीषु किमस्य स्नेहोऽस्ति न वेति चरप्रणिधानेन जिज्ञासा कार्या । (किमेवं स्यादित्याह—संप्रयोगेच्छा भवति ।) कोपश्चादीर्घः । यदि तत्र स्नेह ईर्ष्या तदा कोपः स्नेहख्यापनार्थं कार्यः । स चादीर्घः कदाचिद्विरागः स्यात् ॥ २२ ॥

---

१ प्रासादस्थानमें जो षष्ठी है उसे कर्तामें किया है, इसका यही अर्थ होता है।

उसके वैरीसे वैर एवम् प्रेमीसे प्रेम रखनेपर उसे अनुकूलता प्रकट हो जायगी, कि यह मेरे अनुसार चलती है । जो मिलनेवालेकी तबीयत बुरी जगहमें मिलनेकी न हो तो उसे ऐसी अच्छी जगह मिलना चाहिये जहां उसकी तबीयत लगे । यह मुझमें ही अनुरक्त है या और दूसरी भी किसीमें अनुरक्त है इस बातको अपने जासूसोंसे जान ले । यदि किसी दूसरी स्त्रीके प्रेमको देखकर उसमें ईर्ष्या उत्पन्न हो तो प्रेम दिखानेके लिये नाराजी प्रकट करनी चाहिये । वह भी थोड़े समयके लिये, क्योंकि दीर्घकालके क्रोधमें कहीं मिलनेवालेको वैराग्य न होजाय ॥ २२ ॥

तबीयत चलानेका उपाय ।

स्वकृतेष्वपि नखदशनचिह्नेष्वन्याशङ्का ॥ २३ ॥

अपने आपके किये हुए भी नाखून, दाँत आदिके निशानोंको दूसरीके होनेकी आशंका करे ॥ २३ ॥

स्वकृतेष्वपीति एतदपीर्ष्याख्यापनार्थं स्नेहनिर्बन्धसूचनम् ॥ २३ ॥

इससे भी दूसरीके प्रति, ईर्ष्या और नायकके लिये प्रेमकी प्रगाढता सूचित होती है ॥ २३ ॥

इशारे एवं मुँहसे कहने और न कहनेका समय ।

अनुरागस्यावचनम् ॥ २४ ॥

अनुरागको मुँहसे न कहे ॥ २४ ॥

अनुरागस्येति जातरागास्मि कामयस्व मामिति न वाच्यम् ॥ २४ ॥

मेरी तबीयत चल रही है, मुझसे मिलिये यह अपने मुहँसे कभी न कहे २४

लज्जापरिहारार्थं कामातुरा तिष्ठेदित्याह—

तो क्या लाजको दूर न करनेके लिये कामसे पीडित ही बैठी रहे ? इसका उत्तर देते हैं कि—

आकारतस्तु दर्शयेत् ॥ २५ ॥

अपने आकारसे अपना तबीयत दिखा दे ॥ २५ ॥

आकारत इति ॥ २५ ॥

मुखसे न कहकर भी अपनी वे भावभङ्गियाँ दिखा दे जिनसे केवल मिलनेकी उत्कट इच्छा ही व्यक्त होती है ॥ २५ ॥

तत्राप्यपरिज्ञाने—

यदि मिलनेवाला प्यारा इन इशारोंको भी न समझ पाये तो—

मदस्वप्नव्याधिषु तु निर्वचनम्॥ २६॥

नशा और ख्वाब तकलीफके बहाने कह दे॥ २६॥

मदस्वप्नादिषु निर्वचनम् कृतकसुप्ता यदागत्य (?) व्याधिमपदिशेत्। असंभोगेनैव व्याधितास्मीति॥ २६॥

कुछ वह तथा कुछ और दिखाकर कह दे कि आप तो बातें ही बातें करते हैं मिलते नहीं? इसी कारण मेरी तबीयत खराब रहती है। यही बात बनावटी नींदके स्वपनेके बहाने भी कह दे, कि मेरी तबियतके खराब होनेका इसका न मिलना ही कारण है॥ २६॥

श्लाघ्यानां नायककर्मणां च॥ २७॥

नायकके अच्छे कामोंको भी इसी अवस्थामें कहे॥ २७॥

श्लाघ्यानामिति श्लाघनीयानां देवकुलतडागादीनां धर्मयशोऽर्थानां निर्वचनं साधु कृतमिति॥ २७॥

नायकने जो देवमंदिर और कूआ, बावड़ी आदि बनवाये हों तथा और अच्छे काम किये हों जिनसे कि उसका धर्म, यश और अर्थ होता हो उनको कहकर तारीफ करे कि अच्छा किया॥ २७॥

बात सुननेका ढंग।

तस्मिन्ब्रुवाणे वाक्यार्थग्रहणम्। तदवधार्य प्रशंसाविषये भाषणम्। तद्वाक्यस्य चोत्तरेण योजनम्। भक्तिमांश्चेत्॥ २८॥

जब प्यारा बोले तो उसकी बातका मतलब समझे। उसका निश्चय करके प्रशंसा करे। विषयोंपर बोले उसकी बातका उत्तर दे; यदि वह उसके उत्तरमें प्रेम करता हो तो॥ २८॥

तस्मिन्निति नायक इत्यर्थः। वाक्यार्थग्रहणम्। अवधीरणेऽवज्ञा संभाव्येतेत्यर्थः। न केवलमर्थग्रहणं प्रशंसा कर्तव्या सुभाषितमुक्तं को नाम जानात्येवमभिधातुमिति। विषये भाषणं—शब्दस्पर्शादिषूक्तिः कर्तव्या, कस्मिन्विषये रुचिरिति ज्ञापनार्थम् तथैवानुतिष्ठेत्। वाक्यस्योत्तरेण योजनं बुद्धिवैदग्ध्यख्यापनार्थम्। तत्रापि यदि भक्तिमांश्चेत् यदि स्नेहवान्। अजातस्नेहस्य वचने प्रत्युतावधीर्यमाणं वैलक्षण्यं (धीरणं वैलक्ष्यं) स्यात्॥ २८॥

नायक जो प्रेमभरी बातें करे उसी समय उसके, मतलबको समझे विना उसकी बातपर ध्यान दिये अवज्ञाकी संभावना होगी । यही नहीं कि समझे ही समझे, किन्तु उसकी बातकी प्रशंसा भी करनी चाहिये, कि ऐसी अच्छी बातें सिवा आपके दूसरेसे नहीं हो सकतीं । शब्द, स्पर्श आदिके विषयमें बोलना चाहिये, इसकी किस विषयमें रुचि है यह जाननेके लिये । उसी तरह अनुष्ठान करे । अपनी बुद्धिकी प्रखरता दिखानेके लिये बातोंका उत्तर दिया जाता है । ये बातें भी उसी समय होनी चाहिये जब कि वह अपनेमें अनुरक्त हो । विना प्रेमके बातेंचीतें किये, कुछ लक्ष्य बिगड़ेगा बनेगा नहीं २८

कथास्वनुवृत्तिरन्यत्र सपत्न्याः ॥ २९ ॥

हरएक बातमें हाँ करनी चाहिये, केवल सौतोंकी कहानी छोड़कर ॥२९॥

कथास्वनुवृत्तिस्तेन कथ्यमानास्वनुवर्तनम् । तन्मुखावलोकनहुंकाराभ्याम् । अन्यथास्या ह्यवज्ञेति मन्येत । अन्यत्रेति सपत्न्याः । सपत्नीकथायामीर्ष्याकोपख्यापनार्थं नानुवृत्तिः ॥ २९ ॥

जो प्रेमकहानियाँ नायक सुनाये आप उसके मुखकी ओर देखती हुई हँसती हुई ही उत्तर दे । विना ऐसा किये वह अपना अपमान समझेगा । पर सौतोंकी प्रेमकहानीमें ईर्षा और नाराजी दिखानेके लिये हुँकारा न भरें ॥ २९ ॥

सहानुभूतिके समय ।

निःश्वासे जृम्भिते स्खलिते पतिते वा तस्य चार्तिमाशंसीत ॥ ३० ॥

गर्म श्वास लेते, गिरनेपर और भूलनेपर दुःख प्रकट करे ॥ ३० ॥

निश्वासे दीर्घनिःश्वसिते स्खलितेऽर्थविस्मरणे आर्तिमाशंसीत माभूत्पीडेति । तेषामनिष्टसूचकत्वात् ॥ ३० ॥

नायक यदि गर्मश्वास ले, पदार्थकी याद भूल जाय तो तकलीफकी आशंका करे कि इसे पीडा न हो, क्योंकि य बातें अनिष्टसूचक हैं ॥ ३० ॥

क्षुतव्याहृतविस्मितेषु जीवेत्युदाहरणम् ॥ ३१ ॥

नायककी छींक, कथन और आश्चार्य्य आदिमें आप 'जीते रहो' ऐसा कहे ॥ ३१ ॥

क्षुतं छिक्का । तदादिषु जीवेत्युक्तिः स्नेहसूचिका ॥ ३१ ॥

क्षुत–छींकको कहते हैं, इनमें 'जीते रहो' कहना प्रेमका सूचक है ॥ ३१॥

दौर्मनस्ये व्याधिदौर्हृदापदेशः ॥ ३२ ॥

मनके बिगड़नेके समय व्याधि और वैरीकी कारवाईका बहाना करे ॥३२॥

दौर्मनस्य इति नायकसंबन्ध्यनिष्टश्रवणाद्दौर्मनस्ये जाते तत्कारणं पृच्छेत् । चिरानुबन्धो मे व्याधिः शत्रुर्बाधत इति ॥ ३२ ॥

नायकके संबन्धीका अनिष्ट सुनकर पैदा हुए मन मैलापनपर उसका कारण पूछे, बता देने पर कह दे कि मुझे भी यह बहुत दिनोंसे व्याधि वैरी सता रहा है ॥ ३२ ॥

अन्यकी बुराई, बड़ाई ।

गुणतः परस्याकीर्तनम् ॥ ३३ ॥

परका गुणसे कीर्तन न करे ॥ ३३ ॥

गुणतः परस्याकीर्तनम्, अन्यथान्यासक्तेति जानीयात् ॥ ३३ ॥

किसीके गुणोंकी प्रशंसा न करनी चाहिये, नहीं तो नायकको अपने स्त्रीत्वकी चाहनेवाली होनेकी शंका होगी ॥ ३३ ॥

न निन्दा समानदोषस्य ॥ ३४ ॥

जिसमें नायकके समान ही दोष हों उसकी बुराई न करे ॥ ३४ ॥

समानदोषस्येति नायकेन तुल्यदोषस्यान्यस्य न निन्दा । मा भूदेतद्द्वारेण म जुगुप्सत इति ॥ ३४ ॥

जिसमें वे ही दोष हों जो कि नायकमें हैं तो उन दोषोंके लिये उसकी बुराई न करनी चाहिये, क्योंकि उसके लिये दूसरेकी बुराई करनेसे नायक समझेगा कि इस बहाने मेरी बुराई करती है ॥ ३४ ॥

भृङ्गार, उसका त्याग और रोनेका समय ।

दत्तस्य धारणम् ॥ ३५ ॥

मिलनेवाला प्यारा जिस वस्तुको दे उसे उसके सामने सदा पहिनना चाहिये ॥ ३५ ॥

वृथापराधे तद्व्यसने वालङ्कारस्याग्रहणमभोजनं च ॥ ३६ ॥

दोषारोपणमें, उसकी तकलीफमें अलंकार और भोजन न करना चाहिये ३६

यावदेव जानात्यनयापराद्धमिति तावदेव प्रतिविधानार्थं खेदाभ्यङ्गोपवासादिभिः शरीरपीडा दर्शयितव्या । तद्व्यसने नायकस्य पुत्रभ्रात्रादिनाशे व्याधौ वा ज्वरादावुत्पन्नेऽलंकाराग्रहणम् ॥ ३६ ॥

जबतक प्यारेको यह ध्यान रहे कि इसने कसूर किया उतने समयतक उसके प्रतीकारके लिये खेद प्रकट करना एवम् अभ्यङ्गके त्याग और भोजनके परिहारसे शरीरकी पीडा दिखाना चाहिये । यदि मिलनेवालेका लड़का, भाई आदि न रहा हो अथवा ज्वर आदि आगये हों तो अलङ्कार न करने चाहिये ॥ ३६ ॥

तद्युक्ताश्च विलापाः ॥ ३७ ॥

उसके लिये दुःखीसी रोना चाहिये ॥ ३७ ॥

तद्युक्ताश्चेति कथमपापस्य पतितमेतदिति विलापाः कार्याः । तथैतद्दुःखेनाहं दुःखेय (?) मिति सूचितं भवति ॥ ३७ ॥

ऐसे पुण्यात्मा सज्जनका यह ऐसा कैसे होगया ! इस प्रकारके विलाप होने चाहियें । इस प्रकार करनेसे यह प्रतीत होगा कि जिस प्रकार इस दुःखसे मैं दुःखी हुआ हूं उसी तरह यह भी हुई है ॥ ३७ ॥

साथ भगना ।

तेन सह देशमोक्षं रोचयेद्राजनि निष्क्रयं च ॥ ३८ ॥

उसके साथ देश छोड़कर विदेश जाना चाहे अथवा यह कहे कि आप मुझे राजकीय पक्की कारवाईके साथ मेरी मासे खरीद लें ॥ ३८ ॥

तेनेति नायकेन सह देशमोक्षं स्वदेशत्यागं तमेव रोचयेत् । माता मे विषमशीला । अपलाप्य मां देशान्तरं नयेति । येन स्वातन्त्र्यं स्यादिति । राजनि निष्क्रयं च यदि राजप्रतिबद्धा तदानीं राज्ञः सकाशान्मां निष्क्रीणीहीति रोचयेत् । अन्यथा पलायितां मामानाययेत् ॥ ३८ ॥

देशमोक्ष अपने देशके छोड़नेको कहते हैं। उसके साथ इसे ही अच्छा समझे कि मा मेरी बड़े बुरे स्वभावकी है उससे बहाना करके या बिना कहे

१–एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-
र्विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन,
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः । " मृ० ४–१४ ।

वेश्याएँ अन्य किसी कारणसे नहीं, किन्तु धनके ही लिये हँसती और रोती हैं । ये अपना विश्वास मनुष्यको बँधा देती हैं पर स्वयं उसका विश्वास नहीं करतीं । इस कारण जो कुलीन घरका पुरुष हो उसे वेश्याएं श्मशानकुसुमकी तरह परित्याग कर देनी चाहियें ।

मुझे किसी दूसरे देश ले चल, जिससे मुझे तुम्हें स्वतंत्रता हो । यदि राजाके शासनके कारण रुकती हूं तो इसी समय राजाके पाससे मुझे खरीद लो; नहीं तो भगाकर ही लिवा ले चलो ॥ ३८ ॥

जीवन सफल मानना।

सामर्थ्यमायुषस्तदवाप्तौ ॥ ३९ ॥

उसके मिलनेसे ही अपनी आयुको सफल बनना कहे ॥ ३९ ॥

तदवाप्ताविति यत्प्रायशो न घटते तस्यावाप्तौ सत्यां समर्थनमायुषः येन त्वं घटितः अन्यथा नियतं विनष्टास्मीति ब्रूयात् ॥ ३९ ॥

जो बात नहीं भी घटती हो उस बातका भी उससे ही समर्थन बताये कि आपके मिल जानेसे मेरी जिन्दगी बन गई; नहीं तो मिट ही गई थी ॥३९॥

देवपूजा।

तस्यार्थाधिगमेऽभिप्रेतासिद्धौ शरीरोपचये वा पूर्वसंभाषित इष्टदेवतोपहारः ॥ ४० ॥

नायकको धन मिलने, चाही चीजके मिल जाने तथा शारीरिक रोगके दूर होजानेपर पहिले बोली हुई देवभेंटको चढ़ाये ॥ ४० ॥

अर्थाधिगम इति तस्यार्थलाभे अभिप्रेतसिद्धौ शरीरोपचये वा व्याध्यपगमात् । पूर्वमिति न तदानीमेव संभाषेत । अर्थलाभादिनिमित्तमाशापूरिका देव्या मयोपयाचितकं कृतं तेन च संपन्ना मनोरथाः । सांप्रतं तस्यै बलिरुपहर्तव्य इति ॥ ४० ॥

नायकको अर्थलाभ हो जाने, मनचीते होने एवम् रोग आदिके मिटनेसे, शरीरकी वृद्धि होनेसे पहिली भेंट बोली हो तो पहिली नहीं तो उसी समय बोले, कि—'आशापूरणी देवीने मेरे मनचाहे काम पूरे कर दिये हैं उसीसे आपके मनोरथ सफल हो गये अभी उसे बलि देनी चाहिये' ॥४०॥

भोजन, अलङ्कार, गान और नींद आदिका ढंग।

नित्यमलङ्कारयोगः । परिमितोऽभ्यवहारः ॥ ४१ ॥

सदा ही सजी रहनी चाहिये, भोजन परिमित करना चाहिये ॥ ४१ ॥

नित्यमिति । यत्तु 'नित्यमलंकारयोगिनी स्यात्' इत्युक्तं तदुपावर्तनकाले द्रष्टव्यम् । परिमित इति बहुभक्षणे प्रायशो वेश्यानां दोषवत्त्वात् । तत्रापि स्निग्धं, न रूक्षम् । ज्वरकारित्वाद्रूक्षस्य ॥ ४१ ॥

सदा ही सिंगरी रहे । इसी अधिकरणके १–७ में जो कहा है कि–'अलंकारयोग नित्य करे' फिर अलंकार धारणके लिये क्यों कह रहे हैं ? इसका टीकाकार उत्तर देते हैं, कि इस कथनको उपावर्तनके समयका समझना चाहिये । वेश्याओंको भोजन परिमित ही करना चाहिये, क्योंकि अधिक भोजन प्रायः उन्हें हानि पहुँचाता है । वह भी स्निग्ध होना चाहिये रूखा नहीं, क्योंकि रूखा भोजन ज्वरका पैदा करनेवाला होता है ॥ ४१ ॥

गीते च नामगोत्रयोर्ग्रहणम् । ग्लान्यामुरसि ललाटे च करं कुर्वीत । तत्सुखमुपलभ्य निद्रालाभः ॥ ४२ ॥

गानमें उसका नाम और कुल रखे । अपनी तकलीफके समय प्यारेका हाथ अपने सीने माथे पर अपने हाथसे रख ले । उसके हाथके स्पर्शका सुख लेकर ही नींद ले ॥ ४२ ॥

गीते चेति । ग्लान्यामिति । करं नायकसंबन्धिनं स्वहस्तेन गृहीत्वा स्थापयेदित्यर्थः । तत्सुखमिति हस्तस्पर्शसुखम् ॥ ४२ ॥

जब गाये तो नायकके घराने और नामका जिकर उसमें जरूर आ जाना चाहिये । जब अपनी तबीयत खराब हो तो प्यारेके हाथको अपने हाथसे पकड़कर अपने माथे और सीनेपर रख ले । उसके हाथके स्पर्शके सुख लेनेके बहाने ही नींद ले ले ॥ ४२ ॥

उत्सङ्गे चास्योपवेशनं स्वपनं च । गमनं वियोगे ॥ ४३ ॥

इसकी गोदमें बैठना और सोना चाहिये एवं जाती बार उसके पीछे २ जाना चाहिये ॥ ४३ ॥

उत्सङ्ग इति । गमनं वियोग इति गृहं देवतां वा द्रष्टुं गच्छति स्वयमनुगच्छेत् ॥ ४३ ॥

जब वह गृह वा देवदर्शनको चले तो आप भी उसके पीछे २ चले ॥४३॥

उससे सन्तानकी चाह ।

तस्मात्पुत्रार्थिनी स्यात् । आयुषो नाधिक्यमिच्छेत् ॥४४॥

उसीसे पुत्र चाहे, उससे अधिक जीना न चाहे ॥ ४४ ॥

तस्मात्पुत्रार्थिनीति ऋतुमत्यहमन्यत्र त्वया न शयितव्यमिति । नाधिक्यमिति एतस्मान्मम मृतिः प्राग्भवति चेद्भद्रमिति ॥ ४४ ॥

मैं ऋतुमती हूं । आप मुझसे अलग न सोयें अच्छा हो कि आपसे ही मुझे पुत्र हो जाय । हमेशा यही कहे कि आपसे मैं पहिले मर जाऊं तो अच्छा हो४४

आवश्यकीय शिक्षा।

एतस्याविज्ञातमर्थं रहसि न ब्रूयात् ॥ ४५ ॥

जिस धनका उसे पता न हो उस धनको एकान्तमें भी न बताना चाहिये४५

व्रतमुपवासं चास्य निर्वर्तयेत मयि दोष इति ।
अशक्ये स्वयमपि तद्रूपा स्यात् ॥ ४६ ॥

मुझे दोष लगेगा यह कहकर उसे व्रत और उपवासोंसे रोक दे । यदि वह न रुके करे हीं तो आप भी उसके साथ करे ॥ ४६ ॥

तद्रूपा गृहीतव्रता स्यात् ॥ ४६ ॥

'तद्रूपा' का तात्पर्य्य है कि जिस व्रतको वह करे उसके साथ आप भी उसी व्रतको करने लग जाय ॥ ४६ ॥

विवादे तेनाप्यशक्यमित्यर्थनिर्देशः ॥ ४७ ॥

किसी दूसरेके साथ विवाद हो तो कह दे, कि इसे तो वही कर सकता है दूसरा नहीं ॥ ४७ ॥

विवाद इति । कस्मिंश्चिद्वस्तुनि केनचिद्विप्रतिपत्तौ । तेनाप्यशक्यमिति । शक्तश्चेत्स एवेति कथयेदित्यर्थः ॥ ४७ ॥

किसी वस्तुके विषयमें किसीसे वाद विवाद हो तो कह दे, कि जिसके लिये आप कहते हैं वह भी नहीं कर सकता । यदि कर सकता है तो वही कर सकता है सिवा उसके दूसरेसे नहीं होना है ॥ ४७ ॥

तदीयमात्मीयं वा स्वयमविशेषेण पश्येत् ॥ ४८ ॥

उसके और अपने दोनोंके धनको एक समझे ॥ ४८ ॥

स्वामिनो द्रव्यं नायकसंबन्धि आस्थापनपालनाभ्यामविशेषेण पश्येत् ॥ ४८ ॥

जिस प्रकार अपने धनको रखाती रखती हो उसी तरह अपने प्यारेकी चीजको भी रखे रखाये ॥ ४८ ॥

तेन विना गोष्ठ्यादीनामगमनमिति ॥ ४९ ॥

उसके विना किसी महिफिलमें न जाय ॥ ४९ ॥

निर्माल्यधारणे श्लाघा उच्छिष्टभोजने च ॥ ५० ॥

उसकी उतरी वस्तुके पहिनने और उसका जूठन खानेमें अपनी बड़ाई समझे ॥ ५० ॥

निर्माल्यमिति । स्वकीयं माल्यादि मम देयमिति । उच्छिष्टेति । यद्युपनिमन्त्रितो न मां नयसि भुक्तशेषमवश्यं प्रेषयितव्यमिति ॥ ५० ॥

उसकी पाहिनी मालादिके लिये कहे, कि मुझे पहिना दो । वहां आप निमंत्रित हैं यदि आप मुझे साथ नहीं ले चलते तो जूठन तो मेरे लिये जरूर लाना या भिजवाना ॥ ५० ॥

कुलशीलशिल्पजातिविद्यावर्णवित्तदेशमित्रगुणवयोमाधुर्यपूजा ॥ ५१ ॥

प्यारेके कुल, शील, दस्तकारी, जाति, विद्या, रूपरंग, धन, देश, मित्र, गुण, अवस्था और मधुरताकी बड़ाई करनी चाहिये ॥ ५१ ॥

कुलशीलेति । उदितोदितं कुलमस्य नानुदितमनुदितं वेति । शोभनं शीलं न विषममिति । प्रकृष्टमालेख्यादि शिल्पं नाप्रकृष्टमिति । विशुद्धास्य जातिर्न संकीर्णेति । निर्मलास्यान्वीक्षिक्यादिविद्या न दुर्गृहीतेति । कनकपिञ्जरोऽस्य वर्णो न पाण्डुरिति । न्यायेनोपार्जितं वित्तं नान्यायेनेति । पूज्योऽस्य देशो नापूज्य इति । गुणवन्त्यस्य मित्राणि न दोषवन्ति । शोभना गुणा न त्वशोभनाः । प्रथमं वयो न द्वितीयं न तृतीयमिति । मधुरं वचो नामधुरं चेति पूजा स्तुतिः कर्तव्या ॥ ५१ ॥

कुलकी परंपरागत उज्ज्वलता बताये परंपराकी कालिमा न बताये । उसके स्वभावको अच्छा बताये बुरा न बताये । उसकी दस्तकारीको अच्छी बताये बुरी न बताये । जातिके बारेमें कहे, कि इसकी जाति शुद्ध है संकीर्ण नहीं है । इसकी आन्वीक्षिकी आदि विद्याएँ निर्मल हैं दुर्गृहीत नहीं हैं । इसका रंग सोनेके पिंजर जैसा है पाण्डु नहीं । धन न्यायसे उपार्जित किया है अन्यायसे नहीं । इसका देश पूज्य है अपूज्य नहीं है । इसके मित्र गुणी हैं दोषी नहीं । इसके गुण शोभन हैं अशोभन नहीं हैं । अवस्था प्रथम है दूसरी व तीसरी नहीं है । मीठे वचन हैं अमीठे नहीं हैं । पूजाका अर्थ स्तुति है यानी तारीफ करनी चाहिये ॥ ५१ ॥

गीतादिषु चोदनमभिज्ञस्य ॥ ५२ ॥

यदि जानता हो तो उसे गीत आदिकोंमें लगाये ॥ ५२ ॥

अभिज्ञस्य गीतादौ प्रेरणम् । अनभिज्ञश्चोद्यमानो मामुपहसतीत्याशङ्कते । अभिज्ञस्तु मद्विज्ञानं श्लाघत इति मन्यते ॥ ५२ ॥

क्योंकि विना जाननेवालेसे यदि गीत गानेके लिये कहा जायगा तो वह यह समझेगा, कि यह मेरी हँसी करती है पर जो जाननेवाला है उससे कहे पीछे वह मानेगा कि यह मेरी बड़ाई करती है ॥ ५२ ॥

घनघोर घटामें भी अभिसार।

भयशीतोष्णवर्षाण्यनपेक्ष्य तदभिगमनम् ॥ ५३ ॥

उसके यहां यदि जाना हो तो भय, शीत, उष्ण और वर्षाकी ओर ध्यान न देना चाहिये ॥ ५३ ॥

भयेति। इदमासक्तिख्यापनार्थम् ॥ ५३ ॥

यह बात अपनी आसक्ति दिखानेके लिये की जाती है ॥ ५३ ॥

अभिसारिका गणिकापर साहित्य।

कामसूत्रने वताया है, कि भय, शीत आदिके समय भी अभिसार करे, एवं साहित्यमें इन बातोंके आधारपर पद्यरचना भी देखते हैं। उज्ज्वला अभिसारिकाके भेषमें उत्कण्ठाके साथ वसन्तसेना अपनी छत्रग्राहिणी और विटको साथ लेकर चारुदत्तके घर जा रही है। उसे देखकर विट कहता है कि—

" अपद्मा श्रीरेपा प्रहरणमनङ्गस्य ललितम्,
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरवृक्षस्य कुसुमम्।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्जाप्रणयिनी,
रतिक्षेत्रे रङ्गे प्रियपथिकसार्थैरनुगता। "

यह अपद्मा तो है पर दूसरी लक्ष्मीके समान लक्ष्मी है, इतना ही नहीं, किन्तु कामदेवका सुन्दर प्रहार भी है। यह वेश्याके घरमें भी पैदा होकर जितना चारित्र्यका पालन कर रही है कुलस्त्रियाँ उसे देखकर दाँतोंके नीचे उँगलियाँ दबाती हैं। वैसे तो यह मदनरूपी सुन्दरवृक्षका फूल ही है। रतिका समय व मिलनेका संकेत और स्वयं जानेकी लाज व प्यारेके प्रेमकी रंगत आखोंमें आ रही है। यह रतिके क्षेत्रमें अपने प्रेमीकी प्रेमसभाके निमित्त अपने इष्टजनोंके साथ निराले नाजो अंदाजके साथ जा रही है। साथी विट (भडुआ) जानेकी छटा वताकर उससे वोला कि—

" गर्जन्ति शैलशिखरेषु विलम्बिबिम्बा, मेघा वियुक्तवनिताहृदयानुकाराः।
येषां रवेण सहसोत्पतितैर्मयूरैः खं वीज्यते मणिमयैरिव तालवृन्तैः ॥ "

जैसे प्यारेसे जुदी हुई स्त्रियाँ उसकी याद आनेपर फूट २ कर रोया करती हैं उसी तरह घनघटाएँ उमड़ २ कर पर्वतोंकी चोटियोंसे लग २ कर

गर्जती हैं। उनकी गर्जनाके शब्दसे मयूर पंखें फैलाकर कुहकते हुए उड़ उठते हैं। उससे ऐसा प्रतीत होता है मानों मणियोंके बीजने आकाशकी हवा कर रहे हैं। यह वर्षाका वर्णन किया ह। यह सुनकर वसन्तसेनाने कहा है कि-

" मूढे निरन्तरपयोधरया मयैव, कान्तः सदाभिरमते यदि किं तवात्र।
मां गर्जितैरपि मुहुर्विनिवारयन्ती, मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी॥"

ए भाव ! देखिये तो सही, यह काली रात तो अपनी गर्जनाओंसे डराती हुई मेरी बारबार राह राक रही है। पर वह मूर्खा यह नहीं सोचती कि यदि पानीकी निरन्तर धाराओंमें अतिपीनस्तनोंसे सदा प्यारेको रमण करती भी हूं तो वह मेरा है इसमें तेरा क्या है ? । इससे भयकी प्राप्तिमें निर्भयता ध्वनित होती है । नीचेके श्लोकसे वसन्तसेना अभिसारिकाओंका स्वभाव बताती है कि—

" मेघा गर्जन्तु वर्षन्तु मुञ्चन्त्वशनिमेव वा ।
गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः ।"

मेघ गरजें चाहे बरसें, भले ही बिजली पड़ती हो पड़े; पर जिनका लक्ष्य प्यारेकी ओर लग गया है वे स्त्रियाँ मौत एवम् शीत और उष्णको नहीं गिनतीं। कविवर मतिरामजीने गणिका अभिसारिकाका उदाहरण दिया है कि—

" सांझकी श्रृंगार साजि, प्राण प्यारे पास जाति,
वनिता बनक बनी, बेलिसी अनंदकी ।
कवि मतिराम कल किंकनीकी ध्वनि बजै,
मन्द मन्द चलनि विराजति गयन्दकी ॥
केसरिरँग्यो दुकूल हाँसीमें झरत फूल,
केशनिमें छायी छबि फूलनिके वृन्दकी ।
पीछे पीछे आवत अँधियारीसी भँमर बीच,
आगे आगे फैलत उज्यारी मुखचन्दकी ॥ "

दो०-" नागरि सकल श्रृंगार सजि, चली प्राणपति पास ।
बाढ़ि चली विहँसनि मनो, वारिधि बीचि विलास ।"

मरनेके बाद भी तू ।

स एव च मे स्यादित्यौर्ध्वदेहिकेषु वचनम् ॥ ५४ ॥

मरनेके बाद दूसरे जन्ममें भी मुझे तुम ही पति मिलो ऐसा कहे ॥५४॥

---

१ यह व्यवहार दो तरहका है-एक तो मौतका आडम्बर दिखाती हैं, किन्तु मौतके लिये नहीं। नायकको विश्वस्त बनाकर धन खींचती हैं, किन्तु यह भी देखा जाता है, कि बाजी २-

और्ध्वदैहिकेष्विति । वर्तमानलोकादन्यलोकेऽपि यो देहः स जन्मान्तरे स्यात् । (तत्रापि) अयमेव मे प्रियः स्यादिति वचनमुदाहार्यम् ॥ ५४ ॥

जब मैं मरकर दूसरे लोकमें जाऊँ वहां मुझे यही देह मिले एवं यही मेरा प्यारा हो यह कहा करे ॥ ५४ ॥

तदिष्टरसभावशीलानुवर्तनम् ॥ ५५ ॥

उसको जो रस, भाव और शील प्यारा लगे उसीके अनुसार चले ॥५५॥

मोहिनीकी आशंका ।

मूलकर्माभिशङ्का ॥ ५६ ॥

उसके ऊपर जादूटोनाकी शंका करे ॥ ५६ ॥

नियतमपि वशीकरणमलीकतया प्रयुक्तं येन तव विधेयास्मीत्याशङ्का कार्या ५६

मैं यह बात अच्छी तरह जान गई हूं, कि आपने मुझपर वशीकरण कर दिया है जिससे मैं आपके वश हो गई हूं; जो आप कहते हैं वही करती हूं । यह आशंका करे ॥ ५६ ॥

मासे लड़ाई ।

तदभिगमने च जनन्या सह नित्यो विवादः ॥ ५७ ॥

उससे मिलनेके लिये मासे रोज लड़ाई करे ॥ ५७ ॥

तदभिगमन इति । नायकमनुगच्छन्तीं किं मां धारयसीति मात्रा सह नित्यं कृतककलहोऽनुरागप्रकटनार्थः ॥ ५७ ॥

—नामपर ही प्राण दे देती हैं। राजाके शकारने एकाकिनी वसन्तसेनाको अपनी न वननेके कारण मारने लगा है तो वसन्तसेना—"नम आर्य्याय चारुदत्ताय" संसारके सर्वश्रेष्ठ पुरुष चारुदत्तके लिये नमस्कार है, यह कहकर ही बेहोश हुई है। ऐसी ही दिव्य वेश्याओंके पीछे अगणित वेश्याएँ अपनी मायाको चला लेती हैं। इसकी इस दशाको देखनेवाले विटने करुणासे भीगकर दुःखित हृदयके साथ कहा है कि—

" अन्यस्यामपि जातौ मा वेश्या भूस्त्वं हि सुन्दरि ।
चारित्र्यगुणसम्पन्ने जायेथा विमले कुले ॥ "

हे सुन्दरि! तू दूसरे जन्ममें कभी वेश्या मत होना, भगवान् करे कि—' तेरा जन्म एक निर्मल चारित्रगुणसम्पन्न कुलमें हो ' दर असलमें इतनी पवित्र चरित्रकी देवियाँ बड़े पवित्र घरोंको ही अलंकृत करने लायक हैं वेश्योंको नहीं।

मुझे मेरे प्यारेसे मिलनेमें क्यों रोकती हो; इस बातकी मासे रोज लड़ाई लड़े। इससे कृतकप्रेम प्रकट होता है ॥ ५७ ॥

आत्मघातसे भयभीत करना।

बलात्कारेण च यद्यन्यत्र तया नीयेत तदा विषमनशनं शस्त्रं रज्जुमिति कामयेत ॥ ५८ ॥

यदि बलपूर्वक किसी दूसरेसे मिलाये तो कहे कि जहर खा लूंगी, खाना न खाऊंगी, छुरी मार लूंगी, फांसी लगाकर मर जाऊंगी तथा दिखाये भी ऐसा ही ॥ ५८ ॥

बलात्कारेण चेति । अन्यत्र गम्ये कार्यापेक्षया नीयेत मात्रा तदा तत्समक्षं पूर्वोक्ताश्चारत्यादयः संभवन्त्येव किं त्वेतदधिकं विषाद्यशनमिति । आपातमृत्यहेतुं कामयेद्वाचैव न तु क्रियया ॥ ५८ ॥

यदि मा किसी मतलबको सिद्ध करनेके लिये किसी दूसरे योग्य छैलाके पास ले जाय तो नायकके सामने पहिले अरुचि आदिका तो संभव है ही पर माके इस प्रकारके वर्तावपर विष आदिके खानेकी धमकी और अधिक है। जिनसे एकदम मौत हो जाय ऐसी बातोंको वाणीमात्रसे ही चाहे पर इन बातोंको काममें न लाये ॥ ५८ ॥

नायकके यहां सफाई।

प्रत्यायनं च प्रणिधिभिर्नायकस्य । स्वयं वात्मनो वृत्तिग्रहणम् ॥ ५९ ॥

अपने पासके आदमियोंके द्वारा नायकको अपना विश्वास बँधवा दे। यदि ऐसे गुप्तचरोंके द्वारा वह न समझ सके तो आप ही उसे अपने धन्देकी बुराइयाँ करके समझा दे ॥ ५९ ॥

प्रत्यायनं च प्रणिधिभिरिति मातुरेवास्या दोषो न त्वस्या इति । स्वयं वेति । कुत्सिता वेश्यानां जीविका यत्स्निग्धं संत्यज्यार्थतृष्णया मातरोऽन्येन योजयन्तीति ॥ ५९ ॥

---

१ संस्कारिणी वेश्याएँ तो किसी औरही ढंगकी होती है। वसन्तसेनाने तो अपने कुमार्ग सिखानेवालेसे परिस्फुट कह दिया था कि—"गुणः खलु अनुरागस्य कारणं न पुनर्बलात्कारः।"

यदि इस बातका पता नायकको लग गया हो, कि यह मेरे रकीबके यह गई और इस बातसे वह नाराज होकर उससे न मिले तो अपने दूतोंसे नायकको यह समझवाये कि इसका दोष नहीं इसकी माका ही दोष है। अथवा स्वयम् ही समझा दे, कि वेश्याओंकी जीविका बड़ी बुरी है-जो प्यारे मनुष्यको छुड़ा धनके लोभसे माताएँ दूसरेके यहां भी ले जाती और मिलाती फिरती हैं ॥ ५९ ॥

मिलनेवालेसे न लड़े ।

न त्वेवार्थेषु विवादः ॥ ६० ॥

मूल अर्थके विषयमें तो विवाद करना ही न चाहिये ॥ ६० ॥

न त्वेवेति । काम तदभिगमने विवादः स्यात्, नायकेन तु यद्येवं तत्साधयन्त्या जनन्या न विवादस्तदर्थत्वात्प्रयासस्य ॥ ६० ॥

दूसरेके यहाँ जाने और मुख्य नायकसे मिलनेके विषयमें भले ही यथेष्ट विवाद हो पर धनको सिद्ध करनेवाली मासे धनके विषयमें विवाद न करना चाहिये, क्योंकि सारा परिश्रम तो धनके लिये ही है। अथवा जहां मा भेजे उसे तो प्रसन्न करके ही आये उससे विवाद न करे ॥ ६० ॥

सब बातोंमें मा ।

मात्रा विना किंचिन्न चेष्टेत ॥ ६१ ॥

माके विना कुछ काम न करे, सब मासे ही पूछकर करे ॥ ६१ ॥

विनाशमात्रं (मात्रां विना) किञ्चिच्चेष्टेतेति । असौ भोक्तुमपि यदाह माता न कुर्यात् । कार्येषु सैव व्यापारयितव्येत्यर्थः ॥ ६१ ॥

जब वह भोजनको भी बुलाये तो मासे पूछकर जाय; जब वह कहे तब भोजन करे नहीं तो नहीं । सब कामोंमें माको ही लगाना चाहिये । माका

---

१ वेश्याके विषयमें इस बातका विश्वास करनेवाले कि-'यह अनन्या है' निरे भोले ही प्रतीत होते हैं। फिर इसपर नाराज होनेवाले तो उससे भी अधिक पगले हैं जो बजारकी खरीदकी चीजको अपनी ही मान बैठते हैं। यही कारण है कि किसीने कहा है—

"अक्रन्दसमुत्थिता पद्मिनी अवञ्चको वणिक् अचौरः सुवर्णकारः।
अकलहो ग्रामसमागमः अलुब्धा गणिकेति दुष्करमेते संभाव्यन्ते।"

फिर भी भोले दीवाने कभी २ तो वाराङ्गनाओंके लिये भारी कलह लेलेते हैं। कर्णाटकीके कलहमें ही कैमास मारे गये थे।

भी यही हिसाब रहना चाहिये कि जिस कामके लिये कहे एक बार 'न' तो अवश्य ही कह दे; वह भी यहां तक कि वह भोजनके लिये भी कहे तो मा मने करे या यह कहे कि मैं मासे पूछ लूं ॥ ६१ ॥

दोस्तकी विदेश जानेकी तयारी ।

प्रवासे शीघ्रागमनार्थं शापदानम् ॥ ६२ ॥

नायक यदि परदेश जाने लगे तो जलदी आनेके लिये शपथ खिलाये ६२॥

प्रवास इति नायकस्य कार्यवशात् । शापदानं शपथदानम् । मज्जीवितेन शापितोऽसि यदि शीघ्रं नागच्छसीति ॥ ६२ ॥

यदि नायक कामके वश विदेश जाये तो उसे सौगन्द दिलाये, कि तुझे मेरी जिन्दगीकी कसम जो शीघ्र न आओ तो ॥ ६२ ॥

इसकी साहित्यमें छटा ।

कामसूत्रने जो यहां ढंग बताया है साहित्यकोंने उसी भावकी सुन्दर कविताएँ की हैं; उनमेंसे कुछ यहाँ दिखाते हैं, कि—

"मंजन कियो न तन अंजन दियो न नैन, जावक दियो न पाँइ रही मन मारिकै।
मतिराम सुकवि तमोल तेल छाँड़ि बैठी, पहिरे वसन डारे भूषण उतारिकै॥
ऐहै आज पिय विदा मांगन विदेशको यों,नेहके जनाइबेकी चातुरी विचारिकै।
गारि राख्यो चन्दन बगारि घनसार राख्यो, आँगनमें सेज सरसिजनिसँवारिकै॥

जब वेश्याको यह पता चला है कि मिलनेवाला आज विदेश जानेके लिये विदा माँगने आयेगा उसे प्रेम किस प्रकार दिखाना चाहिये तो उसे विदा करनेके समय शृङ्गार त्याग आदि मातमी सूरत दिखाती है; जैसा कि पद्माकरजीने कवित्तमें दिखाया है—

" आँखिनके अँसुवानिहिसों निज धामहि धाम धरा भरि जैहैं,
त्यों पदमाकर धीर समीरन धीर धनी कहु क्यों धरि जैहैं ।
जो तजि मोहिं चलोगे कहूं तो इती विरहागिनियाँ अरि जैहैं,
जै है कहाँ कहु रावरे ! को हमरे हियको तो हरा जरि जैहैं । "

यदि प्यारे मुझे छोड़कर बाहिर जाओगे तो आपका क्या जायगा पर यहां आपके वियोगमें यह दशा होगी कि—हृदयसे वे सोले उठेंगे जो उसपर झूमनेवाला हार भी जर जायगा । आखोंसे वे आंसू उठेंगे जो घरमें चहले मच जायँगे । महात्मा पद्माकर कहते हैं कि प्यारे जाओगे तो सही पर जब

शीतल, मन्द, सुगंध चलेगी तब धीर धरैया कौन होगा ? इसका यही भाव निकला कि जाओ न; यदि जाते ही हो तो जलदी आ जाना, नहीं तो यहां आफत मच जायगी ।

जानेके बाद ।

परोक्षे वृत्तमाह—

प्रोषिते मृजानियमश्चालङ्कारस्य प्रतिषेधः । मङ्गलं त्वपेक्ष्यम् । एकं शङ्खवलयं वा धारयेत् ॥ ६३ ॥

विदेश जानेपर संस्कारका नियम नहीं, अलंकार भी धारण न करे, मंगलकी तो अपेक्षा है। अथवा एक शङ्खवलय धारण करे ॥ ६३ ॥

प्रोषित इति । मृजानियमः शरीरासंस्कृतिः । परोक्षे विफलमिति चेन्न । तदीयजनसमक्षे सफलत्वात् । प्रवासचर्यायामुक्तमपि चैतत्प्रायशः कुलयोषितस्तत् । इदं तु वेश्याया एवेति । प्रतिषेधोऽधारणम् । मङ्गलं शंखवलयादि त्वपेक्ष्यम् । प्रोषितस्य मङ्गलापेक्षया तावन्मात्रं धार्यमित्यर्थः ॥ ६३ ॥

नायकके पीठ पीछेके समाचार कहते हैं, कि–' यदि प्यारा विदेश हो तो उसे अपने शरीरका संस्कार भी न करना चाहिये । यदि यह कहो कि ऐसा करना निष्फल है, क्योंकि उसे देखेगा कौन ? इसका उत्तर देते हैं कि उसके निजी आदमियोंके सामने सफल है, क्योंकि वे आनेपर उससे कहेंगे, कि यह इसतरह रहती थी । भार्य्याधिकारमें जो प्रोषितपतिकाके नियम बताये हैं वे तो कुलस्त्रियोंके ही हैं ये यहां बताये नियम वेश्याओंके हैं। अलंकारोंका न पहिनना ही उसका प्रतिषेध है । माङ्गलिक जो शंखके कडूले आदि हैं उन्हें अवश्य ही पाहिने रहे । विदेश गयेकी मंगलकी अपेक्षा तो रहती ही है, इस कारण उतना पहिनना तो ठीक ही है ॥ ६३ ॥

स्मरणमतीतानाम् । गमनमीक्षणिकोपश्रुतीनाम् । नक्षत्रचन्द्रसूर्यताराभ्यः स्पृहणम् ॥ ६४ ॥

---

१ क०–" विरह न भूरि होउ प्रेम चकचूरि होउ, अङ्ग अङ्ग झूरि होउ दरद बढ़ाऊंगी। वसन बिसारों आछे असन न धारों सोभ, भूषन निवारों गीत प्रीतमके गाऊँगी ॥ सौरभ बहाय द्वार देहरी पै जाय दृग, मिरच लगाय आंखि आँसुने बहाऊँगी । दुखी जानि निज जन मोहि मोह जैहै मन, ऐसे जोग जतन बहुत माल पाऊंगी ॥" यह असलकी नकल है, विचारकर देखा जाय तो यह वेश्याजीवन दाम्पत्यजीवनकी एक हलकी नकल है ।

नायकके साथकी बीती हुई बातोंको याद करना, प्रश्न बतानेवालियोंके यहां जाना, रातका शकुन देखना एवम् नक्षत्र, चन्द्र, रवि और ताराओंके साथ ईर्षा दिखानी चाहिये ॥ ६४ ॥

स्मरणमतीतानां नायकेन सहोपभुक्तानाम् । ईक्षणिका विप्रश्निकास्तासां गमनं गृहे इत्यर्थात् । उपश्रुतिर्निशीथे शुभाशुभपरिज्ञानार्थं प्रथमवाक्यग्रहणम् । तेन तस्या रथ्याचत्वरेषु गमनमिति । नक्षत्रादिभिः स्पृहणमिति पुण्यवन्त एते यन्नायकेन दृश्यन्ते । अहमपुण्या यन्मां नेक्षत इति ॥ ६४ ॥

नायकके साथ जो २ आनन्द किये हों उन्हें लोगोंको सुनाये । जो स्त्रियाँ शकुनोटी देखा करती हैं उसके घर जाकर शकुनोटी दिखाये । आधीरातके समय शुभ और अशुभके ज्ञानके लिये प्रथमवाक्यका ग्रहण करते हैं । इसी तरह गली और चवूतरेपर जाना चाहिये । यथासमय चमकते हुए चाँद, सूर्य और नक्षत्रोंके लिये कहे कि ये बड़े पुण्यवान् हैं जो सदा मेरे प्यारेको देखा करते हैं । मैं वड़ी दुर्भाग हूं जो वह मुझे नहीं दीखता ॥ ६४ ॥

इष्टस्वप्नप्रदर्शने तत्सङ्गमो ममास्त्विति वचनम् ॥ ६५ ॥

शुभ सपने देखकर कहे, कि उसके साथ मेरा संगम हो ॥ ६५ ॥

इष्टस्वप्नेति । सद्भूतं शुभं दृष्ट्वा प्रत्यूषे तज्जनसमक्षं प्रकाश्य आस्तां तावदन्यत्तत्समागम एष ममास्त्विति वचनमुदाहर्तव्यम् । दृष्ट्वापि कृतकमदृष्टं स्वप्नं प्रकाशयेत् । यदि देशान्तरस्थस्य नायकस्याभिप्रेतसिद्धिस्तैस्तैरुपलब्धा स्यात् ॥ ६५ ॥

अच्छे फलवाले सपने देखे तो प्रातःकाल जनसमूहमें प्रकट करे और कहे, कि ये बातें रही आयें मुझे तो उसका समागममात्र ही चाहिये, ऐसा वचन सब फलाफल सुनकर कहना चाहिये । यदि स्वप्न न भी दीखा हो और उसके लाभ होनेकी बात आनेवाले लोगोंसे सुनी हो तो भी बनावटी सपना सुना देना चाहिये ॥ ६५ ॥

उद्वेगोऽनिष्टे शान्तिकर्म च ॥ ६६ ॥

अनिष्टदर्शनमें उद्वेग और शान्तिकर्म कराना चाहिये ॥ ६६ ॥

---

१ स०—"घनसार पटीर मिलै मिलै नीर चहै तन लावै न लावै चहै । न बुझै विरहागिनि झार झरी हूं चहै घन लावै न लावै चहै ॥ हम टेर सुनावती बेनी प्रवीन चहै मन लावै न लावै चहै । अब आवैं विदेशसे पीतम गेह चहै धन लावैं न लावैं चहै ॥"

उद्वेगोऽनिष्ट इति । अशुभसूचके स्वप्नदर्शने सत्युद्वेगः । तस्य किमप्यनिष्टमस्तीति शान्तिकर्म ब्राह्मणानाहूय कार्यम् ॥ ६६ ॥

यदि अशुभ सपना दीखे तो पास आने जाने वाले उसके मिलनेवालोंमें अपनी घबराहट दिखाये । उसका कुछ अनिष्ट तो नहीं है इस शंकासे ब्राह्मणोंको बुलाकर शान्तिकर्म कराना चाहिये ॥ ६६ ॥

दोस्तके विदेशसे आनेपर ।

आगते प्रत्यक्षे वृत्तमाह—

नायकके आजानेपर जो करना चाहिये उसे बताते हैं, कि—

प्रत्यागते कामपूजा ॥ ६७ ॥

नायकके आजानेपर कामका पूजन करना चाहिये ॥ ६७ ॥

कामेति । त्वत्प्रसादादागत इति कामपूजनम् ॥ ६७ ॥

हे काम ! आपकी ही कृपासे ये आगये हैं, इस कारण मैं आपका पूजन करती हूं ॥ ६७ ॥

देवतोपहाराणां करणम् ॥ ६८ ॥

जिस जिस देवताकी जो जो भेंट बोली हो उस २ भेंटको वहां २ जाकर चढ़ा देना चाहिये ॥ ६८ ॥

देवतोपहाराणां च तज्जनसमक्षं प्रतिपन्नानां करणं निष्पादनम् ॥ ६८ ॥

जिन २ मनुष्योंके सामने जो २ भेंट बोली हों उनकी जाहिरामें उन २ भेंटोंको वहां कर देना चाहिये ॥ ६८ ॥

सखीभिः पूर्णपात्रस्याहरणम् ॥ ६९ ॥

सखियोंके साथ पूर्णपात्रका ग्रहण करे ॥ ६९ ॥

पूर्णपात्रस्येति । इष्टबुद्ध्या स्वजनाद्यदुत्तरीयमाच्छिद्य गृह्यते तत्पूर्णपात्रम् । तस्य सखीभिराहरणम् ॥ ६९ ॥

इष्टबुद्धिसे स्वजनसे जो उत्तरीय झपटकर लिया जाता है उसे पूर्णपात्र कहते हैं, इसे सखियोंके साथ ले ॥ ६९ ॥

वायसपूजा च ॥ ७० ॥

कौवेकी पूजा करे ॥ ७० ॥

वायसेति । वल्लभे समागते पिण्डं ते दास्यामीति प्रतिज्ञातं गृहाणेति ॥ ७० ॥

कौवेको पिण्ड देती बार कहे कि मैंने जो यह कहा था कि प्यारेके आजानेपर तुझे पिण्ड दूंगी सो पिण्ड देती, हूं तू इस पहिले कहे पिण्डको ले॥७०॥

प्रथमसमागमानन्तरं चैतदेव वायसपूजावर्जम् ॥ ७१ ॥

कौवेकी पूजाको छोड़कर बाकी सबकाम प्रथम समागमके बाद करे ॥७१॥

नायकेन सह यः प्रथमः समागमस्तदनन्तरमेतत्कामपूजादिकमनुष्ठेयम् ॥७१

आनेके बाद प्यारेके साथ जब प्रथम समागम हो ले उसके बाद कामपूजा आदि करे ॥ ७१ ॥

साथ मरनेके इरादे ।

प्रत्यक्षे परोक्षे च वृत्तमाह—

अब प्रत्यक्ष और पीछेके चरित्र कहते हैं कि—

सक्तस्य चानुमरणं ब्रूयात् ॥ ७२ ॥

आसक्तके मरणके साथ ही अपना मरण कहे ॥ ७२ ॥

सक्तस्य चेति । अनुमरणं ब्रूयात् स्वर्याते न मया जीवितव्यमिति । सक्तो ह्येवं संभावयति नान्यः ॥ ७२ ॥

जब यह समझ ले कि यह मुझपर पूरा दीवाना होगया है तो कहे, कि आप जब स्वर्ग चले जायँगे तो पीछे मैं भी जिन्दी न रहूंगी, क्योंकि आसक्त ही इसकी संभावना कर सकता है दूसरा नहीं कर सकता ॥ ७२ ॥

इसपर ऐतिहासिक दृष्टि ।

मैं मर जाऊंगी या तेरे विना मरती हूं यह कहना जितना आसान है मरना उतना ही कठिन है । फिर वेश्या और सती ! यह तो एक प्रकारका प्रवादमात्र ही है; फिर भी यह नहीं कह सकते कि वेश्याओंमें कोई नमूने नहीं निकलते । वसन्तसेना सरीखे कोई २ संस्कारी जीव भी निकल आते हैं । महाराजा अलवर वनीसिंहजीके साथ सती होनेके समय रानियाँ नहीं गई पर वेश्या उन्हींके साथ सती हो गई । रतलामकी पातुरीको अकबरने बुलाया एवम् न भेजनेपर एक करोड़ रुपया जुरमाना ठोकनेके लिये कहा ।

---

१ स०–"काल्हिकी साँझहिते सजनी हौं खरी दुचिती अँगुआन वहाऊं । आज तो वायस गोचर आयके बोल गयो सखि होत पहाऊँ ॥ जो अवके अपनी इन आँखिनि संतत प्यारेको देखन पाऊं । रागिनी रागहि गाऊँगी बागहि कागहि पागहि पाग बँधाऊं ॥"

दो०–"वे आये लाये कहा, यह दखनके काज । सखिन पठावति शशिमुखी, सजाति आपनो साज ॥"

छोटे संस्थानने मजबूर होकर उस पातुरीको भेज दिया। बातेंचीतें करतीवार उसने अकबरसे कह दिया कि—"जूठी पातरि खायँ" यह कागोंका काम है जो दूसरेकी जूठी पातर खाते हैं। अब मेरा बुड्ढे होनेका समय आया क्यों आखिरी विगाड़ते हो ! यह सुनकर अकबरको बड़ी दया आयी एवम् धन्यवादके साथ उसे छोड़ दी। महाराणा उदयसिंह युद्धके समय अकबरके एक ही भालेसे घायल होकर कैद होगये थे यह बात उनकी उस वेश्याको मालूम हुई जिसे वे अपने हृदयका सच्चा प्यार रानियोंसे भी अधिक देते थे। वह सैनिक भेष बना रातको गाफिर पहरेदारोंको मार अपने प्रेमीको छुटा लाई एवम् अन्तमें अपने ही सरदारोंके हाथसे उदयसिंहके प्रेमपर अमर हो गई।

आसक्तकी पहिचान।

कः पुनः सक्त इत्याह—

आसक्त कैसा होता है इस बातकी पहिचान बताते हैं कि—

निसृष्टभावः समानवृत्तिः प्रयोजनकारी निराशङ्को निरपेक्षोऽर्थेष्विति सक्तलक्षणानि ॥ ७३ ॥

हर बातपर इतबार, हरबातमें अनुकूलता, हुकुम उठानेवाला, निःसंदेह और धनके विषयमें वेपरवा हो ये आसक्तके लक्षण हैं ॥ ७३ ॥

निसृष्टभाव इति सर्वात्मना विश्वस्तः। समानवृत्तिस्तावत्प्रवृत्तौ निवृत्तौ च। प्रयोजनकारी नायिकाया यत्कार्यं तदुदीरितमात्रं यः कर्तुं शक्नोति। निराशङ्को न कुतश्चिदाशङ्कते तस्यां प्रवर्तमानः। निरपेक्षोऽर्थेषु आत्मास्य तया (!) गृह्यमाणेष्वपि ॥ ७३ ॥

जो पूरा इतबार करे, नायिकाकी राजीमें राजी और नामें ना। नायिका जिस अपने कामको जुबानसे निकाल दे उसे उसी समय बजा दे। उसमें प्रवृत्त होता हुआ किसी बातकी भी शंका न करे। जिन धनोंको वेश्या खींचे उसमें बिलकुल निरपेक्ष रहे (यदि शिर माँगे तो शिर भी दे दे) ॥ ७३ ॥

---

१ जिस प्रकार अन्यस्त्रियोंके आसक्त सब कुछ चरणोंपर भेंट चढ़ाकर निरपेक्ष हो जाते हैं उसी तरह वेश्याके दीवाने भी हो जाते हैं। अनेकोंको तो हम इस प्रकार देखते हैं कि अपना सर्वस्व वेश्याको देकर अन्तमें गुजारा भी उसीकी दी हुई रोटियोंसे हुआ है। आसक्ति तो कहीं भी हो कष्टपद ही होती है, सिवा भगवान्के चरणोंके। सच्चा सत्त्व कहीं भी नहीं है।

न कही बातको दुनियाँसे जाने ।

तदेतन्निदर्शनार्थं दत्तकशासनादुक्तम् । अनुक्तं च लोकतः शीलयेत्पुरुषप्रकृतितश्च ॥ ७४ ॥

दत्तकाचार्य्यने जो इस वेश्यालीलाको कहा है यह बात उसीसे लेकर दिग्दर्शनमात्रके लिये यहां रखी है । हमने जिस बातको नहीं कहा उसे लोकसे और पुरुषकी प्रकृतिसे जान लेना चाहिये ॥ ७४ ॥

तदित्युक्तं वृत्तम् । निदर्शनाथ दत्तकशासनादिति दत्तकशास्त्रं दृष्ट्वा । लोकत इति पराराधनकुशलाच्छीलयेदागमयेत् ॥ ७४ ॥

जो यह वेश्यालीला कही है वह दत्तकाचार्य्यके बनाये हुए शास्त्रको देख उसीका सार लेकर दिग्दर्शनमात्रके लिये रख दी है । यदि और भी अधिक जानना हो तो उन लोगोंको देखकर जान ले जो दूसरेको रिझाकर अपना मतलब करते हैं ॥ ७४ ॥

वेश्याके दीवानोंको शिक्षा ।

गम्यस्याप्यनुवर्तमानस्य वेश्यास्वरूपप्रतिपत्त्यर्थमाह—

ये बात तो हुई वेश्याओंके मतलब करनेकी, अब वेश्याओंके अनुसार चलनेवाले उनके मिलनेवालोंको भी वेश्याओंका स्वरूप बतानेके लिये कहते हैं कि—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

सूक्ष्मत्वादतिलोभाच्च प्रकृत्याज्ञानतस्तथा ।
कामलक्ष्म तु दुर्ज्ञानं स्त्रीणां तद्भावितैरपि ॥ ७५ ॥

इस विषयमे दा श्लोक हैं कि—बड़े२ पहिचानवाले भी स्त्रियोंके (वेश्याओंके) कामके असली रूपको नहीं जान सकते, क्योंकि एक तो काम स्वभावसे ही सूक्ष्म है दूसरे ये इतनी लोभिन होती हैं कि नकलको भी असलकी तरह दिखा देती हैं। दूसरे उनका दीवाना स्वभावसे भी अज्ञानी बन जाता है॥

---

१ इस कथनसे यह सिद्ध होता है, कि दत्तकाचार्य्य आदि आचार्य्योंने जो कुछ कहा है वह दुनियाँमें होनेवाली बातोंका ही संग्रह कर दिया है एवम् यही वात्स्यायनकी बात है । ये अपूर्व बतानेवाले नहीं हैं ।

स्त्रीगामिति वेश्याशब्दत्वादिति । चेतोधर्मेणातीन्द्रियत्वाद्वेश्याशब्दवाच्यानां नरिच्छा लक्षणः कामस्तस्य लक्ष्म स्वरूपं दुर्ज्ञानं किमिदं स्वाभाविकं वा कृत्रिममिति दुःखेन ज्ञायते । कथमित्याह—सूक्ष्मत्वादिति, चेतोधर्मेणातीन्द्रियत्वात् । क्रियया सुज्ञानमिति चेदाह—अतिलोभादिति । लुब्धा हि स्वाभाविकमिव रूपयन्ति प्रवृत्त्या न ज्ञायन्त इति । कामपरासु हि विश्वसन्ति पुमांसः । ततश्च तेषां स्वभावत एव रागाचरणसंभवादज्ञानमेव प्रादुर्भवति न ज्ञानम् । तद्भावितैरपि लक्ष्मपरिज्ञानाभियुक्तैरपि दुर्ज्ञेयं किमिदं स्वाभाविकं कृत्रिमं वेति७५

यह बात स्त्रीमात्रकी है वेश्या तो एक स्त्रियोंका ही भेद है । काम चित्तका धर्म है, इस कारण इन्द्रियाँ उसे देख नहीं सकतीं। फिर वेश्या शब्दसे कही जानेवाली स्त्रियोंका इच्छारूप जो काम है उसकी इस बातका ज्ञान कि-'यह स्वाभाविक है वा कृत्रिम है' दुःखसे हो सके तो हो सके, क्योंकि काम एक मनकी तरंग है, अतः वही मन जान सकता है दूसरा नहीं । यदि यह कहो कि चेष्टाओंसे आसानीसे जान लेंगे सो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि ये लोभके मारे बनावटीको भी सहजकी तरह दिखा देती हैं । इस कारण प्रवृत्तिसे भी नहीं जानी जा सकतीं । चाहे बनावटी हो चाहे स्वाभाविक हो कैसा भी हो अधिक चाह दिखानेवालियोंमें पुरुष विश्वास कर लेते हैं, इस कारण उनके स्वभावसे रागका उद्रेक होनेसे अज्ञान ही प्रकट होता है, ज्ञान नहीं प्रकट होता । और तो क्या जो कामके स्वरूपके ज्ञाता हैं वे भी इस बातकी परीक्षा नहीं कर पाते, कि असल है या बनावटी है, दूसरेकी तो गति ही क्या है ॥ ७५ ॥

तदेवं कृतकं च कामलक्ष्म दर्शयन्नाह—

उसी बनावटी कामके स्वरूपको दिखाते हुए कहते हैं कि—

कामयन्ते विरज्यन्ते रञ्जयन्ति त्यजन्ति च ।
कर्षयन्त्योऽपि सर्वार्थाञ्ज्ञायन्ते नैव योषितः ॥ ७६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे कान्तानुवृत्तं द्वितीयोऽध्यायः ।

चाहती हैं, विरक्त रहती हैं, अनुरक्त बना डालती हैं और छोड़ देती हैं एवम् सब धनको खींचती हुई भी नहीं मालूम होतीं ॥ ७६ ॥

कामयन्त इति । अकृतकं कामयन्ते तदपि न स्थिरमित्याह—कृतककेलिवशाद्विरज्यन्ते । कृतककेलिवशाद्रञ्जयन्ति । तदपि न स्थिरमित्याह—त्यजन्तीति । किमर्थमित्याह—कर्षयन्त्योऽपीति । सर्वार्थान् गृह्णन्त्योऽपीत्यर्थः । अलक्तकवन्निष्पीडितसारत्वाज्ज्ञायन्ते नैव किंरूपा इति । योषितो वेश्या इत्यर्थः । तस्मात्तासु नासक्तिं कुर्यात् । केवलं यावदर्थं प्रतिपद्येरन्नित्युपदेशः । इति कान्तानुवृत्तं द्विपञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्टेऽधिकरणे कान्तानुवृत्तं द्वितीयोऽध्यायः ।

जो वह स्वभावसे चाहती हैं वह भी टिकाऊ नहीं रहता, इसी बातको बताते हैं कि–बनावटी लीलाके कारण विरक्त होती और इसीसे अनुरक्त भी कर लेती हैं । वह बात भी स्थिर नहीं इसी बातको दिखानेके लिये कहते हैं कि छोड़ भी देती हैं । ये सब लीलाएँ किसलिये करती हैं इसपर कहते हैं कि–'महावरकी तरह निचोड़कर निकाले हुए सारकी तरह धन खींचती हुई भी नहीं मालूम होतीं, वे स्त्रियाँ कौनसी होती हैं ? उसका उत्तर देते हैं कि ऐसी वेश्याएँ होती हैं । इस कारण इन स्त्रियोंमें आसक्ति कभी न करे, केवल जितना मतलब हो उतना निकाल ले । यह वेश्यानायकोंको उपदेश है ॥ ७६ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके द्वितीय अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अर्थागमोपाय प्रकरण।

एवमनुवर्तितात्कान्ताद्वित्तमाददीत । तच्च नानुपायेन साधयेदित्युक्तम् । इदानीमर्थागमोपाया उच्यन्ते । तच्चादानं द्विविधं स्वाभाविकमितरच्च । यदाह—

अपने अनुसार हुए मिलनेवालेसे धन खींचे, वह भी विना उपायके सिद्ध न करे यह कहा है, इस कारण इस समय 'धन आनेके उपाय' कहते हैं । धनका खींचना दो तरहका होता है–एक तो स्वाभाविक तथा दूसरा उपायसे । इसी बातको कहते हैं कि––

धन प्राप्तिके भेद ।

सक्ताद्वित्तादानं स्वाभाविकमुपायतश्च ॥ १ ॥

अपने पर आसक्त हुए मिलनेवालेसे दो तरहसे धनकी प्राप्ति होती है। एक तो स्वाभाविक तथा दूसरी प्रयत्नसे ॥ १ ॥

सक्तादित्युक्तलक्षणात् । स्वाभाविकं न यत्नमपेक्षते । सक्तस्यार्थेषु निरपेक्षत्वात् । उपायतश्च यदसक्ताद्भवति तत्प्रायत्निकम् ॥ १ ॥

आसक्तका लक्षण पिछले अध्यायमें बता चुके हैं । जो उससे सहजमें ही मिलता है वह स्वाभाविक है, उसमें प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं । क्योंकि आसक्त उसके दिये जानेवाले धनके विषयमें निरपेक्ष रहता है, पर जो अपनेपर आसक्त नहीं है उससे धन खींचना युक्तिसे ही हो सकता है ॥ १ ॥

आचार्य्योंका मत ।

तत्र स्वाभाविकं संकल्पात्समधिकं वा लभमाना नोपायान्प्रयुञ्जीतेत्याचार्याः ॥ २ ॥

धन खींचनेके विषयमें आचार्य्योंका यह मत है कि--जितना लेनेका विचार हो उससे अधिक स्वभावसे ही मिलजाय तो फिर धन खींचनेकी युक्तियोंका प्रयोग न करे ॥ २ ॥

तत्र स्वाभाविकं वित्तं लभमाना संकल्पसमधिकं वेति संकल्पादिति संकल्प एतावच्च यदियमिति संकल्पिताच्च यदधिकं (?) तत्र नोपायान्प्रयुञ्जीत, सुलभत्वात् । तेनासंकल्पिते संकल्पिते च प्रयोगः ॥ २ ॥

सहजमें ही धन मिले एवम् जो उससे लेनेका संकल्प हो अथवा जितना ठहरा हो उतना मिल जाय तो उपायोंकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि सुलभ मिलना है । इससे यह बात सिद्ध हो गई, कि जो न सोचा हो उसके लिये एवम् संकल्पित न मिले उसके लिये उपायोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

आसक्तपर भी उपाय ।

विदितमप्युपायैः परिष्कृतं द्विगुणं दास्यतीति वात्स्यायनः ॥ ३ ॥

÷ विदित भी उपायोंसे परिष्कृत किये जानेपर दूना दिया जायगा । यह वात्स्यायन आचार्यका मत है ॥ ३ ॥

÷ मुकर्रिर फीससे ही इसी तरह चापलूसी तथा विलासमें अधिक प्रसन्न करके अधिक रुपया निकाला जाता है इस तरह आसक्त भी अपनी देनेकी मनसासे अधिक दे डालता है।

विदितमपीति—स्वाभाविकत्वेन समधिकत्वेन चापरिच्छिन्नमप्युपायैः परिष्कृतमुपबृंहितं द्विगुणं दास्यतीति तत्र प्रयोगो युक्तः ॥ ३ ॥

जाना हुआ भी यानी मुकर्रिर हुआ भी एवम् स्वभावसे ही अधिकके रूपमें अनियत मिलनेवाला भी धन उपायोंसे बढ़ाया जायगा यानी उसे उपायोंसे और भी अधिकके रूपमें लेनेका उपयोग किया जायगा तो वह उससे दूना देगा यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है। अतः वहां उपायोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

धन खींचनेके उपाय ।

यैरुपायैरादीयमानेऽप्यर्थे नार्थपरता ज्ञायते तानुपायानाह—

जिन उपायोंसे धन खींचतीवार भी इस बातका पता न चले कि यह केवल धनकी ही है उन उपायोंको बतलाते हैं कि—

अलंकारभक्ष्यभोज्यपेयमाल्यवस्त्रगन्धद्रव्यादीनां व्यवहारिषु कालिकमुद्धारार्थमर्थप्रतिनयनेन ॥ ४ ॥

अलंकार, भक्ष्य, भोज्य, पेय, माल्य, वस्त्र और गन्धद्रव्य आदिकोंके बेचनेवालोंके निमित्त जो वादेपर मोलका रुपया चुकाना है उसके लिये या उसके बदलेमें जो अपनी चीज गहने रखी हो उसे छुड़ानेके लिये रुपया ले ले।।४।।

भक्ष्यं लड्डुकादि । भोज्यमन्नादि कृतमकृतं वा । पेयं सुरादि । वस्त्रं चतुर्विधं त्वक्फलकृमिरोमजम् । गन्धः कुंकुमादिः । माल्यं ग्रथितकुसुमादि । आदिशब्दात्ताम्बूलफलपूगपशुभाण्डोपस्करादि । तदुद्धार्य (र्थ) मिति संबन्धः । व्यवहारिष्विति विक्रेतृषु व्यवस्थितम् । कालिकमिति कालेन देयम् । उद्धार्यमादावित्यर्थः । अर्थप्रतिनयनेनेति मूल्यप्रतिदानेन न तु द्रव्यस्यैव प्रतिनयनेन ॥४॥

+ अलंकार—जेवर, भक्ष्य—लड्डू जलेबी आदि भोज्य अन्न आदि, चाहे बना बनाया हो, चाहें विना बनाया हो, पेय—पीनेकी चीजें दूध, जाम, शराव आदि और वस्त्र कपड़ोंको कहते हैं। ये वल्कलके, कपास आदिके, फलके, रेशमके और भेड़ आदिके बालोंके होते हैं। गुथे हुए फूल आदि मालाएँ कहाती हैं । आदि शब्दसे पान, सुपारी, फल, अच्छे बर्तन, मसाले आदि काममें आने-

---

+ ये चीजें उसके साथ अपने वर्तावमें थोड़ी बहुत आगई हों तो अधिकका बिल चुकवाना बिल्कुन आसान है । इनके वारेमें जेवर रखनेका वहाना और भी अच्छा है ।

वाली चीजें समझनी चाहियें। ये चीजें जिन २ दूकानदारोंसे वादेपर उधार ली गईं अथवा इन चीजोंके मूल्यके बदले जो जेवर रख दिया गया हो उसे वायदेसे पहिले छुड़ानेके लिये उसकी वस्तुओंके मूल्य चुकानेके बहाने ले ले । केवल जेवर छुटानेके ही बहानेसे रुपया न ले ॥ ४ ॥

धनप्रशंसा व धर्मकार्यका बहाना ।

तत्समक्षं तद्वित्तप्रशंसा ॥ ५ ॥

उसके सामने उसके धनकी प्रशंसा करे ॥ ५ ॥

तत्समक्षमिति नायकसमक्षम् । यतो दृष्ट्वा स्वयमेव रोचते मदीयमिति तत्प्रशंसत इति ददाति ॥ ५ ॥

अपने मुख्य मिलनेवालेके सामने उसके धनकी तारीफ इसलिये की जाती है कि उसे देखकर उसे और देना अच्छा लगे कि यह मेरे धनको बड़ी सराहती है इससे आप दे देता है ॥ ५ ॥

व्रतवृक्षारामदेवकुलतडागोद्यानोत्सवप्रीतिदायव्यपदेशः ॥ ६ ॥

व्रत, वृक्ष, बाग, देवमंदिर, कूआ, बावड़ी, उत्सव और प्रेमके दहेजेका बहाना करे ॥ ६ ॥

व्रतेति । आगाम्यष्टम्यां मम व्रतं तत्रानेन प्रयोजनमिति । तद्दर्शे (?) मया वृक्षो रोपितस्तस्य प्रतिष्ठेति । आम्राणां मधूकानां मया आरामः कार्यः । कर्णस्य वा कर्णवेधादिकं कार्यमिति (?) देवकुलमुत्थाप्यमुत्थापितस्य वा प्रतिष्ठेति । तडागं पुष्करिण्यादिकं खातयितव्यं खानितस्य वा प्रतिष्ठेति । उत्सवः परश्वो भविता तत्रानेन प्रयोजनमिति । स्निग्धोऽयमागतस्तस्य प्रीत्या अवश्यं किञ्चिद्देयमिति तद्व्यपदेशः ॥ ६ ॥

आगामी आठेको मेरा व्रत है उसमें ये ये वस्तु चाहियें । मैंने वृक्ष लगाया था उसकी प्रतिष्ठाके समयका खर्चा है । मैं आम और महुएका बाग लगाऊँगी । कानका कर्णवेध कराऊँगी, मंदिर अधूरा है उसे ऊपर उठाना है और उठे हुए मांदिरकी प्रतिष्ठा करनी है । कूआ, बावड़ी, तलाई आदि खुदाने हैं अथवा खुदाये हुओंकी प्रतिष्ठा करनी है । हमारे यहां अमुक बातका उत्सव होगा, उसमें इन २ चीजोंकी आवश्यकता है । यह अकिंचन मेरे मिलनेवाला

प्रेमी (स्नेही) आ गया है उसे प्रेममें अवश्य कुछ देना होगा । इन बातोंके बहाने करके मिलनेवालेसे × धन खींचे ॥ ६ ॥

लुट गई व आगसे नष्ट ।

तदभिगमननिमित्तो रक्षिभिश्चौरैर्वालङ्कारपरिमोषः ॥ ७ ॥

आपके यहां आपसे मिलने आनेके समय साथ लानेवाले रक्षक अथवा गस्त देनेवाले या चोरोंने राहमें जेवर उतार लिया यह कहे ॥ ७ ॥

तदभिगमनमिति नायकाभिगमननिमित्तं यस्य (?) रक्षिभिर्दण्डपाशिकैः सहायैः कृतसंवित्कैश्चौरैर्वा कृतसंवित्कैरलङ्कारमोक्षः कार्यः । येनेयमदग्धन्मूल (?) मागच्छन्ती दुःखितेति ज्ञात्वा अन्यमलङ्कारं ग(य) च्छति ॥ ७ ॥

मिलनेवालेसे कहे कि मेरे आपसे मिलनेके लिये रातके समय राहमें आती वार, दण्ड और हतकड़ी हाथमें लेकर गस्त देनेवाले चौकीदारोंने जेवर छिना लिया । या परस्परमें सब तरहके संकेत किये हुए चोरोंने चोर लिया । कहे ही कहे नहीं किन्तु ऐसे बहानेके लिये मिले हुए चोरोंसे ऐसा करा ले या झूठा नाम ले दे । जिससे नायक यह समझकर कि यह मूलको विना जलाये यानी सब कुछ खोकर भी अपने स्नेहको बचानेके लिये अपना वादा पूरा करनेके लिये दुःखी भी चली आई है यह जान झट गहना दे देगा ॥ ७ ॥

दाहात्कुडयच्छेदात्प्रमादाद्भवने चार्थनाशः ॥ ८ ॥

दाहसे, ओड़ा लग जानेसे, प्रमादसे घरमें ही धनके नष्ट होनेका बहाना करे ॥ ८ ॥

दाहादिति । प्रमादादुत्थितेऽग्नौ च दग्धमिति नाशः प्रकाश्यः । न तु स्वयमादीप्यः । अनेकप्राण्युपघातदोषात् । कुडयच्छेदादिति चौरैः सन्धिखातादपहृतमिति नाशः । चौरव्यञ्जनैर्वा कुडयछेदान्नाशः । प्रमादादिति । मम मातुर्वा प्रमादाद् गृह एव द्रव्यनाशः ॥ ८ ॥

यदि प्रमादवश घरमें आग लग जाय तब यह प्रकट करे कि—' आगमें सब धन नष्ट हो गया । ' ऐसा न करे कि आपही आग दे ले, क्योंकि खुद

× इन बहानोंसे उत्तम प्रकृतिके पुरुष ही ठगे जा सकते हैं । अधम प्रकृतिके व्यक्तियोंके ठगनेका तो पहिला ही बहाना है । उत्तम वेश्याओंके ये काम अवश्य होते हैं ।

१ इज्जतदारसे चौकीदार आदिका बहाना है ऐसे वैसेसे तो चोरका बहाना ही किया जाता है । सदा जेवर पहिनकर जानेवाली अचानचक रतिको इसका बहाना करती है । यह बात नगरोंकी अपेक्षा गामोंमें ज्यादा चल सकती है ।

आग देनेमें अनेक जीवोंकी हत्याका दोष होगा । चोरोंने दीवालमें छेद करके निकाल लिया यह हल्ला कर दे । अथवा योंही कहे कि, मेरी माने प्रमादसे गुमा दिया ॥ ८ ॥

स्वागत सत्कारका खर्च ।

तथा याचितालङ्काराणां नायकालङ्काराणां च तदभिगमनार्थस्य व्ययस्य प्रणिधिभिर्निवेदनम् ॥ ९ ॥

इसी तरह मांग हुए अलङ्कारोंको एवम् नायकके दिये अलंकारोंको कहे । उसके मिलनेके समयके व्ययको गुप्तचरोंके द्वारा कहलवाये ॥ ९ ॥

तथेति यथा द्रव्यस्य दाहादिना नाशः याचितालङ्काराणां कार्यवशादन्यतो मार्गितानां नायकालङ्काराणां तेन स्थापितानां दाहादिना (नाशे) प्रकाशितेऽवश्यं प्रयच्छति स्वकीयं च न मृगयति । प्रणिधिभिरिति परिचारकमुखा ये नायकेन प्रणिहितास्तैर्व्ययस्यातिवदनं नायकाग्रतस्त्वामभिगन्तुमस्याः सरकताम्बूलादिभिरियान् व्यय उठित (उत्थित) इति ॥ ९ ॥

जिस प्रकार दाह आदिसे धनके नष्ट होनेका बहाना था उसी तरह कार्य्यवश दूसरेके मांगे जो अलंकार हों उनका और नायकके रखे हुए अलंकारोंका भी अग्निसे नाश प्रसिद्ध कर दे । इसका यह नतीजा होगा कि दूसरेके देनेके लिये और जेवर अवश्य ला देगा तथा अपना जेवर नहीं मांगेगा । जो नौकर चाकर आदि नायकने भेजे हों उनसे नायकके अगाड़ी अपना खर्च कहलवाये कि आपसे मिलनेमें इसका इतना खर्च प्यॉले और पान आदिमें हो गया॥९॥

उसका कर्ज ।

तदर्थमृणग्रहणम् । जनन्या सह तदुद्भवस्य व्ययस्य विवादः ॥ १० ॥

नायकके ऊपर खर्च करनेके लिये कर्ज लेना चाहिये, माताके साथ उससे होनेवाले खर्चके लिये विवाद करना चाहिये ॥ १० ॥

तदर्थमिति नायकनिमित्तव्ययार्थम् । ऋणग्रहणं तत्समक्षमित्यर्थात् । जनन्येति । ऋणं किमिति गृह्णासि कथं त्वया शोधयितव्यमित्यभिदधत्या मात्रा सह

---

१ कभी ऐसाभी करती हैं कि इन खर्चोंके पैसे उसी समय रोजकी रोज अपने नोकरों द्वारा ले लिया करती हैं ।

तदुद्भवस्य नायकसम्बन्धिनः कृते नात्मीयस्य विवादः कर्तव्यः । किं तव अहमेवात्मानमपि विक्रीय शोधयिष्यामीति । तेन तथाविधं दृष्ट्वावश्यं ददातीत्यर्थः ॥

नायकके स्वागत सत्कारमें होनेवाले खर्चके लिये उसके सामने ही दूसरेसे कर्ज लेना चाहिये, यदि मा कहे कि तू कर्ज क्यों लेती है, कहांसे देगी ? तो कह दे कि मैं मेरे लिये नहीं किन्तु अपने प्यारेके लिये लेती हूं । इसमें मेरे किसी भी संबन्धीको विवाद न करना चाहिये । मैं अपने आपको बेंचकर भी इस कर्जको चुका दूंगी । ऐसा करनेका वेश्याका आशय यह है कि–उस ऋण लेनेके साथ यह बखेड़ा देखकर वह आप ही अवश्य चुका देगा ॥१० ॥

उत्सवकी बजावट व देना ।

सुहृत्कार्येष्वनभिगमनमनभिहारहेतोः ॥ ११ ॥

नायकके मित्रोंके यहां उत्सव हो तो उसके कहनेपर कहे, कि मेरे पास वहांके कुछ देनेके लिये नहीं है, इस कारण न जाऊंगी ॥ ११ ॥

सुहृत्कार्येष्विति नायकमित्रोत्सवादिष्वनभिगमनं कार्यं आहूयमाना न यामि । नायकेन गण्यमानाया अपि कारणमाह—अनभिहारहेतोरिति । अभिहारमु (उ) पायनं तन्मम नास्तीति ॥ ११ ॥

आपके मित्रोंकें उस उत्सवमें मैं बुलाई हुई भी न जाऊंगी यह कह दे । यदि नायक अपने साथ न जानेका कारण पूछे तो कह दे कि मेरे पास देनेके लिये तो कुछ है ही नहीं ॥ ११ ॥

तैश्च पूर्वमाहृता गुरवोऽभिहाराः पूर्वमुपनीताः पूर्वं श्राविताः स्युः ॥ १२ ॥

उनके लाये हुए बड़े २ उपहार आपने पहिले लिये हैं इस बातको जानेसे पहिले सुना दे ॥ १२ ॥

तैश्च पूर्वमाहृता इति सुहृद्भिरस्माकमप्युत्सवे महान्तोऽभिहाराः । पूर्वमुपनीता इति नायकस्य । पूर्वं श्राविताः स्युः यावदेव सुहृत्कार्यं न संभवति । पूर्वं याचितं हि कार्यकाले प्रयच्छति, यदि न दद्यादवश्यमेव तदानीमनभिगमनम् ॥ १२ ॥

उन सुहृदोंने हमारे भी उत्सवोंमें बड़ी २ चीजें दी हैं । उन चीजोंको नायकको पहिले ही सुना दे जबतक कि सुहृदका वह काम पूरा न हो ले । यदि मांगी हुई चीजोंको जानेसे पहिले ला दे तो जाय, यदि न दे तो कभी न जाय ॥ १२ ॥

दुःखित दिखाना ।

उचितानां क्रियाणां विच्छित्तिः ॥ १३ ॥

उचित क्रियाओंको बन्द कर दे ॥ १३ ॥

उचितानामिति प्रत्यहं शरीरस्थित्यर्थं क्रियमाणानां विच्छेदः कार्यः । येनायमिदानीं शरीरस्थितिरप्यस्या न सम्भवतीति प्रयच्छति ॥ १३ ॥

शरीरकी हिफाजतके लिये जो प्रतिदिन व्ययसाध्य कार्य्य किये जाते हैं उन्हें भी बन्द कर दे, जिससे मिलनेवाला यह समझे कि आजकल इसके शरीरका भी निर्वाह नहीं होता, इसे रुपया दूं जिससे इसका खर्च चले ॥१३॥

नायकार्थं च शिल्पिषु कार्यम् ॥ १४ ॥

नायकसे जिसमें धन लगे ऐसी चीजें कारीगरोंसे बनवा लेना चाहियें॥१४॥

नायकार्थं चेति । नायकादर्थो यस्मिन् । कार्यं शिल्पिषु । निर्देश्यमिति शेषः । अयमुत्कृष्टः शिल्पी कारणकं (?) बहून्मृगयते तच्च मम नास्ति यदि त्वं प्रयच्छसि कारयेयं नो चेदामविति (?) कारयिष्यामीति ॥ १४ ॥

नायकसे कहे कि–यह कारीगर बड़ा अच्छा है उस चीजको मा बहुत ढूंढती फिरती थी वह मेरे यहां नहीं है। यदि आप खर्चा दें तो बनवा लूँ नहीं तो न सही ॥ १४ ॥

वैद्यआदिका उपकार व मित्रोंकी सहायता ।

वैद्यमहामात्रयोरुपकारक्रिया कार्यहेतोः ॥ १५ ॥

अपने कार्य्यके लिये वैद्य और राजके मुख्य पुरुषोंका उपकार करना चाहिये ॥ १५ ॥

उपकारक्रिया उपकारकरणम् । कार्यहेतोरिति इदं तत्कार्यं यदुपकृतौ वैद्या भेषजापदेशेन नायकं दापयन्ति । महामात्रश्चोपकृतो हठाददातुकाममपि ॥१५॥

उपकार करनेका नाम–उपकार क्रिया है। यह वह कार्य्य है जिसके उपकारमें वैद्यलोग दवाके बहाने नायकको मिला देते हैं। उपकृत हुआ राजप्रधान न देनेवाले नायकसे भी जबरदस्ती दिलवा देता है ॥ १५ ॥

मित्राणां चोपकारिणां व्यसनेष्वभ्युपपत्तिः ॥ १६ ॥

नायकके मित्रों अथवा उनके उपकारियोंकी आपत्तिमें सहायता करे॥१६॥

मित्त्राणामिति नायकसम्बन्धिनामुपकर्तुं शीलं येषां नान्येषाम् । व्यसनेषु दैवमानुषेषु अभ्युपपत्तिः साहाय्यम् । तानि हि व्यसनेष्वभ्युपपन्नानि नायकमभिधायोपकुर्वन्ति ॥ १६ ॥

जिसका स्वभाव नायकके सम्बन्धियोंके उपकारोंको करनेका है । दैवी और मानुषी आपत्तियोंमें उसे सहायता दे दूसरोंकीमें नहीं । ये लोग सहायता पाकर अनुकूल हुए नायकसे कहकर उपकार करा देंगे ॥ १६ ॥

घर निर्माणका बहाना व जेवर बेचना ।

गृहकर्म सख्याः पुत्रस्योत्सञ्जनम् दोहदो व्याधिर्मित्रस्य दुःखापनयनमिति ॥ १७ ॥

घर बनवाना, सखीके पुत्रका उत्संजन, उसकी उत्कट इच्छा, मित्रकी व्याधि और दुःखका निवारण करनेका बहाना करे ॥ १७ ॥

गृहकर्मच्छादनेष्टकादि कारयितव्यम् । सख्याः स्वस्याः पुत्रस्योत्सञ्जनं यस्योत्सवनिकेति प्रतिपत्तिः । क्रियाकालोपलक्षणं चैतत् । अन्नप्राशनं चूडाकरणादि वा करणीयम् । दोहदोऽभिलाषो यस्मिन्सख्याः । व्याधिर्वा आकस्मिकः प्रतिकर्तव्यः । मित्त्रस्य च युष्मदीयस्य पुत्रादिमरणान्ममेह दुःखमुत्पन्नं तत्संवर्गणा (?)–दपनेतव्यमिति । इत्येवं गृहकर्मादि व्यपदेश्यमितिशब्दशेषः ॥ १७ ॥

घर पटाना और इष्टका आदि कराना, अपनी सहेलीके बेटेके उत्संजन है उसका छोटा उत्सव होना है उसकी तयारी करनी या उसमें जाना है इन बहानोंसे रुपया ले ले ॥ १७ ॥

अलङ्कारैकदेशविक्रयो नायकस्यार्थे ॥ १८ ॥

नायकके लिये अपने जेवरका कुछ हिस्सा बेच दे ॥ १८ ॥

अलङ्कारैकदेशविक्रय इति स्वस्यालङ्कारस्यैकदेशमाकृष्य तत्समक्षं विक्रेयो येनायं मदर्थे विक्रीणातीति प्रयच्छति ॥ १८ ॥

अपने जेवरका कुछ अंश निकालकर उसीके सामने बेचे; जिससे वह यह समझे, कि मेरे लिये बेचती है तो झट पैसे निकालकर दे देगा ॥ १८ ॥

अच्छी चीजकी बिक्री व घेलमेलसे बचना ।

तया शीलितस्य चालङ्कारस्य भाण्डोपस्करस्य वा वणिजो विक्रयार्थं दर्शनम् ॥ १९ ॥

अपनेको अच्छे लगनेवाले जेवर, बर्तन और घरकी सजावटके सामानको बनियाके सामने विक्रीके लिये दिखाना ॥ १९ ॥

तया नायिकया । शीलितस्य रुचितालंकारस्य भाण्डोपस्करस्य वा शीलितस्य । वणिजः कृतसङ्केतस्य नायकसमक्षं दर्शनं कर्तव्यं येनायं नास्त्यस्याः किमपि यच्छीलितमपि विक्रेतुमारब्धमिति प्रयच्छति ॥ १९ ॥

आप जिस चीजको अच्छा समझती हो ऐसे जेवर, बर्तन और घरके सामानको समझाये हुए बनियाको विक्रीके लिये दिखाये; जिससे नायक यह समझकर कि—इसके कुछ नहीं रहा तब ही यह अपनी प्यारी चीजोंको बेचती है यह समझकर और दे देगा ॥ १९ ॥

प्रतिगणिकानां च सदृशस्य भाण्डस्य व्यतिकरे प्रतिविशिष्टस्य ग्रहणम् ॥ २० ॥

मुकाबिलेकी वेश्याओंके बर्तनके समान बर्तनको उनके बर्तनोंसे बदल जानेकी वजहसे औरोंसे अपने बर्तन बड़े कराना ॥ २० ॥

' भाण्डसम्प्लवे विशिष्टग्रहणम् ' इति दत्तकसूत्रस्पष्टार्थं सूत्रान्तरमाह—प्रतिगणिकानामिति । भाण्डस्य सादृश्यात्स्वेन भाण्डेन व्यतिकरे परिवर्ते सति माभूत्पुनरेवमिति प्रतिशिष्टस्य प्रमाणसंस्थानाभ्यां ततोऽधिकस्य ग्रहणं वणिजो हस्तात् क्रमेण नायकसमक्षं कुर्यात् येनायं क्रीत्वा प्रयच्छति । प्रायशश्च वेश्यानां सामान्यानां कार्योत्पत्तावन्योन्यस्य भाण्डं याचितकं भवतीति प्रतिगणिकाग्रहणम् ॥ २० ॥

दत्तकाचार्य्यने एक सूत्र किया है कि–' वर्तनोंके घेलमेल होजानेपर उनसे कुछ उत्तम एवं न मिलनेवाले बर्तन ले । ' उसी सूत्रको स्पष्ट करते हुए वात्स्यायन कहते हैं, कि—'सामानेकी व साथकी वेश्याओंके बर्तनों जैसे ही होनेके कारण अदल बदल हो जानेसे फिर ऐसा न हो, इस कारण बनियाके हाथसे नायकके सामने बदले जिससे नायक खरीदकर दे दे । प्रायः ऐसा होता है कि समान वेश्याओंमें आपसमें काम पड़नेपर एक एकके बर्तन दूसरी मांग लेती है । वहां उलटा पलटी हो जाना स्वाभाविक बात है । इसी लिये प्रतिगणिका शब्द ग्रहण किया है ॥ २० ॥

कृतज्ञता व प्रतिस्पर्धिनियोंके अधिक लाभ ।

पूर्वोपकाराणामविस्मरणमनुकीर्तनं च ॥ २१ ॥

पहिले उपकारोंको न भूले और उन्हें प्रेमपूर्वक वर्णन करे ॥ २१ ॥

अविस्मरणमिति विस्मरणे हि तवेदं मयोपहृतमिति यदि तेनाभिहिता किं ब्रूयात् । अनुकीर्तनं च तत्समक्षं मयोपकृतमत्र न नश्यतीति पुनः प्रयच्छति ॥

यदि उसके किये उपकारोंको भूल जायगी तो जब नायक यह कहेगा कि मैंने उस समय तुम्हें अमुक चीज लाकर दी थी तो क्या कहेगी? इससे सामने उसके किये उपकारोंके कहनेका यही तात्पर्य्य है कि वह यह समझेगा कि यह बड़ी कृतज्ञ है इसका किया उपकार न मिटेगा प्रत्युत कृतज्ञताके रूपमें प्रकट होगा अतः फिर देगा ॥ २१ ॥

प्रणिधिभिः प्रतिगणिकानां लाभातिशयं श्रावयेत् ॥२२॥

अनुचरोंके द्वारा नायकको मुकाबिलेकी वेश्याओंको हुए२ अपनेसे अधिक लाभोंको सुनवाये ॥ २२ ॥

प्रणिधिभिश्चारैः प्रतिगणिकानामात्मनातुल्यदानमभिहीनां (?) लाभातिशयश्रावणम् । नायकसमक्षं भवदावासाद्विष्णुमित्रया लब्धमिदमधिकमित्यादि २२

जो गणिकाएँ ऐसी हों कि उन्हें अपने बराबर ही मिलना चाहिये अधिक न मिलना चाहिये उन्हें अपनेसे अधिक लाभान्वित बतवाये कि आपके पड़ोसी विष्णुमित्रसे उसे इतना धन मिला है ॥ २२ ॥

तासु नायकसमक्षमात्मनोऽभ्यधिकं लाभं भूतमभूतं वा व्रीडिता नाम वर्णयेत् ॥ २३ ॥

यदि वे अपने यहां आई हों तो नायकके सामने उससे अपने अधिक हुए लाभको कहे, यदि न हुए हों तो कुछ शरमाकर ही हुआ बताये ॥ २३ ॥

तास्विति प्रतिगणिकासु यो लाभस्तस्मादप्यधिकमिति योज्यम् । भूतं वा नायकेन दत्तम् । अभूतमदत्तम् । व्रीडिता नामेति लज्जितेव वर्णयेत् । येन सोऽपि लज्जितः प्रयच्छेत् ॥ २३ ॥

जो उन्हें लाभ हुआ हो आप उनसे भी अधिक हुआ बताये, कि मुझे आपसे भी अधिक इनसे मिला है। यदि न मिला हो तो उसे नायकके देखते उनके सामने कुछ लजाकर कहे, कि मेरे पास है । इसका यह फल होगा कि वह भी शरमाकर उस चीजको दे देगा ॥ २२ ॥

खुलीमने व त्यागी रकीबोंका दिखाना ।

पूर्वयोगिनां च लाभातिशयेन पुनः सन्धाने यतमानानामाविष्कृतः प्रतिषेधः ॥ २४ ॥

पहिले मिले हुए जो अधिक लाभसे फिर मिलनेके लिये प्रयत्न कर रहे हैं उनके लिये खुली इनकार करनी चाहिये ॥ २४ ॥

पूर्वयोगिनामिति । पूर्वसंसृष्टानां विशीर्णानां लाभातिशयेनाधिकेन लाभेन पुनः सन्धाने यतमानानां यत्नं कुर्वतामाविष्कृतः प्रकटः प्रतिषेधः कर्तव्यः । तथासौ श्रुत्वा मय्यनुरक्तेति प्रयच्छति ॥ २४ ॥

जो पहिले मिलनेवाले हों एवम् कारण वश हटा दिये. हों; यदि फिर वे पहिलेसे अधिक देकर मिलना चाहते हों एवं प्रयत्न कर रहे हों तो भी उन्हें जाहिरामें तो इनकार ही करनी चाहिये; जिसे सुनकर नायक यह जान जाय कि मुझमें बड़ी अनुरक्त है इस कारण जो माँगेगी सो दे देगा ॥ २४ ॥

तत्स्पर्धिनां त्यागयोगिनां निदर्शनम् ॥ २५ ॥

नायकसे स्पर्धा रखनेवाले त्यागियोंको दिखाना चाहिये ॥ २५ ॥

तत्स्पर्धिनां चेति नायकस्पर्धिनां त्यागयोगिनां निदर्शनं प्रणिधिभिः । सभागत्वख्यापनार्थमित्यर्थः। येनायं श्रुत्वा वितरेत् । एषा मा भूदिति (?)प्रयच्छति २५

नायकके साथ प्रतिद्वन्द्विता रखनेवाले त्यागयोगी व्यक्तियोंको अपनी ओर झुकते हुए नायकको दिखलावे, गुप्तचरोंके द्वारा कि-ये मेर भागीदार खड़े हैं जिससे सुनकर दे देगा कि कहीं यह उनकी न हो जाय ॥ २५ ॥

बच्चोंकी तरह माँगना ।

न पुनरेष्यतीति बालयाचितकमित्यर्थागमोपायाः ॥२६॥

यदि यह जच जाय कि फिर न आयेगा तो बच्चेकी तरह माँगे ॥ २६ ॥

न पुनरेष्यतीति । न पुनर्गृहमनेनागन्तव्यमिति बालेन प्रयुक्तेन याचितकं कायमिद मे देहीति । बालवद्वा लज्जां त्यक्त्वा याचितव्यमित्यर्थः । एतेऽर्थागमोपाया देशकालावस्थापेक्षया प्रयोक्तव्याः । इत्यर्थागमोपायास्त्रिपञ्चाशत्तमं प्रकरणम् ॥ २६ ॥

जब यह विश्वास हो कि अब इसे घर आना नहीं है तो बच्चेकी तरह लाजको छोड़कर माँग ले या बालक जैसे प्रेमाग्रहसे माँगते हैं उस तरह माँग ले । ये धन खींचनेके उपाय हैं-देश, काल और अवस्था देखकर इनका प्रयोग करना चाहिये । ये 'धन आनेके उपाय' नामक ५३ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥२६॥

विरक्तप्रतिपत्ति प्रकरण ।

सक्ताद्वित्तादानमुपायैरुक्तं विरक्ते तु किं प्रतिपद्येतेति विरक्तप्रतिपत्तिरुच्यते ।

अपनेपर दिवाने हुएसे उपायोंसे धन खींचना बता दिया है, किन्तु जिसका मन अपनेसे हट गया हो उसके साथ क्या बर्ताव करना चाहिये इस कारण इस प्रकरणको कहा है ।

विरक्तकी पहिचान ।

तत्र विरक्तस्य लक्षणमाह—

विना अपनेसे हटे हुएको पहिचाने उसके साथ किये जानेवाले कर्तव्यका निश्चय नहीं किया जा सकता, इस कारण विरक्तका लक्षण करते हैं कि—

विरक्तं च नित्यमेव प्रकृतिविक्रियातो विद्यात् मुखवर्णाच्च ॥ २७ ॥

विरक्तको सब बातोंमें प्रकृतिके बदलजाने तथा मुखके राग रंगसे पहिचान ले॥

नित्यमेवेति सर्वत्र क्रियासु वर्तमानम् । प्रकृतिविक्रियात इति स्वभावान्यथात्वेनेत्यर्थः । अनेनेङ्गितमन्यथावृत्तिलक्षणं दर्शयति । मुखवर्णाच्च विद्यादित्येव । मुखरागादित्यर्थः । कश्चिदेव मुखरागेऽभिरागं सूचयति तेनेङ्गिताकाराभ्यां रक्तवद्विरक्तमपि विद्यादित्युक्तम् ॥ २७ ॥

विरक्तको सब कामोंमें पहिले जैसे करता था उनके बदलनेसे और मुखके रागसे पहिचान ले । इससे यह बात सिद्ध हो गई कि जैसे अनुरक्तकी चेष्टाओं और मुखकी रंगतसे पहिचान होती है उसी तरह अन्यथावृत्तिरूप चेष्टाएँ तथा मुखपर जो प्रेमका अभिराग होता है उससे भिन्न राग देखकर हटे हुएकी पहिचान कर ले यह इससे सिद्ध हो गया ॥ २७ ॥

मनबदले हुएके कार्य ।

तामन्यथावृत्तिमाह—

अब विरक्तकी उन चेष्टाओंको बताते हैं जिनसे उसे पहिचाना जा सकता है—

ऊनमतिरिक्तं वा ददाति ॥ २८ ॥

कम वा ज्यादा दे ॥ २८ ॥

अतिरिक्तं वा यथादीयमानात् ॥ २८ ॥

जो दिया करता था उससे कम दे। उसे दे दे और अतिरिक्त भी दे दे २८

प्रतिलोमैः सम्बध्यते ॥ २९ ॥

विपक्षियोंसे सम्बन्ध करे ॥ २९ ॥

प्रतिलोमैः सम्बध्यते नायिकाया विपक्षैः सह प्रीतिं करोति ॥ २९ ॥

नायिकाके दुश्मनोंके साथ प्रेम करे ॥ २९ ॥

व्यपदिश्यान्यत्करोति ॥ ३० ॥

कहकर दूसरे कामको करे ॥ ३० ॥

व्यपदिश्य स्नातव्यमिति अन्यत्करोति सज्जीकृतेऽपि स्नानोपकरणे भुंक्ते ३०

कहे कि स्नान करूँगा पर जब स्नानकी तयारी की जाय तो उसे छोड़ भोजन करने बैठ जाय ॥ ३० ॥

उचितमाच्छिनत्ति ॥ ३१ ॥

उचितको भी रोक दे ॥ ३१ ॥

उचितमाच्छिनत्ति—प्रत्यहं दीयमानं न ददाति ॥ ३१ ॥

जो वह रोज दिया करता था उसका भी देना बन्द कर दे ॥ ३१ ॥

प्रतिज्ञातं विस्मरति । अन्यथा वा योजयति ॥ ३२ ॥

देनेको कहकर भी न दे, या कह दे कि इसके लिये कब कहा था ॥ ३२ ॥

प्रतिज्ञातमिदं मया देयमिति विस्मरति । मृग्यमाणे न प्रतिज्ञातमित्यन्यथा योजयति न त्विदमिति ॥ ३२ ॥

मैं यह दूंगा इस बातकी प्रतिज्ञा करके भूल जाय, जब तपास किया जाय तो कह दे कि मैंने इस चीजके लिये नहीं कहा इस चीजके लिये कहा था ३२

स्वपक्षैः संज्ञया भाषते ॥ ३३ ॥

अपने निजी मिलनेवालोंसे इशारेसे बातें करे ॥ ३३ ॥

स्वपक्षैरिति मित्रादिभिः सह संज्ञया भाषते न वचसा । माश्रौषीदियमिति ॥ ३३ ॥

अपने मित्र आदिकोंसे संकेतसे बातेंचीतें करे, शब्दसे साक्षात् नहीं कहे कि—'साफ कहनेपर कहीं यह न सुन ले' ॥ ३३ ॥

मित्रकार्यमपदिश्यान्यत्र शेते ॥ ३४ ॥

मित्रोंके कामका बहाना करके दूसरी जगह जा सोये ॥ ३४ ॥

मित्रकार्यमपदिश्य मयाद्य कर्तव्यमित्यन्यत्र शेते नायिकान्तरगृहे ॥ ३४ ॥

' मैं अब जाऊंगा मित्रोंका कार्य करूंगा ' यह कहकर किसी दूसरी प्यारीके घर जा सोये ॥ ३४ ॥

पूर्वसंसृष्टायाश्च परिजनेन मिथः कथयति ॥ ३५ ॥

पहिले मिली हुई नायिकाके नौकरसे इस नायिकाकी सारी बातें कह दे ३५

पूर्वसंसृष्टायाश्च नायिकायाः परिजनेन परिचारकेण सह मिथो रहसि कथयति यत्पूर्ववृत्तं वर्तमाननायिकागतं वा ॥ ३५ ॥

पहिलेकी मिलनेवाली वेश्याके नौकरसे एकान्तमें इस नायिकाकी पुरानी बातोंको कहे ॥ ३५ ॥

उससे वेश्याकी हुशियारी ।

तस्मिन्विरक्त इति ज्ञातेऽनुष्ठानमाह—

मिलनेवालेके विषयमें इस बातका पता चल जाय कि इसकी तबीयत मुझसे हट चुकी है तो फिर वेश्याको क्या करना चाहिये ? यह बताते हैं, कि–

तस्य सारद्रव्याणि प्रागवबोधादन्यापदेशेन हस्ते कुर्वीत ॥ ३६ ॥

जबतक उसे इस बातका पता न चले कि यह मुझे जान गई इससे पहिले किसी बहाने उसके सारको अपने हाथ कर ले ॥ ३६ ॥

प्रागवबोधादिति यावदसौ न जानाति ज्ञातोऽहमनया विरक्त इति । अन्यथा प्रतिविधानान्तरं चिन्तयेत् । तत्राप्यन्यापदेशेन । यत्किंचिद्व्याजं कृत्वेत्यर्थः ॥ ३६ ॥

यदि करे हाथमें तो उतने समयतक जबतक कि उसे यही ज्ञान रहे कि यह मुझे नहीं जानती, नहीं तो उसके प्रतिकारका उपाय सोचे । जो भी कोई बहाना मिले उसीसे खींच ले ॥ ३६ ॥

तानि चास्या हस्तादुत्तमर्णः प्रसह्य गृह्णीयात् ॥ ३७ ॥

नायिकाका साहूकार नायकके सारको नायिकाके हाथसे बलपूर्वक ले ले ३७

तानि चेति सारद्रव्याणि । तस्या (अस्या) इति नायिकाया हस्तात् । उत्तमर्ण इति तस्मादुत्तमर्णान्नायकार्थमृणमाहृतं (!) गृहीतवती स तया कृतसंकेतः प्रसह्याभिभूय गृह्णीयात् ॥ ३७ ॥

यदि इस तरह धन हाथ न आये तो नायिकाका सिखाया हुआ नायिकाको नायकके लिये कर्ज देनेवाला साहूकार नायिकाके हाथसे बलपूर्वक छीन ले ॥ ३७ ॥

विवदमानेन सह धर्मस्थेषु व्यवहरेदिति विरक्तप्रतिपत्तिः ॥ ३८ ॥

यदि साहूकारसे नायक विवाद करे तो धर्माधिकारियों तक झगड़े । ये विरक्तके लक्षण, काम और विरक्तके प्रति वेश्याके काम पूरे हुए ॥ ३८ ॥

विवदमानेनेति मदीयमेतत्त्वं किं गृह्णासीति विवादं कुर्वता नायकेन सह धर्मस्थेषु प्राड्विवाकादिषु च व्यवहरेदुत्तमर्णः । यदि तु न विवदेत्सिद्धं कार्यम् । इति विरक्तप्रतिपत्तिश्चतुःपञ्चाशं प्रकरणम् ॥ ३८ ॥

'यह मेरा तुम कैसे लोगे' यह झगड़ा करनेवाले नायकके साथ अदालत और वकीलोंतक साहूकारको पहुँचना चाहिये । जो नायक विवाद न करे तो कार्य्य ही सिद्ध हो गया । यह 'विरक्त हुएमें वेश्याका कर्तव्य' नामक ५४ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

निकलनेके क्रमका प्रकरण ।

विरक्तस्य स्वयमेव निष्कासितत्वान्न निष्कासनम् । यस्तु सक्तत्वात्स्वयं न निष्कसति तस्य निष्कासनक्रमा उच्यन्ते ।

जिसकी तबीयत वेश्यासे हट गई वह तो अपने आप ही हट जायगा उसे तो निकालनेकी आवश्यकता ही क्या है, किन्तु जिसके पास देनेको कुछ नहीं रहा सब दे चुका पर आसक्त बना हुआ है उसके 'निकालनेका क्रम' कहते हैं ।

तत्रायं प्रथमः कामो (कल्पो) यदस्यानुपासनम् । यदाह—

पहिलाकाम—तो निकालनेका यही है कि मिलनेवालेकी सेवा करना छोड़ दे, इसी बातको बताते हैं, कि—

सक्तं तु पूर्वोपकारिणमप्यल्पफलं व्यलीकेनानुपालयेत् ॥ ३९ ॥

थोड़े देनेवाले भी पहिलेके उपकारी आशिकको खुटाई करती हुई भी निभाये ॥ ३९ ॥

अल्पदत्तमपि व्यलीकेनापराधेनानुपालयेत् । तस्य सक्तत्वात् । पूर्वं बहुधा कृतोपकारोऽपि परामिच्छति तदा निष्कासयेदित्यर्थः ॥ ३९ ॥

थोड़े देनेवालेको भी अपराधके साथ निवाहे, क्योंकि वह उसका आसक्त है इस कारण उसे धक्के न लगाना चाहिये, किन्तु जिसने बहुतसे उपकार किये भी हों पर दूसरीको चाहता हो तो उसे अवश्य निकाल दे ॥ ३९ ॥

न कुछ देनेवालेका निष्कासन ।

असारं तु निष्प्रतिपत्तिकमुपायतोऽपवाहयेत् । अन्यमवष्टभ्य ॥ ४० ॥

न कुछ करनेवाले निर्धनको तो किसी दूसरेका सहारा लेकर ही निकाले ४०

असारं निर्द्रव्यम् । अपवाहयेन्निष्कासयेत् । यद्यपि तदात्वेनापि तथा भविष्यतीति चेदाह—निष्प्रतिपत्तिकमिति । निरनुष्ठानमित्यर्थः । ननु रतिफलत्वात्कथं निष्कास्य इति चेदाह—अन्यमवष्टभ्येति । अन्यस्मादुभयोपपत्तेः । वर्तमानादन्यं पूर्वसृष्टं विशीर्णमन्यं चास्य चासृत्य (चानुसृत्य) अपवाहयेदिति योज्यम् । अन्यथा विपक्षस्याभावात् । सत्यप्युपयोगे सक्तस्यानिष्कासनात् ४०॥

जिसके पास कुछ न रहा हो तो उसे निकलवा दे, यद्यपि उस समय भी निकाला जा सकता है इसके विषयमें कहते हैं निर्धन होकर भी अपना कुछ काम न करे । इसपर कहते हैं कि कुछ न करता हो तो रतिफल तो उससे है ? इसका उत्तर देते हैं कि जिस पुरुषसे धन और रतिफल दोनों मिलें उसका सहारा लेकर निकाले । वर्तमानसे किसी दूसरे अथवा किसी छोड़े हुएको मिला, उसके अनुसार धक्के लगाये । विना ऐसा किये उसका कोई विपक्षी तो है नहीं अतः उपयोग होनेपर भी आसक्त नहीं निकाला जा सकता॥४०॥

इसपर साहित्य ।

कामसूत्र जिस रूपमें निकालना बताया है तो साहित्यमें हम इसका यही रूप भी देखते हैं । इस बातका कुछ सूक्ष्मसा दिग्दर्शन कराये देते हैं कि—

" आश्चर्यं ताः खलु अस्माकं प्रदीपिका अपमानितनिर्धनकामुका इव गणिका निःस्नेहा इदानीं संवृत्ताः "

बड़े आश्चर्यकी वात है कि हमारे घरके दीपकोंके स्नेहाभावकी वह दशा हो गई जैसी कि वेश्याएँ निर्धन कामुकका अपमान करती वार अपने

हृदयमें उसके प्रेमका एक अणु भी नहीं रहने देतीं । कोई भी हो वेश्याओंके प्रति ध्यान सबका यही रहता है । महात्मा चारुदत्त जो वसन्तसेनापर सब कुछ स्वाहा कर चुके थे वे भी वसन्तसेनाके लिये यही खयाल करते थे कि–

" यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता धनहार्य्यो ह्यसौ जनः ।
वयमर्थैः परित्यक्ता ननु त्यक्तैव सा मया ॥ "

जिसके पास धन है उसकी ही वह प्यारी है, क्योंकि वह तो ऐसा जन है जो धनसे खींचा जा सकता है । भाग्यकी बात है कि आज हमारे पास धन रहा नहीं; धनने हमें छोड़ दिया, जब मेरे पास धन नहीं तो फिर उसे कहांसे पा सकूंगा । पर मैंने उसे नहीं छोड़ा है पर एक तरहसे तो छूटी ही समझो । दशकुमारचरित्रमें दिखाया है, कि चम्पारण्यके नगरसेठका पुत्र वसुपालित था, उसका एक रँगीले सुन्दर युवकके साथ विवाद हो गया वहां यह ठहरा कि–' जिसे स्त्रियाँ बड़ा बताती हैं वही मनुष्य बडा है । ' इस बातका निश्चय करानेके लिये काममंजरीके पास आये, उसने उस छोड वसुपालितको ही अपनाया । उसने–" स्वधनस्य स्वगृहस्य स्वगणस्य स्वदेहस्य स्वजीवितस्य च सैव ईश्वरी कृता " उसने उसे ही धन, गृह, गण, देह और जीवनकी स्वामिनी बना डाला । उसने अन्तमें उसके पास कुछ न छोड़ा । तब पीठमर्दोंकी दशा कर डाली । अन्तमें " हृतसर्वस्वतया चापवाहितः " घरसे धक्का मार कर निकाल दिया । दुनियाँकी हँसीका एक व ी निशान बन गया । नगरके वृद्धजनोंकी धिक्कारोंको जब न सह सका तो एक मठमें भाग आया " यह बात लेखनकी ही नहीं, प्रत्यक्ष भी है कि—"उस घरको खाके छोड़ा" जिसपर इनके कृपाकटाक्ष पड़े हैं उस घरको भी अन्तमें खोकरके ही छोड़ा है । भारतके हिन्दूसाम्राज्यको मिटानेका पाप भी वेश्यामण्डलपर ही है, क्योंकि भारतके अन्तिम हिन्दूसम्राट् पृथ्वीराज चौहानके अपने मंत्री कैमासकी हत्या कर्णाटकी वेश्याके पीछे न की होती तो पृथ्वीराजसे संयोगिताके स्वयंवरमें जानेकी बेहोशी कभी न हुई होती ।

निकालनेके प्रकट काम ।

ते च निष्कासनोपायाः प्रकाशे रहसि वा स्थितस्य । तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

उसे निकालनेके दो तरहके उपाय हैं—एक तो एकान्तके तथा दूसरे जाहिराके । इन दोनोंमें पहिले जाहिराके उपाय बताते हैं, कि—

तदनिष्टसेवा । निन्दिताभ्यासः । ओष्ठनिर्भोगः । पादेन भूमेरभिघातः । अविज्ञातविषयस्य संकथा । तद्विज्ञातेष्वविस्मयः कुत्सा च । दर्पविघातः । अधिकैः सह संवासः । अनपेक्षणम् । समानदोषाणां निन्दा । रहसि चावस्थानम् ॥ ४१ ॥

जिन्हें नायक नहीं चाहता उनकी सेवा, निन्दित कर्मोंका बारबार करना, होंठ चबाना, पैरसे जमीन कुचलना, विना जाने हुए विषयकी बातें, नायकके जाने हुओंमें विस्मय न करना, निन्दा करना, अभिमान चूर्ण करना, उससे बड़ोंके साथ रहना, उसे न देखना, नायकके से दोषोंवालोंकी बुराई और अकेले बैठना आदि होते हैं ॥ ४१ ॥

तस्य नायकस्य यदनिष्टं तस्य सेवा कर्तव्या येनायं प्रागेवेयं मम च्छन्दानुवर्तिनी संप्रति कारवादभक्ष (?) विरक्तेति व्यावर्तते । निन्दितं गर्हितं तृणच्छेदलोष्टमर्दनादि तस्याभ्यासः पुनः पुनः करणं तदग्रतः । येनायं ममाशुभं कांक्षत इति जानाति । ओष्ठनिर्भोगः तं दृष्ट्वा स्वमोष्टं च क्रोडीकृत्य भयं निष्कासयेत् । पादेन भूमेरभिघातो भूमौ पादास्फालनम् । तदुभयं नित्यक्रुद्धताख्यापनार्थम् । अविज्ञातविषयस्य संकथेति यस्मिन्विषये नायकस्य परिज्ञानं नास्ति तस्मिन् तस्य संबन्धिनी शोभनमिदं जानातीति संकथा कर्तव्या यथास्य लोकमध्ये वैलक्ष्यं भवति । विज्ञातेष्वविस्मयो विरागख्यापनार्थम् । कुत्सा च दुःशिक्षितमस्य । दर्पविघातः शौर्यादिजनितदर्पस्यापनयनमन्यं प्रोत्साह्य । येनायं विलक्षीभवति । अधिकैः सह संवासो येन तेभ्यो बिभ्यन्न ढौकते । अनपेक्षणमिष्टानिष्टवस्तुष्ववज्ञाख्यापनार्थम् । समानदोषाणां निन्दा यथायं तद्द्वारेण मां कुत्सतीति जानाति । रहसि चावस्थानं संकथा वा ॥ ४१ ॥

नायक जिसे देखना भी नहीं चाहता उसकी सेवा करनी चाहिये, जिससे नायक यह समझ ले कि पहिले तो यह मेरी मरजीके अनुसार चलती थी इस समय इस तरह क्यों हटी हुई है; जिस तरह कि बुरी आवाजको सुनकर बुरी चीजके खानेवाली हट जाती है । उसके सामने बारबार तिनुका तोड़ना आटे घिसना आदि अशुभ कर्म करे जिससे वह यह समझे कि मेरा बुरा चाहती है जिससे कि हट जाय। उसे देखते ही अपना होंठ टेढा करके चबाने

लग जाय जिससे वह डरे । जमीनमें पैर मारे । ये दोनों बातें सदा गुस्सा दिखानेकी हैं । जिस बातको नायक नहीं जानता उसी विषयमें बातचीत शुरू करके कहे कि इसे यह अच्छा जानते हैं जिससे लोगोंमें उसकी हिजोय हो । यदि वह ज्ञाता निकले तो अपनी अरुचि दिखानेके लिये अचरज भी प्रकट न करे । इसने कुछ न सीखा क्या सीखा है यह बुराई करनी चाहिये । उसे जो शूरवीरतापर अभिमान हुआ हो तो दूसरे किसीको उकसाकर चूर्ण कर दे, जिससे वह विलख जाय । बड़ोंके साथ रहनेपर उनसे डरकर आप ही न आयेगा । इष्ट और अनिष्ट वस्तुओंमें अवज्ञा दिखानेके लिये ही नहीं देखती । बराबरके दोषियोंकी बुराई करनेसे वह यह समझे कि उसके बहानेसे मेरी बुराई करती है । उससे अलग बैठना और बातें करना ये बाहिरके काम हैं ॥४१॥

सहवासके समयकी खटपट ।

तत्र रतमधिकृत्याह—

जिसे निकालना है यदि वह मैथुन करे तो उसके साथ किये जानेवाले उन कामोंको कहते हैं जिससे कि उसे विरसताका अनुभव होकर आप ही हट जाय, कि—

रतोपचारेषूद्वेगः । मुखस्यादानम् । जघनस्य रक्षणम् । नखदशनक्षतेभ्यो जुगुप्सा । परिष्वङ्गे भुजमय्या सूच्या व्यवधानम् । स्तब्धता गात्राणाम् । सक्थ्नोर्व्यत्यासः । निद्रापरत्वं च । श्रान्तमुपलभ्य चोदना । अशक्तौ हासः । शक्तावनभिनन्दनम् । दिवापि । भावमुपलभ्य महाजनाभिगमनम् ॥ ४२ ॥

रमणके उपचारोंमें उद्वेग, मुँहका न देना, जघनका बचाना, नाखून और दाँतोंकी बुराई, आलिङ्गनमें भुजाकी कैंचीसे व्यवधान, गात्रोंकी कठोरता, कमर जाघोंका बदलना, नींद लेने लग जाना, थके हुएको उकसाना, अशक्तिमें हँसना, शक्तिमें बड़ाई भी न करना, दिनकी बुराई करना, उसके मिलनेके भावको देख रतिगृहसे निकल बड़े आदमीके पास चले जाना ॥ ४२ ॥

रतार्थं सरकताम्बूलादिषूपचारेषु उद्वेग इत्यप्रतिग्रहणम् । प्रतिग्रहणे वा असौमनस्यम् । मुखस्यादानं मुखं चुम्बितुं न देयम् । जघनस्य रक्षणं स्प्रष्टुं वा

न देयम् । नखदशनक्षतेभ्यस्तत्कृतेभ्यो जुगुप्सा । 'जुगुप्साद्यर्थानाम्' इत्यपादानसंज्ञा । भुजमध्येति । भुजौ व्यत्यस्य स्वस्कन्धयोर्निदध्यात् । ततो भुजमेकीकृत्य सूचीव सूची तया व्यवधानं परिष्वङ्गस्य । स्तब्धता गात्राणां कर्तव्या । नाकृष्टुं दद्यादित्यर्थः । सक्थ्नोर्व्यत्यास सक्थिनी व्यत्यासयीत । यन्त्रयोगे प्रतिषेधार्थमुरू व्यत्यसेदित्यर्थः । निद्रापरत्वं चात्मनः ख्याप्यम् । श्रान्तमुपलभ्येति । यदि कथंचिद्रन्तुं प्रवृत्तस्तत्र श्रान्तं चोदयेत्प्रवर्तयितुम् । न पुरुषायितेन साहाय्यं दद्यात् । तत्र चोदितस्याशक्तौ हासः कर्तव्यः पार्ष्ण्याभिहत्य यथायं विरक्तीभवति । शक्तावनभिनन्दनं वैराग्यख्यापनार्थम् । दिवापीति । अस्त्येव कश्चित्कामगर्दभो यः प्रतिषिद्धमपि दिवामैथुनमाचरति । उत्कण्ठां (भावं) संप्रयोगेच्छामुपलभ्य चेङ्गिताकाराभ्यां महाजनाभिगमनं रतिगृहान्निर्गत्य । तदिच्छाव्याघातार्थम् ॥ ४२ ॥

मिलनेके समयके वस्लेजाम और पान आदिको उसके हाथसे न लेना, यदि लेना भी पड़े तो प्रसन्नता न दिखाना । यदि वह मुँह चूमना चाहे तो चूमने भी न देना । यदि वह मदनमंदिरपर हाथ डाल छूना चाहे तो हाथ भी न डालने देना । उसने जो पहिले नाखून और दाँत लगा रखे हों उनकी बुराई करना । यदि आलिंगन करना चाहे तो बाँया हाथ दाहिने कन्धेसे और दाहिना हाथ बाँये कन्धेपर लगा हाथोंकी केंचीसे सीनेको ढक लेना । अंगोंको कड़ा कर ले खींचने भी न देना । यंत्रयोगको हटा देनेके लिये जाघें इधर उधर कर डालना । मिलनेके समय कहना कि मुझे नींद आती है । यदि किसी तरह रमणमें प्रवृत्त हुआ और वहां थक गया हो तो जब वह थक जाय तब कहना कि बस इतना ही दम है एवम् थक हुए पुरुषको जो स्त्रियाँ पुरुषचेष्टा करके सहायता देती हैं वह न देना । उसमें लगाया हुआ यदि काम न कर सके तो उसकी दिल्लगी करनी, उसमें लातें लगाना जिससे वह विरक्त हो । यदि समर्थ हो तो तारीफ न करना जिससे कि वह विरक्त हो जाय । उसकी बुराई करना कि कोई 'कामगर्दभ' है जो शास्त्रसे मने किये हुए दिवामैथुनको भी करता है । यदि उसकी सहवास करनेकी इच्छा इशारों और मुखरागसे प्रतीत हो तो उसके रतिभवनसे निकलकर उसकी इच्छाके व्याघात करनेके लिये किसी बड़े आदमीसे मिलने चली जाना । ये काम वेश्याके रमणके समयके होते हैं ॥ ४२ ॥

बातोंमें धता बतानेकी क्रिया ।

सङ्कथामधिकृत्याह—

उसके साथ हटानेकी बातेंचीतें किस प्रकार करनी चाहियें ? इस विषयका अधिकार लेकर कहते हैं कि—

वाक्येषु च्छलग्रहणम् । अनर्मणि हासः । नर्मणि चान्यमपदिश्य हसति वदति तस्मिन्कटाक्षेण परिजनस्य प्रेक्षणं ताडनं च । आहत्य चास्य कथामन्याः कथाः। तद्व्यलीकानां व्यसनानां चापरिहार्याणामनुकीर्तनम् । मर्मणां च चेटिकयोपक्षेपणम् ॥ ४३ ॥

बातोंमें छल, विना खेलके हँसी, खेलमें दूसरेके बहानेसे हँसी, उसके बात कहते परिजनको कटाक्षके साथ देखना व ताडना देना, उसकी बातको बीचमें काटकर दूसरी बात कहना, उसकी ऐसी बुरी आदतोंकी जिकर करना जिन्हें कि वह न छोड़ सके। उसकी गुप्तबातोंको नौकरानीके बहाने कहना ॥४३॥

वाक्येष्विति-विरूपकमुक्तमिति । अनर्मणीति—क्रीडारहितेऽपि संकथने हासोऽकस्मात्कर्तव्यः येनायं विनैव क्रीडाक्रियया मामुपहसतीति मन्यते । क्रीडायां प्रस्तुतायां वदति तस्मिन्नायके हसति । तेनाभिधीयमानादन्यमन्यमर्थमपदिश्य परिजनस्य कटाक्षेण प्रेक्षणं कर्तव्यम् । ताडनं च सहासं हस्तेन । येनान्यायां जानाति नाकस्मात्कथायां रमत इति । आहत्य चेति । तेन क्रियमाणां कथामपास्यान्याः कथाः कर्तव्याः । तद्व्यलीकानां नायकापराधानाम् । व्यसनानां द्यूतादीनाम् । अपरिहार्याणामिति यान्युभयान्यपि परिहर्तुमशक्यानि तेषामनुकीर्तनं वैराग्यजननार्थम् । मर्मणां चानुकीर्तनं येष्वूक्तेषु दुःखमास्ते । चेटिकोपक्षेपणं चेटिकामुपक्षिप्य सर्वमभिधापयेत् ॥ ४३ ॥

जो वह बात कहे उसे गलत बताये। विना भी रंगरेलीके अकस्मात् हँसे; जिससे कि वह यह समझे कि यह विना भी खेलके कामोंके मेरी हँसी करती है। खेल शुरू होनेपर नायकके हँसते जिस बातको वह कहता है उससे दूसरे २ मतलबोंका बहाना करके पास बैठे हुए व्यक्तियोंको कटाक्षसे देखे। हँसते हुए हाथसे इस तरह मारे जिससे कि वह जान जाय कि यह अकस्मात् दूसरी बातोंमें नहीं बहकाई जा सकती। यदि वह किसी बातको कह रहा हो तो उस बातको काटकर दूसरी बातें शुरू कर दे। नायकके व्यसन

जूए आदिको और अपराधोंको जिन्हें कि वह छोड़ न सकता हो उन्हें उसके सामने बारबार कहे जिससे कि उसे वैराग्य हो जाय । उसकी उन गुप्त बातोंको कहे जिन्हें सुनकर दुःखित बैठा रहे । ये सब बातें अपनी नौकरानी-पर आक्षेप करते हुए कहना चाहिये ॥ ४३ ॥

आखिरको धक्के ।

एभिरुपायैर्निष्क्रमणयोग्यतामापादितस्योपायद्वयं यतः पुनर्नागच्छतीति । यदाह—

इन उपायोंसे उसमें धक्का खानेकी योग्यता पैदा कर दे, फिर उसके निकाल देनेके दो उपाय हैं जिनके करनेपर फिर वह न आये । उन्हीं दोनों उपायोंको बताते हैं कि—

आगते चादर्शनम् । अयाच्ययाचनम् । अन्ते स्वयं मोक्षश्चेति परिग्रहकस्येति दत्तकस्य ॥ ४४ ॥

उसके आनेपर उसे न दीखना, न मांगनेकी चीजें माँगना, अन्तमें स्वयमेव नौकरोंसे धक्का देकर निकलवा देना । वेश्याके मिलनेवालेके परिग्रहकी इतनी ही विधि दत्तकाचार्य्यकी कही हुई मैंने कही है ॥ ४४ ॥

आगते चादर्शनमिति । यावद्यावदागच्छति तावत्तावदात्मानं न दर्शयेत् । पश्यति चेदयाच्ययाचनम् । यन्न याचितुमर्हति तद्याचेत । अन्ते चावसाने मोक्षः स्वयमेव परित्यागः कर्तव्यः । तस्योपायैः प्रायेण निवारितत्वात् । परिग्रहक-स्येति । वेश्याया गम्यस्य यः परिग्रहस्तस्य विधिरेतावानेव दत्तकप्रोक्तो न मया-भिहितः । तेन हि गणिकानां नियोगात्संक्षेपेणाभिधातुमीप्सितत्वात् ॥ ४४ ॥

जितना २ भी वह देखनेके लिये आये उतना २ ही वह अपनेको छिपाये चली जाय, न दिखाये। यदि किसी तरह देखे भी तो ऐसी चीज माँगे जो मांगनेकी न हो । आखिरको उसका अपनेसे ही त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि हटानेके उपाय तो सब किये ही जा चुके हैं । वेश्याका जो मिलने-

---

१ यह बात तो जहां तहां रही, आजके उपन्यास और नाटक लेखक तो सब कुछ हस्तगत कर लेनेके बाद वेश्याको दिखाते हैं कि वह प्रेमीके मारनेका उपाय भी कर रही है । पं०राधे-श्यामजी कथावाचक बरेलीने तो अपने एक नाटकमें एक वेश्याके हाथसे उसके दोस्तके हाथमें जहरका प्याला तक दिला दिया है ।

वालेको स्वीकार करना है वह इतना ही है यह दत्तकाचार्य्य महाराजने कहा है । उनका कहा हुआ मैंने संक्षेपसे कह दिया है मेरा स्वतंत्र नहीं है, क्योंकि महात्मा दत्तकाचार्य्यने ही वीरसेना आदिक वेश्याओंके कहनेसे इस विषयको अलग करके कहा था ॥ ४४ ॥

कथित पदार्थोंका साहित्यमें उपयोग ।

महर्षि वात्स्यायनने जितना भी वैशिक कहा है साहित्यवाले इस सबका भी प्रयोग करते देखे जा रहे हैं । कविवर दण्डीका लिखा हुआ दशकुमार-चरित है, उसमें अपहारवर्माके चरितमें लिखा है, कि—"त्रिकालज्ञ मुनि मरीच गंगाकिनारे बैठे थे, एक समय उनके पासः—

" काममंजरी नाम अङ्गपुरीवतंसस्थानीया वारयुवतिरश्रुबिन्दु-तारकितपयोधरा सनिर्वेदमभ्येत्य कीर्णशिखण्डास्तीर्णभूमिरभ्य-वन्दिष्ट । तस्मिन्नेव क्षणे मातृप्रमुखसदाप्तवर्गः सानुक्रोशमनुधा-वितस्तत्रैवाविच्छिन्नपातमपतत् । "

काममंजरी नामक वेश्या आ उपस्थित हुई, वह इनती निजकर्मदक्ष थी, कि अंगपुरीका भूषण थी । इसकी आंखोंसे आँसू स्तनोंपर गिरकर इस प्रकार शोभा पा रहे थे जिस प्रकार कि चाँदके पास तारे सोहते हों । शिरके बाल बड़े २ लम्बे थे जो मुनिको प्रणाम करतीबार सारी जमीनपर हो गये । उसने वह प्रणाम निर्वेदके साथ किया । मुनि उससे यह भी नहीं पूछ पाये थे कि तू ऐसा क्यों करती है इतनेमें उसकी मा और दूसरे आदमी भी उसके लिये रोते हुए आ पहुँचे ।

" स किल कृपालुस्तं जनमार्द्रया गिरा चाश्वास्य आर्तिकारणं तां गणिका-मपृच्छत् । सा तु सव्रीडेव सविषादेव सरागैवेव चाब्रवीत्, ' भगवन् ! ऐहि-कस्य सुखस्य अभाजनं जनोऽयम् । आमुष्मिकाय श्वोवसीयाय आर्ताऽभ्युप-पत्तिवित्तयोर्भगवत्पादयोर्मूलं शरणमाभिप्रपन्नः इति "

मुनि मरीच बड़े ही कृपालु थे, इस कारण उन्होंने घबराये हुए आगन्तुकोंको आश्वासन देकर उस गणिकासे इस कष्टका कारण पूछा । लजाती हुई दुःख व्यंजक करुणोत्पादक शब्दोंमें वह मुनिसे बोली कि—हे भगवन् ! इस जनके भाग्यमें इस लोकका तो कल्याण सुख बदा ही नहीं है केवल परलोकके सुखके लिये आपकी शरण आई हूं ।

तस्यास्तु जनन्युदञ्जलिः पलितशारशिखण्डबन्धस्पृष्टमुक्तभूमिर-भाषत—' भगवन् ! दोषश्च मम स्वाधिकारानुष्ठापनम् ' ।

यह सुनकर उसकी माने दोनों हाथ ऊपरको जोड़कर पहिले तो उनके सामने शिर टेकती बार उसके बुढ़ापेके बाल भूमिमें लगे; पीछे शिर उठाती बार अलग हुए । फिर कहने लगी कि इसमें मेरा ही दोष है जो मैं इसे अपने वेश्याकर्मपर दृढ स्थापित करती हूं । यह कहकर वेश्याचरित्र सुनाने लगी, कि-

" एष हि गणिकामातुरधिकारो यद्दुहितुर्जन्मनः प्रभृत्येवाङ्गक्रिया, तेजोबलवर्णमेधासंवर्धनेन दोषाग्निधातुसाम्यकृता मितेनाहारेण शरीरपोषणम्, आपञ्चमाद्वर्षात् पितुरप्यनतिदर्शनम्, जन्मदिने पुण्यदिने चोत्सवोत्तरो मङ्गलविधिः, अध्यापनमनङ्गविद्यानां साङ्गानाम्, नृत्यगीतवाद्यनाटयचित्रास्वाद्यगन्धपुष्पकलासु लिपिज्ञानवचनकौशलादिषु च सम्यग्विनियनम्, शब्दहेतुसमयविद्यासु वार्तामात्रावबोधनम्, आजीवज्ञाने क्रीडाकौशले सजीवनिर्जीवासु च द्यूतकलासु आभ्यन्तरीकरणम्, अभ्यन्तरकलासु वैश्वासिकजनात् प्रयत्नेन प्रयोगग्रहणम्, पात्रोत्सवादिषु आदरप्रसाधितायास्फीतपरिबर्हायाः प्रकाशनम् "

वेश्यामाताओंके ये धन्दे होते हैं कि जब उनके घरमें बेटी पैदा होती है तो जन्मसे ही लेकर उसको सर्वाङ्गसुन्दरी बनानेकी चेष्टा करती हैं यानी कामशास्त्रमें जो अंगोंके सुघड करनेके प्रयोग हैं उनसे सुघड कर देती हैं । भोजनका ऐसा ढंग रखती हैं जिससे कि दोष शमन हो व रूप, लावण्य बढे तथा बल और बुद्धि भी प्रबल हो । जब पांच वर्षसे बड़ी हो जाती है तो और तो क्या ? पिताको भी अधिक नहीं देखने देतीं । जन्मदिनका उसका उत्सव मनाया जाता है । पांचालिकी चौसठकामकलाओंमें कोविदा बना कर औपयमिकी नृत्य, गीत आदि कलाएँ भी सिखा देती हैं, खास करके नाचने, गाने, बजाने, नाटय, चित्र और रसोई आदि करनेके कार्य्य तथा विचित्र ढंगकी माला आदि बनाने एवम् लिपिज्ञान तथा बोलनेकी चतुराई आदिभी सिखाती सिखवाती हैं, पर दूसरी २ भाषाओंका साधारण ज्ञान कराती हैं । हर तरहके खेल, जूआके दाव व सजीव निर्जीव जूआमें भी चतुर बना देती हैं । सहवासकी जो कलाएँ हैं उन्हें ऐसे पुरुषसे सिखवाती हैं जिसके कि बारेमें उन्हें यह विश्वास हो जाय कि यह मेरी बेटीको अणुमात्र भी कष्ट न पहुँचायगा एवम् न किसीसे कहेगा । यात्रा और उत्सव आदिमें निकालती हैं तो बड़ी सजाकर निकालती हैं ।

" प्रसङ्गवत्यां संगीतादिप्रियायां पूर्वसंग्रहीतैर्ग्राह्यत्रागुभिः सिद्धिलम्भनम्, दिङ्मुखेषु तत्तच्छिल्पवित्तकैर्यशःप्रख्यापनम्, कार्तान्तिकादिभिः कल्याणलक्षणोद्घोषणम्, पीठमर्दविटविदूषकैर्भिक्षुक्यादिभिश्च नागरिकपुरुषसमवायेषु रूपशीलशिल्पसौन्दर्य्यमाधुर्य्यप्रस्तावना, युवजनमनोरथलक्ष्यभूतायाः प्रभूतत-

मेन शुल्केनावस्थापनम्, स्वतो रागान्धाय तद्भावदर्शनोन्मादिताय वा जाति-रूपवयोऽर्थशक्तिशौचत्यागदाक्ष्यदाक्षिण्यशिल्पशीलमाधुर्य्योपपन्नाय स्वतन्त्राय प्रदानम्, अधिकगुणाय अस्वतन्त्राय प्राज्ञतमाय अल्पेनापि बहुव्यपदेशेन अर्पणम्, अस्वतन्त्रेण वा गान्धर्वसमागमेन तद्गुरुभ्यः शुल्काय हरणम्, अलाभेऽर्थस्य कामस्वीकृते स्वामिन्याभिकरणे च साधनम्, रक्तस्य दुहित्रा एकचारिणीव्रतानुष्ठापनम्, नित्यनैमित्तिकप्रीतिदायतया इताशिष्टानां गम्य-धनानां चित्रैरुपायैरपहरणम् । ''

बेटीके गानेबजानेकी योग्यपुरुषोंसे प्रशंसा कराना एवम् जहां जो जो प्रसिद्ध हों उनसे बेटीको यह मान दिलाना, जो ज्योतिषी व लक्षणोंके जान-नेवाले हों उनसे शुभलक्षणा प्रसिद्ध करा देना । पीठमर्द, विट, विदूषक और भिक्षुकी, दूती आदिकोंसे छैलाओंमें बेटीके रूप, शील, शिल्प, सौन्दर्य्य और माधुर्य्यकी प्रशंसा कराना, जब रँगीले सभी छैले उसीपर मरनेलगें तो उसके प्रथम सहवासकी लम्बी फीस नियत कर देना । जिस पुरुषमें जाति, रूप, वय, अर्थशक्ति, शौच, त्याग, दाक्षिण्य, शिल्प, शील और मधुरता हो ऐसेको जो कि अपनी बेटीके भावोंको देखकर पगला गया हो और स्वतंत्र हो प्राथ-मिक रंगरेलीके लिये देना । अथवा जो अधिक गुणी बुद्धिमान् अस्वतंत्र भी हो उसे भले ही गुपचुप थोड़ा ले बहुत प्रसिद्ध करके ही सौंप देना । अथवा ऐसोंके साथ मिला उसके अभिभावुकोंसे कहकर अधिक ले लेना । यदि अर्थ न मिले तो राजमें फर्य्याद कर देना । यदि अपनी लड़कीपर अनुरक्त हो जाय तो उससे एकचारिणी व्रतका पालन कराना । नित्यके खर्च आदिके बहाने तथा कामसूत्रके बताये बहानोंसे व विचित्र २ उपायोंसे गम्योंके धनको खींच-कर उन्हें खाका बना देना ।

" अददता लुब्धप्रायेण च विगृह्यासनम्, प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेन लुब्धस्य रागिणः त्यागशक्तिसंधुक्षणम्, असारस्य वाक्संतक्षणैर्लोकोपक्रोशनैर्दुहितृ-निरोधनैर्व्रीडोत्पादनैरन्याभियोगैरवमानैश्चापवाहनम्, अर्थदैरनर्थप्रतिघातिभि-श्चानिन्द्यैरिभ्यैरनुबन्धार्थानर्थसंचयान् विचार्य्य भूयोभूयः संयोजनम् । ''

जो लोभी हो और दे भी नहीं उससे लड़ाई करके दूर करना । जो लोभी हो पर रागी हो तो ऐसे पुरुषको मुकाबिलेके दूसरेसे चेंकवाकर उसकी देनेकी शक्तिको प्रदीप्त कराना । जिसका सर्वस्व हर लिया हो कुछ बाकी न रह गया हो उसे दुर्भाषण व बुरी २ बातें सुनवाना एवम् उसके पास जानेसे बेटीको रोकना तथा शर्म उपजानेवाली बात कहना तथा दूसरेको बेटीका आशिक

खड़ा करके उसके अपमानोंसे निकाल देना । धनके देनेवाले अनर्थके नाशक योग्य और धनियोंपर अर्थ, अनर्थ, अनुबन्ध और इनके संशयोंको विचार २ कर बारबार योजित करना । यह वेश्याका धन्दा रहता है ।

" गणिकायाश्च गम्यं प्रति सज्जैव न सङ्गः । "

गणिकाकी तो मिलनेवालेमें प्रीतिकी बात ही नहीं, किन्तु साथ ही साथ रहता है ।

" सत्यामपि प्रीतौ न मातुर्मातृकाया वा शासनान्निवृत्तिः "

यदि किसीपर प्रेम भी हो जाय तो भी मा वा कृतक माकी आज्ञा नहीं मोड़ी जा सकती । सो महाराज ! वेश्याका तो इसी प्रकारका धर्म है । इस कथनपर विचार करके देखा जाय तो इसमें सारा ही वैशिक अधिकरण आ गया है । इस प्रकार दण्डीने इस अधिकरणको ही सीधा वेश्यामुखसे कहा डाला है ।

वेश्याकी शिक्षा ।

वेश्याओंको ऐसे ही चारित्रोंकी शिक्षा दी जाती है और तो क्या साध्वी वसन्तसेनाको भी विटने इसी बातका उपदेश दिया था कि—

" तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो, विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव ।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं समसुपचर भद्रे सुप्रियं चाप्रियं च ॥ "

तुझे अपने घरको इस प्रकार बनाना चाहिये जो सदा ही रंगरँगीले युवक भरे रहें, क्योंकि आप तो अपने शरीरको विक्रीकी वस्तुकी तरह ही रखते हैं । जो पैसा दे वह खरीद ले । तुमें पैसेसे मतलब रखना चाहिये, पैसा देनेवाला प्रिय हो चाहें अप्रिय हो सबको समभावसे मानना चाहिये । आप तो अपनेको राहकी लता समझे चाहें कोई भी छूए इस प्रकार समताकी शिक्षा देकर फिर नीचऊँचका ध्यान भुलानेके लिये कहते हैं, कि—

" वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा ।
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे
त्वं वापीव लतेव नौरिव सदा वेश्यासि सर्वं भज । "

वापीमें एक बुद्धिमान् ब्राह्मण भी स्नान कर जाता है तो एक म्लेच्छ भी नहा लेता है । फूली लताको काग और मयूर दोनों एक ही तरहसे नवा लेते हैं । जिस नावपर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तरते हैं उसीसे चाण्डाल भी पार होते हैं । नाव, बावडी और लता किसीको नीचा ऊँचा नहीं देखतीं

उसी तरह तू भी छोटी बड़ी कौसका ध्यान छोड़कर जो हाथ आये उसीको सदा नायक बना लियाकर ।

इससे अधिक बाभ्रव्यका वैशिक है।

यत्तु तत्सेवकभूतं विशीर्णप्रतिसन्धानादिकमपि बाभ्रव्योक्तं तदहं वक्ष्यामीति मन्यते । यदि परिग्रहः कर्तव्योऽनेनाधिकरणेन कथ्यते ।

अब तक जो वैशिक कहा गया है वह श्रीदत्तकाचार्यजीका कहा हुआ है, क्योंकि उन्होंने इतना ही वैशिक कहा था। इस वैशिकके ही एक प्रकारके पोषक विशीर्ष प्रतिसन्धान आदिक हैं उन्हें बाभ्रव्यने कहा है मैं इन्हें अगाड़ी कहूंगा ऐसा वात्स्यायन मानते हैं। यदि उनका भी इसमें परिग्रह करना है तो कहे देता हूं नहीं तो कह ही दिया। या छोड़कर फिर भी परिग्रह करना हो तो उसके परिग्रहकी रीति भी इस अधिकरणमें बताये देते हैं।

दत्तकाचार्यका इतनाही क्यों ?

कथं वैशिकमित्युच्यत इत्याह—

जा कुछ अवतक कहा गया है दत्तकाचार्यका इतना ही वैशिक क्यों ? वा इतनेमें ही सब वेश्याचरित्र क्यों आगया ? इसका उत्तर देते हैं कि—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

परीक्ष्य गम्यैः संयोगः संयुक्तस्यानुरञ्जनम् ।
रक्तादर्थस्य चादानमन्ते मोक्षश्च वैशिकम् ॥ ४९ ॥

इस विषयमें दो श्लोक होते हैं कि—परीक्षा करके मिलनेके लायकोंसे मिले। जा मिल जाय उसे अनुरक्त करे। रंगे पीछे उससे धनका खींचना और अन्तमें धता बताकर निकाल देना, बस, वेश्याओंका इतना ही तो धन्दा है ॥ ४९ ॥

परीक्ष्येति सहायगम्यागम्यगमनकारणचिन्तां कृत्वेत्यर्थः । गम्यैः संयोगो गम्योपावर्तनेन । संयुक्तस्यानुरञ्जनं कान्तानुवृत्तैः । रक्तादर्थस्य चादानं तदुपायैः । अतो मोक्षः स निष्कासनक्रमैः । एतत्सर्वं वेश्योचितं न कुलयोषिदुचितम् । तच्च वैशिकमिति संज्ञितम् । यदाह कात्यायनः—'वेशं वेश्याजनोचितमिति सप्रयोजनमस्येति वैशिकम्' ॥ ४९ ॥

सबसे पहिले सहायक, मिलने और न मिलनेयोग्य व्यक्ति और मिलनेके कारणोंका विचार करके योग्यको अपनी ओर खींचकर मिल ले। उनके

साथ उनकी मनोवृत्तिके अनुसार वर्ताव करे। रँगेहुएसे उपायों द्वारा धन खींचे। इसके बाद खुक्त्र करके निकालनेके क्रमोंसे उसे निकाल दे। ये सब काम वेश्याओंके ही लायक हैं। कुलस्त्रियोंके लायक नहीं है, इसी कारण इसकी 'वशिक' संज्ञा की है। यही कात्यायनने कहा है भी कि—'वेश्याओंके लायक कामोंको 'वेश' कहते हैं, जिसका वही प्रयोजन हो उसे 'वैशिक' कहा जाता है' ॥ ४५ ॥

तस्य वेशस्य प्रयोजनमाह—

वेश्याओंके जो कारगुजारियोंके कथनका क्या प्रयोजन है? इसका उत्तर देते हैं कि—

एवमेतेन कल्पेन स्थिता वेश्या परिग्रहे।
नातिसन्धीयते गम्यैः करोत्यर्थांश्च पुष्कलान् ॥ ४६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणेऽर्थागमोपाया विरक्तलिङ्गानि विरक्तप्रतिपत्तिर्निष्कासनक्रमास्तृतीयोऽध्यायः।

जो रीति हमने ऊपर कही है. इस विधिसे जो वेश्या परिग्रहके विषयमें स्थित रहती हैं एवम् अपने मिलनेवालोंके साथ अतिवंचना नहीं करती वें वहुतसा धन कर लेती हैं ॥ ४६ ॥

एवमिति। कल्पेनेति वैशिकाख्येन। नातिसन्धीयते नातिबाध्यते (वञ्च्यते) करोति पुष्कलानिति करोत्यनेकानित्यर्थः। इति निष्कासनक्रमाः पञ्चपञ्चाशं प्रकरणम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणेऽर्थागमोपाया विरक्तलिङ्गानि विरक्तप्रतिपत्तिर्निष्कासनक्रमास्तृतीयोऽध्यायः।

वैशिक अधिकरणमें जो कारगुजारियाँ बताई हैं उनसे यदि वे अत्यन्त बंचना न करें तो काफी धन इकट्ठा कर सकती हैं। ये निकालनेके क्रम नामक पचपनवां प्रकरण पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके तृतीय अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

बिछुड़े हुएको मिलानेका प्रकरण ।

शास्त्रकार एव प्रकरणसम्बन्धमाह—

गत प्रकरणमें अपने अन्धेप्रेमीके निकालनेका क्रम बता दिया था अब उसे निकाल कर जो कुछ करना चाहिये उस बातको स्वयम् शास्त्रकार ही पूर्व प्रकरण पर दृष्टिपात करते हुए पर्य्यालोचन पूर्वक कहते हैं कि—

छोडनेसे पहिले पुरानेसे मेल ।

वर्तमानं निष्पीडितार्थमुत्सृजन्ती पूर्वसंसृष्टेन सह सन्दध्यात् ॥ १ ॥

जिसका धन निचोड़ लिया हो ऐसे वर्तमान नायकको छोड़ती हुई, पहिले मिलनेवालेके साथ सन्धि कर ले ॥ १ ॥

वर्तमानमिति तस्यां यो वर्तते तमलक्तकवन्निष्पीडितार्थमुत्सृजन्ती यदा त्यक्तुकामा तदा संदध्यात् । एवं सति 'अपवाहयदन्यमवष्टभ्य' इत्यनुक्तं

---

१ जब कुछ नहीं रहता तो आखिरको वेश्याएँ धक्के देकर निकाल दिया करती हैं यह गत प्रकरणमें कह चुके हैं पर जिन्हें फिर भी वेश्याके स्वरूपका बोध नहीं होता तो वे किसी तरह इधर उधरसे पैसा इकट्ठा करके फिर वेश्याके ही यहां पहुँचनेकी चेष्टा करते हैं उनके लिये यह अध्याय है कि वेश्या फिर उन्हें कैसे मिलाये । पर यह बात उन लोगोंमें चलती है जो कि प्राकृत हैं जिसे भगवान् मिलाना चाहते हैं उसे तो मिलनेमें देर ही नहीं लगती । श्रीविप्रनारायणजीको जब रंगनाथ भगवान्ने भक्तवत्सलताके सहज स्वभावसे प्रेरित होकर उसी समय मिलाना चाहा जब कि वे उसने घरसे निकाल दिये थे व उसके दरवाजेपर ही पड़े प्यारी देवदेवीके लिये तड़फ रहे थे तो भगवान्ने सोनेके प्याले हाथमें लेकर देवदेवीके किवाड़जा खट खटाये कि—

"श्रीविप्रनारायणभाषितेन, समागतं मां भवनं त्वदीयम् ।
कान्तोपयन्तेत्यवधार्य्य नाम्ना कपाटमुद्घाटय देवदेवि ! ॥"

मैं श्री विप्रनारायणका भेजा हुआ तेरे घर आया हूं मेरा नाम 'कान्तोपयन्ता' है, हे देवदेवि ! किवाड़ खोल दे। ये उसे सोनेके कटोरे देकर राजी करके विप्रनारायणके पास आये हैं कि आपको देवदेवी बुला रही है । जब वे भीतर पहुँचगये तो फिर उसी तरह रागरंगोंमें लगे तथा—

"तस्मिन् पुनर्दीव्यति देवदेव्या, रंगेश्वरोऽपि स्वपुरं जगाम ।"

भगवान् उनका यह ढँग देख अपने घर चले आये ॥

(इत्युक्तं) भवति । विशीर्णेनेति पूर्वसंसृष्टेन निष्कासितेन । सन्धिक्षणा इति (?) विशीर्णप्रतिसन्धानमुच्यते ॥ १ ॥

वेश्यामें जो दीवाना होकर रहे उसे महावरकी तरह निचोड़ सारा धन खींच छोड़ना चाहे उस समय पुराने यारसे मेल करे । वेश्याएँ जब ऐसा करें तब उसे 'दूसरेका सहारा लेकर ही निकाल दें' यह कथन होता है । जिससे मेल करे पहिलेका वह मिलनेवाला हो तथा इसी तरह हटाया हुआ हो । इसी बातके लिये 'टूटीको फिर जोड़ना' यह प्रकरण कहेंगे ॥ १ ॥

मिलानेका अवसर ।

विशीर्णस्यालक्तकवदुत्सृष्टस्य किं सन्धानेनेति चेदाह—

इस पर यह शंका होती है कि—'जिसका धन महावरकी तरह निचोड़ लिया हो फिर बताई हो धता' तो फिर उसके मिलानेमें क्या लाभ है ? इसी बातको लेकर कहते हैं कि—

स चेदवसितार्थो वित्तवान्सानुरागश्च ततः सन्धेयः ॥२॥

यदि वह धनी हो, दगा यह निश्चय हो, उसका अनुराग भी हो, तो मिलाना चाहिये ॥ २ ॥

वित्तवानपि यदावसितार्थोऽवश्यं दास्यतीति । सानुरागश्च । अन्यथा विश्वसनार्थं यत्किञ्चिद्दत्त्वापि निष्कासितोऽहमनयेति विरक्तोऽपकुर्यात् । तत इति तस्मात्कारणात् सन्धेयः ॥ २ ॥

---

१ "समुद्रवीचीव चलस्वभावाः सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः ।
स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत् त्यजन्ति ॥"

वेश्याओंकी यह दशा है कि इनका चित्त समुद्रकी तरङ्गोंकी तरह चञ्चल रहता है। जिस प्रकार आसमानपर सामके समय थोड़ी ही लाली आती है उसी तरह इनके यहां भी प्रेमकी रंगत थोड़े ही समयकी है । फिर भी इनका यह हाल है कि—जैसे महावर लगानेके समय महंदीका रस निचोड़कर उसे अलग फेंक देते हैं उसी तरह वेश्याएँ भी धन निचोड़कर अलग फेंक देती हैं ।

२ अधिक लाभवाले प्रभावशाली पुराने व्यक्तिसे इस लिये भी मेल किया जाता है कि खोखा आप ही हट जाय तथा डरसे कुछ अनिष्ट भी न करे । ऐसे अवसरोंपर वेश्याएँ प्रायः राज्यकर्मचारियोंका ही अधिक आश्रय लेती हैं । यदि प्रतिष्ठित घरानेके व्यक्ति रहते हैं तो उनसे कह दिया जाता है, कि 'हुजूर अब आप पधारिये नहीं तो कोई देख लेगा या किसीको मालूम हुआ तो जनावका घराना बदनाम होगा' यह रसूक उनसे होता है जिनमें सींधे धक्के नहीं लगाये जा सकते ।

धनवान् भी अवश्य देगा यह निश्चय हो एवम् उसका अपनेपर पूर्ण अनुराग बना हो तब ही मिलाये । नहीं तो विश्वासके लिये थोड़ा बहुत देकर भी अनुरागवाला न होगा तो 'मुझे इसने किस ढंगसे निकाला था' यह खयाल करके नुकसान पहुँचायेगा । ये उसके मिलानेके कारण हैं, यदि यह बात हो तो अवश्य मिला लेना चाहिये ॥ २ ॥

पुराने बिछुरेहुएके छः भेद ।

सोऽप्यनया यदि न संसृष्टस्तत्र विधानान्तरमाह—

वह भी इसके साथ न मिले तो उसके विषयमें जो कारवाई करनी चाहिये उसे बताते हैं कि—

अन्यत्र गतस्तर्कयितव्यः । स कार्ययुक्त्या षड्विधः ॥ ३ ॥

वह दूसरी जगह गया यह विचार लेना चाहिये अपने कार्य्योंकी योजनासे वह छः तरहका होता है ॥ ३ ॥

अन्यत्र गत इत्यनेन षड्विधो विशीर्ण इति । तर्कयितव्य इति निरूप्यः । वक्ष्यमाणेन न्यायेन । सहसा न सन्धेयः । स इति योऽन्यत्र गतः । कार्ययुक्त्येति षड्विधः संसृष्टस्त्वेकविधः ॥ ३ ॥

अपने पाससे हटा हुआ व्यसनी दूसरी जगह ही जायगा, उसकी नीचे बताई छः दशाएँ होती हैं, अतः हटाया हुआ भी छः तरहका ही होता है, उसे नीचे लिखे हुए न्यायसे जान ले, विना विचारे न मिलाये । ये भेद दूर गयेके हैं । संसृष्ट तो एक ही तरहका होता है ॥ ३ ॥

दोनोंका स्वयंत्यागी ।

कार्ययुक्तिमाह—

अपने पाससे हटे हुएके छः भेद किस प्रकार होते हैं यह बताते हैं कि—

इतः स्वयमपसृतस्ततोऽपि स्वयमेवापसृतः ॥ ४ ॥

यहांसे स्वयम् हटा और वहांसे भी स्वयम् ही हटा ॥ ४ ॥

इत इति । स्वदोषत एवास्य (!) यदस्या नायिकातः स्वयमेवापसृत्यान्यत्र गतस्तत्रापि स्वदोषोपकृतोऽपि (!) स्वयमेवापसृत इत्येकः ॥ ४ ॥

यह अपने दोषसे ही हटा जो कि इस नायिकाका हो इससे आप ही हटकर दूसरीके यहां गया । वहां भी अपने ही दोषोंके उपकारोंके कारण आप हट गया यह एक तरहका हुआ ॥ ४ ॥

दोनोंके धक्के खाया हुआ ।

इतस्ततश्च निष्कासितापसृतः ॥ ५ ॥

यहां और वहां दोनों ही जगहसे धक्के ही खाकर हटा ॥ ५ ॥

इतस्ततश्चेति । अत्राश्रययोर्दोषो नाश्रितस्य दोषः । यस्मादितो निष्कासितोऽपसृत इत्याश्रयस्य दोषः । ततो यत्र गतस्ततोऽपि निष्कासित एवापसृत इति द्वितीयः ॥ ५ ॥

इसमें जहां वह गया था उन दोनों आश्रयों (नायिकाओं) का दोष है आश्रित (नायक) का दोष नहीं है । क्योंकि यहांसे वह अपने आप नहीं हटा । निकाला गया हटा, इस कारण यहांसे दूसरी जगह गया तो वहां भी निकाला हुआ ही हटा, यह वहांके आश्रयका दोष हुआ । इस तरह यह दूसरी तरहका नायक हुआ ॥ ५ ॥

यहांसे आप व वहाँका निकाला ।

इतः स्वयमपसृतस्ततो निष्कासितापसृतः ॥ ६ ॥

यहांसे स्वयं हटा तथा वहांसे निकाला जानेके कारण हटा ॥ ६ ॥

इतः स्वयमपसृत इत्याश्रितस्य दोषः ततोऽपि निष्कासितोऽपसृत इत्याश्रयस्य चेति तृतीयः ॥ ६ ॥

यहांसे वह स्वयं हटा यह उसका दोष है । वहांसे धक्के खाकर हटा यह यह उस नायिकाका दोष है जहां गया था इस तरह यह तीसरी तरहका नायक हुआ ॥ ६ ॥

स्वयं हटकर वहां स्थिर हुआ ।

इतः स्वयमपसृतस्तत्र स्थितः ॥ ७ ॥

यहांसे स्वयम् हट गया वहां जाकर स्थिर हो गया ॥ ७ ॥

इतः स्वयमपसृत इत्याश्रितस्य दोषः तत्र स्थित इति नोभयोरिति चतुर्थः ७॥

यहांसे स्वयम् हटनेका नायकका दोष है । वहांसे नहीं हटा इसमें दोनों निर्दोष हैं, किसीका दोष नहीं यह चौथा आशिक है ॥ ७ ॥

यहांसे धक्के वहांसे आप ।

इतो निष्कासितापसृतस्ततः स्वयमपसृतः ॥ ८ ॥

यहांसे धक्के खाकर हटा, वहांसे आप ही हट गया ॥ ८ ॥

इतो निष्कासितापसृत इत्याश्रयस्य दोषः । ततः स्वयमसृत इत्याश्रितस्येति पञ्चमः ॥ ८ ॥

यहांसे उसके निकाले जानेपर हटनेका नायिकाका दोष है और वहांसे वह आप हटा अतः यह उसका दोष है, यह पाँचवीं तरहका नायक हुआ॥८॥

यहांसे धक्के वहां स्थिरता।

इतो निष्कासितापसृतस्तत्र स्थितः॥ ९॥

यहांसे निकाला जाकर हटा वहां स्थिर हो गया॥ ९॥

इतो निष्कासितः समुपसृत्य (निष्कासितापसृतः) इत्याश्रयदोषः, तत्र स्थित इति नोभयोरपीति षष्ठः॥ ९॥

यहांसे निकलनेपर ही तो गया है, इस कारण यह दोष नायिकाका है। वहां जाकर स्थिर होगया यह किसीका भी दोष नहीं। यह छठा आशिक है॥

इनमें मिलाने लायक।

एषु सन्धेयासन्धेयतया तर्कमाह—

इन छःओंमें कौन फिर जोड़ने लायक है कौन नहीं है, इस बातका विचार करते हैं।

उभयोंका स्वयंत्यागी योग्य नहीं।

इतस्ततश्च स्वयमेवापसृत्योपजपति चेदुभयोर्गुणानपेक्षी चलबुद्धिरसन्धेयः॥ १०॥

यहां और वहां दोनों जगहोंसे अपने आप हटकर फिर आनेको कहे तो वह दोनोंके गुणोंकी अपेक्षा न करनेवाला चंचलबुद्धिका व्यक्ति है मिलाने योग्य नहीं है॥ १०॥

उपजपति चेदिति। यदि सन्धातुं पीठमर्दादिमुखेनोपजपति भवती (भेदयती) त्यर्थः। तत्र द्वितीयपक्षाभावात्तर्कयितव्य इति नोक्तम। यदाह—उभयोरपीति—तस्यास्तस्याश्च, ताभ्यामनिष्कासितत्वात्। सतोऽपि गुणानपेक्ष्य चलबुद्धित्वात्स्वदोषमे (षेगै) वापसृतः। स संहितोऽपि न स्थायी। न च तदस्यार्थेन योग इत्यसन्धेयः॥ १०॥

जो चल बुद्धिवाला होनेके कारण, इसके और उसके विद्यमान शुभगुणोंकी भी उपेक्षा करके उनके विना निकालनेपर भी अपने ही दोषोंसे आप ही हट गया, ऐसा पुरुष यदि फिर पीठमर्द आदिके मुँहसे कुछ कहला सुनवाकर मिलना चाहे तो समझ ले कि यह मिलनेपर भी स्थायी न रहेगा एवम्

न धन ही मिल सकेगा अतः उससे मेल न करना चाहिये । इस सूत्रमें उसे मिलने योग्य विचारे ऐसा नहीं कहा, किन्तु उसे न मिलने योग्य ही देखे यह कहा है ॥ १० ॥

दोनोंका ठुकराया अधिक लाभपर ।

इतस्ततश्च निष्कासितापसृतः स्थिरबुद्धिः । स चेद-न्यतो बहु लभमानया निष्कासितः स्यात्ससारोऽपि तया रोषितो ममामर्षाद्बहु दास्यतीति संधेयः ॥ ११ ॥

जो यहां और वहां दोनों जगहोंसे नायिकाओंके द्वारा निकाला जानेपर हटा हो वह स्थिर बुद्धिका व्यक्ति है । यदि वह दूसरोंसे अधिक लाभ उससे उठाकर भी निकाला गया हो धनी हो पर उसने नाराज कर दिया हो । मुझे उस क्रोधसे बहुत देगा यह निश्चय हो तो उसे मिलाये ॥ ११ ॥

इतस्ततश्च निष्कासित उपजपति चेदिति वर्तमाने । स्थिरबुद्धिः स्वयमनप-सृतत्वात् । अत्र पक्षद्वयमप्यस्ति । स चेदिति । अत्र तर्कयितव्य इति नोक्तम् । चेच्छब्देनैव यद्यर्थेन तदर्थस्योक्तत्वात् । अन्यत इति । अन्यस्माद्गम्याद्बहु लभमा० नयापि निष्कासितः । ससारोऽपि सद्रव्योऽपि । ततश्च तया रोषितो जनितरो-षोऽमर्षाद्बहु दास्यतीति ज्ञात्वा तदानीमेव संधेयः । नैवमेषितत्वात् (?) नास्या-मनुशयं बध्नाति ॥ ११ ॥

यहां और वहां दोनों जगहोंसे निकाला गया फिर पीठमर्द, भडुए आदिके द्वारा इच्छा प्रकट करता है । वह स्थिर बुद्धि है, क्योंकि अपने आप दोनों जगहोंसे नहीं हटा है । इसके विषयमें मिलाने और न मिलाने इन दोनोंके दोनों पहिलू हैं उसी बातका यदि वह करके दिखाते हैं । उसे मिलने योग्य ही समझले, इस बातको कहा नहीं । दोनों ही बातें कहीं ये यदि अर्थवाले 'चेत्' शब्दसे कह दी गई हैं । निकालनेवाली दूसरी वेश्याने दूसरोंसे अधिक उससे प्राप्त करते हुए भी निकाल दिया हो, धनी भी हो, उसके व्यवहारसे उसने क्रुद्ध कर दिया हो तो उस रोषसे बहुत देगा, इस बातको जानकर उसी समय मिलाना चाहिये, भविष्यकी आशापर कार्य्य नहीं करना चाहिये जो कि इसमें सन्देह न करेगा वह आनिष्ट न करेगा ॥ ११ ॥

ऐसा निर्धन व दुष्ट योग्य नहीं ।

निःसारतया कदर्यतया वा त्यक्तो न श्रेयान् ॥ १२ ॥

जो निर्धनता व दुष्टताके कारण छोडा गया हो वह मिलनेपर अच्छा नहीं रहता ॥ १२ ॥

निःसारतया निर्द्रव्यतया संसारे च (ससारश्च) कदर्यतया अवदान्यतया त्यक्तो निष्कासितोऽपि न श्रेयान् । संधातुमिहापि तुल्यत्वात् ॥ १२ ॥

योग्य निर्धन होनेके कारण छोड़ा हो तथा धनवाला उसकी दुष्टताके कारण छोड़ा हो तो इन दोनोंका फिर मिलाना अच्छा नहीं। इनके सन्धानमें एकसी बात है, इस कारण दोनोंका एक साथ निषेध किया गया है ॥ १२ ॥

तीसरा अतिरिक्त धनवर।

इतः स्वयमपसृतस्ततो निष्कासितापसृतो यद्यतिरिक्तमादौ च दद्यात्ततः प्रतिग्राह्यः ॥ १३ ॥

यहांसे आप हटा जहां गया वहांसे नायिकाने हटा दिया ऐसा आदमी यदि पहिले अतिरिक्त धन दे तो स्वीकार करना चाहिये ॥ १३ ॥

इतः स्वयमपसृतस्ततो निष्कासितापसृत इत्यत्राप्युपजपेदिति वर्तते । अत्रापि यदिशब्दात्तर्कयितव्य इति नोक्तम् । अतिरिक्तं पूर्वस्मादादानात् । आदौ च यावदर्थसंप्रयोगः । कृतकृत्यश्च (स्य) हि स्वयमपसर्पणसंभवात् । प्रतिग्राह्यः संधेयः । अत्र विपर्ययेणाप्रतिग्राह्य इत्यर्थोक्तं (क्तो) द्वितीयः पक्षः ॥ १३ ॥

यह नायक यदि अपनी ओरसे आदमी भेजकर मिलनेकी बात चलाये तो यह व्यवस्था होनी चाहिये, क्योंकि सूत्रके साथ 'उपजपेत्' बातचीत चलाये इस बातका संबन्ध है। जैसे यदि अर्थवाले 'चेत्' शब्दसे करना न करना इन दोनों पक्षोंकी उद्भावना की थी उसी तरह 'यदि' से यहां नहीं है। जो पहिले दिया करता था वह दे तथा और भी कुछ अधिक दे। जबतक उसके मतलबका योग न हो उससे पहिले ही दे दे, क्योंकि मतलब बनाकर तो इधर उधर हो जानेका खतरा रहता है। ऐसेको अपनेसे मिला लेना चाहिये। यदि यह इस तरह न दे तो न मिलाना चाहिये यह स्वतः सिद्ध हो जाता है यह द्वितीय पक्ष है ॥ १३ ॥

---

१ निर्धनने यदि प्रेमके वश हो कुछ इकट्ठा भी किया होगा तो थोड़ा ही इकट्ठा किया होगा उससे फिर अधिक लाभ नहीं हो सकता। जो दुष्टताके कारण त्यागा गया हो यदि वह फिर मिल पायगा तो अधिक दुष्टता करेगा।

चौथेके मिलानेका मौका ।

इतः स्वयमपसृत्य तत्र स्थित उपजपंस्तर्कयितव्यः १४॥

यहांसे स्वयम् हटा वहां जाकर जम गया ऐसा यदि वह समाचार भेजे सो उसका विचार करना चाहिये ॥ १४ ॥

तर्कयितव्यः किमुपकर्तुं चोपजपतीति ॥ १४ ॥

उसका विचार करलेना चाहिये, कि क्या उपकार करनेको कहता है १४॥

मिलानेके विचार ।

अत्र सन्धेयपक्षमाह—

इस पुरुषके विषयमें जो मिलानेके विचार हैं उन्हें बताते हैं कि—

विशेषार्थी चागतस्ततो विशेषमपश्यन्नागन्तुकामो [मयि] मां जिज्ञासितुकामः स आगत्य सानुरागत्वा-द्दास्यति ॥ तस्यां वा दोषान्दृष्ट्वा मयि भूयिष्ठान्गुणा-नधुना पश्यति स गुणदर्शी भूयिष्ठं दास्यति ॥ १५ ॥

यह विशेषका चाहनेवाला है, इसी कारण गया था, वहां मुझसे विशेषता न देखकर फिर आना चाहता है । वह आकर मुझे जानना चाहता है । प्रेमी होनेके कारण अधिक देगा अथवा जहां गया था उसमें दोष देखकर इस समय मुझमें अधिक गुण देखता है । वह गुणदर्शी बहुत दगा ॥ १५ ॥

विशेषार्थितया यत्र गतस्तत्र विशेषं सुरतगतमपश्यन् । तस्या अविदग्ध-त्वात् । तत इति तस्याः सकाशात् । अस्मिन्मूलम्—आगन्तुकामो मयि दृष्ट-विशेषत्वात् । मां जिज्ञासितुकाम इति । तत्रस्थ एव मयि जिज्ञासां कर्तुमिच्छुः किमियं मां स्वयमपसृतु (सर्तु) मिच्छति न वेति । सानुरागत्वाद्दास्यति दृष्ट-विशेषत्वात्। तस्यां वा दोषान्गुणविपर्ययान्दृष्टवान् । आगन्तुकाम इति योज्यम् । सत्सु वा गुणेषु मयि भूयिष्ठान्प्रभूततमान्गुणानधुना पश्यति । तद्गुणान्स्तोका-न्दृष्ट्वा स उभयस्मिन्नपि पक्षे मयि गुणदर्शी भूयिष्ठं प्रभूततमं दास्यति ॥१५॥

उसमें मुझसे कुछ विशेष रंगरेली मिलें, इस कारण मुझे छोड़ गया था, पर उसमें कुछ विशेष न देख, यह विशेष चतुर नहीं ऐसा जान, उसके पाससे मेरे पास आना चाहता है । मेरे पास आनेका कारण यह है कि मुझमें

उसने विशेष देखा है । उसपर ही रहकर यह मुझे जाननेके लिये आया है, कि मुझसे स्वयम् मिलना चाहती है वा नहीं । इसका मुझमें अबतक प्रेम बना हुआ है, इसने मेरी रमण चातुरी भी देखी है । यह मुझे देगा अथवा मुझमें जो गुण हैं इसने उसमें उनके ही उलटे दुर्गुण देखेहैं अतः अब आना चाहता है, ऐसी योजना भी सूत्रार्थकी करनी चाहिये । अथवा उसमें भी गुण हैं पर उसके थोड़े गुणोंको देख, मुझमें उन गुणोंको बड़ेरूपमें इस समय देखता है । दोनों ही पक्षोंमें गुण देखनेवाला अधिक देगा ॥ १५ ॥

न मिलनेके विचार ।

असन्धेयपक्षमाह—

इसमें जो मिलानेका पक्ष नहीं है उसे बताते हैं कि—

बालो वा नैकत्रदृष्टिरतिसन्धानप्रधानो वा हरिद्रारागो वा यत्किंचनकारी वेत्यवेत्य संदध्यान्न वा ॥ १६ ॥

बाल है, एक जगह दृष्टि नहीं है, जो बहुत ज्यादा मिलानेकी कोशिश करे उसीसे मिलजाता है । इसका हलदीका रंग है अथवा जो मन चाहता है वह कर बैठता है, इन बातोंको जान, मिलानेयोग्य हो तो मिलाले एवम् न मिलाने योग्य हो तो न मिलाये ॥ १६ ॥

हरिद्राराग इव रागो यस्य न चिरस्थायी । मयि विरक्तो यत्र गतस्तत्रातिविरक्तः सुतरां गन्तुकामः किं दास्यति । यत्किंचनकारी वा सोऽनर्थमपि कुर्यात् । इत्येवमत्रेत्य ज्ञात्वा संदध्यात् । प्रथमे पक्षे । न वेति । नैव संदध्यात् द्वितीयेति (इति द्वितीये) ॥ १६ ॥

हरिद्राके रंगकी तरह इसका राग है चिरस्थायी नहीं है । मुझसे विरक्त होकर वहाँ गया । वहांसे भी अत्यन्त विरक्त होकर तो अच्छी तरह जाना चाहता है फिर मुझे क्या देगा । जो मनचाहा सो कर डालनेवाला अनर्थ भी कर सकता है, इन बातोंको मालूम करे यदि न हों तो मिलाले यदि हों तो न मिलाये ॥ १६ ॥

पाँचवेंका विचार ।

इतो निष्कासितापसृतस्ततः स्वयमपसृत उपजपंस्तर्कयितव्यः ॥ १७ ॥

यहांसे निकाला जाने पर हटा और वहांसे आप हटा, ऐसा पुरुष यदि अपने पास आदमी भेजे तो उसपर विचार करना चाहिये ॥ १७ ॥

तर्कयितव्य इत्युपकारापकाराभ्याम् ॥ १७ ॥

उपकार और अपकारोंसे उसके मिलने और न मिलनेका विचार करना चाहिये ॥ १७ ॥

अनुरागादागन्तुकामः स बहु दास्यति । मम गुणैर्भावितो योऽन्यस्यां न रमते ॥ १८ ॥

वह मेरे अनुरागसे आना चाहता है, अतः बहुत देगा । मेरे गुणोंसे प्रभावित रहता है, इस कारण दूसरीमें उसका मन भी नहीं लगता ॥ १८ ॥

अनुरागादागन्तुकामः । सक्तस्य निष्कासितत्वात् । मम गुणैर्भावितो रञ्जितोऽयम । योऽन्यस्यां न रमते । येन ततोऽपि स्वयमेवापसृतः ॥ १८ ॥

मैंने आसक्त दशामें इसको निकलवाया था अतः इसका प्रेम मुझपर ही रह गया, मेरे गुणोंमें ही रँगा रहता है, इस कारण दूसरीमें अनुरक्त नहीं होता, इसी कारण वहांसे भी अपने आप हट गया है ॥ १८ ॥

पूर्वमयोगेन वा मया निष्कासितः स मां शीलयित्वा वैरं निर्यातयितुकामो धनमभियोगाद्वा मयास्यापहृतं तद्विश्वास्य प्रतीपमादातुकामो निर्वेष्टुकामो वा मां वर्तमानाद्भेदयित्वा त्यक्तुकाम इत्यकल्याणबुद्धिरसन्धेयः ॥ १९ ॥

मैंने इसे पहिले अयोग्यताके साथ निकाला था, अब वह मुझसे मिलकर अपना वैर निकालना चाहता है । मैंने धन खींचनेके उपायोंसे इसका सारा धन खींच लिया, अब यह मुझे विश्वास दिला उसमेंसे कुछ निकाल लेना चाहता है । दियेके बदलेकी सेवा लेना या मुझे इस समयके मेरे पास आनेवालेसे जुदा करके फिर आप ही छोड़ देना चाहता है, इस प्रकार यह बुराचिंतनेवाला है अतः न मिलाना चाहिये ॥ १९ ॥

पूर्वसं (म) योगेनेत्यन्यायेन निष्कासितः । स मां शीलयित्वेत्यनुरागप्रदर्शनेन वानुप्रविश्य वैरं निर्यातयितुकामः । प्रयच्छन्नप्यहमनया हठान्निष्कासित इति । धनमभियोगाद्वेति । अस्याभियोगमेव कुर्वत्यानया धनं बह्वपहृतमाकृष्टम् । संप्रयोगश्च कादाचित्कः कृतः । तद्धनं स्नेहोपनयनेन मां विश्वास्य प्रतीपमादातुकामः । निर्वेष्टुकामो वेति । निःपूर्वो विशतिर्निर्वेशे (भृतौ) वर्तते ।

इदानीं धनसंप्रयोगे तदेव धनं निर्वेशं कर्तुकामो नान्यद्दातुकामः । मां वा वर्तमानादिति । निष्कास्येनं येन सह वर्तेऽहं तस्माद्वर्तमानादागन्तुकात् गन्धास्तेन (?) मां भेदयति मा भूदस्य लाभेन योग इति । स्वयं दास्यति चेदाह—त्यक्तुकाम इति । अकल्याणबुद्धिर्वैरबुद्धिर्निर्यातनाद्यभिप्रायः ॥ १९ ॥

मैंने इसे पहिले अन्यायसे निकाला था वह मुझे प्रेम दिखा मुझे बैला, पहिला झुड़ाकर मेरेमें घुसकर वैर निकालना चाहता है, क्योंकि उसके मनमें यह खयाल है कि म इसे बराबर दिये जाता था तो भी इसने मुझे जबरदस्ती अन्यायके साथ निकाला था । इसने इसी पुरुषके इशारेसे मेरे साथ मिलकर धन बहुत छीना है पर मिली कभी २ है, मुझसे प्रेम लगाकर विश्वासपात्र बन उसमेंसे कुछ निकाल लेना चाहता है । या जो दिया है उसके बदलेमें काम लेकर उसे निर्वेश यानी नौकरीके रूपमें कर लेना चाहता है, और देनेकी इच्छा नहीं रखता । निः उपसर्गपूर्वक ' विश ' निर्वेशमें वर्तता है जिसका कि नौकरी ही अर्थ होता है । इसको निकाल जिसके साथ मैं रह रही हूं उससे यह मुझे जुदा कर देना चाहता है कि मुझे छोड़करके अधिक लाभ न उठा ले, इसकी यह भी मनसा नहीं कि उसको हटाकर आप रहे और दे, किन्तु वैर निकालना चाहता है, कल्याण चाहनेवाला नहीं है । उसे हटाकर आप भी छाड़ देगा ॥ १९ ॥

अन्यथाबुद्धिः कालेन लम्भयितव्यः ॥ २० ॥

विपरीत मतिवाला समयसे अपनाना चाहिये ॥ २० ॥

---

१ जिन भोले पुरुषोंका वेश्याएँ सर्वस्व हरकर निकाल देती हैं उनमेंसे बहुतसे तो निन्दा होनेके कारण आखिरी जीवन फकीरीमें ही निकालते हैं, कभी उनके परिजन सुयोग्य रहते हैं तो अपने बिगड़े भाईको संभाल भी लेते हैं । कभी २ ऐसा भी होता है कि उसका कोई प्यारा वेश्यासे धन निकालने और बदला लेनेके लिये भी प्रयत्न करता हुआ वेश्यासे ऊपर ले मनसे मिलता है । काममंजरीने जिस प्रकार मरीचको छला उसके बदले तथा जिस प्रकार वसुपालितका सर्वस्व छीन उसे बौद्धमठका भिक्षुक बना दिया इस बातको जब अपहार वर्म्माने सुना है तो वह काममंजरीके नगर पहुँच जूआमें १६ हजार मुद्रा जीता है पीछे विमर्दकसे मित्रता गांठी, कुबेरदत्तकी पुत्री कुलपालिकाकी सगाईवाले धनमित्रसे उसाका व्याह कराया है । एक सिद्धिकी थैलीके ढोंगसे काममंजरीकी बहिन रागमंजरीसे शादी की है । इस प्रकारके कामोंसे उसने काममंजरीसे बदला लिया है । इस तरह जो धोखेसे धनहरण करनेवाली वेश्याएँ हैं वे भी कभी खतरेसे खाली नहीं रहतीं, अतः उन्हें बड़ी समझदारीसे अपना व्यवहार चलाना चाहिये ।

अन्यथाबुद्धी रागाद्दातुकामः कालेन । तदानीमेव तस्य निष्कासनेनापादितवैकृतत्वात् । लम्भयितव्य इति प्रापयितव्यो न तु प्राप्यः । स्वातन्त्र्येण लाघवात् ॥ २० ॥

जो इससे विपरीतमति हो रागके कारण देना चाहे उसे कुछ समय बिताकर किसी जरियेसे अपने पास मँगवाना चाहिये, आप ही स्वतंत्ररूपसे न प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि आप ही उपाय करनेमें गौरव नष्ट होता है॥२०

छठेका विचार ।

ईतो निष्कासितस्तत्र स्थित उपजपन्नेतेन व्याख्यातः॥२१

जो यहांसे निकाला गया हो और वहां जाकर जम गया हो वह यदि स्वतः बात चलाये तो मिलने योग्य है यह बात इसींसे कह दी ॥ २१ ॥

एतेनेत्यनन्तरोक्तेन विशीर्णेन व्याख्यातः । अयमपि तथैव तर्कयित्वा अकल्याणबुद्धिरसन्धेयोऽन्यथाबुद्धिः कालेन लम्भयितव्य इति । इतो निष्कासितस्तत्र स्थित उपजपंश्चेत्तर्कयितव्यः ॥ २१ ॥

यह जो अभी पीछे बिछुरा कहा गया है इसके विषयके विचारसे छठेकाभी करना चाहिये, यदि मिलकर बुरा करना चाहे तो न मिलाना चाहिये । यदि बुरा करनेका इरादा न हो तो समयसे मिला लेना चाहिये । यहांसे निकाला हुआ वहां स्थिर हो तो यदि वह किसीकी मारफत मिलनेकी इच्छा व्यक्त करता हो तो मिलाना चाहिये ॥ २१ ॥

स्वयं बात चलाने योग्य ।

तेषूपजपत्स्वन्यत्र स्थितः स्वयमुपजपेत् ॥ २२ ॥

जो लौट आये उनके कहनेपर या विना कहे स्वतःही अन्यत्र स्थित रहा, उससे स्वयम् बातें चलाये ॥ २२ ॥

येऽन्यत्र गता उपगतास्तेषूपजपत्सु अनुपजपत्सु वा लाघवात् । अन्यत्र स्थित इति द्विधा वर्तमानस्त्याज्य इतरश्चेति । तत्रापि स्थितौ कारणापेक्षया स्वयमुपजपेत् ॥ २२ ॥

जो दूसरी जगह गये वे फिर वापिस आगये वे लघुताका ध्यान रखकर स्वयं बातें चलायें या न चलायें पर वहीं रह गया वह त्याज्य और अत्याज्य भेदसे दो तरहका है । वहांकी भी स्थितिमें कारणकी अपेक्षासे उससे स्वयम् कहे ॥ २२ ॥

इसमें कारण ।

बहूनि कारणान्याह—

बहुतसे कारणोंको बताते हैं कि—

व्यलीकार्थं निष्कासितो मयासावन्यत्र गतो यत्नादानेतव्यः ॥ २३ ॥

मैंने इसे इसके अपराधपर निकाला था यह मेरे यहांसे दूसरेके यहां जाकर स्थित हो गया, इसे प्रयत्नके साथ लाना चाहिये ॥ २३ ॥

व्यलीकमपराधो जन (अ) न्यस्यामभिगमनं तन्निमित्तं मयान्निष्कासितो न पुनर्ददातीति यत्नादानेतव्यः ततो हि फलेन योगात् ॥ २३ ॥

यह किसी दूसरीके यहां गीधा था उसी अपराधपर मैंने इसे निकाल दिया था, इस बातके लिये जुदा नहीं किया, कि फिर नहीं देगा, ऐसे पुरुषको प्रयत्नके साथ बुलाना चाहिये, क्योंकि उसके खूब प्राप्ति होगी ॥२३॥

इतः प्रवृत्तसंभाषो वा ततो भेदमवाप्स्यति ॥ २४ ॥

यहांसे बातचीत शुरू होनेपर वहांसे फूट जायगा ॥ २४ ॥

इतः प्रवृत्तसंभाषो वेति । मामुद्दिश्य यो वृत्तसंभाष इदं दास्यामीति तत इति यत्र गतस्तस्याः सकाशाद्भेदमवाप्स्यति ॥ २४ ॥

यह कहता है, कि वह मुझे मिले तो मैं उसे यह दूं यदि यहांसे बात शुरू हो तो जहां गया है वहांसे फूट कर यहां आ जायगा ॥ २४ ॥

तदर्थाभिघातं करिष्यति ॥ २५ ॥

उसके अर्थका विघात करेगा ॥ २५ ॥

किमन्यस्या ददामीति तदर्थविघातं करिष्यति । येन बाह्ये तदर्थो वर्तमानो विलक्ष्यीभूतो निष्क्रामति (?) ॥ २५ ॥

मैं दूसरीको क्या दूं यह शोच उसका अर्थ विघात यानी देना बन्द कर देगा । जिससे बाहिरमें उसका प्रयोजन रहेगा वहांसे मन हट जायगा अतः फिर मेरे पास आ जायगा या जिससे उसे लाभ होता है उससे लाभ तो हो न सकेगा फिर वह बाहिरसे लाभ करना सोचेगी इसं वह रंग मिल न सकेगा इस कारण आप ही यह वहांसे चला आयगा ॥ २५ ॥

अर्थागमकालो वास्य । स्थानवृद्धिरस्य जाता । लब्ध-मनेनाधिकरणम् । दारैर्वियुक्तः । पारतन्त्र्याद्व्यावृत्तः । पित्रा भ्रात्रा वा विभक्तः ॥ २६ ॥

इसकी धन प्राप्तिका समय है । इसकी तरक्की हो गई । इसे अधिकार मिल गया । यह अपनी स्त्रियोंसे जुदा हो गया । इसकी परतंत्रता मिट गई । यह अपने पिता व भाईसे अलग होगया ॥ २६ ॥

अर्थागमकालो वास्य वाणिज्यया सेवया वा । स्थानवृद्धिर्वा ग्रामादेरधिकस्य लाभात् । लब्धं वा तेनाधिकरणमक्षपटलादिकम् । दारैर्वियुक्तो ममेदानीमवसरः प्राप्तः । पारतन्त्र्याद्व्यावृत्तः कर्मस्थानेषु गृहे वा स्वतन्त्रः शुभं दास्यति । पित्रा जीवतैव विभक्तो भ्रात्रा पितरि मृते ॥ २६ ॥

इसे वाणिज्य व सेवासे धन मिलनेवाला है, अधिक गाम आदि मिलनेवाले हैं उसे अक्षपटल आदि मिल गया, यह अपनी स्त्रियोंसे अलग है अतः मेरा मौका आनन्दसे लग सकता है । यह कर्मस्थान (कारोबारकी जगहों) वा घरमें स्वतंत्र होजानेसे अच्छा देगा । पिताने अपने इकट्ठे किये हुए धनको देकर ही अलग कर दिया अथवा पिताके मरजानेपर भाइयोंने अलग कर दिया ॥ २६ ॥

अनेन वा प्रतिबद्धमनेन सन्धिं कृत्वा नायकं धनिन-मवाप्स्यामि ॥ २७ ॥

नायक इससे मिला हुआ है मैं इससे मिलकर उस धनीको प्राप्त कर लूंगी ॥ २७ ॥

अनेन वा प्रतिबद्धमिति तस्य मित्त्रत्वात् । अनेन सन्धिं कृत्वा संक्रम-स्थानीयेन ॥ २७ ॥

वह धनी पुरुष इसका मित्र होनेके कारण इससे मिला हुआ है, मैं इससे मिल लूंगी तो यह बिचोलिया मुझे उससे मिला देगा, इस रीतिसे मेरी उसके साथ घनिष्टता हो जायगी ॥ २७ ॥

---

१ आजके अभिनेता इस बातको भी बड़ी रोचकताके साथ दिखाते हैं । कोई हलवाई किसी वेश्यापर आसक्त था उस समय उसे वेश्याने तुच्छ समझकर बड़ी दुर्गतिके साथ निकाला जब वह हलवाई दैवयोगसे दीवान बन गया तो वही वेश्या उसके पास जाँनिसार बनकर पहुँची एवम् तलवारके सामने सिर झुकाकर प्रेम परीक्षा दे उसपर अपनी आखोंका जादू पटक दिया । रईशोंके लडकोंकी सेवाएँ भी भविष्यकी आशापर ही अधिक की जाती हैं ।

विमानिता वा भार्यया तमेव तस्यां विक्रमयिष्यामि २८

इसने मेरा अपमान किया और अपनी स्त्रीसे जाकर मिल गया है, मैं इस युक्तिसे इसकी स्त्रीको इससे जुदी करके उसपर ही इसे भिड़ा दूँगी॥२८॥

विमानिता वेति मत्तो विशीर्णः स्वभार्यया संसृष्टः । तां चास्माद्विमर्शादवमानितां चानाय्य तमेव सन्धाय तस्यां विक्रमयिष्यामि विग्रहं कारि (कारयि) ष्यामि । आक्रोशस्य निर्यातनार्थम् ॥ २८ ॥

इसने मेरा तो अपमान किया और अपनी स्त्रीसे जाकर मिल गया, अब मैं इस युक्तिसे इसकी स्त्रीको जुदा करती हूं व अपने यहां संगाती हूं और उसीपर इसे चिड़ाये देती हूं इस योजनासे यह और इसकी स्त्री दोनों ही लड़ जायँगे । यह जो वेश्यासङ्गकी एवम् मेरी बुराई करता फिरता है उसे न कर सकेगा । यह भी बात हो जायगी कि यह कल जो वेश्याकी बुराई तथा कुलस्त्रीकी बड़ाई करता फिरता था आज फिर वेश्याके ही यहां पड़ा रहता है ॥ २८ ॥

अस्य वा मित्रं मद्द्वेषिणीं सपत्नीं कामयते तदमुना भेदयिष्यामि ॥ २९ ॥

इसका मित्र मुझसे वैर रखनेवाली मेरी सौतको चाहता है इसके द्वारा मैं उससे इसे लड़ा दूंगी ॥ २९ ॥

अस्य वा विशीर्णस्य वा मित्रं शक्तिद्रव्यसम्पन्नं मद्द्वेषिणीमपहर्तुकामां मम सपत्नीं (मित्र) वर्तमानां भूतपूर्वां कामयते तन्मित्रमधुना विशीर्णेन भेदयिष्यामि येन सा लाभेन न योक्ष्य (क्ष्य) ते मां चोपकरिष्यति ॥ २९ ॥

---

१ मेरी तो धारणा यह है कि चाहें कुलस्त्री कितनी भी कुप्यारी करके भी रखी जाय पर लोकलाज उसे वेश्याके यहां कर देने, भेजने, वेश्याकी चाकर बनानेमें रोकती है । पर अत्यन्त आसक्त यह भी कर गुजरते हैं । सुशीला तपस्विनीको उसके कुष्ठी पतिने वेश्याकी सवा करने भेज दिया था जिसने कि पातिव्रतके प्रभावसे सूर्य्य भी समयपर उदय होनेसे रोक दिया था । आजके लेखक भी ऐसा ही दिखा रहे हैं, गृहलक्ष्मीके लेखकने तो यहां तक दिखा दिया है कि—नायकने अपनी स्त्रीको भी वेश्याके चरणोंको दाबनेके लिये भज दिया था । जब मनुष्यके विवेकरूपी नेत्र बन्द हो जाते हैं तो कुछ भी कर सकता है उसे फिर अच्छा बुरा नहीं सूझता ।

मुझसे बिछुडे हुएका मित्र शक्ति सपन्न है, वह मेरी बुराई चाहनेवालीको जो कि मेरी सौतकी तरह पहिले रह चुकी है चाहता है, अब मैं इस विशीर्ण (बिछुरेहुए) को मिलाकर उसके मित्रसे उसे अलग करा खुद मिला लूंगी जिससे उससे होनेवाला लाभ सौतको न मिलेगा और मैं उठा लूंगी व वह भी मेरा अहसान मानगी ॥ २९ ॥

चलाचित्ततया वा लाघवमेनमापादयिष्यामीति ॥ ३० ॥

इसे चंचलाचित्तका साबित करके लोगोंकी दृष्टिसे गिराऊँगी ॥ ३० ॥

चलचित्ततया वेति । इतोऽन्यत्र गतस्ततोऽप्यन्यत्र गतस्तमपि चलचित्ततया लाघवमापादयिष्यामि ॥ ३० ॥

यह यहांसे जाकर वहां जम गया है इसे वहांसे भी हटाहूं तो यह चंचल-चित्तका प्रसिद्ध होजाय जिससे इसे नायिकासंसार हलका देखने लगे ॥३०

जाने आनेकी सफाई ।

स्वयमुपजपेदित्युक्तं तस्य स्वरूपमाह—

आप ही कहे यह कह चुके कैसे कहे इसका स्वरूप बतात हैं कि—

तस्य पीठमर्दादयो मातुर्दौःशील्येन नायिकायाः सत्यप्यनुरागे विवशायाः पूर्वं निष्कासनं विर्णयेयुः ३१॥

नायिकाके पीठमर्द आदि सेवक जाकर कहें कि–उसकी तो आप पर बरावर मुहब्बत वनी हुई है पर माताकी कुटिलताके कारण विवश होकर आपको हटाना पड़ा ॥ ३१ ॥

तस्येति विशीर्णस्य । मातुर्दौःशील्येनेति मातैवास्या दुःशीला । तया तथा-र्थपरतया त्वं निष्कासितः । नायिका त्वय्यनुरक्तैव । केवलं परवशा सती॥ ३१॥

भडुए आदि जाकर कहें कि उसकी मा ही बड़ी कुटिल और लोभिन है उसीने लोभके मारे आपको निकाल दिया । नायिका तो तुझपर अबतक फिदा है पर विचारी बरवश है ॥ ३१ ॥

वर्तमानेन चाकामायाः संसर्गं विद्वेषं च ॥ ३२ ॥

"आज जिसपर हो नाराज बैठे कल वे उसपर ही मिहरबाँ है,
जो दुश्मनी कर सके न पूरी वे दोस्ती हमसे तो क्या करेंगे ॥"

१ जो आज किसीपर नाराज होकर बैठा है एवम् दूसरे ही दिन उसकी गलियोंमें चक्कर लगाये तो वह वे परतीतका तो पहिले ही होजाता है । किसी यातवारेको बातसे गिरानेके लिये भी वेश्याएँ प्रतिसन्धान करती है ।

वर्तमान मिलनेवालेके साथ उसका संसर्ग विना चाहके है प्रत्युत दिलसे उससे घृणा रखती है ॥ ३२ ॥

वर्तमानेन गम्येन यः संसर्गः संप्रयोगो नायिकाया अनिच्छन्त्याः (स) औषधपानवत् । विद्वेषः परमार्थतः यत्तस्य दर्शनपथेऽपि न तिष्ठतीति वर्णयेयुः ॥ ३२ ॥

मौजूदा नायकके साथ जो उसका मिलनाजुलना होता है वह विना मर-जीके होता है जैसे कि विना चाहे कड़वी दवाई पी जाती है । वास्तवमें वह उसके साथ द्वेष मानती है, यहांतक कि अपने आप तो उसकी आखोंके सामने भी नहीं खड़ी होती ॥ ३२ ॥

तस्याश्च साभिज्ञानैः पूर्वानुरागैरेनं प्रत्यापयेयुः ॥ ३३ ॥

उसके पहिले प्रेमको पहिचानके साथ कहकर उसे अपनी बातकी प्रतीति करायें ॥ ३३ ॥

तस्याश्चेति नायिकायाः । साभिज्ञानैरिति सा (अ) भिज्ञानं वक्ष्यति । पूर्वानुरागैरिति पूर्वं विशीर्णा येऽनुरागा आसंस्त एनं प्रत्यापयेयुर्नायकं बोधयेयुः । येन तथैव प्रतिपद्यते ॥ ३३ ॥

अभिज्ञान (पहिचान) अगाड़ी कहेंगे, उस नायिकाके पहिले प्रेमको पहिचानके साथ कहें यानी हटनेसे पहिले जो अनुराग थे, नायकको उन्हींकी कहानी सुनाई जाय जिसके सुनने व समझनेसे उसकी तबीयत वैसी ही बन जाय, या आसक्तताकी स्मृतिमें जो भडुआ कहे उसे सच समझने लग जाय ३३

पूर्व उपकारोंसे प्रेमाभिज्ञान ।

अभिज्ञानं च तत्कृतोपकारसंबद्धं स्यादिति विशीर्ण-प्रतिसंधानम् ॥ ३४ ॥

प्रेम पहिचान तो उसके किये हुए उपकारोंसे बँधी हुई होनी चाहिये । यह ‘ बिछुरे हुएका मिलाना ’ पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

तत्कृतोपकारसंबद्धमिति नायकेन यः कृत उपकारोऽर्थेनानर्थप्रतीकारेण वा तेन युक्तं स्यात् । कृतज्ञतासूचनार्थम् ॥ ३४ ॥

नायकने जो उसका प्रयोजन और अनर्थ निवारण किया हो वे प्रेम परि-चय उन बातोंसे भी सने हुए होने चाहियें जिनसे उसकी कृतज्ञताकी सूचना मिले ॥ ३४ ॥

अपूर्वसे पूर्वका अच्छा ।

अपूर्वस्यासंभवे विशीर्णं नोपजपतिश्र (१) तेन संधानं युक्तमित्याह—

अपूर्व और पहिले मिले हुओंमें जो गरमजेबवाला व बातें चलानेवाला पहिलेका मिलनेवाला हो तो वह अपूर्वसे अच्छा है, इसी बातको प्रश्नोत्तरके रूपमें दिखाते हैं, कि—

अपूर्वपूर्वसंसृष्टयोः पूर्वसंसृष्टः श्रेयान् । स हि विदितशीलो दृष्टरागश्च सूपचारो भवतीत्याचार्याः ॥ ३५ ॥

पहिले मिले हुए और कभी न मिले हुए व्यक्तियोंमें पहिले मिला हुआ अच्छा है, क्योंकि उसके स्वभावका परिचय रहता है । प्रेम देखा हुआ रहता है उसकी खुशामद आसानीस की जा सकती है । ऐसा आचार्य्योंका मत है ३५

विदितशील इति सहवासेन ज्ञातस्वभावः । दृष्टानुरागश्च पूर्वमासक्तत्वात् । स ह्युभयधर्माध्यासितत्वात्कान्तानुवृत्त्या सुखेनोपचर्यत इति ॥ ३५ ॥

जिसका स्वभाव सहवाससे जाना हुआ रहता ह वह पहिला, आसक्त होनेके कारण अपना प्रेम देखे हुआ भी रहता है । अतः वही दोनों बातोंका देखा हुआ होनक कारण अनुकूलता या अनुसार चलकर सुखपूर्वक खुशामदोंसे राजी किया जा सकता है ॥ ३५ ॥

इसपर वात्स्यायन ।

पूर्वसंसृष्टः सर्वतो निष्पीडितार्थत्वान्नात्यर्थमर्थदो दुःखं च पुनर्विश्वासयितुम् । अपूर्वस्तु सुखेनानुरज्यत इति वात्स्यायनः ॥ ३६ ॥

यदि पहिलेका मिलनेवाला खोखा करके छोड़ा हो वह न तो अधिक धन ही दे सकेगा एवम् फिर उसे अपना विश्वास बँधाना भी जरा कठिनताका कार्य्य है। अपूर्व तो सुखके साथ अनुरक्त बनाया जा सकता है। यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ ३६ ॥

नात्यर्थमर्थद इति । अर्थार्थं सन्धीयते । स चेन्न यथावत् किं तेन संहितेन । दुःखं च पुनर्विश्वासयितुम् । तस्य सत्यपि विदितशीलत्वे दृष्टानुरागत्वे च निष्कासनोत्पादितवैकृत्यात् । सुखेनानुरज्यत इति तेन तद्दोषस्यादृष्टत्वात् । तया वा अनिष्पीडितार्थत्वादत्यर्थमर्थद इत्यर्थोक्तम् ॥ ३६ ॥

धन खींचनेके लिये ही मिलाया जाता है। यदि मिलाने पर खोखेसे धन ही न मिलेगा तो फिर मिलानेमें लाभ ही क्या है ? इसके साथ यह भी बात है कि उसे जलदी विश्वास भी नहीं बँधाया जा सकता। यद्यपि वह शील स्वभाव जानता है अपना अनुराग भी देखा है पर खोखा करके जो धक्के दिये हैं उसका विकार उसके हृदयमें अवश्य हुआ होगा। पर जो अपूर्व है उसने दोष तो देखे नहीं, इस कारण सुखपूर्वक अनुरक्त बनाया जा सकता है। नयेका धन तो निचोड़ा हुआ है नहीं इस कारण वह फीससे भी अधिक धन दे देता है यह इसका भावार्थ है ॥ ३६ ॥

पूर्वसंसृष्टके भेद।

पूर्वो द्विविधः—तत्रत्य इत (इहत्य) श्च । अन्यवेश्यासंसृष्टोऽसंसृष्टश्चेति । संसृष्टोऽपि द्विविधः—निष्कासितोऽनिष्कासितश्च । तेषां संधानोपायो गम्योपावर्तने द्रष्टव्यः।

पूर्व दो तरहका होता है–एक दूसरी जगहका है तथा एक अपने यहांका है। फिर दोनोंमेंसे प्रत्येकके दो दो भेद होते हैं, जहां है उसे छोड़ दूसरी किसी वेश्याका पहिलेका संसर्गी रहता है,एक नया खिलाड़ी भी रहता है। जो संसर्ग किया हुआ रहता है वह भी दो तरहका होता है–एक तो जिसका संसर्गी है उसका निकाला हुआ रहता है तथा विना निकाला हुआ भी रहता है। इन सबके मिलानेके उपाय 'गम्योपावर्तन' में देखने चाहियें।

इसपर वात्स्यायन।

तथापि पुरुषप्रकृतितो विशेषः ॥ ३७ ॥

तो भी पुरुषकी प्रकृतिसे इसमें भी विशेष होता है ॥ ३७ ॥

पुरुषप्रकृतित इति पुरुषस्वभावात्। कःस्या (कश्चि) दपूर्वोऽपि दुरुपचरः कदर्यश्च भवति । पूर्वसंसृष्टश्च निष्पीडितार्थोऽपि दाता । निष्कासितोऽपि सविश्वासः । इति संक्षेपेण संधानम् ॥ ३७ ॥

यह बात पुरुषोंके स्वभावपर निर्भर है। कोई मनुष्य ऐसा होता है जो कभी न मिला हुआ भी ऐसे स्वभावका होता है कि अनेकों खुशामदोंसे भी राजी नहीं होता तथा बुरे स्वभावका कदाचारी रहता है कुछ नहीं देता। कोई २ पहिला मिला निचोड़ा हुआ भी खूब देनेवाला रहता है एवम् धक्के खानेपर भी विश्वास ही रखता है। यह संक्षेपसे मिलानेका विषय कह दिया ॥ ३७ ॥

प्रतिसन्धानके तीन कारणोंका उल्लेख।

कारणं त्रिविधम्---नायकान्तरस्थं विशीर्णस्थं वर्तमानस्थं चेति । तदेव दर्शयन्नाह---

विछुड़े हुएको मिलानेके या मिलानेके तीन कारण हैं-एक तो किसी अपूर्व नायकके सम्बन्धके होते हैं,दूसरे विशीर्णके सम्बन्धके ही होते हैं तथा तीसरे कारण वर्तमान नायकके विषयको लिये हुए होते हैं । इन तीनों तरहके कारणोंको ही दिखाते हैं कि---

विशीर्णगत कारण।

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

अन्यां भेदयितुं गम्यादन्यतो गम्यमेव वा ।
स्थितस्य चोपघातार्थं पुनः संधानमिष्यते ॥ ३८ ॥

अपनेसे जुदे हुए मिलनेवालेसे दूसरीको जदा करनेके लिये, दूसरीसे मिलनेवालेको जुदा करनेके लिये और दूसरीके अर्थका त्रिघात करनेके लिये विछुड़े हुएको फिर मिलाया जाता है ॥ ३८ ॥

अन्यामिति । भेदयितुं विशीर्णत्वात् । 'तदानेन विमानिता भार्यया तमेव तस्यां विक्रमयिष्यामि । अस्य वा मित्रं मद्द्वेषिणीं कामयते तदमुना भेदयिष्यामि' इत्युक्तं वेदितव्यम्। स्थितस्योपघाताथमित्यनेन तदर्थाभिघातं करिष्यतीति । अत उक्तम्---अन्यतो गम्यमेव वेति-अन्यस्या नायिकातो विशीर्णं भेदयितुमिति अनेनापि विशेषं विशीर्णं वेत्यनुरक्तं चापेक्ष्य तदेव सम्प्रयोग इति ३८

इसने मुझसे जुदा होकर मेरा अपमान किया और अपनी स्त्रीके साथ मिल गया, इसे उस स्त्रीसे ही लड़ा दूंगी । इसके दोस्तको मुझसे द्वेष रखनेवाली मेरी सौत चाहती है । मैं इस बिछुड़े हुएको मिला, इसके द्वारा उससे जुदा करा दूंगी, इस बातको अट्ठाईस और उन्तीसवें सूत्रमें कह चुके हैं उसे यहां भी समझ लेना चाहिये । इन दोनों स्थलोंमें वेश्याका दूसरीको ही नायकके पृथक् करनेका उद्देश रहता है । श्लोकमें जो यह कहा है कि-'दूसरीके अर्थका विघात करनेके लिये' इसे २५ वें सूत्रमें कह चुके हैं। इसमें दूसरी नायिकासे बिछुड़ा हुआ मिलनेवाला फोड़ा जाता है । इस कामके करतेवार भी विशर्णिकी विशेषता वा अनुरक्तताको देखकर ही इस क्रियाका प्रयोग करे ॥ ३८ ॥

वर्तमानगत कारण ।

बिभेत्यन्यस्य संयोगाद्व्यलीकानि च नेक्षते ।
अतिसक्तः पुमान्यत्र भयाद्बहु ददाति च ॥ ३९ ॥

जो अत्यन्त आसक्त पुरुष दूसरेके संयोगसे डरे एवम् नायिकाके अपराधोंको भी न देखे ऐसा आदमी डरता २ बहुत दे देता है ॥ ३९ ॥

बिभेतीति । यत्र यस्मिन्संस्थाने वर्तमानोऽतिसंसक्तोऽप्यन्यस्य संयोगाद्बिभेति संयुक्तोऽयं कदाचिदपकरिष्यतीति । व्यलीकानि च नायिकाकृतानपराधान्नेक्षते अवधीरयति सत्यतिसक्तत्वादेव । भयादिति परित्यागभयाद्बहु ददाति ॥ ३९

जिस जगह टिका हुआ व्यक्ति अत्यन्त आसक्त होकर भी दूसरेके संयोगसे डरे कि कहीं यह मेरा बुरा तो न कर दे एवम् नायिकाके किये हुए अपराधोंकी तरफ ध्यान नहीं देता, क्योंकि अत्यन्त आसक्त है ऐसा दीवाना इस डरसे बहुत दे गुजरता है कि कहीं यह मुझे छोड़ न दे ॥ ३९ ॥

असंसृष्ट समर्थके आनेपर बिछुड़ा हुआ असमर्थको न छोडे ।

असक्तमभिनन्देत सक्तं परिभवेत्तथा ।
अन्यदूतानुपाते च यः स्यादतिविशारदः ॥ ४० ॥

जो अत्यन्त चतुर हो उसे चाहिये कि अन्यके दूतके आजानेपर असक्तका अभिनन्दन और सक्तका परिभव करे ॥ ४० ॥

असक्तमिति । यो विशीर्णोऽप्यतिरक्तः अतिरक्तत्वाद्वर्तमानं तमसक्तमभिनन्देत । विज्ञा (त) भावत्वात् । यदस्यां न रक्त इति सक्तं परिभवेत् । असक्ता-

---

१ जो अत्यन्त आसक्त होता है वह अपनी प्यारी वस्तुके दूसरेके हाथमें पड़नेके भयसे सदा डरा ही करता है कि—"मेरा यार कहीं मुझसे जुदा हो गया तो मेरी जिन्दगी खराब हो जायगी' ऐसे प्रेमियोंको उनके सामने यदि दूसरेसे अपना प्यारा अपनी बातें करे तो भी घृणा आती है । ऐसे उदाहरण प्रायः उर्दूसाहित्यमें अधिक मिलते हैं । कोई अनुरक्त किसी रकीबसे अपने लिये पूछनेपर अपने प्रेमीसे कहता है कि—

रकीबोंसे न पूछो किधर बैठ गये,
तेरी मैफिलमें जिधर जगह उधर बैठ गये ॥"

आसक्त दोषदर्शी तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि अनुरक्तता गुणोंमें होती है दोषोंमें नहीं । किन्तु भावनाके बदलते ही गुण भी दोष ही दिखाई देते हैं । इन्हीं बातोंको देखकर तो वेदान्तियोंका दृष्टिसृष्टिवाद गतार्थ हो जाता है ।

वस्थां प्राप्तस्य चिरेणेति । अन्यदूतानुपाते चेति । अन्यस्य सम्बन्धिन्यायाते दूतेऽतिविशारदोऽत्यर्थमर्थदो मा भूदनेन सन्धानमिति ॥ ४० ॥

जो बिछुड़ा हुआ अत्यन्त अनुरक्त हो एवम् जिसके हटानेके लिये वेश्याने उसको मिलाया हो वह भी अत्यन्त अनुरक्त हो पर असमर्थ हो तो उस असमर्थका भी अभिनन्दन करे। यह बात उसे उस समय करनी चाहिये जब कि किसी अपूर्व समर्थ पुरुषका दूत भी उसी वेश्याके पास आ उपस्थित हुआ हो। ऐसा करनेका उसका यही तात्पर्य्य है कि इस वेश्याका अपूर्व धनीके साथ सम्बन्ध न होना चाहिये। यह तो उसी समर्थको न फटकने देनेकी बातें हुई अब जिसके निष्कासनके लिये वेश्याने पुनः सन्धान किया है उसके निष्कासनमें जलदी न होनी चाहिये; उस असक्तको भी धीरे धीरे ही निकालना चाहिये ॥ ४० ॥

इस परिस्थितिमें वेश्याकी चतुराई।

तत्रोपयायिनं पूर्वं नारी कालेन योजयेत् ।
भवेच्चाच्छिन्नसंधाना न च सक्तं परित्यजेत् ॥(युग्मम्)४१

नारीको चाहिये कि—यदि ऐसा हो कि अपूर्व समर्थ और मिलनेवाला बिछुड़ा हुआ ये दोनों अपनी ओर आ रहे हों तो इन दोनोंको समय २ पर ही मिलाये। विशीर्णके मिलानेमें हिचकिचाट भी न होनी चाहिये तथा यह भी न करना चाहिये कि सक्तका परित्याग कर दिया जाय ॥ ४१ ॥

तत्रेति तस्मिन्संधाने । पूर्वमसंसृष्टं विशीर्णमुपयायिनम् । नारीति सामान्याभिधानेऽपि प्रकरणाद्वेश्यैव द्रष्टव्या । कालेन योजयेत् न तदैव संप्रयोजयेत् । अन्यथा तदात्व एव वर्तमानेनापि सक्तेन फलवता विश्लेषः स्यात् । विशीर्णोऽप्यतिरक्तत्वात्प्रत्याशया कालान्तरमपेक्षत एव । यदाह—'भवेच्चाच्छिन्नसन्धानेति'। विशीर्णेन सहेत्यर्थः । न च सक्तं परित्यजेत् । तदात्व एव तस्य सफलत्वात् ॥ ४१ ॥

---

१ "लबेजाँबक्स जानाने खराहा वख्ते मयनोशी,
तेरा जामें गदाई क्यों न रश्के जामें जम होता।"

आसक्त निर्धनका मान रख दिया जाता है तो वह इसे अपना जीवनदान समझता है, कि—'मेरी दम होठोंपर आ रही थी इसने बक्स दी' फिर कहीं इसे इज्जत मिल जाय तो वह अपने फकीरीके भिक्षापात्रका आदर मानता है गरबाता नहीं।

यद्यपि श्लोकमें सामान्य स्त्री वाचक नारी शब्द पड़ा हुआ है पर प्रकरण-वश इसे वेश्यावाचक ही समझना चाहिये । उसे चाहिये कि पहिला मिल-नेवाला और पहिले न मिला हुआ समर्थ पुरुष ये दोनों आयें तो इन्हें समय समय पर ही मिलाये यानी जो बिछुड़ा हुआ अत्यन्त अनुरक्त होगा वह तो उसकी आशामें कुछ समय निकाल सकता है इस कारण पहिले समर्थ धनीको ही मिलाना चाहिये, क्योंकि उसी समयके मिलानेसे बहुत संभव है जिससे कि अधिक लाभ होनेवाला है उस धनीकी फाँटाफाटी हो जाय । बिछुड़े हुएके विषयमें भी यह ध्यान रहना चाहिये कि उसे अवश्य मिलाये तथा सक्तके विषयमें भी यह ध्यान होना चाहिये कि उसे भी न छोड़ा जाय, क्योंकि उससे तो उसी समय फल मिल रहा है ॥ ४१ ॥

समर्थ वश्यसे कहकर कहीं जाय ।

यस्तु (यत्र तु) तदात्वेऽन्यस्माल्लाभो महानेव संप्रयोगं विना तत्र किं प्रतिपत्तव्यमित्याह—

जहां तो उसी समय दूसरेसे अधिक लाभ हो वहां विना मिले दूसरे कौनसे कार्य्य करने चाहियें ? इसके विषयमें कहते हैं कि—

सक्तं तु वशिनं नारी संभाष्याप्यन्यतो व्रजेत् ।
ततश्चार्थमुपादाय सक्तमेवानुरञ्जयेत् ॥ ४२ ॥

वशवर्ती सक्तसे तो कहकर स्त्री (वेश्या) दूसरेके यहां चली जाय पर वहांसे धन लाकर सक्तको ही प्रसन्न करे ॥ ४२ ॥

सक्तं त्विति । वशिनं यथोक्तकारिणम् । अन्यत इत्यन्यमुद्दिश्य व्रजेत् । ततश्चेति । तत्र प्रव्रजिता सक्तमेवानुरञ्जयेत् । कान्तानुवृत्त्या तत्र स्थितत्वात् । नान्यं प्रति संदध्यात् ॥ ४२ ॥

अपने कहेके मुताबिक करनेवाले सक्त पुरुषसे तो उसे यह बताकर चली जाय, कि मैं वहां जाती हूं, किन्तु जब वहांसे धन खींचकर लौटे तो अपने

---

१ जो सक्तसे पूछकर जाती हैं वे दो कोटिमें विभक्त हैं. एक तो मन रखनेके लिये पूछती हैं एवं दूसरी सर्वस्वत्यागी सक्तकी आज्ञाका पालन करती हैं । आज्ञापालकोंमें वे आती हैं जो पहिले एककी ही होकर रही हों । जो अपने असमर्थ आसक्तकी भी प्रतिष्ठा रखती हैं उनकी गिनती भलियोंमें हुआ करती है ।

सक्तको ही प्रसन्न करे, क्योंकि उसीके पास तो वह कान्तानुवृत्तिसे रहती है वह जैसे कहे वैसे करे, ऐसा न करे कि उसे छोड़ एवं उससे विना पूछे दूसरोंसे मिलने लग जाय ॥ ४२ ॥

मिलातीबार ध्यान रखनेकी बात ।

प्रोक्तानुष्ठाने निरूप्यमाह—

कहे हुएके अनुष्ठानपर जो बात कहनी है उसे कहते हैं, कि—

आयतिं प्रसमीक्ष्यादौ लाभं प्रीतिं च पुष्कलाम् ।
सौहृदं प्रतिसंदध्याद्विशीर्णं स्त्री विचक्षणा ॥ ४३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे विशीर्ण-प्रतिसंधानं चतुर्थोऽध्यायः ।

जो चतुर स्त्री हो उसे चाहिये कि—सबसे पहिले प्रभाव, लाभ, विपुलप्रीति और सौहार्द देख ले, तापीछे बिछुरेको मिलाये ॥ ४३ ॥

आयतिमिति प्रभावम्, लाभमायत्याम् तदात्वे प्रीतिं पुष्कलां निर्व्याजं तस्यात्मविषये । विचक्षणेति । परीक्षणे विचक्षणा कुशला । इति विशीर्णप्रतिसन्धानं षट्पञ्चाशं प्रकरणम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणे विशीर्णप्रतिसन्धानं चतुर्थोऽध्यायः ।

जो चतुर वेश्या हो उसे चाहिये कि जब वह बिछुड़े हुएको मिलानेके लिये तयार हो तो सबसे पहिले वह इस बातपर दृष्टि डाल ले, कि इससे मिलानेपर मेरा रँगबाजोंपर क्या प्रभाव पड़ेगा ? भविष्यमें मुझे इससे क्या क्या लाभ होंगे ? इस समय मुझमें इसका निष्कपट अतिप्रेम है वा नहीं ? यानी जिसमें इन बातोंको पाये उसे मिलाये अन्यथा नहीं । यह बिछुड़े हुएको मिलानेका ५६ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म—तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके चतुर्थ अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

लाभविशेष प्रकरण ।

त्रिविधा वेश्या—एकपरिग्रहा अनेकपरिग्रहा अपरिग्रहा चेति । तत्र पूर्वस्य[1] लाभ उक्तः । द्वितीयाया वक्ष्यति । तृतीयाया विनापरिग्रहमनेकस्माल्लभमानाया लाभविशेषा उच्यन्ते ।

तीन तरहकी वेश्याएँ हैं—एककी बनकर रहनेवालीं, अनेकोंकी बनकर रहनेवालीं, किसीकी बनकर न रहनेवालीं । एकचारिणीके लाभ कह चुके, दूसरीके लाभ विशेष कहेंगे तथा तीसरी जो किन्हीं भी पुरुषोंसे बँधी हुई नहीं हैं उसके विशेष लाभोंको कहते हैं—जिस प्रकार कि वह बहुतोंसे अपना लाभ लेती हैं ।

अपरिग्रहका कारण ।

तत्रापरिग्रहकारणमाह—

इस विचारसे पहिले हमें इस बातपर भी विचार कर लेना चाहिये कि उसके परिग्रह न करनेका कारण क्या है?—

---

१ जो वेश्याएँ किन्हीं भी पुरुषोंसे न बँधकर लाभ उठाती हैं उन्हें भी कभी ऐसा मौका पड़ जाता है कि सच्चे हृदयसे एककी बन जाती हैं । दिलदार वेश्याका जब राजकुमारने जुआमें सर्वस्व जीतकर उसे भी जीत लिया तो वह उसकी सच्चे हृदयसे बन गई । यहांतक बनी कि जब वह छोड़कर किसी कामको जाने लगा तो उससे उसने अनेकों प्रार्थनाओंके साथ कहा कि—

"आतशे सोजाँमें तू ए शोख बे परवा न जा, नक्द जाए बेकसांको छोड़कर तनहा न जा ।
तिस्रने बलए अत्र निसियाँ इस सहफको छोड़कर, जानिने वीरानः जालिम इसकदर दौडा न जा॥
चल रही है चारसूं बादेहवा दिस तेजो तुन्द, कुलबहा एहजासे तु ए शादीए दिलहा न जा ।
तू नहीं वाकिफ है हीलासे जमानेके अभी, यूसुफे दौरां यह जिन्दा है तू अब फिर था न जा ॥
जिसमें तू जाता है वह है बह नापैदा किनार,मान मेरी बातको जालिम यहीं रह जा न जा ।
हशारमें परवानःको जालिम तू क्यादेगा जवाब,छोड़कर उनको कहीं ऐशमा नूरअफजा न जा"

अन्तमें राजकुमार इसे छोड़कर चला गया ह यह उसकी प्रतीक्षामें सदाचारका पालन करती रही है । और आखिरी जीवन उसीकी बनकर गुजारा है । इसी तरह अनेकों अनेक परिग्रहा वेश्याओंको भी एककी बनकर ही अपने जीवनका अन्त करते सुना है । वेश्याजीवनसे घृणा एवम् किसी पुरुषसे प्रेमबन्धन ये दो बातें वेश्याओंको भी ठिकानेपर ला देती है. यही कारण है कि आज भी ऐसी वेश्याओंकी सन्तान दृष्टिगत होती है ।

गम्यबाहुल्ये बहु प्रतिदिनं च लभमाना नैकं प्रतिगृह्णीयात् ॥ १ ॥

+ मिलनेयोग्य व्यक्तियोंकी अधिकतामें प्रतिदिन बहुत मिले तो एकको न पकड़े ॥ १ ॥

यदा गम्या बहवस्तेभ्यः स्पर्धया बहु लभते । प्रतिदिनं चैकैकमभिगच्छन्ती तद्दिन एकं प्रतिगृह्णीयात् । स हि बहु प्रतिदिनं च न ददाति । तदेवमनियतो लाभः । सततश्च कश्चित्स्वल्पमपि दद्यात् । तद्ग्रहणे चान्ये तावन्मात्रकमेव दद्युरित्यूहेत् ॥ १ ॥

यदि अपने मिलने योग्य बहुत व्यक्ति हों एवं उनकी परस्परकी होड़ाहोड़ीमें बहुत मिलता हो तो प्रतिदिन एक २ के साथ मिलती हुई उस दिन एकको ही स्वीकार करे, क्योंकि एक ही आदमी हररोज बहुतसा नहीं देता, इस प्रकार यह अनियत लाभ है और रोज कोई थोड़ा भी द दे तो वह सततलाभ है। उसके ग्रहणमें दूसरे उतना ही देंगे ऐसी कल्पना करे ॥ १ ॥

एक रातमें अनेक ।

कभी २ ऐसा भी होता है कि आवश्यकतावश अनेकचारिणी वेश्याएँ समय विभागसे एक रातमें अनेकोंके साथ भी समागम कर सकती हैं, क्योंकि–साहित्यमें भी एक रातमें अनेक जनोंके साथ रमण करनेवाली वेश्याओंका प्रसंग आता है । धारानगरीकी किसी परमसुन्दरी वेश्याके यहां रोज कालिदास और भोज दोनों जाते थे पर वह चतुरा दोनोंका आमनासामना कभी नहीं होने देती थी, किन्तु आपसमें जानते दोनों अवश्य थे । एक दिन राजाने वेश्याको समझाया कि कालिदाससे शिर मुँडवानेके लिये

+ अनेकोंका परिग्रह करनेवाली वेश्याएँ एकका परिग्रह क्यों नहीं करतीं ? इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये कामसूत्रकारने सूत्र किया है कि–"उनके ऐसा करनेका कारण अनेक छैलोंका मिल जाना है ।" इनके अलैदा जो टीकाकार रातका हिसाब लगा रहा है यह इसके घरकी ही कल्पना है । यह रातके मिलनेवालोंको दो भागोंमें बाँटता है, एक तो प्रतिदिन पूरी एक रातका व्यय देकर रहनेवाले एवम् दूसरे इच्छानुसार रोज ही रहनेवाले । इन दोनोंमें लगातार कुछ दिनतक रहनेवालेसे कम लाभ होता है व एक रातको ही रहनेवालोंसे अधिक लाभ रहता है । यह बता रहा है ।

कहना । वेश्याने कालिदाससे कहा तथा उसने शिर भी मुँडवा लिया । दूसरे दिन कालिदासने राजाको बागमें गधेकी तरह रेंकवानेके लिये कहा । वेश्याने उनको भी गधेकी तरह बागमें बुलवाया । एक दिन राजाने कालिदासजीसे कहा कि—

" कालिदास कविश्रेष्ठ ! कस्मिन् पर्वणि मुण्डनम् ।
राजाना गर्दभायन्ते तत्र पर्वणि मुण्डनम् । "

ए कविश्रेष्ठ कालिदास ! यह तो बताओ कि तुम्हारा किस पर्वमें मुण्डन हुआ ? यह सुनकर कालिदासने उत्तर दिया कि जिस पर्वमें राजा गधेकी तरह रेंका करते हैं उसी पर्वमें मेरा भी मुण्डन किया गया है । इसके दो मिलनेवाले थे तो यह दोनोंको एक ही रातमें सँभालती थी । दिलदार वेश्या रातके बारह बजे पहिले चार राजकुमारोंसे मिली थी । समय विभागसे अनेकों शर्मवाले तथा संघाटकरतकी रीतिसे अनेकों उन पुरुषोंसे जिनकी कि आपसमें शर्म निकल गई हो मिल सकती है ।

रातकी फीस ।

देशं कालं स्थितिमात्मनो गुणान्सौभाग्यं चान्याभ्यो न्यूनातिरिक्ततां चावेक्ष्य रजन्यामर्थं स्थापयेत ॥ २ ॥

देश, काल, अपनी स्थिति, गुण, सौभाग्य एवम् दूसरी वेश्याओंसे अपनेमें कम ज्यादा देखकर रातकी फीस मुकर्रिर कर दे ॥ २ ॥

देशं सम्पन्नमितरं वा । कालं यत्र काम उद्भूतशक्तिर्वा (?) । स्थितिं देश-प्रवृत्तिं यथा अधरकायं सेवमानस्यैकगुणः पूर्वकायमपि द्विगुणः । आत्मनो गुणान्रूपवैदग्ध्यादीन् सतोऽसतो वा तथा सौभाग्यम् । अन्याभ्य इति मेष्याभ्यः (?) स्थानमानाभ्यामात्मनश्च न्यूनत्वं चाधिक्यं चावेक्ष्य तदनुरूपं रजन्यामर्थं स्थापयेत् ॥ २ ॥

यह देश धनी है वा नहीं । इस समय तमासबीन लोगोंकी तबीयतें मचल रही हैं वा नहीं । देशाचार देखे, कि–' नीचेके अंगके सेवन करनेवालेका

---

१ पहिले भले ही भारतमें इसका प्रचार हों पर अब नहीं होता है, किन्तु दूसरे देशोंमें खासकरके योरुपमें चुम्बन आदिकी जुदी २ फीसें चलती हैं । घण्टे आदिकी फीसकी भी यही व्यवस्था है । कहीं कहीं भारतमें भी यही ढंग सुनते हैं ।

एक और उसके साथ पूर्व दह अधर आदिका भी उसके साथ सेवनका दूना शुल्क रखे। अपने रूप, रसिकता और नागरीपने अच्छे वा बुरे हैं यह भी देख ले। अपने सौभाग्यकी तरफ दृष्टि डाल ले। और भी जो मुकाबलेमें हों उनसे अपने स्थान, मानको भी देख ले, कि मैं उनसे कम हूं या ज्यादा हूं उसीके अनुसार रातकी फीस मुकर्रिर कर दे ॥ २ ॥

एकरातके पच्चीस रुपये।

एक वेश्या जो उस रातिके चारित्रसे कुलवधूको भी मात दिया करती थी; पूरी रातके २५ रुपये लिया करती थी। यदि आगन्तुक उसे स्त्रीकी तरह पीटे भी तो उसे पिटना भी मंजूर था। एक दिन किसी कारणवश इसके यहां वीरबल पहुँचा है उसने इसमें एक मामूलीसी बातपर २५ कोड़े लगाये हैं तो इसन उनकी अत्यन्त मारसे भी मुखसे उफतक नहीं निकाली है। वीरबलने इसका अन्तमें वहांकी राजसभामें ' कम असलकी असल ' कहकर आदर किया है। इसके मुकाबिलेमें जो थी वह ५) रु० रातकी फीस लेती थी पर कुलस्त्रीकी तरह आचरण करना तो दूर रहा किन्तु मिलनेवालोंको लुटवा-तक लिया करती थी। वीरबल जैसे मनुष्य ऐसी स्त्रियोंको तुच्छ तथा पचीस-वालीको आदर देते हुए न शरमाये। पांचवालीसे पचीसवालीमें यह विशेषता थी इसी कारण पांचवालीके मुकाबिलेमें उसकी २५ चलती थी। कामसूत्रकारने यहां व्यवहारका खाका खींचा है; कोई अपूर्व विधान नहीं किया है।

दूत भेजनेका ढंग।

द्वयमेकां रात्रिनियतासेति इति (?) तत्र यदावस्थापितार्थेन गम्य एव दूत-सम्प्रेषणेन भाषयति सिद्धं कार्यं नो चेदाह—

यदि मुकर्रिर फीससे मिलने योग्य नागर ही आदमी भेजकर बात चलाये तो कार्य्य सिद्ध ही है, न भेजे तो उसके विषयमें कहते हैं कि—

गम्ये दूतांश्च प्रयोजयेत्। तत्प्रतिबद्धांश्च स्वयं प्रहि-णुयात् ॥ ३ ॥

मिलने योग्यसे मिलनेको दूत लगाये। उसके मिलनेवालोंसे स्वयम् आप कहे ॥ ३ ॥

तत्प्रतिबद्धान्न तु (गम्यते)। गम्यप्रतिबद्धान्प्रयोजयेदभिप्रायजिज्ञासार्थम्। विदिताभिप्रायांश्च प्रेषयेदात्मीयानित्यर्थः ॥ ३ ॥

स्वयं न जाय उसके मिलनेवालोंको उसके मनको जाननेको भेजे, जब उनसे उसका मन जान ले तो अपने आदमियोंको भेजे ॥ ३ ॥

पहिलीमें न मिलनेपर और रातें ।

दूतसम्प्रेषणाद्गम्यसम्प्रयोगं रजन्युपपालम्भः । तस्मान्नियमितादधिको योऽनुरागाल्लभ्यते स लाभातिशयः । तं चेत्तदैव लभते भद्रकमेव नो चेदत्राह—

भडुए आदिको भेजकर रँगीले छैलाके साथ मिलकर रातकी नियत फीस ल लेना यह रातिका नियत लाभ है, किन्तु उसकी खुसामद करके प्रेम लगा उसे अपन दीवाना बना फीससे अधिक ल लेना ही उसका अधिक लाभ है। यदि उस अधिक लाभको उसी समय पा जाय तो अच्छा है, यदि न पाये तो उसके लिये कहते हैं कि—

द्विस्त्रिश्चतुरिति लाभातिशयग्रहार्थमेकस्यापि गच्छेत् । परिग्रहं च चरेत् ॥ ४ ॥

एकके भी लाभातिशयको लेनेके लिये दो, तीन व चार दिन मिले तथा उसकी इस प्रकार सेवाएं करे जिस प्रकार कि कुलस्त्री करती है ॥ ४ ॥

इतिशब्दो विकल्पार्थः । द्वौ त्रीन् चतुरो वा एकस्यापि मूलं गच्छेत् । परिग्रहं च चरेत्परिग्रहकल्पं चेति । तावत्सु दिवसेष्वन्यनिरपेक्षानुरञ्जनेन ॥ ४ ॥

यदि वह अधिकलाभ एक दिनमें मिले तो एकदिन, नहीं तो नियत फीस दो व तीन या चार दिनतक नियत फीसपर एकसे ही सहवास करे तथा उसकी निज पत्नीकीसी सेवा करे । उन दिनोंमें किसी दूसरेके प्रसन्न करनेका ध्यान न रखे ॥ ४ ॥

एक साथ आयोंमें अधिक लाभ ।

गम्यतश्च विशेषमाह—

अधिक मिलनेवालोंके आनेपर लाभ कैसे उठाये? इसके विषयमें आचार्य्योंका मत कहते हैं, कि—

---

१ इस कामको या तो उसके भडुए करते हैं या उसके किसी प्रकारका लोभ रखनेवाले व्यक्ति किया करते हैं । कभी प्रेमोन्मत्त भी उसके लाभके लिये दूसरोंको फँसा लाते हैं अतः किसीकी बातें ऐसी जगहमें जानेके लिये माननेसे पहिले खुब सोच लेना चाहिये, क्योंकि व्यसनी बने पीछे तो उसका मरीज ही हो जाता है ।

गम्ययौगपद्ये तु लाभसाम्ये यद्द्रव्यार्थिनी स्यात्तद्दायिनि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ॥ ५ ॥

मिलने योग्योंके एक साथ आनेपर एकसा लाभ रहनेपर भी जिसके द्रव्यको लेगी उसके देनेवालेसे अधिक मिलेगा यह परिस्फुट ही है ऐसा आचार्य्योंका मत है ॥ ५ ॥

लाभसाम्य इति । यदि बहवो गम्या युगपदुपस्थिता एको हिरण्यमपरस्तुल्यमूल्यं लाभतो येन द्रव्यार्थिनी तद्दायिनि गम्ये लाभविशेषः प्रत्यक्षः । तस्यार्थिनी स्यादित्याचार्याणाम् ॥ ५ ॥

यदि मिलनेयोग्य बहुतसे आदमी आ उपस्थित हों और जो एक धन देता है दूसरा भी उतनी ही कीमतकी दूसरी चीजें देता हो तो ऐसोंमें जिसकी चीज ले लेगी वह अपनेआप दूसरोंसे और भी कुछ अधिक दे देगा यह बात परिस्फुट ही है, ऐसा आचार्य्योंका मत है ॥ ५ ॥

सोनेका सिक्का ।

अप्रत्यादेयत्वात्सर्वकार्याणां तन्मूलत्वाद्धिरण्यद इति वात्स्यायनः ॥ ६ ॥

+ धनसे सब काम होते हैं । धन किसका है इसकी कोई पहिचान नहीं रहती इस कारण नगद देनेवाला गम्य है यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है॥

हिरण्यमत्र लोकप्रतीत्या कपर्दकाः (?) ते चेदत्र गम्येन पुनर्न प्रत्यायन्ते वस्त्रादिकं दत्त्वा किञ्चित्प्रत्यादत्ते । सर्वकार्याणामिति—तद्द्रव्यं मण्डनमन्यच्च कार्यं हिरण्यमूलम् । तेन लभ्यमानत्वात् । तेन तत एव विशेषः । तस्मात्तत्रैवार्थित्वं कर्तव्यम् ॥ ६ ॥

सूत्रमें आया हुआ हिरण्य शब्द लोक व्यवहारसे दमड़ीसे लेकर मुहर तक कहाता है । सिक्केको देकर मिलनेवाला फिर नहीं पा सकता, किन्तु

---

१ यह बात उस समय होती है जब कि पूरी रातकी बातें होती हैं । यदि पूरी रातकी बातें नहीं होतीं तो कालक्रमसे उसी दिन भी सबसे ले लिया जा सकता है ।

+ हमने ऐसा सुना है कि पाश्चात्य देशोंमें बाजे २ वेशोंमें सब कारवाइयाँ गिन्नियोंसे ही हुआ करती हैं ।

दूसरी चीजें देकर भी छिनाई जा सकती हैं। जो भी चीजें हैं जो भी जेवरातें हैं उन सबकी सिक्का जड़ है, क्योंकि वे उससे ही हो सकती हैं वा मिल सकती हैं, इसी कारण और चीजोंसे शिक्कोंमें विशेषता है, इस कारण और चीजोंकी अपेक्षा सिक्का खींचना चाहिये यह महर्षि वात्स्यायनका मत है ॥ ६ ॥

सौ सुवर्णोंकी फीसवाली सुगन्धा ।

कामसूत्रने जो वेश्याओंकी फीसकी रीति बताई है इसे हम व्यवहारमें भी सुनते तथा धर्मग्रन्थोंतकमें व्यवहृत देखते हैं। रुद्रवातिंत्रतमें एक रातके सौ सुवर्ण पेसगी फीस लेनेवाली वारवधू सुगन्धाकी कथा आती है, इसे यहीं उद्धृत करते हैं कि—

" क्षिप्रायास्तु तटे रम्य पुरी चोज्जयिनी शुभा ।
तस्यामासीत् सुगन्धा च वारस्त्री ह्यतिसुन्दरी ।
तया शुल्कं कृतं विप्र युवभिश्च सुदुःसहः ।
सुवर्णानां शतं साग्रं प्रतिज्ञातं च तैः कृतम् । "

क्षिप्रा नदीके सुन्दर किनारेपर एक उज्जयिनी पुरी है। उसमें पहिले एक परमसुन्दरी सुगन्धा नामक वारवधू रहती थी। उसने अपने एकवारके मिल-नेका सौ सुवर्ण पेशगी फीस नियत कर दिया था जिसे युवक बड़ी कठिनाईसे उठा सकते थे।

" युवानश्च तया विप्रा भ्रंशिताश्च सुगन्धया ।
राजानो राजपुत्राश्च नग्नीकृत्य पुनः पुनः ॥
तेषां भूषा गृहीता च धिक्कृतास्ते सुगन्धया ।
एवं हि बहवो लोका लुण्ठिताश्च सदा तया ॥"

ए ब्राह्मणो ! अनेकों सुपथगामी युवकोंको उनके सुपथसे डिगा दिया। राजा लाग और राजकुमार उसके यहां भर आये और नंगे करके भेजे, यहांतक किया कि उनके जेवर तक उतरवा लिये। अनेकों धिकारें दी कि 'जेबमें सिक्के नहीं तो इसी तरह भगकर चले आये' अन्तमें नंगा करके धक्के देकर निकाले। वह अपनी वेश्यालीलासे अनेकोंको लूटा करती थी।

चार दण्डके पाँचसौ रुपये ।

जयपुरमें भी गलता गादीके पयहारीजीके समयमें एक परम सुन्दरी रूपा-जीवा रहा करती थी, जिसे देखकर एक भव्य पुरुषको मोह हुआ एवम् उन्होंने वेश्यासे कहा कि—

" वारवधूसों कह विहँसि, मुद्रा ले शत पाँच ।
चारि दण्ड बीते निशा, देहु हमें सुख सांच ॥ "

लीजिये ! ये पाँचसौ मुद्राओंको ग्रहण करिये । चारदण्ड रात बीते तक हमें सच्चा सुख दे दीजिये । वे आगन्तुक इतने रुपयेपर उसके यहां इतने समय तक टिके । इसके घ र जो आये थे वे प्रारब्धप्रेरित महात्मा ही चले आये थे, उनके साथके प्रभावसे इसे विशुद्ध बोध हो गया, जिससे अपनी सारी संपत्ति लुटाकर साधुसेविनी बन गई ।

फीसकी चीजें ।

द्रव्यस्वरूपमाह—

फीसमें क्या २ चीजें ली जा सकती हैं ? उन्हें बताते हैं कि—

सुवर्णरजतताम्रकांस्यलोहभाण्डोपस्करास्तरणप्रावरणवासोविशेषगन्धद्रव्यकटुकभाण्डघृततैलधान्यपशुजातीनां पूर्वपूर्वतो विशेषः ॥ ७ ॥

सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, लोह, बर्तन, सामान, बिस्तर, लिहाफ, अन्यवस्त्र, गन्धद्रव्य, कटुक, घड़े आदि, घी, तेल,धान्य, चौपाये इन चीजोंमें पर २ से पूर्व २ श्रेष्ठ होती है ॥ ७ ॥

सुवर्णरजते घटिते अघटिते वा । ताम्रकांस्यलोहैर्घटितं भाण्डोपस्करम् । आस्तरणं तूलिकादि । प्रावरणं कम्बलादि । वासोविशेषः क्षौमादिः । गन्धद्रव्यं चन्दनादि । कटुकं मरिचादि । भाण्डः पटु (?) घटादिः । पूर्वपूर्वत इति क्षुद्रपशुजातेर्धान्यं ततस्तैलादिरित्यादिना विशेषः । धान्यपशवो यत्र अवलब्धा (?) वेश्यानां प्रशस्यन्ते ॥ ७ ॥

सोने चाँदीका बना हुआ कुछ हो वा इसी तरह हो । ताँबे कासे और लोहेके बनाये वर्तन या सामान होना चाहिये । रूईके बने दरी गद्दे आस्तरण एवम् ऊनके बने कम्बल व रेशमके बने दुशाले आदि तथा पट्टवस्त्र, अतर, चन्दन, कपूर, कडुई मिरच आदि, घड़े टोकने । इनमें छोटे२ पशुओंसे धान्य, उससे तेल तथा तेलसे घी एवम् इसी तरह पर २ से पूर्व २ की चीजें उत्तम हैं । वेश्याओंके मिले हुए धान्य पशु सराहे जाते हैं ॥ ७ ॥

बराबरमें विशेष ।

यत्तत्रसाम्याद्वा द्रव्यसाम्ये मित्रवाक्यादतिपातित्वादायतितो गम्यगुणतः प्रीतितश्च विशेषः ॥ ८ ॥

दोनोंकी बराबरी रहनेपर भी जिसके लिये मित्र अधिक आग्रह करें अथवा जिसपर अधिक प्रभाव गुण और प्रेम आदि देखे उधरकी ही चीजको पसन्द कर ले ॥ ८ ॥

यत्तत्र साम्याद्वेति यद्वा एतन्न ते प्रियं ततो विशेषः । द्रव्यसाम्य इति । यत्रा-द्वावपि रूपतः प्रमाणतुल्यं प्रयच्छतस्तत्र मित्रवचनमनुष्ठेयम् । यत्र वा तदानी-मदीयमानमतिपतति यत्र चायतिः प्रभावः पुरु (ष) गुणो वा यत्र गम्ये सति प्रीतिर्वा नायिकाया नायकस्य नायिकायामिति ॥ ८ ॥

यदि दोनों जगहोंकी चीजें स्वरूप और प्रमाणसे एकसी ही हों और अप-नेको किसीपर ध्यान न आये तो उनमें मित्रोंका वचन मानना चाहिये; जिसे वे अच्छी बतां दें उसे ले लेना तथा जिसे वे बुरी कह दें उसे छोड़ देना चाहिये । जहां उस समयका न दिया हुआ कहीं अन्यत्र दिया जाय, जिसके लेनेमें अपना प्रभाव बढ़े, जिसमें पुरुषगुण हो, जहां गम्य होनेपर भी नाय-ककी प्रीति नायिकामें तथा नायिकाकी नायकमें हो उसे ले ले ॥ ८ ॥

रागीसे त्यागी अच्छा है ।

गम्यतो विशेषमाह—

अब मिलनेवालोंकी बढाचढ़ीपर विचार करते हैं कि—

रागित्यागिनोस्त्यागिनि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ९॥

रागी और त्यागीके विषयमें त्यागीमें विशेष प्रत्यक्ष है ऐसा आचार्य्योंका मत है ॥ ९ ॥

रक्तात्त्यागिनो विशेषः प्रत्यक्षः । तदात्व एव द्रव्यप्राप्तेः ॥ ९ ॥

अत्यन्त अनुराग रखनेवाले व्यक्तिसे दानशील त्यागीसे विशेष लाभ प्रत्यक्ष ही है, क्योंकि त्यागीसे उसी समय द्रव्य मिल जाता है ॥ ९ ॥

रागी त्यागी बनाया जा सकता है ।

शक्यो हि रागिणि त्याग आधातुम् ॥ १० ॥

रागीमें भी त्याग किया जा सकता है ॥ १० ॥

रागिणि अत्यागिनि रक्ते शक्यस्त्याग आधातुमुपायेन ॥ १० ॥

जो त्यागी देनेवाला नहीं पर पूरा अनुरक्त हो उससे उपायों द्वारा त्याग कराया जा सकता है ॥ १० ॥

बनानेकी रीति ।

कुत इत्याह—

रागी लोभी है कैसे दे सकता है ? इस विषयपर कहते हैं कि—

लुब्धोऽपि हि रक्तस्त्यजति न तु त्यागी निर्बन्धाद्र-ज्यत इति वात्स्यायनः ॥ ११ ॥

अनुरक्त होनेपर लोभी भी धन दे देता है पर त्यागी तो उपायोंसे भी अनुरक्त नहीं बनाया जा सकता ॥ ११ ॥

त्यजति द्रव्यं ददाति । निर्बन्धादिति प्रयासेनापि न रज्यते, तस्य तेजस्वित्वात् । अनुरक्तस्तु त्यजति ॥ ११ ॥

यहां 'त्याग करता है' इसका धन (द्रव्य) दे देनेसे मतलब है । निर्बंधका मतलब उपायोंसे है यानी अनुरक्त करनेके अनेकों प्रयासोंसे भी त्यागी अनुरक्त नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि वह तेजस्वी होता है । पर अनुरक्तसे तो उपायोंसे धन खींचा जा सकता ह ॥ ११ ॥

इनमें भी धनी, इनसे भी प्रयोजनकर्ता ।

तत्रापि धनवद्धनवतोर्धनवति विशेषः । त्यागिप्रयोजनकर्त्रोः प्रयोजनकर्तरि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः १२

इसमें भा धनवान् और निर्धन व्यक्तिमें धनवान्में विशेषता है । त्यागी और प्रयोजन–कर्तामें प्रयोजनकर्तामें विशेष प्रत्यक्ष है ऐसा आचार्य्योंका मत है ॥ १२ ॥

धनवदधनवतोरिति रागित्यागिनोर्यो धनवान्स विशिष्यते नेतरो निर्धनः । प्रयोजनकर्तरीति नायिकायाः कार्यस्य यः कर्ता तस्मिन्नत्यागिनि विशेषः प्रत्यक्षः । तदात्व एव कार्यकरणात् । त्यागी तु दास्यतीति न प्रत्यक्षः ॥ १२ ॥

रागी और त्यागी इन दोनोंमेंसे जो धनवान् है वह वेश्याके लिये श्रेष्ठ है; निर्धन नहीं । अत्यागी रागी धनी व्यक्तियोंमें भी जो वेश्याके कामोंको कर देता है उसमें विशेष लाभ प्रत्यक्ष ही दीखता है, क्योंकि वह उसी समय कार्य्य कर डालता है । त्यागी निर्धन तो आनेपर देगा, इस कारण प्रत्यक्ष नहीं है ॥ १२ ॥

इसीपर वात्स्यायन ।

प्रयोजनकर्ता सकृत्कृत्वा कृतिनमात्मानं मन्यते त्यागी पुनरतीतं नापेक्षत इति वात्स्यायनः ॥ १३ ॥

प्रयोजनका करनेवाला एकबार प्रयोजन करके अपने आपको कृती मान लेता है पर त्यागी तो भूत दानकी ओर नहीं देखता, ऐसा वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ १३ ॥

सकृत्कृत्येति एकवारं कृतमस्याः कार्यं किमपरं करिष्यामीति । अतीतमिति दत्तमेवास्यै न पुनर्ददामीति नापेक्षते । त्यागशीलत्वात् ॥ १३ ॥

काम साधनेवाला एकबार करके सोच लेता है कि कर तो दिया अब क्या करूंगा ? पर त्यागी स्वभावका व्यक्ति देकर भी यह नहीं सोचता कि इसे दे तो चुका अब क्या दूं, क्योंकि उसका देनेका स्वभाव रहता है अतः बारबार दिया ही करता है ॥ १३ ॥

अतिखे निर्धारण ।

तत्राप्यात्ययिकतो विशेषः ॥ १४ ॥

इन दोनोंके विषयमें भी आवश्यकताके अनुसार विशेषता होती है ॥१४॥

आत्ययिकत इति यदा तत्प्रयोजनमवधारितमतिपतति तदा तत एव विशेषः ॥ १४ ॥

जब जिस कामकी अत्यन्त आवश्यकता हो उसमें जो उससे भी अधिक कर गुजरे वह काम सारनेवालोंमें भी श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

कृतज्ञ और त्यागी ।

कृतज्ञत्यागिनोस्त्यागिनि विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः१५

कृतज्ञ और त्यागीके विषयमें त्यागीमें लाभ विशेष प्रत्यक्ष है, ऐसा पूर्वाचार्य्योंका मत है ॥ १५ ॥

कृतज्ञत्यागिनोस्त्यागिनि विशेषः प्रत्यक्षो द्रव्यदर्शनात् । न तु कृतज्ञे । तस्यात्यागित्वात् ॥ १५ ॥

उपकार माननेवाले और त्यागी पुरुष इन दोनोंमेंसे त्यागी व्यक्तिमें लाभविशेष प्रत्यक्ष दीखता है, क्योंकि वह उसी समय देनेवाला है पर वह लाभ कृतज्ञमें नहीं, क्योंकि वह देनेवाला नहीं है ॥ १५ ॥

चिरमाराधितोऽपि त्यागी व्यलीकमेकमुपलभ्य प्रतिगणिकया वा मिथ्यादूषितः श्रममतीतं नापेक्षते ॥ १६ ॥

चिरकाल तक सिद्ध किया हुआ भी त्यागी एक अपराधको देख अथवा दूसरी सामनेकी वेश्याओंसे बहकाया जाकर वेश्याके किये परिश्रमके कष्टोंकी ओर नहीं देखता ॥ १६ ॥

चिरमिति दीर्घकालम् । आराधितोऽपि कान्तानुवृत्त्या । व्यलीकं नायिकापराधमुपलभ्य । मिथ्यादूषित इति मिथ्यैव दोषं ग्राहितः सदैवेयं व्यलीकं कुरुत इति । श्रममतीतमाराधनक्लेशं नापेक्षते ॥ १६ ॥

बड़े लम्बे समय तक अनुसार चल सेवा चाकरी करके प्रसन्न किया गया भी त्यागी नायिकाके अपराधको देख अथवा मुकाविलेकी वेश्याओंसे बहकाया जाकर, कि–'यह सदासे ही अपराध करती रहती है निगाहमें तो आज आई है' इस तरह झूठे दोष लगा देनेपर भी नायिकाके किये हुए परिश्रमकी ओर नहीं देखता ॥ १६ ॥

त्यागियोंका स्वभाव ।

कुत इत्याह—

यह बात त्यागियोंसे क्योंकर हो जाती है ? इसका उत्तर देते हैं, कि—

प्रायेण हि तेजस्विन ऋजवोऽनादृताश्च त्यागिनो भवन्ति ॥ १७ ॥

प्रायः त्यागी–तेजस्वी, सीधे और अनादरको सहनेवाले नहीं होते ॥१७॥

प्रायेण हीति बाहुल्येन त्यागिनां तेजस्वितादयस्त्रयो धर्माः सम्भवन्ति । तत्र तेजस्वितया व्यलीकं नोपेक्षन्ते । ऋजुतया मिथ्यादोषं ग्राह्यन्ते । अनादृतत्वात् श्रमं नापेक्षन्ते ॥ १७ ॥

अधिक करके त्यागियोंमें तेजस्विपना, सम्मानको चाहना और सीधापन आदि धर्म रहा करते हैं । इनमेंसे तेजस्विपनेके कारण अपने अपचारको सहन नहीं कर सकते । सरल स्वभावके होते हैं, इस कारण दूसरियोंके बहकावमें आकर झूँठे दोष ग्रहण कर लेते हैं । अनादर होजानेके कारण किये हुए नायिकाके आराधनपर ध्यान नहीं देते ॥ १७ ॥

कृतज्ञ ।

ततः कथमादरः—

इस एक ही बातके पीछे कैसे आदर होगा ? इसका उत्तर देते हैं कि—

कृतज्ञस्तु पूर्वश्रमापेक्षी न सहसा विरज्यते । परीक्षितशीलत्वाच्च न मिथ्या दूष्यत इति वात्स्यायनः ॥ १८ ॥

कृतज्ञ तो पहिले परिश्रमको देखता है, इस कारण एकदम अचानक विरक्त नहीं होता । वह नायिकाके स्वभावकी परीक्षा किये रहता है, इस कारण दूसरियोंके झूठे बहकावमें नहीं आता ॥ १८ ॥

पूर्वश्रमापेक्षीति । कृतज्ञ इति कृतज्ञत्वादेव सहसा न विरज्यते व्यलीकमुपलभ्यापि । परीक्षितशीलत्वाच्चेति कृतज्ञतयैव परीक्षणस्वभावत्वान्न मिथ्यैव दोषं ग्राह्यते ॥ १८ ॥

किये हुए आराधनोंको सदा ध्यानमें रखनेवाला होनेके कारण अपराध देखकर भी अचानक विरक्त नहीं होता । कृतज्ञपनेके ही कारण नायिकाके स्वभावकी परीक्षा किये रहता है, इस कारण किसीके झूठे सिखाने पढ़ानेपर भी झूठे दोषोंको ग्रहण नहीं करता ॥ १८ ॥

इनमें विशेष ।

तत्राप्यायतितो विशेषः ॥ १९ ॥

इनमें भी भविष्यके प्रभावको देखकर लाभ विशेष ले॥ १९ ॥

यत्र प्रभावोऽस्ति यत्रार्थोपगमनहेतुस्तथा मित्रवचनमनर्थप्रतीघातोऽर्थसंशयश्च ॥ १९ ॥

रागी, त्यागी और कृतज्ञ इन तीनोंमेंसे जिसके मिलनेमें प्रभाव बढे, जिसमें प्रवृत्त होनेपर धनका लाभ हो, जहांके लिये मित्र भी कह रहे हों, जिससे आनेवाले अनर्थ मिटाये जायँ, अर्थमें सन्देह न हो वहां ही प्रवृत्त हो १९

मित्रवाक्य और धनमें धनको ।

तेषां विशेषमाह---

जहां रागी, त्यागी, कृतज्ञ, मित्रवचन, अनर्थप्रतीघात और अर्थसंशय भिन्न २ रूपसे उपस्थित हों वहां विशेषका निश्चय कैसे करे ? इसके विषयमें कहते हैं कि—

मित्रवचनार्थागमयोरर्थागमे विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ॥ २० ॥

मित्रोंकी कहन और धनकी आमदनीमेंसे धनकी आमदनीमें लाभ विशेष प्रत्यक्ष ही है ॥ २० ॥

मित्रवचनादर्थः प्रत्यक्षः । तस्य दृश्यमानत्वात् । अन्यत्र वचनमेव केवलम् २०

मित्रोंकी बातके माननेकी बजाय अर्थ प्रत्यक्ष लाभ है, क्योंकि वह तो तत्काल दीख रहा है । मित्रोंकी बात माननेमें तो केवल उनकी बात ही बातको पूरा करना है ॥ २० ॥

सोऽपि ह्यर्थागमो भविता । मित्रं तु सकृद्वाक्ये प्रतिहते कलुषितं स्यादिति वात्स्यायनः ॥ २१ ॥

न माननेपर धन तो मिलेगा, पर मित्रोंकी तो एकबार भी बात न मानी जाय तो नाराज हो जायँगे, यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ २१ ॥

सोऽप्यर्थागमो भविता भविष्यति । प्रतिहत इत्यननुष्ठिते । कलुषितं रोषितं स्यात् । ततश्च तत्प्रतिबद्धकार्यहानिरेव स्यात् ॥ २१ ॥

जिस अर्थके लिये मित्र मना कर रहे हों वह अर्थ आयेगा तो सही किन्तु न माननेपर मित्र नाराज होंगे इससे उनसे जो होनेवाला कार्य्य होगा वह तो हो ही न सकेगा ॥ २१ ॥

तत्राप्यतिपाततो विशेषः ॥ २२ ॥

इस अर्थसंचयमें भी फिर न मिलनेवालेको अवश्य पा लेना चाहिये ॥२२॥

अतिपातत इति यदा तदानीमुपेक्षितोऽर्थोऽतिपतति च दास्यत्येवेति विशेषः ॥ २२ ॥

उस समयकी उपेक्षासे जो अर्थ फिर हाथ न आये उसका लाभ लेना विशेष लाभ है ॥ २२ ॥

मित्रोंका-मनाना ।

मित्रं कलुषितं स्यादिति चेदाह—

इस प्रकार मित्रोंके मनें करनेपर भी जो फायदा उठाया जायगा उसके विषयमें मित्र तो नाराज ही हो जायँगे, उनके विषयमें फिर क्या करना चाहिये ? यह कहते हैं कि—

तत्र कार्यसन्दर्शनेन मित्रमनुनीय श्वोभूते वचनमस्त्विति ततोऽतिपातिनमर्थं प्रतिगृह्णीयात् ॥ २३ ॥

उस लाभके लेनेमें कार्य्य विशेष दिखा उस मित्रकी आरजूमिन्नत करके कहे कि—'कल आपकी बात पूरी करूंगी' इसके बाद तत्काल मिलनेवाले धनको अवश्य ले ले ॥ २३ ॥

कार्यसन्दर्शनेनेति जनानां कार्यं तत्तवापि कार्यं न चेदं महदुपस्थितमपि (ति) पतति । त्वद्वचनं च श्वः कर्तास्मीत्यनुनयपूर्वमुक्त्वा ॥ २३ ॥

आपके मिलनेवालोंका मतलब जो आपका कार्य्य इस समय वह धन मेरे हाथ आ रहा है फिर निकल जायगा जिससे अपना ही बड़ा नुकसान होगा आपका वचन यह आपका निज जन कल कर देगा इस प्रकार नम्रतापूर्वक प्रार्थना करके उस लाभको ले ल ॥ २३ ॥

अर्थप्राप्ति और अनर्थवारण ।

अर्थागमानर्थप्रतीघातयोरर्थागमे विशेषः प्रत्यक्ष इत्याचार्याः ॥ २४ ॥

धनलाभ और अनर्थोंके निवारणमें धनलाभ लाभविशेष है यह बात प्रत्यक्ष है ऐसा आचार्य्योंका मत है ॥ २४ ॥

अर्थागमे विशेषः प्रत्यक्ष इति दृश्यमानत्वात् ॥ २४ ॥

धनकी प्राप्तिमें विशेषलाभ प्रत्यक्ष दीखता है अतः उस लाभको ले यह आचार्य्योंका मत है ॥ २४ ॥

इसपर वात्स्यायन ।

अर्थः परिमितावच्छेदः, अनर्थः पुनः सकृत्प्रसृतो न ज्ञायते क्वावतिष्ठत इति वात्स्यायनः ॥ २५ ॥

धन तो नियमितरूपसे मिलता है किन्तु अनर्थ तो एकबार शुरू होकर इसका पता भी नहीं रहता कि कहां ठहरेगा ॥ २५ ॥

अर्थ इति । अस्यावच्छेद इयत्ता । सा परिमिता यस्येत्यर्थस्यानतिशयत्वात् । सकृत्प्रसृत इति । अखण्डितप्रसरत्वादेकवारप्रसृतो न ज्ञायते क्वावतिष्ठते किं मूलघाते सर्वघाते वेति । अत्र मधुबिन्दूपाख्यानमुदाहरणम् ॥ २५ ॥

अर्थका परिमाण हो जाता है, कि इतना होगा, इतना नहीं होता कि अत्यन्त हो यानी जिस रातिमें जो मिलनेवाला रहता है उतना ही मिलता है अधिक नहीं हो सकता, क्योंकि एक रातमें दो रात नहीं बन सकतीं । किन्तु अर्थ हानिका पसारा अखण्डित रहता है, एकबार फैलनेपर कहां ठहरेगा मूल घातपर या सर्वघात करके ही ठहरेगा इसका पता नहीं रहता है । इसमें मधुबिन्दुकी कथा ही उदाहरण स्वरूप है ॥ २५ ॥

व्यवस्थामें विचार ।

तत्रापि गुरुलाघवकृतो विशेषः ॥ २६ ॥

इसमें भी कम ज्यादा देखकर ही विशेषकी व्यवस्था करनी चाहिये ॥२६॥

गुरुलाघवकृत इति लघोरनर्थात्पूर्वाद्गुरुरर्थो विशेष्यते लघुश्चेद्गुरुरनर्थ इति ॥२६

यदि पहिले अनर्थ कम हो और लाभ अधिक हो तो लाभकी ओर झुके तथा नुकसान अधिक एवम् लाभ कम देखे तो लाभको छोड़ नुकसान न होने देनेका प्रयत्न करे ॥ २६ ॥

इसमें सिद्धान्त ।

एतेनार्थसंशयादनर्थप्रतीकारे विशेषो व्याख्यातः ॥२७॥

इसी कथनसे यह बात कह दी, कि—अर्थके संशयसे अनर्थके मिटानेमें ही विशेष लाभ है ॥ २७ ॥

अर्थसंशयादर्थः स्यान्न वेति संशयः अन्यस्मादनर्थप्रतीकारः तदार्थसंशये विशेषः प्रत्यक्षः । तत्र संशयितेऽपि लोकस्य प्रवर्तनात् । परिमितावच्छेदोऽर्थोऽनर्थः पुनः सकृत्प्रसृतो न ज्ञायते क्वावतिष्ठत इति । अत्रैव विशेषः । न लघोरनर्थात्प्रतिकर्तव्याद्गुरोर (राव) र्थे संशयिते विशेष इति व्याख्यातः ॥ २७ ॥

एक व्यक्तिके मिलनेमें तो इस बातका सन्देह है, कि धन मिलेगा वा नहीं तथा दूसरे व्यक्तिके मिलनेपर नुकसानकी रोक प्रत्यक्ष दीखे तो संदेहग्रस्त धनलाभमें विशेष प्रत्यक्ष है, क्योंकि संदेहग्रस्त भी धनके विषयमें दुनियाँ लगती हुई देखी जाती है, किन्तु ऐसी दशा हो कि लाभ परिमित हो और उसके लेनेमें ऐसे अनर्थकी संभावना हो कि फैले पीछे न जाने कहां ठहरेगा वहां धनलाभकी चिन्ता छोड़कर अनर्थके निवारणपर विशेष दृष्टि हो, क्योंकि उसका निवारण करना ही विशेष लाभ है। यह बात पहिले ही कह चुके हैं, कि—'प्रतीकार करने योग्य छोटे अनर्थसे बड़ा संदेहग्रस्त भी धन लाभ विशेष है।' पर भयंकर अनर्थसे नहीं यह बात २६ वें सूत्रसे कह चुके हैं ॥

उत्तम गणिकाओंके लाभ ।

एवं द्विविधं रदजयर्थेन (?) विशेषितेन यदुपचितं धनं स प्रकृष्टो नाम लाभातिशयः । प्रधानार्थस्य साधनात् । अतस्तद्धारणतया यत्नं दर्शयन्नाह—

पूरी फीसके रूपमें व घन्टों व अङ्गोंकी फीसके रूपमें ठहराये हुएको अपनी सेवाचातुरीके द्वारा बढाकर ले लेना ही वेश्याओंका अधिकरूपसे अतिशय लाभ है। क्योंकि वेश्याएँ इसी प्रकार अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति लायक सिद्ध कर सकती हैं। अपनी जरूरत अवश्य पूरी करनी चाहिये इस कारण इनकी पूर्तिके योग्य धनके लिये प्रयत्न दिखाते हुए कहते हैं कि—

देवकुलतडागारामाणां करणम्, स्थलीनामग्निचैत्यानां निबन्धनम्, गोसहस्राणां पात्रान्तरितं ब्राह्मणेभ्यो

दानम्, देवतानां पूजोपहारप्रवर्तनम्, तद्व्ययसहिष्णोर्वा धनस्य परिग्रहणमित्युत्तमगणिकानां लाभातिशयः॥२८॥

देवमंदीर, कूआ, वावड़ी और वागोंका बनाना, स्थलियों और अग्नि-मंदिरोंका सँभलवाना, किसीको वीचमें डालकर ब्राह्मणोंको सहस्र गऊ दान देना, देवताओंकी भेंट व पूजा प्रवृत्त करना, इन तमाम खर्चोंको सह जाय इतना धन लेना, यह उत्तम गणिकाओंका अतिशय लाभ है ॥ २८ ॥

त्रिविधा वेश्या—गणिका रूपाजीवा कुम्भदासी च । ताः प्रत्येकमुत्तममध्य-माधमभेदात्त्रिविधाः । तडागं पुष्करिणी । स्थलीनामिति । निम्नेषु प्रदेशेषु लोका-गमनार्थं सेतूनां निबन्धनम् । अग्निचैत्यानामिति । स्थानाद्वहिर्मृद्भिर्गेहानि कृत्वा सर्वे रसगन्धव्रीहिरत्नेषु प्रदेपुरापूर्यया (?) अग्नये संसृज्यन्ते । पात्रान्तरित-मिति । वेश्याद्रव्यस्याप्रतिग्राह्यत्वादन्यहस्तेन दानम् । देवतापूजनानां प्रवर्तनं घटानिबन्धने । उपहाराणां भक्ष्यादीनाम् । तस्येयत्तां दर्शयन्नाह—(देवकुल-तडागारामाणां करणं स्थली देवतां समुद्दिश्य सर्वमेतत्प्रधानोऽर्थः ।) तद्व्यय-सहिष्णोरिति । तस्मिन्प्रधानाथसाध्ये यद्व्ययं सहते । धनस्य परिग्रहणमयं (?) अयं प्रकृष्टो रागाति (लाभाति) शयः । उत्तमगणिकानामिति । रूपादिभि-र्नायिकागुणकलादिभिरन्विता उत्तमगणिकाः । गुणानां च पादार्धाभ्यां मध्य-माधमाः ॥ २८ ॥

अनेक तरहकी वेश्याएँ होती हैं-कोई गणिका तथा कोई रूपाजीवा और कोई कुम्भदासी । फिर इनके उत्तम मध्यम और अधमा ये भेद होते हैं, इस

---

१ वेश्याविलासमें किसी प्राचीन ग्रन्थके आधारपर वेश्याओंके भेद दिखाये हैं कि—

दोहा—" उत्तम मध्यम नीच लघु, वेश्या चार प्रकार ।
तिनके लक्षण भिन्न करि, कहौं सकल व्योहार ॥"

उत्तम, मध्यम, अधम और लघु ये चार भेद हैं । उत्तम तो केवल गानवाद्य आदि कला-ओंके ऊपर अपना गुजारा करती हैं । यदि दैवयोगसे किसीपर प्रेम कर लें तो—"ताको तन मन दै सुख पावै" तन और मन देकर सुखी होती है । मध्यमोंमें उत्तम वेश्याओं जितना त्याग तो नहीं होता किन्तु ये भी जिसपर प्रेम करें करती ही रहती हैं एवम् उत्तमसे गुणोंमें मध्यमा ही रहती हैं । जो धनकी ही सँगातिनि हैं पैसेके ही लिये प्रेम करती हैं वे अधम हैं, इनके सबकाम पैसेके ही लिये होते हैं । लघुओंका यह धन्दा रहता है कि इनका दिली प्रेम—

तरह एक २ प्रकारकी वेश्याके तीन तीन भेद हो जाते हैं । इन तीनोंमें जो उत्तम गणिकाएँ हैं यानी जो गणिका रूप लावण्य आदि नायिकाओंके गुण और कलाओंसे युक्त हों उनका यह कार्य्य होता है, कि—पुष्करिणी बनवाना, नीची जगहोंमें लोगोंके जानेके लिये पुल बाँधना। स्थानसे बाहिर भिट्टिसे घर बना सबमें अग्निहोत्रका सामान रखवा यज्ञ आदि कराई जायँ। वेश्याका दान लिया नहीं जाता, इस कारण दूसरेके हाथसे दिलाना चाहिये। मेले ठेलेमें देव पूजाओंको कराना, उनपर भेंट चढ़वाना । भक्ष्य, भोज्य नैवेद्य भोग लगवाना ये काम उत्तमोंके होते हैं। देवमंदिर, कूआ, बावड़ी और बाग आदिका बनाना तथा स्थली और देवताके उद्देशसे कुछ करना ये सब उसका प्रधान अर्थ है । इसी बातको दिखाते हुए कहते हैं, कि—इन प्रधान अर्थसाध्य कामोंके खर्चको जो काम सह सके ऐसे धनको ग्रहण करना। यह उत्तम कोटिकी गणिकाओंका विशेष लाभ है। जिसमें आधे गुण हों वह अधमाएँ एवम् जिसमें पौन गुण हों वे वेश्यासे मध्यमा होती हैं ॥ २८ ॥

पुराणोंकी उत्तमा गणिकाएँ।

देहलीसे एक पत्र निकला करता है । उसका यही कार्य्य है कि वेश्यासंसारको दुनियाँके सामने रखूँ। अमृतसरसे भी एक पुस्तक सचित्र प्रकाशित हुई है जिससे वर्तमान समयकी वेश्याओंपर अच्छा प्रकाश पड़ता रहता है। सिवा इसके सिनेमा संसारमें भी बड़े पैमानेसे गणिकाओंका ही एक तरहसे परिचय रहता है, इस कारण आधुनिक गणिकाओंको न गिनाकर प्राचीन गणिका जगत् पर कुछ दृष्टिपात करते हैं। इन्दुमती—महाराज सगरकी नर्तकी थी जो अपने पापोंके नाश एवम् अपूर्व रूप, लावण्य पानेके उपाय पूछनेके लिये महाराज वसिष्ठजीके पास पहुँची एवम् उनके बताये हुए अचला सप्तमीके व्रतको करके स्वर्ग चली गई तथा वहां इन्द्रकी अप्सरा हुई। विलासिनी—अवन्तीपुरकी रहनेवाली रूपलावण्यकी राशि सब कलाओंमें परमानिपुणा गणिका थी । इसपर सुशर्म्माका छोटा बेटा

—किसीपर नहीं रहता न इनके यहां नीच ऊंचका ही भेद होता है। इन्हें कोई भी हो धनकी ही अभिलाषा होती है ।

"जो कोई तिनके निकटहि जाई, रोग ग्रसित सो रहे सदाई ।
वेसनसो जो प्रीति लगावै, उभय जन्म निजहाथ नसावै ॥"

जो कोई बेहोश इनके पास चला जाता है वह अवश्य ही आतिशका रोगी होजाता है। जो इनका दोस्त बनता है उसके दोनों जन्म नष्ट ही समझ लेना चाहिये ।

अत्यन्त आसक्त था। यह केवल वेश्या नहीं, किन्तु व्रतादिकोंमें रत रहनेवाली वेश्या थी। इसने नृसिंहचतुर्दशीके दिन अपने दोस्तसे व्रत कराने और स्वयम् करनेके लिये लड़ाई कर ली, अन्तमें वह स्वर्गकी अप्सरा बनी तथा कर्मबन्धनोंको तोड़ नृसिंहमें ही समा गई। सुगन्धा—यह उज्जयिनीकी रहनेवाली रूपलावण्यकी अद्वितीय राशि प्रख्यातनामा वेश्या थी। एकबार यह क्षिप्रानदीमें स्नान करने गइ थी, उस समय ऋषियोंके स्नान सन्ध्याका समय था। इस कारण ईश्वराराधन करते हुए इसे वसिष्ठादिऋषि देखनेमें आये, उन्हें देख इसका प्राचीनसंस्कार जग गया। इसे अपने पापोंकी याद आगई, अपनी नृशंसताका स्मरण करके एकदम तिलमिला उठी। इससे अपने कल्याणका पथ पूछा अन्तमें यह अपने एक गहरे दोस्तको साथ लेकर बनारस चली आयी। वहां शिवाराधन करके सदेह शिवलिङ्गमें लय हो गइ। लक्ष्मणा—रूपलावण्यकी विधिकी गढी पुतली एवं प्रख्यातनामा थी। इसका दोस्त परमबलवान् एक दासनामक वीर था। एकवार यह अपन दोस्तके साथ गोदावरी स्नानके लिये आयी। वहां इसे एक बाला नूतनवैधव्यसे तरसती हुई मिली, उसे देखकर इसे परम वेदना हुई। इससे इसने भी अपना शेष समय भगवान्की निष्कपट भक्तिमें ही लगाया। उसेक प्रभावसे इसका दोस्त 'गय' नामक राजर्षि तथा यह उसकी राजमहिषी हुई।

रंगनाथका साक्षात्कारिणी वारमुखी।

उत्तम वेश्याएँ केवल धनकी हा पुतली हों यह बात नहीं हैं। ये अपने उत्तम लाभोंको भी उत्तम कोटितक पहुँचाती हैं। जिस प्रकार अपचारोंमें लय होकर अपचारिणी बनती हैं इसी तरह बाजी २ सुपथपर भी शीघ्र ही हो जाती हैं। वारमुखीको हम उन्हीं परमोत्तम वेश्याओंमें देखते हैं, जिसने अपने सर्वस्वका भगवान् रंगनाथका मुकुट बनवाया तथा भगवान्ने इस पतितको पावन बना इसके हाथसे सिर झुकाकर मुकुट पहिना; जो आजतक भगवान् रंगनाथके धारण होता है। इस वेश्याके अन्तके दिन इस प्रकार बीते थे जिस प्रकार कि बड़े २ हंस परमहंसोंके बीतते हैं।

अन्धे आसक्तको हरिका उपदेश।

कर्णाटकी मदुराकी वारवधूने अपने आसक्तको हरिका उपदेश किया था, इस विषयको भी दिखाते हैं कि वहां एक वैश्य रहा करते थे। उन्होंने अपने हृदय व सर्वस्वकी रानी एक वेश्याको ही बनाया था। एकदिन बर्षातके

दिनोंमें नदी पार करके भी वेश्याके यहां पहुँचे एवम् जोशेजिनूँमें दीवारपर लटकते हुए साँपको पकड़कर ही उसके पास पहुँच गये । पीछे—

" ताहि जगायो नाम कहि, गणिका लखिके ताहिं ।
अति अचरज मानत भई, किमि आयो घरमाहिं ॥ "

उन्होंने बताया तो जान गई कि यह तो मेरे प्रेमका पागल है । उससे सच्चे त्यागसे वेश्याका हृदय बदल गया, उसका ग्राहकका भाव चला गया तथा सच्चे प्रेमीका भाव आ गया । वेश्या बोली कि जैसा तेरा मेरे शरीरपर प्रेम है ऐसा यदि हरिके चरणोंपर होता तो तेरे दोनों लोक सुधर जाते । प्रेमीने पूछा कि वह हरि कौन है ? मुझसे न छिपा । यह सुनकर वेश्याने कृष्णका चित्र उतारकर दे दिया । वे सातदिन तक दीवाने बने । उस चित्रको ही देखते रहे जिसका यह परिणाम हुआ कि भगवान्‌ने उन्हें चित्रसे प्रकट होकर निज जनोंमें अपना लिया । यही दशा बिल्वमङ्गलकी हुई थी—जो अन्तमें सूरदास होकर वल्लभाचार्य्यजीके शिष्य हुए थे ।

उत्तम रूपाजीवाओंके लाभ ।

सार्वाङ्गिकोऽलङ्कारयोगो गृहस्योदारस्य करणम् । महार्हैर्भाण्डैः परिचारकैश्च गृहपरिच्छदस्योज्ज्वलतेति रूपाजीवानां लाभातिशयः ॥ २९ ॥

सारे शरीरपर जेवर पहिनना, घरको सजा रखना, उसमें कीमती बर्तन और योग्य सेवकोंसे घरके भीतरी भागको सजा रखना ये रूपाजीवाओंके विशेष लाभ हैं ॥ २९ ॥

सार्वाङ्गिक इति सर्वेष्वङ्गेषु यो भवति । उदारस्येति संस्थानतः संकेततश्चेति । महार्हैरिति लोहताम्रराजतैः । परिचारकैरिति यथास्वं कर्मणा परिचरन्ति ये । गृहपरिच्छदस्येति गृहसंविधानकस्योज्ज्वलतेत्ययं प्रधानार्थः। तद्व्ययसहिष्णोर्धनस्य परिग्रहणमिति वर्तते । अयं प्रकृष्टो लाभातिशयः । रूपाजीवानामित्युत्तमानाम् । सत्स्वपि गुणेषु रूपाजीवायां रूपस्य प्रधानत्वात् कलास्तु न सन्ति । तत्र रूपस्य गुणानां पदार्थानां च मध्यमाधमाः । अत्र यः प्रधानार्थः स गणिकानामस्त्येव ॥ २९ ॥

जो उत्तम कोटिकी रूपाजीवा हैं उनका यही विशेष लाभ है जो कि सारे शरीरपर उचित जेवर पहिन सकें । घरकी जगहें सुन्दर हों एवम् संकेत

(रंगरेली आदिकी जगहें) परम सुन्दर हो । बर्तन—लोह, ताँबे और रजतके होने चाहियें । नौकर ऐसे होने चाहियें जो अपने २ काममें लगे रहें । घरके पड़दे वस्त्र आदि ऊजले रहने चाहियें । इन खर्चोंको जो सह सके उन्हें इतनी पैदाकी तरफ ध्यान रखना चाहिये । यही इनकी अति लाभ है । यद्यपि रूपाजीवामें दूसरे गुण भी होते हैं परन्तु रूपकी प्रधानता रहती है कलाओंकी प्रधानता नहीं रहती । जिस रूपाजीवामें रूप, गुण और दूसरे पदार्थोंकी अच्छाई रहती है वह अधम तथा पौने होनेमें मध्यमा होती है । इनमें जो प्रधान अर्थ होता है वह गणिकाओंको है ही ॥ २९ ॥

कालिदासकी विलासवती ।

भोजप्रबन्धमें कालिदासको वेश्यासक्त करके लिखा है । महाराजा भोज और महाराजा विक्रमका समय भिन्न है । अतः यह कालिदास महाराजविक्रमके समयके कालिदाससे भिन्न ही होगा । ये विलासवती वेश्याके प्रसिद्ध प्रिय थे। राजाने एकबार इनपर भाव बदल उस समय तो इसने उन्हें चुपकर दिया । दुबारा राजमहलमें व्याभिचार करनेके झूठे दोषसे निकाले गये; जिससे अपनी प्रेमिकाके आग्रहसे उसीके घर छिप रहे । अन्तमें रानीने सर्प अग्नि आदिको छूकर अपने पातिव्रतकी परीक्षा दे दी । महाराजाने युक्तिके साथ उसका पता लगा उसी वेश्याके घर आ खड़े हुए । जब वहां कालिदास शरमाये तो भोजदेवने कहा कि—

"धन्यां विलासिनीं मन्ये कालिदासो यदेतया ।
निबद्धः स्वगुणैरेष शकुन्त इव पञ्जरे ॥"

मैं तो इस विलासिनीको अच्छी समझता हूं जिसने कालिदासको पक्षीकी तरह अपने प्रेमके पिंजड़ेमें बाँध दिया है ।

कुम्भदासियोंके लाभ।

नित्यं शुक्लमाच्छादनमपक्षुधमन्नपानं नित्यं सौगन्धिकेन ताम्बूलेन च योगः सहिरण्यभागमलङ्करणमिति कुम्भदासीनां लाभातिशयः ॥ ३० ॥

÷ रोज साफ सुथरे कपड़े पहिनना, पट भरकर अच्छा भोजन खाना, सदा

आज ये ही बीमारीका घर हैं।

÷ कुम्भदासियोंके विषयमें हम ५५३ के पृष्ठमें 'कुम्भदासियोंमें रत कहाँ' इस शीर्षकमें कह चुके हैं । इनमें कलाएँ नहींके बराबर हैं केवल कर्मकरीमात्र ही ये हैं । इन कर्मकरियोंके—

अतर तेल लगाना, सुन्दर पान खाना, कुछ सोनेके जेवर भी अपने चांदी आदिके जेवरोंके साथ पहिनना, य कुम्भादासियोंके अधिक लाभ हैं ॥३०॥

आच्छादनमिति परिधानीयं प्रावरणीयं च सदैव शुक्लम् । अपक्षुधमिति अकदर्थितत्वात्क्षुधमपनयति । सौगन्धिकेन सुगन्धिसमूहेन चतुःसमकादिना ताम्बूलेन च नित्यं योगः । एतत्सर्वं गणिकानां रूपाजीवानां चास्त्येव । विशेष-माह—सहिरण्यभागमिति । सुवर्णलेशेन युक्तमित्यर्थः । अयं प्रधानार्थः । तद्व्यय-सहिष्णोर्धनस्य परिग्रहणमिति वर्तते । अयं च प्रकृष्टो लाभातिशयः । कुम्भ-दासीनामित्युत्तमानाम् । कुम्भग्रहणं च कर्मोपलक्षणार्थम् । कर्मकरीणामित्यर्थः । आसां चोत्तममध्यमाधमकर्मापेक्षयैव तथाविधत्वं द्रष्टव्यम् ॥ ३० ॥

पहिनने तथा ओढ़ने बिछानेके कपड़े सदा ही सफेद रहने चाहियें । बिना खराब किये अच्छे भोजनोंसे पेट भर जाना चाहिये । उसे चतुःसमक आदि सुगन्धियों और पान खानेके लिये सदा मिलें । यद्यपि इन बातोंको गणिका और रूपाजीवा भी बड़े पैमानेमें प्राप्त किये रहती हैं, किन्तु कुम्भ-दासियोंके जेवरमें सुवर्णका लेश रहता है । यही इनका प्रधान अर्थ है कि सोनेका जेवर भी बना सकें इन खर्चोंके सहनेवाले धनको पैदा कर लें । यही इनका उच्चकोटिका लाभ है । ये उत्तम कुम्भदासियोंके लाभातिशय हैं । केवल पुरुषगमनका ही धन्दा कुम्भ कहाता है । केवल यही धन्दा करनेवाली

–विषयमें सर्वत्र यही मत है कि ये संसारमें रूप राशि बेचनेके लिये नहीं किन्तु आतिसका प्रसाद बाँटनेके लिये बैठी रहती हैं । मैंने तो केवल साधारण ही लिखा है परन्तु आजका हिन्दी संसार तो इस बातको बड़े २ लम्बे उपन्यास और प्रबोधके लेख आदिकोंसे कह रहा है । 'सचा मित्र' के लेखक लालाघनश्यामदासजीने सेठ मानिकचन्द्रजीके लबरगुट्टे किशोरीलालकी बंबईके गन्दे बजारोंकी शैर व उनकी कुम्भदासियोंकी प्रसादी भयंकर आतिसका लम्बा वर्णन किया है । 'धूर्त रसिकलाल' में पं. लज्जारामजी मेहताने अनेक गामिनी गाने बजानेवालीके साथसे भी चरित्रनायक सेठके आतिसकी भयङ्कर बीमारीका वर्णन किया है । यह नियमित बात है कि फीसमात्रकी योग्यताको देखकर अनेकों पुरुषोंके साथ सहवास करनेवाली कोई भी स्त्री हो वह योनिरोगोंसे कभी बरी नहीं रह सकती । दो दिन अगाड़ी दो दिन पिछाड़ी सबको इन्हींका शिकार होना पड़ता है । भर्तृहरिने ठीक ही कहा है कि–'भोगे रोगभयम्' इन गन्दे भोगोंमें रोगका सदा ही भय रहता है । जो मनुष्य यह चाहे कि मुझमें पुंस्त्व रहे एवम् साधनसम्पन्न रहूं तो इन गन्दे बाजारोंसे सदा बचना चाहिये ।

औरतें कुम्भदासी कहाती हैं । इनमें भी उत्तमा, मध्यमा और अधमा कर्मकी अपेक्षासे होती हैं ॥ ३० ॥

सांख्यदर्शनकी पिङ्गला ।

अब हम कर्मकारियोंका रूप व भगवान्का पतितपावनपना दिखानेके लिये पिंगलाका उदाहरण देते हैं । यह महाराजा जनकके विदेह नगरमें हुई थी । यह एकदिन रातके समय शृङ्गार करके अपनेसे मिलनेवालोंकी प्रतीक्षा करने लगी। उसमें यह कभा द्वारके भीतर जाती थी कभी बाहिर आती थी। इसे धनकी चाह थी । इसके सामने जो सजेसजाये पुरुष निकलते थे उनके विषयमें यह यही ध्यान करती कि-"तान् शुल्कदान् वित्तवतः कान्तान् मेनेऽर्थकामुका" ये मुझ बहुतसा धन देंगे । पर "आगतेष्वपयातेषु सा संकेतोपजीविनी" वे आये और उसके पास न आकर चले गये पर वह प्रतीक्षामें ही रही कि शायद और भी कोई धनी मुझे अधिक देनेवाला आजाय । पर आधी रात होगई, कोइ धनी न मिला, तब उसे परम ग्लानि हुई यही समय पिङ्गलाके देवी बननेका उदय, इसीसे उसका मन मधुप, भगवान्के चरणमकरन्दमें लय हो गया । उस समयके उसक ये अक्षर थे कि-"आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्" आशा ही परम दुःख तथा निराशा ही परम सुख है । पीछे तो यह इतनी विरक्त हुई कि इसका इस समयका आदर्श कापिलने भी ग्रहण किया है कि-" निराशः सुखी पिङ्गलावत् " जो निराश हो निर्विण्ण हो जाता ह वह पिङ्गलाकी तरह सुखी होता है ।

लाभोंपर वात्स्यायन ।

एतेन प्रदेशेन मध्यमाधमानामपि लाभातिशयान्सर्वासामेव योजयेदित्याचार्याः ॥ ३१ ॥

ये जो लाभ बताये हैं इनको इसी रीतिसे मध्यम और अधमोंके साथ भी उनकी योग्यताके अनुसार जोड दे, ऐसा आचार्य्योंका मत है ॥ ३१ ॥

प्रदेशेनेति । प्रदेशेनेत्युत्तमानां लाभातिशयमार्गेण । मध्यमाधमानामपीति गणिकारूपाजीवाकुम्भदासीनाम् । लाभातिशयानिति प्रकृष्टापेक्षं मध्यमाधमान्यो-

---

÷ अपनी परिस्थितिके अनुसार भी उत्तम अधम समझी जाती ह यह बात नहीं है कि केवल गुणोंके लिये ही उत्तम हों । उत्तमाधमपनेके लिये गुणोंके साथ परिस्थिति भी चाहिये कही हम गुणादिकोंको न देखकर केवल बड़े पुरुषोंके अपनानेके कारण ही उत्तमता सुनते हैं।

जयेत् । तथा चोक्तम्—‘ यद्वेश्यास्वर्जितं द्रव्यं प्रधानार्थस्य साधकम् । अवस्थानं हि वेश्यानां स लाभ उत्तमो मतः ॥ ’ इति ॥ ३१ ॥

जिस रास्तेसे उत्तम कोटिकी गणिका रूपाजीवा और कुम्भदासियोंके अधिक लाभ बताये हैं उसकी अपेक्षासे मध्यमोंके लिये मध्यम तथा अधमोंको अधम लाभ होता है यह समझ लेना चाहिये । ऐसा कहा भी है कि— ‘ वेश्याओंमें जो उनके मुख्य मतलबका साधक द्रव्य रहे वही उनका उत्तम लाभ है ॥ ३१ ॥

लाभमें देशकाल आदि देखे ।

देशकालविभवसामर्थ्यानुरागलोकप्रवृत्तिवशादनियतलाभादियमवृत्तिरिति वात्स्यायनः ॥ ३२ ॥

देश, समय, ऐश्वर्य्य, शक्ति, अनुराग और लोकाचारके कारण लाभ नियत नहीं, अतः यह वृत्ति नियमित नहीं । यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ ३२ ॥

इयमवृत्तिरिति । देशस्य सुसम्पन्नस्य । (कालस्य) सुभिक्षस्य दुर्भिक्षस्य वा । विभवस्यात्मीयस्य महतोऽल्पस्य वा । सामर्थ्यस्य विभवधनशक्तेर्महत्या (त) इतरस्य वा । ततश्च नेयं वृत्तिरियत्ताप्रधानार्थद्वारेण या निर्दिष्टा कदाचित्तन्न्यूनादिका वा सम्भवति ॥ ३२ ॥

यह देश कैसा है निर्धन है वा धनी है, समय कैसा है दुर्भिक्ष है वा सुभिक्ष है, कैसा रवैया चल रहा है, अपनी स्थिति कैसी है कुछ पासमें है वा नहीं, थोड़ा है वा ज्यादा? अपनी शक्ति क्या है, अपना वैभव और धन क्या कर-सकता है या अपनेसे दूसरी मुकाबिलेमें संपन्न हैं इसको देखकर जीविका व विशेष लाभका निश्चय होता है। अतः पूर्व जो बता दी गई हैं वे ही वृत्ति प्रधान अर्थके द्वारा हों, इससे यह समझना चाहिये कि बताई हुई वृत्ति कभी कम ज्यादा भी इन्हीं कारणोंसे हो जाती है ॥ ३२ ॥

थोड़ा लाभ लेनेके स्थान ।

एवं च कार्यनिरपेक्षया कश्चित्स्वल्पोऽपि लाभो गृह्यते कश्चिन्नैव कश्चित्तदात्वे गृह्यते कश्चिदायत्यां यदाह—

कहीं ऐसा होता है कि कार्य्यसे निरपेक्ष होकर कोई छोटा भी लाभ ले लिया जाता है, कोई नहीं लिया जाता, कोई उसी समय ले लिया जाता है, कोई भविष्यमें प्रभाव आदिके रूपमें उठाया जाता है इसी बातको दिखानेके लिये नीचेके सूत्र करते हैं । इनमें सबसे पाहिले थोड़े लाभकी जगहें बताते हैं—

गम्यमन्यतो निवारयितुकामा सक्तमन्यस्यामपहर्तु-कामा वा अन्यां वा लाभतो वियुयुक्षमाणागम्यसंस-र्गादात्मनः स्थानं वृद्धिमायातिमभिगम्यतां च मन्य-माना अनर्थप्रतीकारे वा साहाय्यमेनं कारयितुकामा सक्तस्य वान्यस्य व्यलीकार्थिनी पूर्वोपकारमकृतमिव पश्यन्ती केवलप्रीत्यर्थिनी वा कल्याणबुद्धेरल्पमपि लाभं प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३३ ॥

मिलनेलायक पुरुषकी दूसरी नायिकाके प्राप्ति होनेसे रोकलेना चाहे, दूस-रीके अनुरागीको छीन लेना चाहे, दूसरीके लाभसे वियुक्त करना चाहे, गम्यके संसर्गसे उचित स्थान, वृद्धि, उज्ज्वल भविष्य और नायकोंकी चाहकी चीज अपनेको बनाना चाहे, अनर्थोंके रोकनेमें उसको सहायक करनेकी इच्छा राखे या पहिले किये हुए उपकारोंको न किये हुएकी तरह देखती हुई किसी असक्तका बुरा चाहनेवाली, अथवा किसी उत्तम बुद्धिके मनुष्यके प्रेमकी चाहमें वारवधू थोड़े भी लाभको ले ले ॥ ३३ ॥

अन्यत इति अन्यस्या नायिकातो निवारयितुकामा मान्यत्र यासीदिति । अपहर्तुकामा मद्वेषिण्यां सक्तं त्यक्ष्यामीति । लाभत इति अन्यस्या नायिकातो गम्यसम्बन्धिनो लाभात् । वियुयुक्षमाणा वियोक्तुमिच्छन्ती । अगम्यसंसर्गादिति येन गम्येन सह (न) संसर्गस्तस्मात् । स्थानं जनसंसदि विशिष्टदेशावस्थानं मन्यमाना । वृद्धिं प्रकृष्टा (कर्षा) ख्यां लाभातिशयं आयतिं प्रभावं अभिगम्य-तामन्येषां नायकानामभिगमनीयत्वं अनर्थप्रतीकारं वेति अनर्थं प्रतिकर्तुं सहाय-मेनं कर्तुकामा । सक्तस्य वेति यस्तस्यां सक्तः । अन्यो वर्तमानः । तेन यः पूर्व-मुपकारः कृतस्तं स्वल्पत्वादकृतमिव पश्यति । तस्यातीतस्य व्यलीकार्थिनी अपराधं कर्तुकामा अल्पमपि गृह्णीयात् येनायमपराधं मन्ये (धमध्ये ?) ऽति-सक्तस्त्यजति । केवलप्रीत्यर्थिनी वेति प्रीत्यैव केवलयार्थिनी नार्थैः । कल्याण-बुद्धेरित्यविसंवादकात् ॥ ३३ ॥

दूसरी वेश्यासे हटा लेना चाहे, कि यह वहां न जाये, जिसके साथ द्वेष हो उसमें आसक्त हुएको उससे छुड़ानेकी इच्छासे, किसी प्रतिद्वन्द्विनी नायिकाको जो किसी योग्य नायकसे लाभ हो रहा हो उससे उसे रूपोश

करना चाहती हो, जिस योग्य नागरसे न मिली हो उससे मिलकर जनसमूहमें बड़ी जगहमें बैठना माने, किसीके मिलनेसे अधिक लाभ, भविष्यका प्रभाव और नायकोंसे मिलनेकी योग्यता व अनर्थका नाश करनेके लिये सहायक बनाना चाहे, जो उसमें लगा हुआ हो उसने जो पहिले उपकार किये हों उन्हें थोड़े होनेके कारण न किये हुओंकी तरह देखती हो, बीते हुएको नुकसान पहुँचानेकी इच्छास प्रेरित हो तो थोड़ा भी लेकर मिले । (जिस कारण अपराधके बीचमें अति आसक्त छोड़ता हो) विरुद्ध न करनेवाले किसी कल्याणकारी बुद्धिवालेसे प्रम चाहनेकी इच्छासे भी थोड़ा ही लेकर मिल ले ॥ ३३ ॥

लाभ न लेनेके स्थान ।

अय (इय) मनर्थप्रतीकारिकेत्युक्तम् । अत्र विशेषमाह—

ऊपर जो रीति बताई वह अनर्थोंको रुकवानेकी कही थी, उसके विषयमे जो विशेष है उसे कहते हैं कि—

आयत्यर्थिनी तु तमाश्रित्य चानर्थं प्रतिचिकीर्षन्ती नैव प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३४ ॥

भविष्यके प्रभावको चाहनेवाली तो जिसका आसरा लेकर अपने ऊपर आनेवाली बलाओंको रोकना चाहे तो उससे कुछ न ले ॥ ३४ ॥

यदा आयतिर्महती स्यादनर्थश्च न महान्प्रतिकर्तव्यस्तदा नैव प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३४ ॥

यदि भविष्यमें लाभ अधिक हो और अनर्थ हटाना बड़ा न हो तो प्रतिग्रह न करे ॥ ३४ ॥

उसी समय लेनेकी जगह ।

त्यक्ष्याम्येनमन्यतः प्रतिसन्धास्यामि, गमिष्यति दारैर्योक्ष्यते नाशयिष्यत्यनर्थान्, अंकुशभूत उत्तराध्यक्षोऽस्यागमिष्यति स्वामी पिता वा, स्थानभ्रंशो वास्य भविष्यति चलचित्तश्चेति मन्यमाना तदात्वे तस्माल्लाभमिच्छेत् ॥ ३५ ॥

इससे लाभ लेइसे छोड़ दूंगी, दूसरेसे मिल जाऊँगी, यह आप चला जायगा, अपनी स्त्रियोंसे मिल जायगा, अनर्थोंको नष्ट कर देगा, इसके ऊपर अंकुश है

या उत्तराध्यक्ष स्वामी पिता है । अथवा इसका स्थान भ्रष्ट होगा, यह चंचल चित्तका आदमी है, ऐसा मानती हो और उससे उसी समय लाभ होता हो तो उसी समय लाभ ले ले ॥ ३५ ॥

त्यक्ष्याम्येनं त्यक्षा (क्त्वा) त्वेतत्तो लाभं गृहीत्वान्यतः प्रतिसन्धास्यामि । तस्याधिकत्वात् । गमिष्यति दारैर्योक्ष्यते गतः कृतदारपरिग्रहो वा कथं दास्यति । नाशयिष्यत्यनर्थान्स्वकीयान् । तस्य परवशप्रायत्वात् । अंकुशभूत इति दमयिता । उत्तराध्यक्ष उपरिकः । अस्येति गम्यस्येति कर्मणि आगमिष्यति तदायमस्वतन्त्रः कथं दास्यतीति । स्वामी पिता वांकुशभूतः । स्थानभ्रंशो वेति यस्मिन्स्थानेऽस्याधिपत्यं तस्माद्विच्युतिः । चलचित्तो वा प्रतिज्ञायापि न दास्यति । तदात्व इति तदानीम् ॥ ३५ ॥

इससे लाभ उठा,छोड़कर दूसरेसे मिल जाऊँगी, क्योंकि इससे वह अधिक है अतः फिर इसकी मेरे पास दाल न गलेगी । यह आप ही चला जायगा, अपनी स्त्रियोंसे मिल जायगा, यह चला गया तो इसने स्त्रियोंको अपना रखा है विवाहित है देगा कैसे ? यह अपने अनर्थोंका नाश करेगा, यह परवश है, इसके कान पकड़नेवाला मौजूद है । इसके ऊपर आदमी हैं, यह दूसरे मिलनेवालेके टायममें आयगा, यह स्वतंत्र तो है नहीं फिर देगा कैसे, इसका मालिक या पिता कान पकडनेवाले मौजूद हैं । जिस स्थानपर इसका प्राधान्य है यह वहांसे गिरनेवाला है । चंचलमनका है कहकर भी न देगा । इस स्थितिमें उसी समय उससे लाभ ले ॥ ३५ ॥

भविष्यमें लाभ ले ।

प्रतिज्ञातमीश्वरेण प्रतिग्रहं लप्स्यते अधिकरणं स्थानं वा प्राप्स्यति वृत्तिकालोऽस्य वा आसन्नः वाहनमस्यागमिष्यति स्थलपत्रं वा सस्यमस्य पक्ष्यते कृतमस्मिन्न नश्यति नित्यमविसंवादको वेत्यायत्यामिच्छेत् । परिग्रहकल्पं वाचरेत् ॥ ३६ ॥

राजाने वादा कर लिया है, उससे इसे अधिक लाभ होगा । इसे कोई पद मिलेगा या मुख्य बनाया जायगा । इसकी पैदाका समय पास ही है । इसकी सौदागरीकी सवारियाँ सौदा बेंचकर आनेवाली हैं । खेतोंमें पकनेवाली खेती

इसकी पक गई, इसमें किया हुआ नष्ट न होगा, यह कभी विपरीत चलनेवाला नहीं है यदि ऐसी स्थिति हो तो भविष्यके लाभपर भी सौदा कर ले और इसकी धर्मपत्नीकी पूरी नकल उतारे ॥ ३६ ॥

प्रतिग्रहं लप्स्यत इति स ह्यक्लेशेनोपलब्धार्थो दास्यति । अधिकरणमक्षपटलादिकं स्थानं यत्राधिपत्यं करिष्यति । वृत्तिकालो वेति सेवकत्वाज्जीवनकालोऽस्यासन्नः । राजकुले विलम्बस्य वर्तमानत्वात् । वाहनं यानपात्रमागमिष्यति । वाणिज्यधर्मस्थितत्वात् । स्थलपत्रमित्थंभूतम् (?) । स्वराष्ट्रादिसस्यमस्य पक्ष्यत इति । कृषिवृत्तित्वात् । ततश्च पक्वं सस्यं दास्यति । कृतमस्मिन्न नश्यति अभिगम्यत्वं न निष्फलम् । कृतज्ञत्वात् । नित्यमविसंवादको वा प्रतिज्ञायावश्यं दास्यति । आयत्यामित्यागमनकाले । परिग्रहकल्पं वा चरेत् तत्रार्थस्य लप्स्यमानत्वात् ॥ ३६ ॥

इसे राजासे दान मिल जायगा, विना परिश्रमके धन मिल जानेसे यह अवश्य देगा । अक्षपटलादिकके स्थानपर इसका आधिपत्य होगा । सेवक होनेके कारण अब इसे जलदी ही नौकरी मिलेगी, क्योंकि राजघरानोंमें देर होना तो स्वाभाविक ही है । यह सौदागर है इसकी गाड़ी जहाज आदि सौदा बेचकर आनेवाले हैं । इसके राष्ट्रकी भूमि उपजाऊ है । इसकी खेती पक रही है, क्योंकि यह कृषक है यह अपने पके अन्नको मुझे दे देगा । इससे मिलना निष्फल नहीं है, क्योंकि यह बड़ा कृतज्ञ है । यह कभी झूठ नहीं बोलता अवश्य देगा । एवम् जिससे भविष्यमें पूरा लाभ उठानेकी इच्छा राखे उससे मिले एवम् उसकी स्त्रीके करनेके कार्य्योंकी पूरी नकल करे, क्योंकि उससे लाभ लेना है ॥ ३६ ॥

अग्राह्य पुरुष ।

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

कृच्छ्राधिगतवित्तांश्च राजवल्लभनिष्ठुरान् ।
आयत्यां च तदात्वे च दूरादेव विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

इस विषयमें तीन श्लोक हैं उन्हें कहते हैं, कि–जिन्हें कठिनतासे धन मिला हो, जो राजाके प्यारोंके क्रूरकर्म कर्ता हों, चाहें उनसे भविष्यमें लाभ हो चाहें उसी समय हो पर इन पुरुषोंसे सदा अलग रहना चाहिये ॥ ३७ ॥

कृच्छ्राधिगतवित्तांश्चेति क्लेशेनार्जितवित्तान् । राजवल्लभनिष्ठुरानिति ये राज्ञा निष्ठुराः क्रूरा येषां नाकरणीयमपि कुर्यादित्यर्थः (?) । प्रायशस्तेभ्योऽनर्थसम्भवात् ॥ ३७ ॥

जिन्होंने बड़े २ कष्टोंको उठाकर पैसा पैदा किया हो वे उसे दे नहीं सकते । जो राज्यमें घोर कर्म करनेवाले हैं वे न करनेके कामोंको भी बिगडकर कर डालेंगे । प्रायः ऐसे पुरुषोंसे बुरा होनेका भय रहता है कि इन्हें बुरा करनेमें देर नहीं लगती अतः ऐसे पुरुषोंको कभी ग्रहण न करे ॥ ३७ ॥

ग्राह्य पुरुष ।

केषां तर्हि उपादानमित्याह—

यदि इनका उपादान न करे तो फिर किनका करे ? इस विषयमें कहते हैं कि—

अनर्थो वर्जने येषां गमनेऽभ्युदयस्तथा ।
प्रयत्नेनापि तान्गृह्य सापदेशमुपक्रमेत् ॥ ३८ ॥

जिनके मना करनेसे अनर्थका भय एवम् मिलनेपर अभ्युदय हो उन पुरुषोंको प्रयत्नके साथ खींचकर बहानेके साथ भी उनसे मेल करे ॥ ३८ ॥

अनर्थ इति—यांस्त्यक्त्वान्यस्मादनर्थोऽभिगमने चाभ्युदयस्तानुभयप्रयोजनत्वात् प्रयत्नेनापि तान्गृह्येत्यभिगम्य । सापदेशमुपक्रमेदिति यत्किंचिन्मिश्रीकृत्या (?) मभिगच्छन्तमभिगच्छेदित्यर्थः । वृत्ताद्यभावादात्मनेपदं न भवति ॥ ३८ ॥

जिनको जवाब देनेमें दूसरेसे बुरा होनेकी संभावना हो एवम् उनसे मिलनेमें अपनी पूर्ण उन्नति हो जिनसे ये दोनों मतलब हल होते हों ऐसोंसे प्रयत्नके साथ मेलकर किसीको मिलाकर यदि ये मिलना चाहें तो अवश्य मिले[1] ॥ ३८ ॥

अर्थप्रयोजनवाले ।

येष्वर्थ एव प्रयोजनं तानाह—

जिनके मिलनेपर धनका प्रयोजन ही पूरा होता है उन्हें बताते हैं कि—

प्रसन्ना ये प्रयच्छन्ति स्वल्पेऽप्यगणितं वसु ।
स्थूललक्षान्महोत्साहांस्तान्गच्छेत्स्वैरपि व्ययैः ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे लाभविशेषाः पञ्चमोऽध्यायः ।

---

१ 'उपक्रमेत्' इसका ही पर्याय 'अभिगच्छेत्' है । जिसका अर्थ 'मिले' यह किया है । अप्रतिबन्ध अर्थ न होनेसे आत्मनेपद नहीं किया ।

जो थोड़ेपर भी प्रसन्न होकर अमित धन दे दें, ऐसे स्थूललक्ष्यवाले महाशयोंसे अपना धन खर्च करके भी मिले ॥ ३९ ॥

महोत्साहानिति महानुत्साहो येषाम् । महत्त्वं चोत्साहस्य शौर्यादिभिः । ते तुष्टाः स्वल्पेऽपि वेश्याविषये प्रभूतं द्रव्यं प्रयच्छन्ति तस्मात्तान्गच्छेत् । स्वैरपि व्ययैरुपचारलक्षणैः । इति लाभविशेषाः सप्तपञ्चाशं प्रकरणम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणे लाभविशेषाः पञ्चमोऽध्यायः ।

जिन्हें शौर्य्य आदि गुणोंके योगसे बड़ा भारी उत्साह हो, जो थोड़े भी वेश्या विषयसे सन्तुष्ट होकर बहुतसा धन दे डालें ऐसे पुरुषोंसे उनकी खातिरमें अपना धन खर्च करके भी मिले यह लाभ विशेष नामक सत्तावनवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके पञ्चम
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

+अर्थ, अनर्थ, अनुबन्ध और इनके संशयोंके विचारका प्रकरण ।

शास्त्रकार एव प्रकरणसम्बन्धमाह—

पहिले अध्यायमें वेश्याओंके लाभविशेष बताये थे । उनके साथ जिन बातोंका विचार करना पड़ता है इस अध्यायमें उन्हीं बातोंपर विचार करेंगे ।

---

१ गन्धर्वसेनकी सभामें नाच करतीवार कामकन्दलाके स्तनाग्रपर भौंरा आ बैठा था उस समय उसने सब द्वारोंकी वायु रोककर स्तनाग्रसे निकाल दी जिससे भौंरा उड़ गया, इसे देखकर माधवानलने कहा है कि–

"कहा सुगुण समझे विना, कहा समझ विन हेत ।
कहा हेत आलम सुकवि, रीझ न सर्वश देत ॥"

यह कहकर जो कुछ राजसभामें पाया था उस सबको उसकी इस बातपर निछावर करके अकिंचन बन गया—जिसपर कि किसी सभ्यकी दृष्टि भी नहीं गई थी ।

+ अर्थके ग्रहणसे अर्थ, धर्म, काम तथा अनर्थके ग्रहणमें अनर्थ, अधर्म और द्वेष लिया जाता है । इसी तरह अनुबन्धके ग्रहणसे संकीर्णानुबन्धका भी ग्रहण होजाता है । संशयके साथ शुद्ध और संकीर्ण दोनों तरहके संशय आजाते हैं ।

लाभविशेषोंके साथ जो इस प्रकरणका सम्बन्ध है उसे वात्स्यायन ही बता रहे हैं कि—

अर्थानाचर्यमाणाननर्था अप्यनूद्भवन्त्यनुबन्धाः संशयाश्च ॥ १ ॥

इकट्ठे किये जानेवाले अर्थोंके पीछे अनर्थ भी उठ खड़े होते हैं तथा उनके अनुबन्ध (उनके साथ बँधे अनुकूल और विरोधी त्रिवर्ग) और इन सबके संशय भी पैदा हो जाते हैं ॥ १ ॥

अर्थानिति लाभविशेषाननन्तरोक्तान् आचर्यमाणान्साध्यमानान् । अपरिग्रहाया वेश्याया इत्यर्थः । अनर्था विरुद्धाः । अनूद्भवन्त्वि (न्ती) ति । 'अनुर्लक्षणे' इत्यनोः कर्मप्रवचनीयत्वे अर्थानिति द्वितीया । अर्थान्साध्यमानांल्लक्ष्यीकृत्यानर्था अपि स्वहेतुभ्य उत्पद्यन्ते । तत्र यदा अर्था एवोत्पद्यन्ते तदा निरनुबन्धार्थः पक्षः । यदार्थं बाधित्वानर्थास्तदा निरनुबन्धानथः पक्षः । अनुबन्धा इत्यर्थाद्याः । (अ) संशयाश्च एतयोरेवोत्पद्यन्ते । तस्मात्तेनोपादानार्थं विवादो युक्तः । इत्यर्थादनर्थानुबन्धसंशयविचारा उत्पद्यन्ते । तत्रार्थास्तदनुबन्धाश्चोपादेया एव । तत्संशयाश्च । केषांचित्प्रवृत्तेः । येऽनर्थास्तदनुबन्धास्तत्संशयाश्च तेषामनुपादेयत्वात् ॥ १ ॥

जिसने मुख्यरूपसे किसी एकका पल्ला नहीं पकड़ा है ऐसी वेश्याके जो पहिली अध्यायमें 'लाभविशेष' कहे हैं उनको सिद्ध करते हुए उन अर्थोंका लक्ष्य करके अपने कारणोंसे अनर्थ भी पैदा हो जाते हैं तथा इन दोनोंके साथ इनके सजातीय और विजातीयोंकी भी स्वतः सिद्धि हो जाती है तथा इन सबका संदेह भी होता है। जब धर्म अर्थ और कामको करती वार वेही किसी दूसरेको विना साथ लियेहुए होते हैं तो यह पक्ष अनुबन्धरहित है। जब इन तीनोंको बाधकर केवल अनर्थ यानी धर्मको बाधकर अधर्म, अर्थको बाधकर हानि एवम् कामको दपड़कर द्वेष होता है तो यह पक्ष केवल अनर्थ

---

१ 'अनूद्भवन्ति' यह सूत्रका टुकड़ा है, यहां अनु उपसर्ग नहीं, किन्तु लक्षणका द्योतक होनेके कारण कर्मप्रवचनीय संज्ञक है, इसी कारण हमने 'लक्ष्य करके, फिर 'हो जाते हैं' यह अर्थ किया है !

त्रिवर्गका चरितार्थ होता है, इसमें अनुबन्ध नहीं है। इन दोनोंके साथ जो सजातीय और विजातीय स्वतः सिद्धियाँ हैं वेही अनुबन्ध हैं तथा इन दोनोंके ही संदेह उत्पन्न होते हैं, इस कारण विचार पूर्वक ग्रहण करनेके लिये विवाद (विचार) युक्त है ही। इससे यह सिद्ध हो गया कि अर्थोपार्जनके साथ अनर्थ और अनुबन्धके संशयोंके विचार भी उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें अर्थ और उनके अनुबन्ध,तो उपादेय हैं ही। किसीके मतमें इनके संशय भी ग्रहण योग्य हैं, किन्तु अनर्थ, उनके अनुबन्ध और संदेह ये ग्रहणके योग्य नहीं है॥

उत्पत्तिके कारण।

उत्पत्तिकारणान्याह—

विरोधी त्रिवर्गोंकी इन बातोंके पैदा होनेमें जो कारण होते हैं उन्हें बताते हैं कि—

ते बुद्धिदौर्बल्यादतिरागादत्यभिमानादतिदम्भाद-त्यार्जवादतिविश्वासादतिक्रोधात्प्रमादात्साहसाद्दैवयो-गाच्च स्युः ॥ २ ॥

वे बुद्धिकी कमजोरी, अतिअनुराग, अभिमान, अतिकपट, अतिकी सिधाई, अतिका विश्वास, अतिके क्रोध, प्रमाद, साहस और दैवयोगसे उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

त इत्यनर्थादयः। बुद्धिदौर्बल्यादिति—ऊहानूहतत्त्वाभिनिवेशाविवेकाभ्यां बुद्धि-दौर्बल्यम्। रागः सक्तिः। अभिमानोऽहङ्कारः। दम्भश्छद्म। आर्जवमृजुता। विश्वासो विस्रम्भः। क्रोधः कोपः। एते कार्यवशाद्युक्तितः प्रयुज्यमाना नैव दोषाय आधिक्येन तु दोषायैवेत्यतिशब्देनाह। प्रमादो योऽन्यत्र व्यासङ्गः। साहसमविमृष्यकारित्वम्। एतन्नवधा मानुषम्। दैवयोगादिति। दैवमशुभं कर्म शुभं च। (शुभसंज्ञं च) तेन दैवयोगादित्यर्थः॥ २॥

ग्रहण करनेके अयोग्य जो अनर्थ, उनके अनुबन्ध और उनके सन्देह हैं, वे इन कारणोंसे पैदा हो जाते हैं। तर्कवितर्कके सच्चे रहस्यके जाननेकी झूठी चिन्ता तथा अविवेकसे बुद्धिकी कमजोरी होती है। इससे कर्तव्यका निश्चय नहीं हो पाता। अति अनुराग भी दीवानगी पैदा कर देता है। अभिमान अहंकारका नाम है। अतिकपटकी एकदिन अवश्य कलई खुल ही जाती है। सीधा आदमी जलदी धोखा खा जाता है। विश्वास भी मात्रासे अधिक होने-

पर धोखा ही देता है। अतिके क्रोधका भी यही हाल है। कार्य्यवश तर्क आदि युक्तिसे प्रयुक्त किये जायँ तो दोष नहीं, किन्तु अधिकतासे प्रयोग करनेपर येही दोषके कारण हो जाते हैं, यही बात अतिशब्दसे दिखाई है। काम कुछ करना और उसमें मन न देकर दूसरे ही काममें मन रखना प्रमाद है। बिना सोचे विचारे ही कर डालनेका नाम साहस है। ये नौ तरहके कारण तो मनुष्योंसे होनेवाले हैं तथा अपने पूर्वजन्मके अच्छे बुरे कर्म्मोंको दैव एवम् उनके फलक रूपमें जो अच्छा बुरा हो वह दैवयोग है, इससे भी अनर्थ आदि उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

तेषां फलं कृतस्य व्ययस्य निष्फलत्वमनायतिरागमिष्यतोऽर्थस्य निवर्तनमाप्तस्य निष्क्रमणं पारुष्यस्य प्राप्तिर्गम्यता शरीरस्य प्रघातः केशानां छेदनं पातनमङ्गवैकल्यापत्तिः ॥ ३ ॥

इनका फल–किये खर्चका फिजूल जाना, प्रभाव और प्रेमका मिटना, आतेहुए अर्थका हाथसे निकल जाना, हाथमें आयेका निकल जाना, कठोरताकी प्राप्ति, अपनी गम्यता और शरीरका घात, वालोंका काटा जाना, गिराया जाना और अपना अंगहीन किया जाना है ॥ ३ ॥

तेषां बुद्धिदौर्बल्यादीनाम्, अथवा ए (ते) षामित्यनर्थानां सानुबन्धानां तत्संशयानां च फलमिति परिणामः । अनर्थवेदनविपरिणामरूपेण संशय्यमानत्वादनर्थसंशयानामपि फलम् । व्ययस्येति गम्याभिगमनाय कृतस्य । अनायतिः प्रभावहानिः । आगमिष्यत इत्यधिकृते व्यये लप्स्यमानस्य निवर्तनमिति बोद्धव्यम् । आप्तस्येति प्राप्तस्येत्यर्थः । निष्क्रमणमन्यत गृह्यमाणत्वात् । पारुष्यस्येति द्विरुक्तस्य (?) । गम्यता परिचेयता । शरीरस्य प्रघातः प्राणवायोर्वियोगः । केशानां छेदनं लवनम् । पातनं बन्धताडनम् । अङ्गवैकल्यं कर्णनासाविच्छेदः ३

बुद्धिकी दुर्बलता आदिका अथवा अनुबन्ध युक्त अनर्थादिकों तथा उनके संशयोंका उपरोक्त नतीजा, होता है। अनर्थोंके सन्देह अनर्थोंकी प्राप्तिरूप विपरीत नतीजेके रूपमें उपस्थित होते हैं, अतः ऐसा होना संदेहका भी फल है। इससे यह नहीं कह सकते कि संदेहका कोई नतीजा नहीं होता। मिलनेवालेसे मिलनेके लिये जो खर्च किया जाय वह फिजूल हो जाय। प्रभाव न

रहे । व्यय करनेपर भी मिलनेवाला लाभ आते २ रह जाय । आया धन हाथसे चला जाय, क्योंकि उसे कोई दूसरा छिना ले । अपनी बुराई खड़ी हो जाय । लोग अपनेको दुकड़ी समझने लगें । जान जानेका खतरा हो । बाल काट लिये जायँ । जेल व सजा मिले । मारपीट हो । कोई नाक कान काट ले ॥ ३ ॥

उपाय करनेका समय ।

तस्मात्तानादित एव परिजिहीर्षेदर्थभूयिष्ठांश्चोपेक्षेत ॥४॥

इस कारण उन्हें पहिलेसे ही काट डालना चाहे, जिनमें धनका अधिक लाभ देखे उनकी उपेक्षा कर दे ॥ ४ ॥

तान्बुद्धिदौर्बल्यादीनादित एव परिहर्तुमिच्छेत् । यावदर्थहेतूनुपायान्प्रयुंक्ते । अन्यथा ह्यर्थं बाधित्वानर्थोऽपि स्यात् । कारणानां संनिहितत्वात् । अर्थभूयिष्ठांश्चेति । अर्थबहुलाननर्थहेतूनुपेक्षेत । तत्र ह्यर्थहेतूनामेवोपायानां बाहुल्यात् ॥४॥

इस कारण इन दोषोंको उससे पहिलेसे ही मिटानेकी चेष्टा करनी चाहिये जबतक कि अर्थके कारणीभूत उपायोंका प्रयोग करे । यदि धन खींचनेके उपाय करनेसे पहिले ही अनर्थोंको मिटानेके उपाय न करेगा तो अनर्थोंके कारण होनेवाले अर्थोंको बाँधकर अनर्थ होजायँगे । क्योंकि कारण पास रहेंगे तो कार्य्य भी अवश्य ही होंगे । यदि अनर्थके कारणोंमें धन लाभ अधिक दीखे तो उनकी उपेक्षा कर दे, क्योंकि वहां अर्थोंकी कारण उपाय ही उनसे अधिक हैं अतः उन्हें पछाड़ देंगे ॥ ४ ॥

अर्थ त्रिवर्ग ।

इदानीं निरनुबन्धान्विचारयितुमाह—

इस समय अनुबन्ध रहित अर्थादिकोंके विचार करनेका प्रारंभ करते हैं कि—

अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ, धर्म और काम यह अर्थत्रिवर्ग कहाता है ॥ ५ ॥

यद्यपि प्रथमाधिकरणके पहिले अध्यायमें धर्मको पहिले रखकर पीछे अर्थ और कामको दिखाया है पर यहां अर्थत्रिवर्ग दिखानेका केवल इतना ही मतलब है कि वेश्याओंके यहां धन मुख्य एवम् बाकी सब गौण रहा करता है ॥ ५ ॥

अनर्थत्रिवर्ग ।

अनर्थोऽधर्मो द्वेष इत्यनर्थत्रिवर्गः ॥ ६ ॥

धनहानि, अधर्म और द्वेष यह अनर्थोंका त्रिवर्ग है ॥ ६ ॥

अनर्थ इति । अर्थत्रिवर्गो ह्यर्थ इति कृत्वा तद्विरुद्धोऽनर्थत्रिवर्गः । ततश्चार्था (न) र्थानुबन्धसंशयविचारा इत्यस्मिन्सूत्रे धर्माधर्मयोः कामद्वेषयोरपि संग्रहः सिद्धः । अनेन निरनुबन्धपक्ष उक्तो वेदितव्यः ॥ ६ ॥

अर्थत्रिवर्गमें अर्थ पहिले हैं उसके अर्थादिको पहिले लेकर विपरीतमें अनर्थोंका त्रिवर्ग होता है । इससे यह बात सिद्ध हो गई कि 'अर्थ, अनर्थ अनुबन्ध और इनके संशयोंके विचारोंके प्रति या इनवाले पहिले सूत्रमें अर्थसे धर्म और काम तथा अनर्थसे अधर्म और द्वेषका भी संग्रह हो जाता है । इससे इसमें अनुबन्धरहित पक्ष समझ लेना चाहिये, कि अर्थ, धर्म और काम अर्थोंका त्रिवर्ग तथा अधर्म, अनर्थ और द्वेष यह अनर्थोंका केवल त्रिवर्ग है । इनके साथ कोई अनुबन्ध नहीं है ॥ ६ ॥

अनुबन्धस्वरूप ।

तेष्वाचर्यमाणेष्वन्यस्यापि निष्पत्तिरनुबन्धः ॥ ७ ॥

उनके इकट्ठा करते हुए उनके साथ जो दूसरा भी स्वतः सिद्ध हो जाय वह अनुबन्ध कहाता है ॥ ७ ॥

तेष्वित्यर्थादिषु षट्सु साध्यमानेषु अन्यस्यापातिनः केवलं साध्यमानस्य (अन्यस्यापीति) सजातीयस्य विजातीयस्य वा पञ्चानामन्यतमस्येति ॥ ७ ॥

अर्थ, धर्म और कामके सिद्ध करते तथा अनर्थ, अधर्म और द्वेषका प्रतीकार करते हुए जो एकके करतीबार बाकी सजातीय या विजातीय स्वतः आ पड़े वह अनुबन्ध है ॥ ७ ॥

शुद्धसंदेह ।

संदिग्धायां तु फलप्राप्तौ स्याद्वा न वेति शुद्धसंशयः॥८॥

सन्दिग्धफलप्राप्तिमें 'होगी वा नहीं' यह होना शुद्धसंशय है ॥ ८ ॥

संप्राप्तौ तु संदिग्धायां स्याद्वा न वेति यो विकल्पः स शुद्धसंशयः ॥ ८ ॥

---

१ जो किया जा रहा ह उसके साथ दूसरा और कोई ही स्वतः आ जाय चाहें वह किये जानेवालेका सजातीय हो या विजातीय हो यानी अर्थके करती बार धर्म कामकी स्वतः सिद्धि सजातीय एवम् अनर्थ आदिकी स्वतः सिद्धि विजातीय सिद्धि है ॥

जिस संदेहयुक्त फलप्राप्तिमें यह विकल्प हो कि यह होगा वा नहीं तो यह शुद्धसंशय है यानी एकके ही विषयमें जो सन्देह हो वह शुद्ध है ॥ ८ ॥

संकीर्णसंदेह ।

इदं वा स्यादिदं वेति संकीर्णः ॥ ९ ॥

यह फल होगा वा यह फल होगा यह संकीर्ण संदेह है ॥ ९ ॥

द्वयोरन्यतरोत्पत्त्या विकल्पस्य संकीर्यमाणत्वात् ॥ ९ ॥

यहां दोनोंमें एककी उत्पत्तिसे विकल्प संकीर्ण हो रहा है । पूर्वसे इसमें यह विशेषता है कि दो वस्तुओंमें सन्देह है एकमें ही होने न होनेका सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥

दोनों ओरका योग ।

एकस्मिन् क्रियमाणे कार्ये कार्यद्वयस्योत्पत्तिरुभयतोयोगः ॥ १० ॥

एक कार्य्यके करनेपर दो कार्य्योंकी उत्पत्ति हो जाय तो वह ' उभयतोयोग ' है ॥ १० ॥

एकस्मिन्कार्य इति । अर्थादिसाधने क्रियमाणे द्वयस्येत्यर्थादीनां षण्णामन्यतमस्य सजातीयस्य विजातीयस्य वा द्वयस्योत्पत्तिरुभयतो योग इत्युभाभ्यां संबन्धः ॥ १० ॥

अर्थ आदिक छओंमेंसे किसी एकके सिद्ध करतीबार किसी दूसरे सजातीय वा विजातीयकी साथ उत्पत्ति हो तो यह दोनोंका योग यानी सम्बन्ध है१०

इसपर यह आशंका होती है, कि अर्थत्रिवर्ग और अनर्थत्रिवर्ग ये दो त्रिवर्ग हैं । इन दोनोंके स्वरूपके परिज्ञानके विषयमें उदाहरण कैसे होंगे ? इसके लिये कहते हैं कि—

सब ओरके योग ।

समन्तादुत्पत्तिः समन्ततोयोग इति तानुदाहरिष्यामः ११

चारों ओरसे उत्पत्ति हो तो वह ' समन्ततो योग ' है, इनके उदाहरण अगाड़ी देंगे ॥ ११ ॥

समन्तादिति । एकस्मिन् क्रियमाणे बहुभ्योऽर्थादीनामुत्पत्तिः समन्ततो योगः । अस्य योगद्वयस्य निरनुबन्धपक्ष एवान्तर्भावः ।ताननुबन्धादीनुदाहरणादुदाहरिष्यामः । स्पष्टोऽर्थः ॥ ११ ॥

अर्थ, धर्म आदिमेंसे किसी एककी सिद्धि किये जानेपर जो बहुतसोंकी उत्पत्ति हो जाय वह 'समन्ततो योग' यानी चारों ओरसे योग है ये दोनों योग अनुबन्ध रहित जो पक्ष है उसमें गतार्थ होते हैं । इन अनुबन्ध आदि-कोंको आगे उदाहरण देकर कहेंगे । यह इसका खुलासा अर्थ है ॥ ११ ॥

दोनों त्रिवर्ग ।

ननु च त्रिवर्गोऽर्थोऽनर्थश्च तयोः स्वरूपतोऽपरिज्ञाने कथमुदाहरण-मित्याह—

अर्थ और अनर्थ दोनोंके ही त्रिवर्ग हैं, इनके स्वरूपसे परिज्ञानके लिये कैसे उदाहरण होगा ? इस शंकाको लेकर उनके उदाहरण बताते हैं कि—

विचारितरूपोऽर्थत्रिवर्गः। तद्विपरीत एवानर्थत्रिवर्गः ॥१२॥

जिसके स्वरूपका विचार किया जा चुका है वह 'अर्थत्रिवर्ग' है उससे ठीक विपरीत ही अनर्थका त्रिवर्ग है ॥ १२ ॥

विचारितरूप इति त्रिवर्गप्रतिपत्तौ निरूपितस्वभाव इत्यर्थः । तद्विरुद्धत्वाद-नर्थोऽपि विचारितरूप इत्याह—तद्विपरीत इति ॥ १२ ॥

त्रिवर्गप्रतिपत्तिमें अर्थत्रिवर्गका विचार कर दिया गया है । ठीक उसके विपरीत अनर्थत्रिवर्ग है, इस कारण वह भी उसीके भीतर आ जाता है, क्योंकि अर्थज्ञानके साथ ही अनर्थोंका ज्ञान हो जाता हो यानी जब अर्थ बताये तो उनके प्रतियोगी अनर्थ भी बताये गये ॥ १२ ॥

अर्थके साथ अर्थका अनुबन्ध ।

तत्रार्थानर्थयोस्त्रिवर्गयोरर्थावित्यवधि (रर्थादीनधि) कृत्याह—

अर्थके त्रिवर्ग और अनर्थके त्रिवर्गोंमें अर्थ ही अवधि है, इस कारण अर्थोंके अधिकारको लेकर कहते हैं कि—

यस्योत्तमस्याभिगमने प्रत्यक्षतोऽर्थलाभो ग्रहणीय-त्वमायतिरागमः प्रार्थनीयत्वं चान्येषां स्यात्सोऽर्थो-ऽर्थानुबन्धः ॥ १३ ॥

जिस उत्तम पुरुषके मिलनेपर प्रत्यक्षसे अर्थलाभ, ग्रहण करनेकी योग्यता प्रभाव, आगम और दूसरोंकी चाहकी चीज बन जाना हो तो यह अर्थ अर्थोंको साथ लिये हुए है ॥ १३ ॥

उत्तमादिभेदात्त्रिविधो नायको व्याख्यातः । तत्र यः समस्तगुणस्तस्योत्तमगुणस्याभिगमने । प्रत्यक्षतोऽर्थलाभ इति तत एव प्रत्यक्षात्तदानीमर्थलाभः । ग्रहणीयत्वमिति लोकग्राह्यत्वमुपादेयत्वम् । आयतिः प्रभावः । आगमस्तत्कालीयानां प्रार्थनीयत्वं गम्यादीनाम् । सोऽर्थ इति योऽसौ तदात्वे लाभः । अर्थानुबन्ध इति ग्रहणीयत्वादिरर्थैरनुबन्धो यस्य । अयं सजातीयानुबन्धः॥ १३॥

उत्तम, मध्यम और अधम इन भेदोंसे नायक तीन तरहका कहा गया है। जिस पुरुषमें नायकके सभी गुण हों उसके साथ मिलनेमें उसी समय उससे अर्थ लाभ प्रत्यक्ष ही है। उसकी बदौलत दूसरोंकी चाहकी चीज बन जानेका मौका भी होता है। अपने प्रभावकी वृद्धि होती है। उसके साथसे दूसरे मिलने योग्य व्यक्ति मिलनेकी आरजू करने लग जायँ ऐसा जो उस समयका लाभ है यह अर्थलाभ बताये हुए इन दूसरेकी चाहकी चीज बनने आदि दूसरे अर्थोंसे सम्बन्धित है यह प्रधान अर्थका अपनी जातिके संबन्ध है ॥ १३ ॥

अनुबन्ध रहित अर्थ ।

लाभमात्रे कस्यचिदन्यस्य गमनं सोऽर्थो निरनुबन्धः १४॥

लाभमात्रकी दृष्टि रख, किसीसे भी मिल लेना, यह अर्थ, अनुबन्ध-रहित है ॥ १४ ॥

लाभमात्र इति तदात्वे यो लाभस्तन्मात्रमेव निमित्तम्। कस्यचिदिति लोके यो गुणैर्दोषैर्वा न विवक्षितस्तस्याभिगमनमात्रोऽर्थो निरनुबन्धः । (ग्रहणीत्वमिति) लोकग्राह्यत्वाद्यभावात् ॥ १४ ॥

उस समय जो मिले वही मिलनेका कारण हो और इसीपर ऐसे पुरुषसे मिला जाय जो लोकमें न तो गुणोंके कारण पूजा जाता हो एवम् न दुर्गुणोंके कारण निन्दित ही हो। ऐसे आदमीसे मिलना म त्र ही है। उसकी फीस दूसरे लाभोंके संसर्गसे हीन है अतः निरनुबन्ध है, क्योंकि ऐसोंसे मिलनेपर चाहकी चीज बनना आदि अर्थ तो होता ही नहीं है ॥ १४ ॥

अर्थके साथ अनर्थका अनुबन्ध।

अन्यार्थपरिग्रहे सक्तादायतिच्छेदनमर्थस्य निष्क्रमणं लोकविद्विष्टस्य वा नीचस्य गमनमायतिघ्नमर्थोऽनर्थानुबन्धः ॥ १५ ॥

अपने आसक्तके हाथोंसे दूसरेका धन लेनेमें प्रभाव मिटता है, वह धन हाथ नहीं रहता, अथवा संसार जिसे बुरा कहे ऐसे नीचके साथ मिलना प्रभावका नाश करता है ऐसा अर्थ, अनर्थोंको लिये हुए है ॥ १५ ॥

सक्तादिति यः सक्तो निःसारत्वादन्यदीयमर्थमपहृत्य प्रयच्छति तस्यार्थस्य परिग्रहे आयतिच्छेदनं प्रभावहानिर्दस्युना सह तिष्ठतीति । अर्थस्येति पूर्वोपात्तस्य । निष्क्रमणं चात्र द्रव्यमिति (?) तावकेन (?) गृह्यमाणत्वात् । लोकविद्विष्टस्य च चौर्यमकुर्वतोऽपि । नीचस्य वा जातिन्यूनस्य । गमनमायतिघ्नमिति प्रभावं हन्ति । अत्रार्थोऽनर्थानुबन्धः । तदात्वे लाभस्यायतिच्छेदानर्थानुबन्धित्वात् । अयं विरुद्धानुबन्धः ॥ १९ ॥

जो अपना खोका आशिक दूसरोंके धनको चोर चार कर देता है तो इससे ऐसे धनके लनेमें अपना प्रभाव मिटता है, कि चोरोंके साथ रहती है। हल्ला हुए पीछे लोग उसके धनको भी राजसे छिनवा लेते हैं, कि तेरे ही चोरने चोरी की है व उसका चोरा हुआ धन यहीं है । अथवा चोरचकोर तो न हो, किन्तु दुनियाँके साथ द्वेष चलता हो अथवा अपनी जातिसे छोटी जातिका आदमी हो तो ऐसे आदमियोंका मिलना अपने प्रभावको नष्ट कर डालता है । इन स्थलोंका लाभ अनर्थोंसे बँधा हुआ है, क्योंकि उस समय तो पैसा हाथमें आया दीखता है, किन्तु भविष्यका खतरा है और प्रभाव नष्ट हो जाता है, इस तरह यह लाभ अनर्थोंको लिये हुए है। यह विरुद्धानुबन्ध है, यानी अर्थके विरुद्ध जो अनर्थ आदिक हैं उनका अनुबन्ध अर्थके साथ है १५

अनर्थके साथ अनर्थ ।

(स्वेन व्ययेन शूरस्य महामात्रस्य प्रभवतो वा लुब्धस्य गमनं निष्फलमपि व्यसनप्रतीकारार्थं महतश्चार्थघ्नस्य निमित्तस्य प्रशमनमायतिजननं वा सोऽनर्थोऽर्थानुबन्धः) ॥ १६ ॥

*अपने व्ययसे किसी शूरवीर अथवा राज्य प्रधान या प्रभावशाली लोभीसे मिलना निष्फल भी व्यसनके प्रतीकारके लिये तो है । बड़े भारी अनर्थ

* कामसूत्रकी किसी २ मूल पुस्तकमें यह पाठ यहां है। वीर प्रधान अथवा प्रभावशाली व्यक्तिसे मिलनेपर अर्थ लाभ न होनेपर भी कामकी शान्ति तो होती ही है । दूसरे ये अपनेसे उपकृत होनेपर अपनी आपत्तियोंको रोकनेमें सहायता देते हैं । इस तरह यहांका न कुछ मिलना भी लाभके लिये ही होता है।

अथवा उसके निमित्तका शान्त करनेवाला है एवम् प्रभावका बढानेवाला है, इस तरह यह अर्थका न मिलना दूसरे फायदोंको लियेहुए है ॥ १६ ॥

अनुबन्धहीन अनर्थ ।

कदर्यस्य सुभगमानिनः कृतघ्नस्य वातिसन्धानशीलस्य स्वैरपि व्ययैस्तथाराधनमन्ते निष्फलं सोऽनर्थो निरनुबन्धः ॥ १७ ॥

अपनेको सुन्दर माननेवाले कदाचारी कृतघ्न अथवा बड़ी खुसामद चाहनेवाले पुरुषके साथ अपने खर्चसे खातिर करते हुए मिलना अन्तमें निस्फल ही है। वह यह अनर्थ किसीको भी साथ लिये हुए नहीं है ॥ १७ ॥

कदर्यस्येति आत्मानं भृत्यांश्च पीडयित्वा योऽर्थान्संचिनोति तस्य सुभगमानिन इति । असुभगः सन्नात्मानं सुभगं यो मन्यते स न प्रयच्छति । य सुदुर्भगः सुभगमानी स केवलार्थो गम्य उक्तः । कृतघ्नस्य वेति । 'वा' शब्दः पूर्वापेक्षया सर्वत्र योज्यः। अतिसन्धानशीलस्य छलेन सन्धानपरस्य । तथाराधनमिति यथा स्वैरपि व्ययैरभिगमनम् । निष्फलं यथानुरञ्जनमप्यन्ते निष्फलम् । सोऽनर्थ इति यः कृतो व्ययो निरनुबन्ध' ॥ १७ ॥

जो अपनेको और निजी सेवकोंको तकलीफ देकर धन इकठ्ठा फिरता है ऐसा जो कुरूप होकर भी अपनेको सुन्दर मानता है वह देता नहीं जो एकदम कुरूप हो पर अपनेको सुन्दर समझता हो वह केवल अर्थ खींचनेके लिये गम्य ही है यह कह ही चुके हैं। जो किसीके किये उपकारको न मानें वे भी ऐसे ही हैं कि सेवा करनेका कोई नतीजा नहीं । 'कृतघ्नस्य' के साथ वा शब्द लगा है इसका पहिलेकी अपेक्षासे सबके साथ योग करना चाहिये। जो मनुष्य अतिकपटसे मिले मिलाये ऐसे पुरुषोंका अपना धन खर्च करके भी मिलना निष्फल है तथा इनको प्रसन्न करना भी निष्फल है। इस तरह इनके विषयमें जो खर्च किया गया है वह केवल खर्च ही खर्च है। उसके साथ और कोई नफा नुकसान नहीं है ॥ १७ ॥

अनर्थानुबन्धी अनर्थ ।

कदर्यादेर्विशेषमाह—

कदर्यसे केवल यही हो कि निरनुबन्ध अनर्थ हो यह बात नहीं है, किन्तु अनर्थोंके साथ और भी अनर्थ आप ही उत्पन्न हो जाते हैं, इसी बातको कहते हैं कि—

तस्यैव राजवल्लभस्य क्रौर्यप्रभावाधिकस्य तथैवाराधानमन्ते निष्फलं निष्कासनं च दोषकरं सोऽनर्थोऽनर्थानुबन्धः ॥ १८ ॥

क्रूर प्रभावमें बढ़े हुए कदाचारी राजाके प्यारेका उसी तरह आराधन करना अन्तमें निष्फल है और निकालना दोष करनेवाला है । इस तरह यह अनर्थ दूसरे २ अनर्थोंको लिये हुए है ॥ १८ ॥

क्रौर्यप्रभावाधिकस्येति दोषत्रयमत्राधिकम् । तथैवाराधनमिति यथा स्वैर्व्ययै-रभिगमनं निष्फलम् । कदर्यादीनामदातृत्वात् । निष्कासनमददतां दोषकरम् । ते हि निष्कासिता दोषत्रययुक्तत्वात्पारुष्यशरीरप्रघातादीननर्थान्कुर्युः । इत्यन-नर्थोऽनर्थानुबन्धः । अयं सजातीयानुबन्धः ॥ १८ ॥

पहिले जो कदर्यादि दुर्गुण बताये हैं उनके साथ क्रूरता आदि तीन दोष और अधिक हैं, यानी पहिले जैसा बताया वैसे ही क्रूरता व प्रभावमें बढ़े हुए राजाके प्यारे सुभगाभिमानी कदाचारी पुरुषोंके साथ अपने खर्चसे मिलना निष्फल है, क्योंकि कदर्य आदि गुणोंकी तासीर देनेकी नहीं होती । यदि ये न दें तो भी इन्हें धक्के मारकर निकाल दिया जाय तो भी दोष है, क्योंकि इनमें पहिलेसे तीन दोष अधिक हैं । इन दोषोंके होनेके कारण ठोकापीटी और जान लेना आदि अनर्थोंको कर डालेंगे । इस तरह उनसे कुछ न मिलना ठोकपीट आदि अनेकों अनर्थोंको लिये हुए हैं, इस तरह यह अनर्थके साथ दूसरे अनर्थ ही लगे हुए हैं अत: यह सजातीय अनुबन्ध है ॥ १८ ॥

धर्मकामोंकी अनुबन्धयोजना ।

एवं धर्मकामयोरप्यनुबन्धान्योजयेत् ॥ १९ ॥

+ इसी तरह धर्म और कामके अनुबन्धोंकी योजना करे ॥ १९ ॥

+ अर्थ–अर्थानुबन्धी, अनर्थानुबन्धी और निरनुबन्धी होता है तथा अनर्थ भी अनर्थानुबन्धी, अर्थानुबन्धी और निरनुबन्धी हुआ करता है । इस तरह अर्थ और उसके प्रतिद्वन्द्वी अनर्थ दोनों मिलकर दोनोंके छः भेद होते हैं । धर्म–धर्मानुबन्धी, अधर्मानुबन्धी और निरनुबन्धी एवम् अधर्म–अधर्मानुबन्धी, धर्मानुबन्धी तथा निरनुबन्धी इस तरह छ: भेद होते हैं । काम–कामानुबन्धी, द्वेषानुबन्धी और निरनुबन्धी होता है तथा द्वेष–द्वेषानुबन्धी, कामानुबन्धी और निरनुबन्धी होता है । इस तरह अठारह त्रिवर्गोंके भेद होते हैं । इनमें अर्थ, धर्म और काम, अनर्थ, अधर्म और द्वेष इनके साथ इन्हींका अनुबन्ध हो तो ६ सजातीय अनुबन्ध होंगे तथा उनके ही प्रतियोगी विजातियोंके ६ अनुबन्ध और मिला दिये जायँ तो १२ हो जायँगे ।

एवमन्यानपि धर्मकामयोरनुबन्धान्योजयेत् । तत्र ब्राह्मणस्य गृहस्थस्यानुरक्तस्य मुमूर्षोर्गमनात्प्राणसंरक्षणं कुटुम्बसंधारणं गार्हस्थ्यधर्मप्रवर्तनं च धर्मो धर्मानुबन्धः । काममात्रं च तद्धर्मो निरनुबन्धः । तस्यैवाकृतस्नानभोजनस्य गमनं कामो द्वेषानुबन्ध इति । अत्रानुबन्धाः षट् विजातीयविरुद्धाभ्यामनुबन्धा द्वादश ॥ १९ ॥

इसी तरह धर्म और कामके दूसरे अनुबन्धोंकी भी योजना कर लेनी चाहिये । उसकी सामान्य रीति यह है कि–'अपने पर अत्यन्त आसक्त होनेके कारण मौतके मुखमें जानेके लिये तयार हुए गृहस्थ ब्राह्मणकी अभिलाषा पूरी करके उसके प्राण बचा लेना; जिससे कि उसके कुटुम्बकी रक्षा हो जाय व वह उसके पालन पोषणमें लग जाय एवम् अपने गार्हस्थ्य धर्मका पालन करने लग जाय तो यह धर्म, धर्मके साथ सना हुआ है । उसका काममात्र धर्म तो अनुबन्धरहित है । विना स्नान भोजन किये हुए उसी ब्राह्मणके साथ मिलना यह काम द्वेषको लिये हुए है। यहां छः अनुबन्ध हैं, विजातीय और विरुद्धोंके साथ सम्बन्ध रहनेसे १२ होजाते हैं ॥ १९ ॥

अनुबन्धोंको संकीर्ण बनानेकी रीति ।

परस्परेण च युक्त्या संकिरेदित्यनुबन्धाः ॥ २० ॥

+ इनको आपसमें युक्तिपूर्वक मिलाये । ये अनुबन्ध पूरे हुए ॥ २० ॥

इनका पूरा समन्वय ।

+ अर्थादिके द्वादश अनुबन्ध पीछेके सूत्रकी टिप्पणीमें दिखा चुके हैं । जब अर्थ, अनर्थ, धर्म, अधर्म और काम व द्वेषके संकीर्ण अनुबन्ध बनाने हों तो उसमें जिसके संकीर्ण बनाने हों उसके विरुद्ध और उसके निजी अनुबन्धको छोड़ देनेपर बाकीके मिलानेसे संकीर्ण बन जाते हैं । जैसे अर्थके संकीर्ण बनाती बार इसे और इसके विरुद्ध हुआ अनर्थ इन दोनोंको छोड़ देनेपर अर्थ–कामानुबन्धी, धर्मानुबन्धी, अधर्मानुबन्धी और द्वेषानुबन्धी इस तरह ४ तरहका संकीर्ण हुआ है । अनर्थ–कामानुबन्धी, धर्मानुबन्धी, द्वेषानुबन्धी और अधर्मानुबन्धी इस तरह चार तरहका हुआ । धर्म–कामानुबन्धी, द्वेषानुबन्धी, अर्थानुबन्धी और अनर्थानुबन्धी यह चार तरहका हुआ । अधर्म–कामानुबन्धी, द्वेषानुबन्धी, अर्थानुबन्धी और अनर्थानुबन्धी यह चार तरहका हुआ । काम–अर्थानुबन्धी, अनर्थानुबन्धी, धर्मानुबन्धी और अधर्मानुबन्धी यह चार तरहका हुआ । द्वेष–धर्मानुबन्धी, अधर्मानुबन्धी, अर्थानुबन्धी और अनर्थानुबन्धी इस तरह चार तरहका हुआ । सब मिलाकर संकीर्णके चौबीस भेद हो जाते हैं ।

युक्त्येति विरुद्धं त्यक्त्वा शेषाणां विजातीयानामन्ययोगादित्यर्थः । तत्रार्थो धर्मानर्थकामद्वेषैः प्रत्येकमनुबन्ध (द्ध) श्चतुर्विधः । तथानर्थोऽपि धर्मार्थकामद्वेषैः प्रत्येकमनुबन्ध (द्ध) श्चतुर्विधः । तथा अधर्मोऽपि कामाद्वेषार्थानर्थैः प्रत्येकमनुबन्धः (द्ध) श्चतुर्विधः । तथा द्वेषोऽपि । इति एवं चतुर्विंशतिसंकीर्णानुबन्धाः ॥ २० ॥

विरुद्धको छोड़कर बाकी विजातियोंमेंसे अन्ययोग होनेसे संकीर्ण बनते हैं । इनमें अर्थ–धर्म, अधर्म, काम और द्वेषके साथ हो, इनमें एक २ के साथ सम्बन्ध होनेसे चार तरहका होगा । इसी तरह अनर्थ भी धर्म, अधर्म, काम और द्वेषके साथ हो, इनमें एक एकके साथ अनर्थके होनेसे चार तरहका होजायगा । इसी तरह अधर्म भी काम, द्वेष अनर्थ और अर्थको साथ लेकर एक २ के साथ होनेसे चार तरहका है । इसी तरह द्वेष भी चार तरहसे संकीर्ण है । इसी तरह धर्म और कामके भी चार २ भेद होनेसे २४ संकीर्ण अनुबन्ध हो जाते हैं ॥ २० ॥

शुद्ध संशय ।

शुद्धसंशयमधिकृत्याह–

अनुबन्ध शुद्ध और संकीर्ण बताये जा चुके । अब इनके बाद शुद्ध संशयोंका नम्बर आता है इस कारण शुद्ध संशयोंको बताते हैं ।

अर्थ संशय ।

दोनों तरहके त्रिवर्गोंका संशय बताती बार सर्व प्रथम अर्थसंशयको बताते हैं कि—

परितोषितोऽपि दास्यति न वेत्यर्थसंशयः ॥ २१ ॥

राजी करनेपर भी देगा वा नहीं यह अर्थसंशय है ॥ २१ ॥

यदि तदात्वे न ददाति सुरतोपचारेण परितोषितोऽपि दास्यति । तत्राज्ञानशीलत्वाद्यान्न वेत्यर्थसंशयः ॥ २१ ॥

यदि उसी समय न दे तो सहवासकी खुशामदसे संतुष्ट किया भी देगा इस विषयमें कुछ भी मालूम नहीं है । तब देगा वा नहीं यह अर्थविषयक संदेह होता है ॥ २१ ॥

धर्मसंशय ।

निष्पीडितार्थमफलमुत्सृजन्त्या अर्थमलभमानाया धर्मः स्यान्न वेति धर्मसंशयः ॥ २२ ॥

जिसका धन निचोड़ लिया हो जब उससे कुछ फल न दीखता हो तो छोड़नेको उद्यत हो, फिर भी धन न मिले तो धर्म है या नहीं यह धर्मसंशय है२२

उत्सृजन्त्या इति । कामुकेभ्योऽङ्गानि दत्त्वार्थार्जनं चेत्स्याद्धर्मः । अङ्गार्पणं वेश्याया धर्मः । तथा हि—'यथा स्ववृत्तिधर्मः' इत्याचार्याः । तत्रार्थमलभमानाया निष्पीडितार्थस्योत्सर्जनमपि किं धर्मो नु वेति संशयः ॥ २२ ॥

कामुक व्यक्तियोंको अपने अंग देकर अर्थका यदि उपार्जन हो तो यह तो वेश्याका धर्म ही है, क्योंकि अंगोंका अर्पण करना वेश्याका धर्म ही होता है। यही आचार्य्योंका कहना है कि-'जो जिसकी वृत्ति विधान कर दिया गया हो वही उसका धर्म है।' इस कार्य्यमें उसे अर्थ न मिले तो जिसका सारा धन निचोड़ लिया हो फिर उसको धता बताना भी धर्म होगा वा नहीं यह धर्मसंशय है ॥ २२ ॥

कामसंशय ।

अभिप्रेतमुपलभ्य परिचारकमन्यं वा क्षुद्रं गत्वा कामः स्यान्न वेति कामसंशयः ॥ २३ ॥

जिसको चाहती हो उसको पाकर भी अपने नौकर वा किसी दूसरे क्षुद्र व्यक्तिके मिलनेमें काम होगा वा नहीं यह कामसंशय है ॥ २३ ॥

अभिप्रेतमपि रुचिरं नायकं परिचारकमात्मीयं वा क्षुद्रं निकृष्टं गत्वा तयोरनभिप्रेतत्वादज्ञातकामत्वाच्च कामः स्यान्न वेति संशयः ॥ २३ ॥

नायकके गुणोंसे युक्त रूपलावण्यवाले प्यारेको पाकर भी बिना चाहे अपने वा दूसरेके सेवक या किसी तुच्छ व्यक्तिके मिलनेपर काम होगा या नहीं यह कामसंदेह है, क्योंकि उनकी उसे चाह नहीं न वे विचारे उसके कामको जानते ही हैं ॥ २३ ॥

अनर्थसंशय ।

उपादेय त्रिवर्गके शुद्ध संशय दिखा दिये गये हैं । अब अनुपादेय त्रिवर्गके शुद्ध संशयोंको बताते हैं कि-

प्रभाववान् क्षुद्रोऽनभिगतोऽनर्थं करिष्यति न वेत्य-नर्थसंशयः ॥ २४ ॥

प्रभावशाली नीच, न चाहनेपर अनर्थ करेगा वा नहीं यह अनर्थसंशय है॥

अनभिगत इति । अभिगन्तुमिच्छन् क्षुद्रत्वात्प्रत्याख्यातः । स हि राजकुले लब्धप्रभावत्वादनर्थं करिष्यति न वेति संशयः ॥ २४ ॥

जो मिलना चाहता था पर क्षुद्र होनेके कारण इनकार किया गया, राज-घरानेमें प्रभाव पाया हुआ होनेके कारण अनर्थ करेगा वा नहीं यह अनर्थ-संदेह है ॥ २४ ॥

अधर्मसंशय।

अत्यन्तनिष्फलः सक्तः परित्यक्तः पितृलोकं यायात्त-त्राधर्मः स्यान्न वेत्यधर्मसंशयः ॥ २५ ॥

जिससे कुछ भी फल नहीं ऐसा आसक्त छोड़ दिया गया हो ,यदि वह मर जायगा तो उसमें अधर्म होगा वा नहीं यह अधर्मका संशय है ॥ २५ ॥

सक्त इति । अनुरक्तोऽभिगन्तुमिच्छन् । परित्यक्तो निष्फलत्वात् । पितृलोकं यायादिति । अवस्थान्तरप्राप्तौ यमलोकं यायादिति संभाव्यते । तत्रेति परित्यागेऽधर्मः स्यान्न वेति संशयः ॥ २५ ॥

अपने प्रेमका दीवाना अपनेसे मिलना चाहता है, किन्तु उसके पास कुछ न होनेके कारण छोड़ दिया गया हो, यदि वह अपने लिये तड़फ २ कर मर जाय तो इस परित्यागमें अधर्म होगा वा नहीं यह अधर्मसंशय है ॥ २५ ॥

द्वेषसंशय।

रागस्यापि विवक्षायामभिप्रेतमनुपलभ्य विरागः स्यान्न वेति द्वेषसंशयः । इति शुद्धसंशयाः ॥ २६ ॥

रागकी भी कहनेकी इच्छामें चाहकी चीजके विना मिले विराग होगा वा नहीं, यह द्वेषका संशय है । ये शुद्धसंशय पूरे हुए ॥ २६ ॥

रागस्यापि विवक्षायामिति । कामो न भविष्यतीति न विवक्षितं रागेण पीड्यमानत्वात् । अभिप्रेतोऽपि नास्ति यदाश्रयमाश्रित्य स्यादित्याह—अभिप्रेत-मनुपलभ्येति । केवलमेव वर्तमानाया विरागः स्यान्न वेति संशयः । शुद्धसंशया इति । एकस्यैव भावाभावाभ्यां संशय्यमानत्वात् ॥ २६ ॥

रागसे पीडित हो रही है यह नहीं चाहती कि आज विना मिले रहूं पर मनभावना भी नहीं है जिसका आसरा लेकर काम शान्त किया जाय, इस तरह तड़फते २ राग विताने और प्यारेके विना मिले विद्वेष होगा वा नहीं यह द्वेषका संदेह है । ये शुद्धसंशय हैं, क्योंकि एक ही वस्तुके विषयमें 'होगा वा नहीं' ये संदेह किये जातेहैं। ये दोनों त्रिवर्गोंके शुद्ध संशय पूरे हुए॥२६॥

संकीर्णनिरूपण ।

नौके सूत्रमें संकीर्णसंशयका स्वरूप दिखाया गया था । अब संकीर्णोंका चारितार्थ्य दिखाये देते हैं कि—

अथ संकीर्णाः ॥ २७ ॥

अब संकीर्णसंशय कहते हैं ॥ २७ ॥

त (अ) थेत्यानन्तर्ये । संकीर्णो (र्णा) निर्दिश्यते (न्ते) । शुद्धानन्तरं हि संकीर्णस्योद्दिष्टत्वात् । इदं वा स्यादिदं वेति संकीर्ण इति । स च (विरुद्धा) विरुद्धाभ्याम् ॥ २७ ॥

शुद्धसंशय कहनेके बाद संकीर्णसंशय कहते हैं, क्योंकि शुद्धके बाद ही संकीर्णको कहनेका नंबर आता है । संकीर्णका स्वरूप—शुद्ध संशय तो एक ही वस्तुके विषयमें होता है पर संकीर्ण संशयके तो दो विषय रहते हैं, उसके संदेहका स्वरूप भी दो चीजोंको लेकर होता है—'या तो यह हो जायगा वा यह हो जायगा' वे दोनों पदार्थ भी परस्परमें जुदे ही रहते हैं ॥ २७ ॥

विरुद्ध संकीर्ण ।

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

विरुद्ध और अविरुद्ध ये दो तरहके संकीर्ण होते हैं । इन दोनोंमें सबसे पहिले विरुद्ध संकीर्णोंको बताते हैं—

अर्थ और अनर्थोंकी संकीर्णता ।

आगन्तोरविदितशीलस्य वल्लभसंश्रयस्य प्रभविष्णोर्वा समुपस्थितस्याराधनमर्थोऽनर्थ इति संशयः ॥ २८ ॥

कहींसे आये हुए, जिसके कि स्वभावका परिचय न हो, अपने प्यारेके आश्रित व्यक्तिके, अथवा प्रभावशाली व्यक्तिके उपस्थित होनेपर उसका आराधन अर्थकर है वा अनर्थकर है यह शंका होना ॥ २८ ॥

आगन्तोरिति कुतश्चिदागतस्य गमनेऽविदितशीलत्वादर्थोऽनर्थो वेति संशयः । अप्रत्ययस्य वा अतिथितया समुपस्थितत्वादर्थः । वल्लभसंश्रयात्प्रभविष्णुत्वाद्वानर्थ इति कारणद्वयस्य विधानात्संशयः ॥ २८ ॥

कहींसे आया हुआ है, पहिले कभी देखा नहीं, इस कारण उसके स्वभावका परिचय भी कहांसे होगा ? तब ऐसे व्यक्तिसे मिलनेमें कुछ मिलेगा वा नहीं यह संदेह होना स्वाभाविक है, क्योंकि उससे अतिथिके रूपमें उपस्थित होनेके कारण विश्वास होता ही है कि अर्थ मिलेगा एवम् वल्लभके आश्रित और प्रभावशाली व्यक्ति होनेके कारण अनर्थकी शंका भी होती है । इस तरह एक कारण अर्थ होनेका तथा दूसरा कारण अनर्थ होनेका दीखता है । एक पक्षमें अर्थ तथा दूसरे पक्षमें अनर्थकी शका होनेके कारण संकीर्ण संशय है ॥ २८ ॥

धर्माधर्मका संकीर्ण संदेह ।

श्रोत्रियस्य ब्रह्मचारिणो दीक्षितस्य व्रतिनो लिङ्गिनो वा मां दृष्ट्वा जातरागस्य मुमूर्षोर्मित्रवाक्यादानृशंस्याच्च गमनं धर्मोऽधर्म इति संशयः ॥ २९ ॥

नायिकाका अपनेको देखकर अनुरागित हुए श्रोत्रिय, ब्रह्मचारी, दीक्षित, व्रती, साधु, संन्यासी अथवा मौतकी घड़ी गिननेवाले पुरुषके साथ, मित्रोंके वाक्यसे अथवा अपनी दयालुतासे मिलनेमें धर्म होगा वा अधर्म यह संदेह है ॥ २९ ॥

श्रोत्रियस्येति गृहस्थस्यापि क्रियावतः । ब्रह्मचारिण इति प्रथमाश्रमस्य । व्रतिन इति कियन्तं कालं गृहीतपराकादिव्रतस्य । लिङ्गिन इति भौतादेः । मुमूर्षोरिति मर्तुमिच्छोः । कामस्यावस्थान्तरप्राप्तत्वात् । मित्त्रवाक्यादिति । श्रोत्रियादीनां मित्त्रस्याभ्यर्थनावचनात् । आनृशंस्याच्च करुणायाः । अभिगमने धर्मोऽधर्म इति मा भूत्प्राणत्याग इति धर्मनियमभ्रंशः दूष्य इत्यधर्मः । तदुभयमपि कस्मान्न भवतीति चेत्, न । अन्यतरस्य बलीयस उत्पादनात् ॥ २९ ॥

क्रियाशाली कर्मकाण्डी, वेदपाठी गृहस्थ, श्रोत्रिय कहाता है। पहिले आश्रमका विद्याभ्यासी व्यक्ति ब्रह्मचारी कहाता है । जिसने कुछ समयतक पराक आदि व्रत किये हों वह व्रती कहाता है । जो रंगे कपड़े पहिने वा विभूति आदि लगाये वह लिङ्गी कहाता है । ये व्यक्ति और अपना वह

दीवाना जो अपने लिये विना मिले मौतका आलिंगन कर रहा हो। यदि इनके मित्र अपनेसे आकर कहें कि तेरे लिये उनकी यह दशा है तथा उनपर अपनेको भी दया आये। इस तरह उनके साथ मिलनेमें उनके धर्मोंके नियमोंको भंग करनेका दोष होना अधर्म है, इसका प्राण न जाय इस कारण मिल लूं यह धर्म है। इस तरह इसमें धर्मके कारणोंसे धर्मका सन्देह एवम् अधर्मोंके कारणोंसे अधर्मका संदेह होता है। यदि यह कहो कि दोनों ही क्यों नहीं होते? तो नहीं कह सकते, क्योंकि इन दोनोंसे बलवान् एककी ही उत्पत्ति होगी ॥ २९ ॥

काम व द्वेषका संकीर्ण संशय।

लोकादेवाकृतप्रत्ययादगुणो गुणवान्वेत्यनवेक्ष्य गमनं कामो द्वेष इति संशयः ॥ ३० ॥

'यह गुणी है वा निर्गुण है' इस बातका विना विचार किये विना विश्वास किये लोकसे ही गमन करनेमें काम होगा वा द्वेष होगा यह संदेह होता है ३०

अकृतप्रत्ययादिति अकृतनिश्चयाल्लोकात्। किमयं गुणवान्न वेति स्वयमनवेक्ष्यानिश्चित्य केवलं लोकप्रवादाद्गुणवानित्यभिगमनादभिसरणे किल (मतः) कामो द्वेषो वेति विरुद्धसंकीर्णास्त्रयः ॥ ३० ॥

यह गुणी है वा निर्गुण है इस विषयपर अपना कोई निश्चय न हो, किन्तु दुनियाँके इस कहनेपर कि 'यह गुणवान् है' उससे मिला जाय। इसमें यह संदेह होता है कि काम होगा वा द्वेष हो जायगा, इन दोनोंका संशय है। इस तरह विरुद्धोंका संकीर्ण संशय तीन तरहका होता है ॥ ३० ॥

इन्हें देखनेकी रीति।

संकिरेच्च परस्परेणेति संकीर्णसंशयाः ॥ ३१ ॥

जो आपसमें मिलनेसे हो वह संकीर्ण है। ये संकीर्ण संशय पूरे हुए ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार दोनोंके संकीर्ण संशय होते हैं उसी तरह अधिकोंके भी संकीर्ण इसी रीतिसे बनाये जा सकते हैं ऊपर तो दिग्दर्शनमात्र ही है ॥ ३१ ॥

श्वेतकेतुके उभयतो योग।

अविरुद्धमधिकृत्याह—

विरुद्ध संकीर्ण संशयोंको कहकर अब उन संकीर्णोंको बताते हैं जो कि आपसमें विरुद्ध नहीं हैं। ये उभयतोयोगोंमें आते हैं, इस कारण उभयतो-

योग ही दिखाये देते हैं । इनमें भी श्वेतकेतु पहिले तथा बाभ्रव्य पीछे हैं, इस कारण सबसे पहिले श्वेतकेतुके मत दिखाते हैं कि—

दोनों ओरसे अर्थयोग ।

यत्र परस्याभिगमनेऽर्थः सक्ताच्च संघर्षतः स उभयतोऽर्थः ॥ ३२ ॥

दूसरेके जिस मिलनेमें उससे अर्थ एवम् आसक्तसे संघर्षसे धन मिले तो यह दोनों ओरसे अर्थ है ॥ ३२ ॥

यत्रेति यस्मिन्नुभयतो लोयोके (योगे) । परस्येत्यपूर्वस्य । उत्तरत्राप्यधिकृतं वेदितव्यम् । अभिगमनेऽर्थः परस्मादेव । सक्ताच्चेत्यनुरक्तात् । अभिगमने । संघर्षत इति स्पर्धमानादर्थः।स मा भूदनेनास्याः संप्रयोग इति स्पर्धया ददाति । स उभयतोयोग उभयतोऽर्थो नाम । अन्यत्र यस्मिन् क्रियमाणे कार्यस्योत्पत्तिरुभयतो योग इति भूतसूत्रार्थो योज्यः ॥ ३२ ॥

जिस दोनों ओरके योगमें अपूर्वव्यक्तिके मिलनेमें उसीसे धन मिले एवम् अनुरक्त व्यक्ति इस संघर्षसे धन दे कि यह उससे न मिल सके तो यह दोनों ओरसे धनका योग है । इसका लक्षण इसी अध्यायके १० वें सूत्रमें कर चुके हैं, कि एक कार्य्यके करनेपर दो कार्य्य हो जायँ तो वह 'उभयतोयोग' है । उसकी योजना यहां पर भी कर लेनी चाहिये । इस सूत्रसे 'अपूर्वव्यक्तिके मिलने' इसकी अनुवृत्ति सब सूत्रोंमें चली जायगी ॥ ३२ ॥

दोनों ओरसे अनर्थ ।

यत्र स्वेन व्ययेन निष्फलमभिगमनं सक्ताच्चामर्षिताद्वित्तप्रत्यादानं स उभयतोऽनर्थः ॥ ३३ ॥

जिसमें अपने खर्चसे निष्फल मिलन हो और नाराज हुए आसक्तसे उसके दिये धनके छिड़ जानेका भय हो वह दोनों ओरसे ही अनर्थका योग है ३३॥

यस्मिन्नुभयतोयोगे स्वेन व्ययेनाभिगमनम् । परस्येति वर्तते । निष्फलमित्यर्थः । सक्ताच्चानुरक्तादभिगमनम् । विभक्तिविपरिणामेन योज्यम् । अमर्षितादिति कदाचिदर्थयुक्तात् क्रुद्धात् । वित्तप्रत्यादानमिति तेनैव दत्तं प्रतीपमादीयमानम् । अनर्थः अन्ते निष्क्रमणात् । स उभयतोयोग उभयतोऽनर्थोनाम । उभयतोगम्यस्य भिन्नविषयत्वात् । निरनुबन्धपक्षेऽन्तर्भावः ॥ ३३ ॥

—

पूर्वसूत्रसे ' परस्य ' की अनुवृत्ति आती है जिसका अर्थ ' किसी अपूर्व-व्यक्तिसे ' यह किया गया है यानी जिस दोनों ओरके योगमें किसी अपूर्व-व्यक्तिसे अपने खर्चसे निष्फल मिला जाय एवम् क्रुद्ध हुआ आशिक भी कभी अपने दिये धन छीन ले, यह दशा पुराने आसक्तके अभिगमनमें हो इस तरह यह हाथ आया धन भी अन्तमें चला जाय तो अनर्थ ही हो गया। इस तरह यह दोनों ओरसे होनेवाला अनर्थ है। ' अभिगमनम् ' के स्थानमें ' अभिगमने ' करके ' अभिगमनमें ' यह अर्थ किया है। दोनों ओरसे गम्यका विषय भिन्न है, यानी एकसे निष्फल गमन तथा दूसरेसे छिनाया जाना है इसी कारण इसका निरनुबन्ध पक्षके भीतर अन्तर्भाव होजाता है ३३॥

दोनों ओरसे अर्थ संशय।

संशयोऽत्रास्त्येवेत्याह—

यहां संशय तो है ही इस कारण कहते हैं कि—

यत्राभिगमनेऽर्थो भविष्यति न वेत्याशङ्का सक्तोऽपि संघर्षाद्दास्यति न वेति स उभयतोऽर्थसंशयः ॥ ३४ ॥

जिस मिलनेमें अर्थ होगा वा नहीं यह आशंका हो, सक्त भी संघर्षसे देगा वा नहीं यह भी संदेह हो तो यह दोनों ओरसे अर्थका संदेह है ॥३४॥

यत्रेति यस्मिन्नुभयतोयोगे। अभिगमन इति परस्य। भविष्यति न वेत्याशङ्का न निश्चयः। सक्तश्चाभिगमने संघर्षात्स्पर्धया दास्यति न वेति स उभयतोऽर्थसंशयो नाम ॥ ३४ ॥

जिस उभयतोयोगमें दूसरे अपूर्वके मिलनेमें यह आशङ्का हो कि—अर्थ होगा वा नहीं; पर निश्चय न हो कि होगा या नहीं ही होगा एवम् मिलनेपर आसक्त पुरुष भी उसकी ईर्ष्यासे देगा वा नहीं यह संशय हो तो यह दोनों ओरसे अर्थ संदेह है ॥ ३४ ॥

दोनों ओरसे अनर्थ संदेह।

यत्राभिगमने व्ययवति पूर्वो विरुद्धः क्रोधादपकारं करिष्यति न वेति सक्तो वामर्षितो दत्तं प्रत्यादास्यति न वेति स उभयतोऽनर्थसंशयः। इत्यौद्दालकेरुभयतोयोगाः ॥ ३५ ॥

पासका खर्च करके तो मिलना पड़े, इससे पहिला मिलनेवाला क्रोधसे अपकार कर देगा वा नहीं ? यह संदेह हो एवम् आसक्त भी नाराज होकर

दियेको वापिस ले लेगा वा नहीं यह दोनों ओरसे अनर्थका सन्देह हो तो 'उभयतोऽनर्थसंदेह' है ॥ ३५ ॥

यत्रेति यस्मिन्नुभयतोयोगे । व्ययवतीति व्ययं कृत्वापि परस्याभिगमनम् । पूर्व इति पूर्वसंसृष्टः । विरुद्धः परस्यैव । क्रोधादिति । स्वेन व्ययेनाभिगमनमनया क्रियत इति तद्द्वारेण क्रोधान्ममापकारं करिष्यति न वेति संशयः । सक्तश्च प्राक्कयाचिदर्थयुक्त्यामर्षितो मम (नो) दत्तं प्रत्यादास्यति न वेति संशयः, स उभयतोयोगोऽनर्थसंशयो नाम ॥ ३९ ॥

जिस उभयतोयोगमें खर्च करके भी किसी अपूर्व व्यक्तिसे मिलन हो और अपना पाहिलेका मिलनेवाला उस अपूर्वका विरोधी हो, वह इस बातपर नाराज होकर मेरा बुरा न कर बैठे कि-'यह अपने खर्चसे भी उससे मिली' यह संदेह हो एवं इस बखेड़ेसे मेरा दीवाना भी किसी अर्थ युक्तिसे मुझे जो दे चुका है उसे क्रुद्ध हुआ वापिस ले लेगा क्या ? यह संदेह हो तो यह उभयतो-अनर्थसंशयका योग है ॥ ३५ ॥

बाभ्रवीयोंके उभयतोयोग ।

बाभ्रवीयास्तु—॥ ३६ ॥

बाभ्रवीय तो इनको जिस तरह कहते हैं वह सुनाते हैं ॥ ३६ ॥

बाभ्रवीयास्त्विति । उभयतोयोगा वक्ष्यन्त इति शेषः ॥ ३६ ॥

श्वेतकेतुके मतके उभयतोयोग कहकर अब बाभ्रव्यके शिष्य जिस तरह उभयतोयोगोंको कहते हैं उनको सुनाते हैं ॥ ३६ ॥

उभयतोऽर्थयोग ।

यत्राभिगमनेऽर्थोऽनभिगमने च सक्तादर्थः स उभयतोऽर्थः ॥

जिस उभयतोयोगमें अपने पुराने दीवानेसे विना मिले दूसरेसे मिलकर लाभ उठा लिया जाय; फिर अपने दीवानेको राजी करके उससे भी लाभ लिया जाय तो यह दोनों ओरसे अर्थयोग है ॥ ३७ ॥

यत्रेत्युभयतोयोगे । अनभिगमने च सक्तादिति अनभिगतात्सक्तादित्यर्थः । यः सक्तो वशी सोऽनभिगत एव दास्यति यथोक्तं प्राक्—' सक्तं तु वशिनं नारी संभाष्यान्यत्र वा व्रजेत् ' इति । पूर्वस्मिन्दर्शनेऽन्यतराभिगमनेऽन्यतरस्मा-दर्थः । इयं (इह) त्वेकत्वा (ला) भिगमने उभयस्मादर्थः । ततश्च स एवात्र मूलसूत्रार्थः ॥ ३७ ॥

जब कभी ऐसा अवसर उपस्थित हो कि अपने ऊपर आसक्त हुआ पुराना मिलनेवाला या अन्य ऐसा ही व्यक्ति अपनेसे मिलनेके लिये तयार बैठा हो और दूसरा व्यक्ति ऐसा आ उपस्थित हुआ हो कि जिसके जानेका अंदेशा हो तो उस आसक्तसे विना ही मिले दूसरेसे मिलकर लाभ उठा ले, फिर अपने दीवानेको प्रसन्न करके उससे भी लाभ ले ले। यदि उस मौकेपर आसक्तकी तरफ देखेगी तो जो दूसरा आया है वह हाथसे निकल जायगा, इस कारण उसका लाभ न ले सकेगी। यदि आसक्त निश्चत फीस देकर पहिले ही मिल लेगा और आगन्तुक चला जायगा तो उसे वही लाभ होगा फिर भी जब मिला तबहीकी फीस देगा पीछे कुछ और थोड़ा ही दे देगा। वेश्या आसक्तको विना मिला छोड़ दूसरेके यहां कैसे जा सकती है? इस शंकाको लेकर चौथे अध्यायके ४२ वें सूत्रकी याद दिलाते हैं कि—"वशी आसक्तसे पूछकर दूसरेके पास जा सकती है कि—'आप जरा ठहर जायँ! मैं पहिले इससे मिल लूं नहीं तो यह दूसरी जगह चला जायगा' इस तरह पूछकर चली जाय।" पीछे फिर आसक्तको ही राजी करे। पहिलेसे अन्तर तो इतना है कि वहां तो केवल दोनोंमेंसे किसी एकसे ही मिलकर उसीसे लाभ उठाया जाता है पर यहां यह बात है कि युक्तिके साथ आगन्तुक या अस्थिरका लाभ उस एकसे पहिले मिलकर उठा लिया जाता है फिर आसक्तसे भी लाभ ले लिया जाता है। इस तरह दोनोंसे लाभ लिया जाता है यह इसमें विशेषता है। इसी कारण इसे कामसूत्रकारने रखा है, जो ऊपर अर्थ किया है वही मूलसूत्रका अर्थ है। जो इस प्रकार अर्थ करे कि 'जिस उभयतोयोगमें परके अभिगमनमें परसे अर्थ तथा उससे न मिला जाय तो आसक्तसे लाभ लिया जाय यह उभयतोयोग है' ऐसा अर्थ करना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा तो पूर्वदर्शनके ही इस उभयतोयोगका अर्थ है; फिर इस बाभ्रव्यके मतमें विशेषता ही क्या रह जायगी; जिसके कि लिये कामसूत्रकारने 'बाभ्रवीय तो' यह 'तो' को पूर्वदर्शनसे भेद दिखानेके कहा है। पूर्वके मतसे इसमें कुछ विभिन्नता है, इसी कारण तो उपादान किया है; नहीं तो इन योगोंके फिर दिखानेकी आवश्यकता ही नहीं थी ॥ ३७ ॥

उभयतोऽनर्थ ।

यत्राभिगमने निष्फलो व्ययोऽनभिगमने च निष्प्रतीकारोऽनर्थः स उभयतोऽनर्थः ॥ ३८ ॥

जिस मिलनेमें निष्फल खर्च हो एवम् विना मिले न टलनेवाली आपत्ति आये तथा मिलनेपर विना मिला आसक्त नाराज होकर अनर्थ करे तो यह दोनों ओरसे अनर्थ है ॥ ३८ ॥

यत्रेत्युभयतोयोगे । अभिगमन इति परस्य । निष्फलो व्यय इति अनर्थः । अनभिगमने वा (च) सक्तादित्यनुवर्तते । यः पराभिगमनेन सक्तो जातामर्ष-स्तस्मान्निष्प्रतीकारोऽनर्थो यद्वित्तप्रत्यादानं स उभयतोऽनर्थो नाम ॥ ३८ ॥

जिस उभयतोयोगमें किसी अपूर्व व्यक्तिके साथ मिलनेमें निष्फल खर्च हो यह अनर्थ ही हुआ एवम् उससे विना मिले वह अनर्थ पटके तो यह भी अनर्थ ही समझिये यह दोनों बातोंमें अनर्थ हुआ। यदि[1] इसके भयसे मिला भी जाय तो अपना आसक्त कुपित होकर जो धन दिया हो उसे इस प्रकार छिना ले जिसका कि प्रतीकार ही न हो सके। यह दोनों ओरसे अनर्थ ही अनर्थ है ॥ ३८ ॥

दोनों ओरसे अर्थसंदेह ।

यत्राभिगमने निर्व्ययो दास्यति न वेति संशयोऽनभि-गमने सक्तो दास्यति न वेति स उभयतोऽर्थसंशयः ॥३९॥

जिसके मिलनेमें कुछ खर्च नहीं पर देगा वा नहीं यह संदेह बना हो, विना मिले सक्त देगा वा नहीं यह संदेह हो तो यह दोनों ओरसे अर्थसंदेह है ३९

यत्रेत्युभयतोयोगे । अभिगमने परस्य । निर्व्यय इति विना व्ययः । अनभि-गमने सक्त इति विनाभिगमनं दास्यति न वेति । तस्य वशित्वं न निश्चितं स चोभयतोऽर्थसंशय इति नाम ॥ ३९ ॥

जिस उभयतोयोगमें किसी अपूर्व व्यक्तिके मिलनेपर खर्च तो कुछ न हो पर देगा वा नहीं यह संदेह हो, विना मिले अपना आसक्त देगा वा नहीं यह संदेह हो, क्योंकि वह अपने वशमें है इसका तो कोई निश्चय किया हुआ है

---

१ यहांसे पूर्वतक तो सूत्रार्थ है पूर्वसे ‘ उभयतोऽनर्थ ’ से इसमें यह विशेषता है कि ‘वहां दोओंसे अनर्थ तथा यहां एकसे ही दोनों पहलुओंमें अनर्थ है । बाकी जो ‘ यदि ’ से लेकर आसक्तका विषय दिखाया गया है वह पूर्व दर्शनके इसी योगकी छायाका मिश्रण कर दिया है । ‘ जिस ’ से लेकर ‘ आपत्ति आये ’ यहांतक सूत्रका अर्थ है एवं बाकी हमने टीकाके अनुरोधसे सूत्रार्थमें सामिल किया है ।

नहीं तो यह दोनों ओरसे अर्थसंशय है । पूर्वके अर्थसंशयसे इसमें इतनी विशेषता है कि यहां संघर्षका निवेश नहीं है ॥ ३९ ॥

उभयतोऽनर्थ संदेह ।

यत्राभिगमने व्ययवति पूर्वो विरुद्धः प्रभाववान् प्राप्स्यते न वेति संशयोऽनभिगमने च क्रोधादनर्थं करिष्यति न वेति स उभयतोऽनर्थसंशयः ॥ ४० ॥

अपने पाससे खर्च करके किये गये जिस मिलनेमें यह संदेह हो, कि इसका शत्रु जो मेरा पहिला प्रभावशाली मिलनेवाला है वह अब मिलेगा वा नहीं एवम् विना मिले यह संदेह हो, कि क्रोधसे अनर्थ करेगा वा नहीं तो यह दोनों ओरसे अनर्थसंदेह है ॥ ४० ॥

यत्रेत्युभयतोयोगे । अभिगमने परस्य । पूर्वो विरुद्धः प्राप्स्यते मया तद्द्वारेणा-यमपकरिष्यति न वेति संशयः । अनभिगमने च सक्त इति वर्तते । क्रोधादनर्थं करिष्यति न वेति संशयः । पराभिगमने तदीयामर्षस्यानिश्चितत्वात् । उभय-तोऽनर्थसंशयो नाम । एते चत्वार उभयतोयोगा दर्शनद्वयेऽपि शुद्धा उक्ताः॥४०

जिस उभयतोयोगमें किसी अपूर्वके साथके मिलनेमें अपना पहिला प्रभाव-शाली वह मिलनेवाला जो कि उस अपूर्वका दुश्मन है, वह विरुद्ध हो जायगा एवम् इसके द्वारा यह अपूर्वका अपकार करेगा वा नहीं यह संदेह हो। विना मिले चले जानेपर वशी आसक्त क्रोधसे अनर्थ करेगा वा नहीं यह संदेह हो, क्योंकि दूसरेसे मिलनेमें वह नाराज न होगा इस बातका तो कोई निश्चय है ही नहीं अतः यह उभयतो अनर्थयोग है । ये चार उभयतोयोग बाभ्रवीय और श्वेतकेतु इन दोनोंने अपने अपने ग्रन्थोंमें कहे हैं ॥ ४० ॥

संकीर्ण उभयतोयोग ।

संकीर्णानाह—

दोनों दर्शनोंके शुद्ध उभयतोयोगोंको कहकर अब दोनोंके संकीर्ण उभयतो-योगोंको कहते हैं कि—

---

१ दोनों ही दर्शनोंमें 'तद्द्वारेण' यह पद आया है । इसका 'उसके द्वारा' यह अर्थ होता है । पहिलेमें 'क्रोधात्' यह पद विशेषणरूपसे लगा हुआ है । इससे वह नहीं है पर दोनोंमें एक ही बात है । अन्तर केवल इतना ही है कि एक पक्षमें क्रोधीके हाथसे उस अपूर्वके द्वारा अनर्थ होनेकी शंका है तथा यहां उस अपूर्वके हाथसे क्रोधी द्वारा अनर्थ होनेकी शंका है ।

एतेषामेव व्यतिकरेऽन्यतोऽर्थोऽन्यतोऽनर्थः, अन्यतोऽर्थोऽन्यतोऽर्थसंशयः, अन्यतोऽर्थोऽन्यतोऽनर्थसंशय इति षट्संकीर्णयोगाः ॥ ४१ ॥

इनके ही विजातीययोगमें दोनों दर्शनोंके एकके छः संकीर्णयोग बनते हैं। वे एकसे अर्थ एकसे अनर्थ, एकसे अर्थ एकसे अर्थसंशय तथा एकसे अर्थ एकसे अनर्थसंशय ये तीन श्वेतकेतुके दर्शनके तथा तीन ही बाभ्रवीयके दर्शनके हैं, दोनों मिलकर छः हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

एतेषामेव व्यतिकर इति । सजातीयं त्यक्त्वा शेषाणां परस्परसंकीर्णे (र्णत्वे) षट्संकीर्णयोगाः । यदाह—अन्यत इति । यत्र परस्याभिगमने एकतो योऽर्थः । सक्ताच्चामर्षिताद्वित्तप्रत्यादानमित्यन्यतोऽनर्थो य उभयतोयोगोऽर्थानर्थरूपः । अन्यतोऽर्थ इति पूर्ववत् । सक्तः संघर्षाद्दास्यति न वेत्यन्यतोऽर्थसंशयः । अयमर्थार्थसंशयरूपः । यत्र परस्य स्वेन व्ययेन निष्फलमभिगमनमित्यन्यतोऽनर्थसंशयः । अन्यतोऽर्थः इति पूर्ववत् । सक्तोऽमार्षितो दत्तं प्रत्यादास्यति नवेत्यन्यतोऽनर्थसंशयरूपः । अयमर्थानर्थसंशयरूपः । एवं बाभ्रव्यदर्शनेऽपि योज्यम् ॥

ये संकीर्ण उभयतोयोग उस समय बनेंगे जब कि—सजातीयको छोड़कर विजातीयोंके साथ संयोग होगा। इसी रीतिसे परस्परमें मिलानेसे छः संकीर्ण योग हो जाते हैं। उनको यहीं दिखाते हैं–जहां किसीके मिलनेमें लाभ हो तथा नाराज हुआ आसक्त दिये हुए धनको वापिस ले ले तो यह एकसे लाभ तथा दूसरेसे नुकसान होनेके कारण ऐसा संयोग अर्थानर्थरूप उभयतोयोग है। (२) पहिलेकी तरह एकसे अर्थलाभ हो तथा आसक्त संघर्षसे देगा वा नहीं यह संदेह हो तो अर्थप्राप्ति और अर्थसंदेह रूप उभयतायोग है। जहां दूसरेके साथ अपने खर्चसे निष्फल अभिगमन हो यह दूसरेसे अनर्थका संदेह है (३) पहिलेकी तरह परसे अर्थ लाभ हो एवम्, आसक्त नाराज होकर वापिस ले लेगा वा नहीं यह संदेह हो तो यह अर्थप्राप्ति और अनर्थके संदेहका उभयतोयोग है। जिस तरह ये तीन श्वेतकेतुके संकीर्ण उभयतोयोग हैं इसी तरह बाभ्रव्यके संकीर्ण उभयतोयोग है ॥ ४१ ॥

---

१ दोका योग 'उभयतोयोग' तथा दो विजातियोंका योग 'संकीर्ण उभयतोयोग' है। फिर यह कोष्ठकान्तर्गत पाठ अधिक प्रतीत होता है।

२ इनके योगोंका उदाहरण देते हैं कि-(१) किसी अपूर्वके मिलनेमें अर्थ लाभ-तथा विना मिले वा विना मिले सकसे निष्प्रतीकार अर्थ प्राप्त हो (२) अपूर्वके मिलनेमें लाभ–

इन विचारोंका प्रयोजन।

तेषु सहायैः सह विमृश्य यतोऽर्थभूयिष्ठोऽर्थसंशयो गुरुरनर्थप्रशमो वा ततः प्रवर्तेत ॥ ४२ ॥

इनमें सहायकोंके साथ विचार करके जिससे अधिक अर्थवाला अर्थसंशय हो अथवा जिसमें बड़े भारी अनर्थकी शान्ति हो तो उसमें ही लक्ष्य देकर प्रवृत्त हो ॥ ४२ ॥

तेष्विति दर्शनद्वयेऽपि शुद्धेषु संकीर्णेषु च । सहायैः पूर्वोक्तैः । यत इति यं गम्यमाश्रित्य । अर्थभूयिष्ठ इत्यर्थबहुलो योऽर्थसंशयो नेतरः । गुरुरनर्थप्रशमो वा । अर्थाद्धि महतोऽनर्थस्य प्रतिकार्यस्य गुरुत्वात् । तत इति तं लक्ष्यीकृत प्रवर्तेत ॥

बाभ्रव्य और श्वेतकेतुके बताये हुए दोनों दर्शनोंके शुद्ध और संकीर्णोंमें पहिले बताये हुए सहायकोंके साथ विचारकर जिस गम्य पुरुषके मिलनेमें अधिक लाभवाला अर्थसंदेह हो, अल्पलाभ व अधिक हानिवाला अर्थसंदेह न हो अथवा थोड़े लाभकी अपेक्षा अनर्थ निवारण अधिक गुरु हो तो उसका लक्ष्य लेकर उसमें प्रवृत्त हो जाय ॥ ४२ ॥

अवशिष्टोंके शुद्ध संकीर्ण और व्यतिषक्त ।

अबतक जिसके शुद्ध और संकीर्ण और दिखा चुके हैं उसे छोड़ बाकीसे पुरुषार्थोंके शुद्ध तथा संकीर्ण उभयतोयोग बताते हैं तथा सबके व्यतिषक्त बतानेके लिये सूत्र करते हैं कि—

एवं धर्मकामावप्यनयैव युक्त्योदाहरेत् । संकिरेच्च परस्परेण व्यतिषञ्जयेच्चेत्युभयतोयोगाः ॥ ४३ ॥

जिस युक्तिसे अर्थके शुद्ध उभयतोयोग बताये हैं, उसी युक्तिसे धर्म और कामके भी शुद्ध उभयतोयोग बना ले एवं जिस प्रकार अर्थके संकीर्ण बनाये हैं उसी तरह परस्परमें संकीर्ण बना ले एवम् परस्परसें सबको व्यतिषक्त भी कर दे ॥ ४३ ॥

अनयैवेत्युक्तयुक्त्या उदाहरेत् तत्र परस्य द्विजत्वादभिगमने धर्मः सक्ताच्चानुरागान्मुमूर्षोः स उभयतो धर्मः । यत्र ब्रह्मचारिणोऽभिगमनेऽधर्मः सक्ताच्च व्रतस्थादनिच्छतः स उभयतोऽधर्मः । यत्र परस्य निर्द्रव्येऽभिगमने धर्मः (अनभीत्याशङ्क्याह) सक्ताच्च निष्पादितार्थत्वादप्रयच्छतो धर्मो न वेति स उभयतो

—तथा सक्त देगा वा नहीं यह संदेह हो । (३) किसी अपूर्वसे लाभ तथा अनभिगमन व अनभिगत सक्तसे क्रोधमें अनर्थ होनेका डर हो ।

धर्मसंशयः । यत्र परस्य लिङ्गिनो भिन्नव्रतगमनेनाधर्मो (ऽर्थो) न वेति संशयः, सक्ताच्च व्रतस्थाद्दित्सतोऽधर्मो न वेति स उभयतोऽधर्मसंशय इति । यत्र परस्याभिप्रेतस्याभिगमने कामः सक्ताचाभिप्रेतात्स उभयतः कामः । यत्र परस्यानभिप्रेतस्य विरागः सक्ताचानभिप्रेतात्स उभयतो द्वेषः । यत्र परस्याविदितशीलस्य गमने कामो भविष्यति न वेत्याशङ्का सक्ताच निकृष्टत्वात्कामो न वेति स उभयतः कामसंशयः । यत्र परस्याभिगमने रागापनयनविवक्षायां विरागः स्यान्न वेति संशयः सक्ताच तथैव विरागः स्यान्न वेति स उभयतो द्वेषसंशयः । इत्यौद्दालकेः शुद्धा उभयतोयोगाः ।

अर्थके तो कह दिये अब धर्म और कामके श्वेतकेतुके शुद्ध उभयतोयोग बताये देते हैं, इनकी भी पूर्वकी ही युक्ति है। धर्मके शुद्ध उभयतोयोग—(१) जिस अपूर्व व्यक्तिसे मिलना है वह ब्राह्मण है इस कारण उससे मिलनेमें कामसत्र होनेमें धर्म है । दूसरा सक्त हो पर अनुरक्त और अपनी चाहमें मरनेवाला हो तो उस मिलनेमें भी धर्म है अतः यह दोनों ओरसे धर्म है कुछ भी करे । (२) ब्रह्मचारीके साथ मिलनेमें अधर्म है एवम् अनिच्छु व्रतस्थ पुरुषके मिलनेमें भी अधर्म है अतः यह दोनों ओरसे अधर्म है । (३) जहां दूसरेके विना धनके मिलनेमें धम है वा नहीं, जिससे धन खींचा जा चुका है ऐसे न देनेवाले धनीसे मिलनेमें धर्म है वा नहीं; यह संशय हो तो यह उभयतो धर्मसंशय है । (४) जहां दूसरे लिंगीके साथ व्रत तुड़ानेवाले गमनमें अधर्म है वा नहीं यह संदेह हो तथा देनेकी इच्छावाले व्रती सक्तसे मिलनेमें अधर्म है वा नहीं यह भी सन्देह हो तो यह उभयतोऽधर्मसंशय है । कामके शुद्ध उभयतोयोग—(१) जहां चाहे हुए दूसरेसे मिलनेमें काम हो और चाहे हुए सक्तसे भी हो यह उभयतः काम है । (२) जहां विना चाहे परसे वैराग्य हो एवम् वही विना चाहे सक्तसे भी हो जाय तो यह उभयतो द्वेष है । (३) जहां जिसके शीलका पता नहीं ऐसे दूसरे पुरुषके साथ मिलनेमें कामके होने या न होनेकी शंका हो एवम् आसक्तके निकृष्ट होनेके कारण उससे भी काम संशय है कि होगा वा नहीं यह संदेह हो तो यह दोनों ओरसे कामसंशय है (४) जहां किसी अपूर्वव्यक्तिके साथ मिलनेमें रागके दूर करनेकी कहनेकी इच्छामें विराग होगा वा नहीं यह सन्देह हो तथा आसक्तसे भी ऐसी ही परिस्थितिमें यही सन्देह हो तो यह दोनों ओरसे द्वेषका संशय है । ये श्वेतकेतुके धर्म कामके शुद्ध उभयतोयोग पूरे हुए हैं ।

बाभ्रवीयोंके यहां भी ।

तथैव गमनागमनाभ्यां बाभ्रवीयेषूदाहरेत् संकिरेच ।

जिस प्रकार श्वेतकेतुके नयमें प्राप्ति, अप्राप्ति, प्राप्तिसन्देह और अप्राप्तिसंशय दिखाये हैं, उसी तरह बाभ्रवीयके मतमें धर्म और कामके शुद्ध उभयतोयोगोंके उदाहरण गमन (प्राप्ति) तथा अगमन (अप्राप्ति) प्राप्तिसंदेह और अप्राप्ति संदेहसे दे देने चाहियें तथा श्वेतकेतुकी तरहही संकीर्ण बना लेने चाहियें । यह हम पहिले ही दिखा चुके हैं, कि श्वेतकेतु और बाभ्रव्य इन दोनोंमें इतना ही अन्तर होता है कि पहिलेके यहां दो पहलुओंमें एक तथा दूसरेके यहां दोनों रहते हैं ।(१) किसी अपूर्व ब्राह्मणको कामसत्र देकर पुण्य लेना तथा अपनी फिराकमें मरनेवालेको बचाकर पुण्य लेना । (२) किसी व्रतीका व्रत डिगाना व किसी सतवन्तेका सत डिगाना इन दोनोंमें अधर्म ही है । (३) किसी ब्राह्मणेतर कामीसे मिलनेमें धर्म है वा नहीं, निर्धन दोस्तका संगमें भा धम है वा नहीं यह दोनों ओरसे धर्मसंदेह है । (४) किसी कामी व्रतीके व्रत तुडाने तथा आसक्त सतवन्तेको सतसे गिरानेमें अधर्म है वा नहीं । इसी तरह कामके उदाहरण भी समझना चाहिये ।

धर्म और कामके संकीर्ण उभयतोयोग ।

धर्मकामावप्येतैरेव प्रकारैरेकैकशः संकिरेच परस्परेणेति—सजातीयांस्त्यक्त्वा । तथान्यतो धर्मोऽन्यतोऽधर्म इति धर्मसंशयेनाधर्मसंशयेन संकीर्णस्त्रिविधः । तथान्यतो धर्माधर्माभ्यान्यतो धर्मसंशयो वाऽन्यतोऽधर्मसंशयेन संकीर्णास्त्रयः । इति षट्संकीर्णाः । औद्दालकेः बाभ्रव्यस्य च एवमन्यतः कामोऽन्यतो द्वेषण कामसंशयेन च संकीर्णास्त्रयः षडौद्दालकेर्बाभ्रव्यस्य च (१) ।

जिस प्रकार ४१ वें सूत्रमें दोनोंके मतके अर्थके संकीर्ण उभयतोयोग दिखा दिये हैं उसी तरह धर्मकामोंके भी आपसमें संकीर्ण कर दे सजातीयको छोड़कर । जिस तरह इनके संकीर्ण होते हैं उस रीतिको दिखाते हैं, कि—(१) किसीके मिलनेमें धर्म तथा किसीके मिलनेमें व्रत भंगरूप पाप य दोनों योग आ उपास्थित हों । (२) किसीके मिलनेसे धर्म तथा किसीके

---

१ जहाँ ४१ वें सूत्रमें संकीर्ण उभयतोयोग दिखाये गये हैं वहां सजातीयका त्याग कहा है। इसका जो तात्पर्य वहां है वही यहां भी है अर्थात् अर्थके अर्थ न दिखायेंगे दूसरे दूसरे ही दिखा देंगे जिससे संकीर्ण हो जायँगे, क्योंकि यह स्विजातीययोगमें प्रचलित है ।

मिलनेमें धर्मसंशय इन दोनों बातोंका मौका हो। (३) अन्यसे धर्म तथा अन्यसे अधर्मसंशय हो। इस तरह ये तीन श्वेतकेतुके धर्मके संकीर्ण उभयतोयोग हुए। इसी तरह तीन बाभ्रव्यके भी धर्मके ऐसे ही उभयतोयोग हैं। उन्हें भी यहीं दिखाते हैं-(१) किसी एकके मिलनेमें धर्माधर्म, (२) धर्म व धर्मसंशय, (३) धर्म व अधर्मसंशय, ये तीन होते हैं। ये छः धर्मके संकीर्ण हो गये। इसी तरह श्वेतकेतु और बाभ्रव्य इन दोनोंके तीन २ कामके संकीर्ण उभयतोयोग होनेके कारण दोनों मिलकर छः हो जायँगे। (१) अन्यसे काम, अन्यसे द्वेष, (२) अन्यसे काम, अन्यसे कामसंशय, (३) अन्यसे काम, अन्यसे द्वेषसंशय, ये तीन एकके तथा ऐसे ही तीन बाभ्रव्यके होकर ये छः दोनोंके हो जायँगे ॥

इनमें भी परामर्श ।

इहापि सहायैर्विमृश्य यतो धर्मभूयिष्ठस्तत्संशयो गुरुर्धर्मद्वेषप्रशमश्च ततः प्रवर्तेत न तु यतो धर्मो द्वेषतः संशयश्चेति योज्यम् ।

इन दोनों बातोंमें भी अपने सहायकोंके साथ विचार करे, जिसके करनेमें धर्म अधिक हो अथवा ऐसा संदिग्ध हो कि जिसमें अधर्म (लेश) थोड़ा व धर्म अधिक दीखे उसे करे। कामके विषयमें भी यही बात हो यह न हो कि धर्म व कामके उपादानमें धर्म, काम थोड़े और अधर्म और द्वेष अधिक हों व धर्मकामके वे संदेह जिनमें अधर्म व द्वेष अधिक हों उनमें ही प्रवृत्ति करे, इस प्रकारकी सूत्रार्थयोजना होनी चाहिये ।

व्यतिषक्त उभयतोयोग ।

व्यतिषञ्जयेच्चेति। अर्थादीनां विरुद्धत्वं त्यक्त्वा शेषान्परस्परतः संश्लेषयेदित्यर्थः। तत्रान्यतो अर्थः अन्यतो धर्माधर्मकामद्वेषैस्तत्संशयैश्च संयोजितोऽष्टप्रकारः। तथानर्थसंशयोऽर्थोऽनर्थसंशयश्च। समुदायेन द्वात्रिंशद्भवन्ति। एवमन्यतो धर्मोऽन्यतोऽर्थानर्थकामद्वेषैस्तत्संशयैश्च संयोजितोऽष्टप्रकारः। तथा धर्मोऽधर्मसंशयश्चेति द्वात्रिंशत् । एवमन्यतः कामोऽन्यतोऽर्थानर्थधर्मैस्तत्संशयैश्च संयोजितोऽष्टप्रकारः। तथा द्वेषः। कामसंशयश्चेति द्वात्रिंशत् ।समुदायेन षण्णवतिः। विपर्ययेणैतावन्तः। एवमौद्दालकेर्व्यतिषङ्गसंयोगानां च द्वानवतिशतम्। एवं बाभ्रव्यस्य। तेष्वपि सहायैर्विमृश्येत्यादि योज्यम् ॥ ४२ ॥

व्यतिषक्त ' उभयतोयोग ' बनाने हों तो जिस जिसका बनाना हो उस उसके विरुद्धको छोड़कर बाकियोंके साथ आपसमें योग होनेसे व्यतिषक्त बनते हैं । किस प्रकार बनते हैं यह यहीं दिखाये देते हैं–(१) किसी व्यक्तिके मिलनेमें अर्थ हो तथा किसीके मिलनेमें धर्म हो तो यह अर्थ और धर्मका व्य० उभयतोयोग है । (२) किसीके मिलनेपर अर्थ तथा किसीसे मिलनेमें अधर्म हो तो यह अर्थ और अधर्मका योग है । (३) किसीसे अर्थ तथा किसीसे काम हो तो यह इन दोनोंका उक्त योग है । (४) एक ओरसे अर्थ लाभ तथा दूसरी ओरसे द्वेष हो तो यह अर्थ और द्वेषका उक्त उभयतो-योग है । जिस प्रकार अर्थको धर्म, अधर्म, काम और द्वेषके साथ युक्त करके ४ भेद किये हैं, उसी तरह इन चारोंके संदेहोंसे युक्त करके चारभेद और कर देनेपर चार और चार मिलकर आठ हो जाते हैं । (१) अर्थ, धर्मसं-देह, (२) अर्थ, अधर्मसंदेह (३) अर्थ, कामसंदेह (४) अर्थ, द्वेषसंदेह ये इनके संदेहोंके योगके चार भेद हैं । इन आठोंमें प्रत्येकके साथ ऊपर दिखाई हुई रीतिसे अनर्थ संशय लगा देनेपर आठ भेद और हो जाते हैं । दोनोंके भेद मिलकर सोलह हो जाते हैं । इन सोलहोंके साथ अर्थ संशय और लगानेपर सोलह ही इसके योगके भेद हो जायँगे तथा दोनों मिलाकर बत्तीस सँभाले जायँगे । इसी प्रकार 'अन्यसे धर्म' इसके साथ क्रमशः किसीसे अर्थ, अनर्थ, काम और द्वेष मिलकर पूर्वकी तरह चार भेद करते हैं तथा ' किसीसे धर्म ' इसके साथ अर्थसंशय, अनर्थसंशय, कामसंशय और द्वेष-संशय, इन चारोंका योग होनेसे चार भेद और हो जाते हैं, दोनों मिलकर आठ हो जाते हैं । इन आठोंके साथ ' धर्मसंशय ' और हो तो इसके आठ भेद और हो जायँगे । दोनों मिलकर सोलह होंगे । इन सोलहोंके साथ 'धर्म-संशय' और मिलाकर तयार किये जायँ तो सोलह और हो जायँगे। दोनोंके मिश्र भेद बत्तीस होंगे । इसी तरह कामके भी व्यतिषक्त उभयतोयोग होते हैं। उन्हें भी दिखाते हैं कि–किसीके साथ मिलनेसे काम इसके साथ क्रमशः अन्यसे अर्थ, अनर्थ, धर्म और अधर्म इनके पृथक् पृथक् योगसे चार भेद हो जाते हैं। तथा किसीसे काम, इसके साथ अर्थसंशय, अनर्थसंशय, धर्मसंशय और अधर्मसंशय इन चारोंके मिल जानेसे चार भेद और हो जाते हैं । इस तरह दोनों मिलकर आठ हो जाते हैं। ये आठ तो हैं ही, इनके साथ कामसंशयको लगानेसे आठ और हो जाते हैं। दोनों मिलकर सोलह तथा इन सोलहोंके साथ द्वेषसंशयको योगकर बत्तीस

बनाये जा सकते हैं । तीनोंके सब भेदोंके मिलानेसे छियानवै भेद तैयार हो जाते हैं । इनके विपर्य्ययसे[1] ९६ भेद और हो जाते हैं । श्वेतकेतुके दोनोंके मिला देनेसे १९२ तथा इतने ही बाभ्रव्यके भी होते हैं । इनमें भी अपने सहायकोंके साथ बुरा भला विचारकर ही प्रवृत्ति करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

उभयतोयोगोंका समष्टि विचार ।

उक्ता उभयतो योगास्त्रिविधाः—शुद्धाः संकीर्णा व्यतिषक्ताश्च ।

अब हम-शुद्ध, संकीर्ण और व्यतिषक्त भेदसे तीन तरहके उभयतोयोगोंको कहते हैं । बत्तीसके सूत्रसे लेकर चालीसवें सूत्रतक शुद्ध उभयतोयोग बताये हैं । सूत्रोंमें केवल चार चार उदाहरण अर्थ व अनर्थके दोनों दर्शनोंके दिये हैं । फिर ४१ वें सूत्रसे अर्थ और अनर्थ विषयक दोनों दर्शनोंके तीन तीन उदाहरण संकीर्ण उभयतोयोगोंके दिये हैं । तेतालीसवें सूत्रसे अर्थ और अनर्थके उभयतोयोगोंकी तरह धर्म और अर्थके शुद्ध उभयतोयोगोंकी तरफ लक्ष्य कराया है, कि अर्थकी तरह धर्म और कामके भी शुद्ध उभयतो योग होते हैं । फिर जिस प्रकार कि अर्थके संकीर्ण ४१ वें सूत्रसे संकीर्ण बताये हैं उसी तरह धर्म और कामके भी संकीर्ण होते हैं । संकीर्णमें जिस प्रकार सजातीयको छोड़कर बाकियोंके परस्पर योगसे संकीर्ण उभयतोयोग होते हैं, उसी तरह विरुद्धपनेको छोड़ बाकियोंके मेलसे व्यतिषक्त उभयतोयोग तयार होते हैं । ये प्रत्येकके मतमें एकसौ बानवै होते हैं पीछे सब कहे जा चुके हैं ।

समन्ततोयोग ।

समन्ततो योगं दर्शयितुं विशेषमाह—

सब ओरके योगोंको दिखानेके लिये पाहिले विशेष कहे देते हैं कि वे किस परिस्थितिमें होते हैं वह विशेष कौन हैं ? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि—

गोष्ठी परिग्रह ।

यही वह विशेष है, जिसमें सब ओरके योग चरितार्थ होते हैं । यह है क्या ? इसे दिखाते हैं कि—

---

१ मेरी समझमें तो यह विपर्य्यय यही जचता है, कि जिस प्रकार किसी अपूर्व व्यक्तिके मिलनेपर अर्थ तथा उसके साथ बाकियोंका योग दिखाया है उसी तरह इस अपूर्वको बाकियोंसे ओत प्रोत करना पड़ेगा यही विपरीतका तात्पर्य्य है ।

संभूय च विटाः परिगृह्णन्त्येकामसौ गोष्ठीपरिग्रहः ॥४४॥

बहुतसे वेश्यालम्पट, आपसमें मिलकर किसी एक वेश्याके साथ रंगरेली करें तो यह 'गोष्ठीपरिग्रह' है ॥ ४४ ॥

संभूयेत्येकीभूय जातविश्वासत्वात्परिगृह्यन्ते वैतके (गृह्णन्त्येवैकां) विटाः । प्राप्तापूर्वसमाचारत्वात् । असौ गोष्ठीपरिग्रह उच्यते यो बहुभिरेकस्याः परिग्रहः ॥ ४४ ॥

जिन ऐय्यासोंका अनाचारमें आपसमें साथ पड़ता रहता है तो वे थोड़े दिनोंमें आपसमें एकके एक विश्वासपात्र बन जाते हैं । ऐसे रंगबाज आपसमें मिलकर किसी एक ही वेश्याको भी पकड लेते हैं। ऐसा करनेका उनका यह कारण होता है, कि वे जब उसका अपूर्व मिलन देखते हैं या ऐसा ही अवसर उपस्थित हो जाता है तब ऐसा करते हैं । इसका 'गोष्ठीपरिग्रह' नाम रखनेका तो यही कारण है कि अनेक जने एकका परिग्रह करते हैं।॥४४॥

समन्ततो योगवाली वेश्या।

तेनानेकपरिग्रहायाः समन्ततोऽयोग इति तामेवाधिकृत्याह—

पूर्व सूत्रमें जो गोष्ठीपरिग्रह बताया है उससे यह बात सिद्ध हो गई कि, अनेक परिग्रहवाली वेश्याके ये योग हैं। इसी वेश्याका अधिकार लेकर कहते हैं कि—

सा तेषामितस्ततः संसृज्यमाना प्रत्येकं संघर्षादर्थं निर्वर्तयेत् ॥ ४५ ॥

गोष्ठी परिग्रहवाली वेश्या इधर उधर मिलती हुई, मिलनेवालोंमें संघर्ष करा, एक २ से धन खींच ले ॥ ४५ ॥

अनेकपरिग्रहात्तेषामितस्तत इत्यनेनैकेन कदाचिद्द्वाभ्यां बहुभिर्वा संसृज्यमाना संपर्कमयन्ती । संघर्षादिति । परस्परस्य संघर्षात्तेषां संसृज्यमाना प्रत्येकमेकैकशोऽर्थान्निर्वर्तयेत् ॥ ४५ ॥

अनेकोंको रखनेवाली वेश्या कभी एक कभी दो और कभी बहुतसे दोस्तोंके साथ संपर्क करती हुई एवं उनके आपसके संघर्षसे एक दूसरेके साथ मिलती हुई एक २ से धन खींच ले ॥ ४५ ॥

विटोंमें स्पर्धाका कारण ।

स्पर्धाकारणमाह—

उनमें उससे पहिले मिलनेके लिये कब आपसमें संघर्ष होता है, उस समयको भी बताते हैं कि—

सुवसन्तकादिषु च योगे यो मे इममसुं च संपादयिष्यति तस्याद्य गमिष्यति मे दुहितेति मात्रा वाचयेत्४६

अपनी मासे कहलवा दे, कि इस १ उत्सवमें मेरी बेटीको जो इन २ चीजोंको पहिले देगा उसीके साथ उस दिन मेरी बेटी पहिले मिलेगी ॥ ४६ ॥

सुवसन्तकादिष्विति । तेषु सर्वेषु (विटाः सर्वेषु) विटानां कामदौर्बल्यं जायते । मनोरथमित्यभिप्रेतम् । वाचयेत् । सा हि निरतोरुधत्वात् (?) शक्ता व्यवस्थापयितुम् ॥ ४६ ॥

सुवसन्तक आदि त्योहारोंमें विट (वेश्याकाभी) लोग कामसे व्याकुल हो जाते हैं, इसीसे उन्हें पहिले मिलनेकी पडती है माही मिलनेवालोंसे मिलनेकी व्यवस्था कर सकती है, अतः उसीसे अपनी चाह कहलवा देनी चाहिये कि जो मेरे लड़कीको यह चीज देगा प्रथम वही पा सकेगा ॥ ४६ ॥

तेषां च संघर्षजेऽभिगमने कार्याणि लक्षयेत् ॥ ४७ ॥

उनके साथ जिद्दाजिद्दीके मिलनेमें अपने कामकी ओर लक्ष्य राखे ॥४७॥

संघर्षज इति संघर्षजनिते । कार्याणीति लाभान् ॥ ४७ ॥

जब उनसे जिद्दाजिद्दीके समय प्रथम मिले तो सबसे पहिले अपने लाभकी ओर दृष्टि डाल ले यानी जिधरमें लाभ अधिक देखे उधरकी ही तरफ झुक[2]

---

१ ये उत्सव कब होते हैं यह हम ८५९ वें पृष्ठमें लिख चुके हैं उनमें यह भी आगया है ।

२ मनुष्य जब आसक्त हो जाता है उस समय उसकी दृष्टि वेश्याके कपटजालपर नहीं जाती, न जानमालकी ही तरफ जाती है, वह अपने जानमालको एक तुच्छ भेट समझता है, ऐसे ही किसीकी दशापर किसी कविने कहा है, कि—" दिलोजाँ दीनोईमां बेचता हूं यार तुम ले लो, तुम्हारी इक नजरपर मोल सबका है खतम ले लो " यह जिद्दाजिद्दी दीन, धर्म, कर्तव्य सबसे विमुख कर देती है । देहलीका एक कवि तो वेश्याके बखेडेमें पड़कर मुसलमान तक हो गया था और उसने अपनी प्रेमिकाके लिये कहा था कि " जिस तरफ तूने किया एक इशारा नजिया, न जिया आह तेरी ,वस्मका मारा न जिया । "

जाय एवम् दोषोंकी निवृत्तिकी तरफ भी विचार ले, कि कोई भावी अनर्थ तो नहीं है ॥ ४७ ॥

लाभ निर्देश ।

तान्याह--

जिन लाभोंकी ओर दृष्टि डालनी चाहिये, उन लाभोंको बताते हैं, कि—

एकतोऽर्थः सर्वतोऽर्थः एकतोऽनर्थः सर्वतोऽनर्थः । अर्धतोऽर्थः सर्वतोऽर्थः अर्धतोऽनर्थः सर्वतोऽनर्थः । इति समन्ततो योगाः ॥ ४८ ॥

एकसे अर्थ, सबसे अर्थ, एकसे अनर्थ, सबसे अनर्थ, आधोंसे अर्थ, पूरोंसे अर्थ, आधोंसे अनर्थ, सारोंसे अनर्थ, ये सब ओरके योग हैं ॥ ४८ ॥

एकतोऽर्थ इति । यावद्भिः परिगृहीता तेषामन्यतमस्यैकस्य द्वयोरन्यतरस्यैकस्य शेषेण सह स्पर्धा तस्मादेकतोऽर्थं लक्षयेत् । सर्वत इति—सर्वेभ्योऽर्थम् । एकतोऽनर्थं सर्वतोऽनर्थं यदोभौ स्पर्धेते तदोभयतोऽर्थं सर्वतोऽर्थमुभयतोऽर्थम् । उभयतोनर्थः सर्वतोऽनर्थ इति । यदार्धः स्पर्धते तदार्धतोऽर्थमर्धतोऽनर्थमिति समन्ततो योगास्त्रिधा भिन्नाः ॥ ४८ ॥

जितने वेश्याकामी पुरुष किसी अपूर्व वेश्यासे मिलनेके लिये आये हुए हों यदि उनमेंसे कोई एक पुरुष उससे यह कहे कि—'जो आप मुझसे पहिले मिलें तो मैं यह दूं' अथवा उनमेंसे दो आदमी कहें कि—'जो तू मुझसे या इससे ही पहिले मिले तो हम दोनों तुझे सबसे पहिले मिलकर यह दें' एवम् वेश्या भी उनके देनेको देखकर उन्हीं दोनोंको ही प्रथम मिलनेका मौका दे तो इसे एक ओरका लाभ समझना चाहिये । यदि फिर वह उसी अवसरपर दूसरोंसे भी मिल लेती हो तो इसके साथ सबसे भी उसे लाभ हुआ जाता है । यदि नहीं होता वे सब दूसरी २ जगहोंका रास्ता लेते हैं तो एक या दो ओरका लाभ तथा जो चले गये हैं उन सबकी ओरसे नुकसान होता है । यदि ऐसा अवसर उपस्थित हो कि- जिद्दा जिद्दीमें एक या प्रथमेच्छु दोनों चले जायँ और बाकी सबसे लाभ लिया जाय तो यह एक या दोओंसे अनर्थ एवम् सबसे अर्थ है । यदि जिद्दाजिद्दीमें यह रंग आधे आधोंमें जम जाय कि

---

१ एक और दोके कहनेमें आधोंसे कम जितने भी हो सकें सबका ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि एक और दोका ग्रहण दिग्दर्शनमात्र है ।

आधे रहें और आधे जायँ तो आधोंसे अर्थ तथा आधोंसे अनर्थ है। एक या दो या आधोंसे जब अर्थ होता है तो सबसे अर्थ नहीं हो पाता। सबसे होता है तो एक या दोसे नहीं हो पाता। जब आधे इधर और आधे उधर होते हैं तो आधोंसे हो पाता है आधोंसे नहीं, इस तरह यह तीन प्रकारका है॥४८॥

इसमें अनुबन्ध नहीं है संशय है।

अभिन्नविषयत्वादनुबन्धो नास्ति संशयस्तु विद्यत इत्याह—

भिन्न विषयोंका अनुबन्ध होता है यहां भिन्न विषय तो है नहीं इस कारण इस योगमें अनुबंध नहीं है पर संशय तो है, इससे संशयका निरूपग करते हैं कि—

अर्थसंशयमनर्थसंशयं च पूर्ववद्योजयेत् । संकिरेच्च तथा धर्मकामावपि। इत्यनुबन्धार्थानर्थसंशयविचाराः॥

पहिलेकी तरह अर्थ संशय और अनर्थ संशयोंकी भी योजना कर लेनी चाहिये तथा युक्तिसे संकीर्ण भी समझ लेने चाहियें। इसी तरह धर्म और कामके 'समन्ततोयोग' समझने चाहियें। ये अनुबन्ध, अर्थ, अनर्थ और संशयोंके विचार पूरे हुए॥ ४९ ॥

पूर्ववदिति।.................................। एकतोऽर्थः सर्वतोऽनर्थसंशय इति तृतीयः। एकतोऽनर्थः सर्वतोऽर्थसंशयश्चेति चतुर्थः। एकतोऽनर्थः सर्वतोऽनर्थ-संशय इति पञ्चमः। एकतोऽर्थः सर्वतोऽनर्थ इति षष्ठः। इति संकीर्णाः षट् शुद्धाश्चत्वारः। एवं स्वजातीयं त्यक्त्वा संकीर्णाः षट्। संघर्षजेऽभिगमने कार्याण्येतान्युक्तानि। यदा त्वसंघर्षजमभिगमनं तदा तेषामेकाभिप्रायत्वाद्द्वादश समन्ततोयोगाः। सर्वतोऽर्थः। सर्वतोऽनर्थः। सर्वतो धर्मः। सर्वतोऽधर्मः। सर्वतः कामः। सर्वतो द्वेषः। इति षट्। त एव संशयिताः षट्। इत्युक्ता अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचाराः॥ ४९ ॥

'पूर्ववत्' इसका अथ पहिलेकी तरह है। इसके आगे 'जयमंगला' का पाठ टूटा हुआ प्रतीत होता है। यही कारण है कि-'पूर्ववदिति' के आगे शून्य लगाये जा रहे हैं। एकसे अर्थ हो और सबसे अनर्थका संशय हो यह तीसरा है। एकसे अनर्थ हो सबसे अर्थसंशय हो तो यह चौथा है। एकसे अनर्थ हो, सबसे अनर्थका संदेह हो यह पांचवाँ है। एकसे अर्थ हो सब अनर्थ

संशय हो यह छठा है । ये छः संकीर्ण हैं, शुद्ध चार हैं । इसी प्रकार स्वजातीयको छोड़कर संकीर्ण छः हैं । ये परस्परकी जिद्दाजिद्दीके मिलनेमें कार्य्य कहे हैं । जब विना संघर्षके अभिगमन हो तो उनके एकके अभिप्रायसे बारह 'समन्ततोयोग' होते हैं । सबसे अर्थ हो, सबसे अनर्थ हो, सबसे धर्म हो, सबसे अधर्म हो, सबसे काम हो, एकसे द्वेष हो, ये छः हुए । ये ही संदेह ग्रह भी छः हो जायँगे । इस प्रकार 'अर्थ, अनर्थ, अनुबन्ध और संशयोंके विचार' कह दिये ॥ ४९ ॥

वेश्याविशेष प्रकरण ।

वेशप्रयोजनमिदमधिकरणम् । वेशस्य कारणस्य शेषभूतमाह—

सामान्यस्त्रियोंके ढंगसे रहनेवाली उत्तमा, मध्यमा और अधमा इन तीनों भेदोंसे विभक्त की गई जो गणिका, रूपाजीवा और कुम्भदासी तथा दूसरी भी ऐसी ही स्त्रियोंके बाजारके प्रयोजनके लिये यह अधिकरण कहा गया है । पर यह नहीं बताया गया कि जिनके लिये वेश्याओंके बाजार चलते हैं वे कौन२ होती हैं । इस अधिकरणका कारण वेश है एवम् वेश्या विशेष वेशका ही एक अंश है, क्योंकि वेश्या विशेष नहीं तो वेश कहाँसे चलेगा ।

वेश्याओंके भेद ।

इस कारण वेश्याविशेषोंको गिनाते हैं कि—

कुम्भदासी परिचारिका कुलटा स्वैरिणी नटी शिल्पकारिका प्रकाशविनष्टा रूपाजीवा गणिका चेति वेश्याविशेषाः ॥ ५० ॥

कुम्भदासी, परिचारिका, कुलटा, स्वैरिणी, नटी, शिल्पकारिका, प्रकाशविनष्टा, रूपाजीवा और गणिका इन सबकी वेश्याओंमें ही गिनती होती है ५०

कुम्भदासीति कुम्भग्रहणं निकृष्टकर्मोपलक्षणम् । लोके सामान्यास्त्रयः प्रसिद्धाः । कुम्भदासी गणिका रूपाजीवा चेति । शेषाणामपि सामान्यात्वात्तत्रैवान्तर्भावः । परिचारिका याः स्वामिनं परिचरन्ति । तस्या औपनिषदिके विधिं

---

१ कुलटा, स्वैरिणी और प्रकाश विनष्टा यद्यपि ये तीनों वेश्याओंकी तरह दूकान लगाकर नहीं बैठतीं पर ये वेश्याओंसे अधिक भले ही हों कम नहीं होतीं । दूतीभवन या अभिसरणके स्थान तथा इनके स्वतंत्रघरोंका ढंग भी वेशों जैसा ही रहता है अतः उनके लिये इन्हीं स्थानोंको वेश समझना चाहिये ।

वक्ष्यति । कुलटा या पतिभयाद्गृहान्तरं गत्वा प्रच्छन्नमन्येन संप्रयुज्यते । स्वैरिणी या पतिं तिरस्कृत्य स्वगृहेऽन्यगृहे वा संप्रयुज्यते । नटी रङ्गयोषित् । शिल्पकारिका रजकतन्तुवायाभर्या । प्रकाशविनष्टा या जीवति मृते वा पत्यौ संग्रहणधर्मेण गृहीता कामचारं प्रवर्तते । एताः षड रूपाजीवायामेवान्तर्भवन्ति विशेषः संपद्यते (?) ॥ ५० ॥

कुम्भग्रहण निकृष्टकर्मका उपलक्षक है (अर्थात् जैसे घड़ा बहुतसे पानीसे भरता है, इसी तरह ये भी सामसे सुबहतक अनेकों पुरुषोंसे कर्म ही कराती रहती हैं इनके किसी जातिका भी नियम नहीं रहता) दुनियाँमें इन्हें बजारू औरत कहते हैं । गणिका, रूपाजीवा और कुम्भदासी इन तीनोंको पहिले बता चुके हैं । इनसे बाकी बची परिचारिका आदिकोंका भी सामान्य होनेके (समान धर्म होनेके) कारण इसीके भीतर अन्तर्भाव हो जाता है । जो स्वामीकी परिचर्य्या करें वे परिचारिका कहाती हैं । इनकी प्रथम समागमविधि औपानिषदिक अधिकरणमें ' सुभगंकरण ' प्रकरणमें कहेंगे। जो पतिके भयसे दूसरेके घरमें जाकर छिपकर किसीसे मिलती है उसे कुलटा कहते हैं जो अपने पतिका तिरस्कार करके अपने घर वा दूसरेके घरमें यारोंसे मिले उसे स्वैरिणी कहते हैं । स्टेजपर नाचनेवाली स्त्री नटी कहाती है । धोबी और कोरियाकी स्त्रीको शिल्पकारिका कहते हैं । जो पतिके जीते २ अथवा मरजानेपर किसीकी उडढी बनना चाहे जिससे रंगरेली कर ल उसे प्रकाशविनष्टा कहते हैं । ये मन चाहे जिसको घर कर बैठ जाय व मन चाहे जिसे छोड़ देती हैं । परिचारिकासे लेकर प्रकाशविनष्टातक ये छओं स्त्रियाँ रूपाजीवाके भीतर ही गतार्थ हो जाती हैं ॥ ५० ॥

स्वैरिणी, कुलटा और प्रकाशविनष्टा वेश्या कैसे ?

अब हम इस बातपर विचार करते हैं कि इन तनिोंको वेश्याओंमें क्यों सँभाला जाता है ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं कि—नारदस्मृतिमें स्वैरिणियोंके चार दर्जे नियत किये हैं । जिसके सन्तान हुई हो वा न हुई हो, पतिके ही जिन्दे २ अपनी ही इच्छासे दूसरेसे रंगरेली करे वह प्रथमकोटिकी है । जो पतिके मरजानेपर घरके देवर आदि जो प्राप्त हुए हों उन्हें छोड़कर अपनी जातके किसी अन्य पुरुषको रंगे वह दूसरी है । जो इन्हीं कामोंके कारण अकुताकर कह दिया गया हो कि तेरी खुशी हो सो कर,अथवा जिसे किसीने

खरीद लिया हो। जो कि भूखप्याससे अकुलाती हुई किसीसे कहे कि देख ! मैं अब तेरी ही हूं, तू मुझे बचा । यह तीसरी है । जिसे देश काल देखे विना भी भयङ्कर साहस पैदा हो गया हो यह दशा देख उसके माबापोंने उसे किसीके सुपु :कर दिया हो तो यह चौथे प्रकारकी स्वैरिणी होती है । यद्यपि नैतिक पुरुषोंके स्त्रियोंके विषयमें ये अक्षर होते हैं कि--

"नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां च वयसि स्थितिः ।
विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुज्यते ॥"

स्त्रियोंके हृदयमें गम्यागम्यका विचार बिलकुल नहीं रहता, न वय ही इनकी स्थितिका नियामक होता है । न रूपवान् और कुरूपका ही इनके यहां भेद देखा जाता है। केवल उसके उपभोगके करने लायक हो, कोई भी हो, इस बातका स्त्रियोंमें विचार नहीं है कि यह कौन है ? साम्प्रयौगिक अधिकरणके पहिले अध्यायमें बता चुके हैं कि स्त्रियोंमें पुरुषसे आठगुना काम अधिक है। प्रथम रतमें तो वह प्रदीप्त मात्र ही होता है । पारदारिक अधिकरणमें ७९९ वें पृष्ठमें बता चुके हैं कि स्त्रियाँ क्यों रुकी रहती हैं। अधिकांश लौकिक प्रतिबन्धोंके कारण ही रुकी रहती है । बहुतसी ऐसी भी हैं जो परपुरुषके साथ गमन करनेको भयंकर नरकप्राप्तिका कारण समझकर उसका कभी मनमें भी विचार नहीं लातीं । जो अपने आप अपने आत्मापर अपने ही पवित्र विचारोंसे अधिकार रखती हैं वे ही कुलदेवी हैं। ऐसी ही देवियोंने इस पतित भारतका शिर आज भी ऊँचा कर रखा है । जो कारणोंके कारण यावज्जीवन व्यभिचारसे रुकी रहीं वे भी कुलललनाएँ ही हैं पर मध्यकोटिकी हैं, किन्तु जो भीतर ही भीतर पाँच पुरुषोंको देख लेती हैं उनके हृदयसे फिर ग्लानि मिट जाती हैं इस कारण वे भी एक प्रकारकी परदाकी साधारण स्त्रियाँ ही बन जाती हैं जबतक पाँच पुरुषोंका छिपे २ सहवास नहीं हो पाता अन्तःकरणमें ग्लानि बनी रहती है । जाति विजातिका ख्याल बना रहता है। उतने समयतक वह व्यभिचारिणी है यानी उसने छिपे २ पतिके अपचार ही किये हैं। जब वह इतनी आगे बढती है कि स्वयम् ही जातिके पुरुषोंको पानेके प्रयत्न करतीं तथा पातीं हैं तो उस समय उसकी गिनती स्वैरिणियोंमें हो जाती है । इनका यही कार्य्य रहता है कि जातिके आदमियोंमें जो अच्छा लगता है उसे ही अपनाती फिरती हैं। यह भी उस जातिकी एक साधारण ही स्त्री बन जाती है इस कारण इनकी गिनती वेश्याओंमें की गई है । इससे आगाड़ी फिर कुलटापनेका नम्बर आता है । जब वह अपनी

जातिको छोड़कर विजातीयके पुरुषोंके पीछे फिरती है तो उसीकी गिनती कुलटाओंमें हो जाती है। फिर जो पुरुष इसे जानते हैं एवम् जो जो इसकी तरफ हाथ बढाते हैं उन सबकी यह साधारण स्त्री ही है। वह दूकान खोलकर नहीं बैठी, इस कारण गणिका आदिके भीतर नहीं संभाली गई। जो जाहिरा तौरसे भ्रष्ट हो, जिसे किसीसे परहेज न हो वह 'प्रकाशविनष्टा' है। यह भी दूकान खोलकर नहीं बैठती पर जो उसे जानते हैं उनकी वह साधारण स्त्री है ही। समुदायकी बन ही चुकी है, इस कारण वह 'वारस्त्री' हो गई इसमें सन्देह ही क्या रहा ? यही कारण है कि कामसूत्रकारने इनको वेश्या-विशेषोंमें ही गिनाया है। इनमें जो कारणवश अनाचार करती हैं वे कारणसे बँधी तो रहती है, किन्तु जो रूप, यौवन और पुंस्त्व देखकर अपनी कामवासनाको तृप्त करती फिरती हैं उनकी बराबर तो कोई अनिर्मर्य्याद ही नहीं होता। किसी भयंकर व्यसनिनीको देखकर किसीने कहा है कि—

"स नास्त्यत्र ग्रामे य एतां मदमदायमानलावण्याम् ।
तरुणानां हृदयलुण्ठाकीं 'इतस्ततः' परिष्वक्कमाणां निवारयति ।"

जिस तरुणीका लावण्य युवकोंकी आखोंका परमोत्सव बना हुआ है एवम् यह भी युवकोंके हृदयोंको रौंदती फिरती है तथा जहां कहीं जो कोई मिल जाता है उसीके साथ रातदिन रंगरेली करती फिरती है पर तृप्त नहीं होती। क्या इस गाममें कोई ऐसा छैला नहीं है जो इसकी पूरी तृप्ति कर दे जिससे कि फिर यह हर एकका पल्ला पकड़कर मिलना झुलना बन्द कर दे, क्योंकि इसे कोई ऐसा ही सनसनाता जवान मिलजाय तो यह इस प्रकार करना बन्द कर दे। इस गाथाका अर्थ करतीवार श्रीवामनाचार्य्यजीने लिखा है कि—

"स्वानुरूपरमणाभावाद् इतस्ततो गच्छन्तीम् "

न तो इसे कोई इसीके जोटका छैला मिलता है एवम् न यह जैसा सहवास चाहती है इसे वैसा सहवास ही मिला है, इस कारण यह अपनी तृप्तिके लिये इधर उधर जहां कहीं जो मिल जाय वहीं जा रही है। इस गाथाको प्रायः साहित्यके लक्षणग्रन्थोंमें सर्वत्र देखते हैं, इसमें विचार करके देखा जाय तो किसी 'कामदिवानी' का पूरा खाका खींच दिया गया है, जैसी कि गामकी बिगड़ी युवतियोंकी हालत होती है। नीतिके ग्रन्थोंने दुराचारिणी स्त्रियोंका अच्छा खाका खींचा है। उनमेंसे कुछ एकका हवाला यहीं देते हैं—पंचतंत्रमें वर्धवानके राजाने अनाचारिणी स्त्रियोंका अच्छा खाका खींचा है। कौलिककी स्त्रीका व्यभिचार बताया है। एक

ब्राह्मणीको एक लँगड़ेके पीछे पतिको कूएमें गेरती दिखाया है । लब्धप्रणाशमें पतिका मुण्डन और परोंकी सेवा करते दिखा दिया है । वृद्धदालिककी स्त्रीकी लीला, ये प्रसंग अनाचारिणी स्त्रियोंके दौरात्म्य दिखानेके लिये दिखाये गये हैं, दूसरा कुछ प्रयोजन नहीं है । भागवतने तो इन्हें यहां तक कह दिया है कि ये दुर्व्यसानिनी पति आदिके मारनेमें भी जरा संकोच नहीं करतीं । अनेक प्रकारके संगीतोंमें पतिघातिनियोंको अभिनय करके बताया जाता है । अतः कामसूत्रकारका इन्हें वेश्याओंमें सँभालना अनुचित नहीं है । मेरी समझमें तो ऐसी अनाचारिणी वेश्याओंसे भी गई बीती हैं, क्योंकि वेश्याओंकी तो सृष्टि ही इस लिये है पर ये तो न होकर भी वही बनती फिरती हैं वेश्याओंसे तो धनके ही विषयमें धोखा है । किन्तु इनसे तो सदा धोखा ही धोखा है । बाजी २ तो अपने परदाफांसको रोकनेके लिये भयंकरसे भयंकर कार्य्य कर गुजरती हैं । जिनकी आत्मामें धर्मका लेश नहीं अच्छे बुरेका खयाल नहीं उन दुराचारिणियोंकी 'यह' प्रकृति रहती है कि—

" स्त्रियं च यः प्रार्थयते सन्निकर्षं च गच्छति ।
ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः । "

जो यह कहे कि मैं तेरे लिये मर रहा हूं तथा एकान्तका मौका लगा ले और थोड़ी सेवा करदे तो ऐसी स्त्रियां उसीपर फिसल जाती हैं । ये ही दौत्यकर्ममें भी चलती हैं जैसा कि कामसूत्रकारने बताया है । इससे यह सिद्ध होता है कि बजारू औरत तो किसो भी कुलस्त्रीको बजारू नहीं बना पातीं पर कुलटाओंके दौत्यकर्मका तो यह बाँये हाथका कार्य्य है, इस कारण ये छिपी वेश्याएँ वेश्याओंसे भी अधिक खतरनाक हैं । किसी ऐसी स्त्रीको कोई भोला भाला कुलाङ्गना समझकर जालमें न आ जाय, इस कारण वात्स्यायनने इन्हें वेश्याओंमें गिना दिया है ।

दुराचारिणियोंकी प्रकृति ।

जो मैंने पहिले लिखा है वह केवल इसी बातके दिखानेके लिये लिखा हैं कि दूरदर्शी वात्स्यायनने इस कारण इन्हें वेश्याओंमें सँभाला है पर अब इनकी प्रकृतिपर भी विचार करता हूं । यद्यपि इनकी पहिचान और प्रयासके लिये पारदारिक अधिकरण भी हो सकता है, किन्तु यहां हमें इनके उस रूपपर विचार करना है जिसके कि कारण भोले भाल मनुष्य इन्हें अपनी ही समझते हैं । इनमें पहिला कारण तो उसके द्वारा की गई पतिकी उपेक्षा रहती है इसे देखकर भी लोग मुग्ध हो जाते हैं कि इसने हमारे लिये पतिकी उपेक्षा की । वे यह नहीं सोच पाते कि—

" पर्य्यङ्केष्वास्तरणं पतिमनुकूलं मनोहरं शयनम्,
तृणमिव लघु मन्यन्ते कामिन्यश्चौर्य्यरतलुब्धाः ।"

जिन स्त्रियोंको चोरीके रतका लोभ लग गया है वे रत्नजटित पलिङ्गके बेशकीमती बिस्तर तथा प्यारे पतिके कामकला कोविदोंकेसे रमणको तिनकेकी तरह तुच्छ समझती हैं । इसमें उस जार पुरुषका रतिवैचित्र्य नहीं, किन्तु हरजाई औरतोंकी प्रकृतिका यह एक हलकासा नजारा है, इसे यह न समझना चाहिये कि यह उसी तक नियमित रहेगा, किन्तु जो उसके बाद उससे ताल्लुक पा लेगा उसके लिये उससे भी ज्यादा होगा किसी स्त्रीने नये दोस्तके मिलजानेके बाद पुराने दोस्तके लिये यह कह दिया था कि—

" बाद मुद्दतके मिला मुझको वो धोखा देकर,
जबतलक याद भी उस यारकी सूरत न रही ।"

अब जब तू मुझे मिला ह जब कि मुझे तेरी सूरत भी याद नहीं रही है । यह बात नहीं कि उस मनुष्यके लिये निन्दा कराती हों, किन्तु उस अपने स्वार्थके लिये ही कराती है । इतना ही नहीं किन्तु—

"कुलपतनं जनगर्हां बन्धनमपि जीवितव्यसन्देहम् ।
अङ्गीकरोति कुलटा सततं परपुरुषसंसक्ता ॥"

कुलपतन, मनुष्योंमें अपकीर्ति, बन्धन और जिन्दगीके लाले इन सब बातोंको भी कुलटा परपुरुषमें आसक्त होकर करा लेती है । वेश्या तो खुली दुकानपर बैठती ही पुरुषोंके लिये है, इस कारण वह अपने लिये अनेक पुरुष पा लेना कोई गौरव नहीं समझतीं किन्तु जिन्हें चौर्य्यरतका स्वाद लगा हुआ है वे अनेकों पुरुषोंके छिपे सहवासमें अपना बडप्पन समझतीं हैं । किसी लेखकने लिखा है कि—'किन्हीं दो राजकुमारोंको अपनी रानियोंको पद दलित नीचदासोंके साथ छिपे तौरपर विहार करते देखकर वैराग्य हुआ कि घर छोड़कर चल दें । पीछे यह सलाह ठहरी कि यदि हमीं इस व्याधिसे व्यथित हैं तो संसार त्याग देंगे तथा दुनियाँमें कोई हमसे भी अधिक दुःखी हुआ तो अपने घर चले आयँगे । ये दोनों एक वनमें नदी किनारे पहुँच रातके समय एक वृक्षपर चढकर देखने लगे कि एक दैत्यने पानीसे निकल, पेटी खोल उसमेंसे एक कमनीया कामिनी निकाल, उससे रंग रेली करके पीछे जाँघपर शिर रखकर सो गया । स्त्रीकी दृष्टि तटस्थ दोनों युवकोंपर पड़ी, उसने उन्हें भय दिखाकर सहवास किया तथा दोनोंकी अँगूठी मांग गिनकर बताया कि—

" मैं इसी तरह ९८ अँगूठी अठानवे व्यक्तियोंसे मिलकर प्राप्तकर चुकी हूं आपकी आजकी दो और सामिल होकर सौ होगई, अब आप यहांसे पधारिये ।" इस बातपर विचार करते हैं तो हम इसी नतजिपर पहुँचते हैं कि ऐसी स्त्रियोंको अधिककी गिनतीका ही शौक रहता है, इसके सिवा इनका यह भी ढंग रहता है कि पतिको अत्यन्त सदाकत दिखायाकरती हैं। पतिके साथ इनका यह हाल रहता है कि—

" केलिं प्रददति लज्जा, शृङ्गारोऽस्थीनि चारवः करवः ।
बन्धक्याः परितोषो न किंचिदिष्टं भवेत् पत्यौ । "

६१६ पृष्ठमें जो कलियुगकी पुजारिनोंका हाल रहता है वही हाल कहा हैं इनका पतिदेवके सामने रहता है । उसके सामने उस शृंगारको दिखानेमें तो इनके हाड जल जाते हैं, जिसे कि यारके सामने मटक २ कर दिखाती रहती हैं । इन बदकारोंका तो न तो पतिमें परितोष ही होता है एवम् न उसमें इसकी चाह ही रहती है । किन्तु गंदे स्वादकी ये दीवानी रहती हैं । इन्हें कितनी लाज होती है एवम् परपुरुषोंको किस प्रकार चाहती हैं यह तो १७२ वें पृष्ठमें भी कह चुके हैं । व्यसनकी बात है जिससे इसे अबाध आनन्द मिलता रहता है उसका तो इसे ध्यान भी नहीं रहता, किन्तु जो छिप छिप कर नीचोंसे थोड़ा भी पा जाती है तो उसको घर भी नहीं भुलातीं सदा उन्हीं बातोंका ध्यान हुआ करता है, यही कारण है कि चारोंवेदोंके भाष्यकारने लिख दिया है कि—

" परव्यसनिनी नारी व्यग्राऽपि गृहकर्मणि,
तदेवास्वादयन्त्यन्तः परसङ्गरसायनम् । "

चौरोंकी तरह पर पुरुषोंकी रतिमें लोभिनी हुई हरजाई स्त्रियाँ शरीरसे तो पतिसेवा व घरके काममें लगी दीखती है, पर ध्यान उन्हीं बातोंका रहता है । यानी परपुरुषोंने जो जो पशुताएँ उसके साथ कर दी हैं ये स्वाद उन्हींका लिया करती है । यद्यपि यहां जारोंको नीच कहते देख सहसा प्रश्न हो सकता है कि कैसे ? परन्तु है यही सत्य, प्रायः अनाचार नीचोंके कर्तव्योंमें ही ह उत्तम तो भूले भटके ही इन कर्मोंको करते हैं । नीतिमें कहा भी है कि—

" दुर्जनगम्या नार्य्यः प्रायो न स्नेहवान् भवति राजा,
कृपणानुसारि च धनं मेघो गिरिदुर्गवर्षी च । "

प्रायः दूसरेकी स्त्रियोंको दुष्ट ही पुरुष मिलते हैं, हरजाई स्त्रियोंके पल्ले कभी भी भले मानुष नहीं पड़ते। जो सच्चे होंगे वे प्रारब्धवश ही ऐसे चक्करोंमें भले

ही आ जायँ नहीं तो ऐसे बखेड़ोंमें नहीं पड़ा करते । १३७ वें पृष्ठसे लेकर जो १४० तककी बातें कही गई हैं वे ऐसे ही पुरुषोंके लिये हैं तथा भटकना भी ऐसी ही स्त्रियोंका कार्य्य है। इनके यहां व्यसनके पर्य्यायमें हां प्रेमशब्द चलता है वास्तवमें ऐसे व्यसनी प्रेमसे कोसों दूर हैं । व्यसनियोंको व्यसनी ही मिलते हैं। जो मोहान्ध यह समझें कि यह मेरी ही है यह उसकी भारी भूल है ये किसीकी भी नहीं हैं। यदि ये किसीकी हों तो कैसे हों ? जो अपने सगे पतिकी नहीं वह पापमूर्ति किसीकी होगी यह विडम्बनामात्र ही है। जिस प्रकार जारपुरुषकी यह प्रकृति होती है कि जबतक वह पर्य्याप्त नहीं भोग लेता उतने समयतक छोड़ता नहीं उसी तरह हरजाई स्त्रीकी भी प्रकृति होती है जबतक पर्य्याप्त न भोग ले नहीं छोड़ती । यदि पहिले भी बड़ा छैला उसका प्रेमी हो जाय तो वे उसके लिये चाहे रोज नदी पार करती हों, भले ही बियावान्में जाती हो, भले ही पतिपुत्र सब कुछ उसपर बलि चढ चुके हों छोड़कर चल देंगी। ऐसी स्त्रियोंके सख्य होते ही नहीं; केवल उपमर्दोंका लोभमात्र ही होता है। फिर भी पुरुषोंकी यह हालत है कि—

"दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरपहृतेन्द्रियः ।
प्रलोभितात्मा पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ।"

कामी व्यसनी स्त्रियोंको देखते ही अपनी सुध भूल इस नरकके कुण्डमें इस प्रकार गिर पड़ते हैं जैसे कि आगमें पतंग गिर जाता है। ध्यान धरके देखा जाय तो वेश्याओंके दीवाने तो उनसे छूटकर भगवान्के भक्त बन गये, सैंकड़ों दुकानदार वेश्याएँ भी सिद्धपदपर पहुँच गईं, सैकडों ही हरिदास जैसे महात्माके ठाकुरजीके दर्शन करते २ ही तन्मय हो गईं पर व्याभिचारी पुरुष और स्वैरिणी आदिको कभी भगवान्की प्रीतिमें दुनियाँको भुलाये हुए नहीं देखा । मनुस्मृतिकारने जो इनके लिये बताया है कि—

"व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ।
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीडयते ।"

जीवित महा।निन्द्य होकर जीती हैं, मरती हैं तो सड़ागला खानेवाली गीदड़ी बनती हैं तथा ज्यों २ विवेकहीन होकर कुम्भदासियोंके समान सबका परिग्रह करती फिरती हैं त्यों २ उसे दुष्टरोग आकर सताने लग जाते हैं। अन्तमें उसकी भी दशा अधम कोटिकी कुम्भदासियों जैसी ही हो जाती है, यावज्जीवन योनिरोगोंका ही घर बनी रहती है। मेरी तो यह धारणा है कि

ये छिपी वेश्याएँ वेश्याओंसे भी अधिक बुरी प्रकृतिकी हैं, इनसे सदा ही बचना चाहिये ॥ ५० ॥

सर्वासां चानुरूपेण गम्याः सहायास्तदुपरञ्जनमर्थाग-मोपाया निष्कासनं पुनः संधानं लाभविशेषानुबन्धा अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचाराश्चेति वैशिकम् ॥ ५१ ॥

इन वेश्याओंमें जो जैसी है उसके मिलनेवाले भी वैसे ही हैं तथा सहायक, रंगनेके उपाय, धन खींचनेके उपाय, निकालनेके ढंग, फिर मिलानेके प्रयत्न, लाभविशेष, अर्थ, अनर्थ, अनुबन्ध और संशयोंके विचार; बस, इतनी ही बात इस वैशिक अधिकरणमें है ॥ ५१ ॥

सर्वासामिति । ....

उत्तमा, मध्यमा, अधमा, इन भेदोंसे विभक्त जो गणिका, रूपाजीवा, कुम्भदासी, कुलय, स्वैरिणी और प्रकाशविनष्टा हैं, इनमें जो जैसी है उसके पीठमर्द, विट आदि सहायक, अपने पास आने योग्य पुरुषके रंगनेके उपाय, आनेवालेसे धन खींचनेके उपाय, फिर खोका करके धक्के लगानेके उपाय, लाभविशेष प्रकरणमें बताए हुए लाभ एवम् अर्थ अनर्थ अनुबन्ध और इनके संशयोंके विचार भी वैसे ही हैं । इनमें कुलटादि तीनोंकी विशेष बातें नहीं बताई गई हैं। जिन कुलटा आदिकोंको धनकी आवश्यकता नहीं उनके यहां लाभविशेषोंका आयोजन नहीं किन्तु जिनके यहां आवश्यकता है उनके लिये ये अवश्य ही व्यवहृत होते हैं, पर जब नयेको लेकर पुरानेको दूर करती हैं तो इन्हें भी जुदा करनेका पूरा वेश्याकल्प वर्तना पड़ता है, यदि किसीको मिलाना चाहती है तो विशीर्णप्रतिसन्धान करना पड़ता है। इन्हीं बातोंको शोचकर भर्तृहरिने कहा है कि—

"संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणाम्,
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥"

जब स्त्रियाँ धीरे २ हृदयमें प्रविष्ट होना चाहती हैं तो इस तरह घुसती हैं कि यह नहीं जान पड़ता कि ये इस दिलको अपना घर बना रही हैं । जब

हृदयपर अधिकार कर पाती हैं तो फिर सब ओरका ध्यान हटाकर अपनी ओर लगा लेती हैं। इसके बाद दीवाना बनानेका नम्बर आता है। जब यह भी कर पाती हैं तो इनके इस ढंगका अन्त होता है। दुनियाँकी ओरसे पीठ फेरे हुए बेहोशकी विडम्बना करने लग जाती हैं। गणिकासे लेकर प्रकाशविनष्टा तक सभी अपने दीवानोंकी विडम्बना ही करती हैं। कभी बहकाती हैं तो कभी तड़फाती हैं। कभी वियोग देकर डरा धमकाकर सब कुछ खींचनेके लिये मिलाकर रमाकर सब कुछ खींच भी लेती हैं। "संयोगाश्च वियोगान्ताः" संयोगका आखिरी नतीजा वियोग ही होता है। इनका वियोग उसी समय होता है जब कि ये जो चाहती हैं वह पा लेती हैं। उस समय जो अनुरक्त होता है उसे विषाद भी होता ही है। इस तरह यह वेश्यासंसार जीवकी सब गतियोंको बना देता है। जो उत्तम गणिकाएं रहती हैं उन्हें प्रायः योग्य नागरिक ही मिला करते हैं। गानवाद्यप्रिय वारवनिताएँ गाने बजानेके अभ्यासी पुरुषोंमें ही अधिक राजी रहती हैं। सौन्दर्यके उपासक प्रायः रूपाजीवाओंके दरबारकी ही शोभा बढ़ाया करते हैं। पर कुम्भदासियोंका बुरा हाल है, इनके यहां उत्तम नहीं; हीन पुरुष ही रहा करते हैं। प्रायः साधारणसे भी अति साधारण अति आयाससे गुजारा करनेवाले कामदुर्बल लोग इनके दरबारोंमें इकट्ठे रहा करते हैं। कभी २ दूसरे लोग भी भूले भटके हुए आकर दुष्ट रोगोंका प्रसाद ले जाते हैं। प्रकाशविनष्टाके नायक प्रायः प्रकाशविनष्ट ही रहते हैं, जो जैसी कुलटा और स्वैरिणी होती हैं इनके नायक भी इन जैसे ही होते हैं। कभी २ उत्तम पुरुष भी किसी बहकावेमें आकर इनकी लपटमें आ जाते हैं परन्तु उनकी वृत्तिका निरोध अधिक समयतक अनुचित स्थलपर नहीं रह पाता। विश्वामित्र तपस्वी थे, वेश्या उनका स्थान नहीं था इस कारण वे उस बखेड़ेमें अधिक नहीं रहे ॥ ५१ ॥

भवतश्चात्र श्लोकौ—

> रत्यर्थाः पुरुषा येन रत्यर्थाश्चैव योषितः ।
> शास्त्रस्यार्थप्रधानत्वात्तेन योगोऽत्र योषिताम् ॥ ५२ ॥

इस विषयमें श्लोक हैं कि—प्रवृत्तिमें रतिसुख ही स्त्रियोंका प्रयोजन एवम् रतिसुख ही पुरुषोंका प्रयोजन रहता है। इस शास्त्रने स्त्री और पुरुषोंके प्रयोजनको ही मुख्यरूपसे रखा है, इसी कारण इस शास्त्रमें स्त्रियोंके रतिप्रयोजनपर विचार किया है ॥ ५२ ॥

स्त्री और पुरुष दोनोंके संयोगकी प्रवृत्तिमें रतिसुख ही कारण होता है, क्योंकि ये दोनों इसी प्रयोजनके सिद्ध करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं। यही बात स्त्रियोंकी भी है, वे भी जब पुरुषोंके साथ सहवास करनेमें प्रवृत्त होती हैं तो रतिसुखरूप प्रयोजनके सिद्ध करनेके लिये ही प्रवृत्त होती हैं। इन दोनोंका यंत्रयोगमें यही प्रयोजन[1] समाविष्ट रहता है। इस कामशास्त्रमें रति ही प्रधान है, जितने उपदेश दिये हैं वे सब रतिको ही उत्तम बनानेके लिये दिये हैं। जो भी उपाय हैं वे सब इसी बातके लिये हैं, कि स्त्री पुरुष दोनों आपसमें मिलकर बराबरका रतिलाभ उठा लें। दूसरे २ जो प्रयत्न हैं वे सब योग करानेके हैं योगके पीछे रति है ही। रतिका आयतन स्त्रियां हैं, इस कारण यहां कामशास्त्रमें रति प्राप्त करनेके लिये स्त्रियोंका योग होता है, इसी कारण स्त्रियोंके योगके उपाय बतलाये हैं। यद्यपि इसपर यह शंका हो सकती है कि—' किसी स्त्रीको यदि पुरुषविषयक अभिलाष हो तो उसका कामायतन पुरुष होगा इसमें सन्देह ही क्या है पर ऐसा काचित्क ही होता है। स्त्री चाहेगी भी तो भी प्रायः पड़देमें ही तड़फती रहेगी; मिलनेके जाहिरा प्रयत्न न करती फिरेगी, किन्तु पुरुषोंको अपनी प्यारीके पानेके लिये जंगतक करते देखा है। यह कहीं नहीं सुननेमें आया कि किसी स्त्रीने अपने प्यारेको पानेके लिये फौजें सजाकर किसीपर चढाई कर दी हो। प्यारेको प्राप्त करके तो दमयन्ती भी वन वन ढूंढती फिरी है, किन्तु प्रथम प्राप्तिके लिये चढायी नहीं की। रति प्राप्त करनेके लिये पुरुष ही कामायतन प्राप्त करते फिरते हैं, इसी बातको लेकर कह दिया है कि स्त्रियोंके साथ योग यहां बताया गया है ॥ ५२ ॥

---

१ यद्यपि वेश्याओंके लिये कहा है कि—' वेश्यानां पुरुषाधिगमे रतिर्वृत्तिश्च सर्गात् ' वेश्याओंकी पुरुषप्राप्तिमें स्वभावसे ही रति और जीविका होती है तब 'रत्यर्थाश्चैव योषितः' रतिरूप प्रयोजनवाली ही स्त्रियाँ है यह संगत नहीं होता तथाऽपि स्त्री पुरुषोंकी पारस्परिक प्रवृत्तिमें रतिरूप प्रयोजन मुख्यरूपसे रहता है, इसमें अत्युक्ति ही क्या है। वेश्याएँ रति और जीविका दो प्रयोजनोंको रखती हैं। इसी तरह पुत्रकामियोंके यहां भी रतिसुख और सन्तानप्राप्ति ये दो प्रयोजन रहते हैं, पर जब स्त्री हो या पुरुष एक दूसरेकी कामनासे प्रवृत्त होते हैं तो उस समय उनकी प्रवृत्तिका प्रयोजन केवल रतिसुख ही रहता है। इसी बातको लेकर श्लोकमें स्त्री पुरुष दोनोंको रतिप्रयोजनवाला कह दिया है।

स्त्रियोंके विभाग ।

सन्ति रागपरा नार्यः सन्ति चार्थपरा अपि ।
प्राक्तत्र वर्णितो रागो वेश्यायोगाश्च वैशिके ॥ ५३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे वैशिके षष्ठेऽधिकरणे अर्थान-
र्थानुबन्धसंशयविचारा वेश्याविशेषाश्च षष्ठोऽध्यायः ।

बहुतसी स्त्रियाँ रागपरक रहती हैं एवम् बहुतसियोंके यहाँ रागके साथ अर्थपरता भी रहती है। जो स्त्रियाँ रागपरक रहती हैं उनका योग तो पहिले अधिकरणोंमें कह दिया है; इस अधिकरणमें तो जो रागके साथ अर्थप्रयोजन भी रखती हैं उनका योग कहा है ॥ ५३ ॥

[इत्यर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारा वेश्याविशेषाश्चाष्टापञ्चाशं प्रकरणम् ।]

---

१ इस पाठके बाद किसी किसी पुस्तकमें लिखा हुआ है कि–"अपराजुर्नभुजबल-मल्लराजनारायण-महाराजाधिराज-चौलुक्यचूडामणि-श्रीमद्वीसलदेवस्य भारतीभाण्डागारे श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां वैशिकमधिकरणं समाप्तम् । क्वचिच्च वीसलदेवस्य स्थाने महीमल्लदेव इति शोधितम् ।" अपर अर्जुनके समान भुजबलवाले, मल्लराजोंके नारायण, राजाओंके राजा एवम् चौलुक्यवंशके प्रधान श्रीमान् वीसलदेवके भारतीभण्डारमें श्रीवात्स्यायनप्रणीत कामसूत्रकी जयमङ्गला टीकाका वैशिक अधिकरण पूरा हुआ । किसी २ पुस्तकमें वीसलदेवके स्थानमें महीमल्लदेव यह पाठ शुद्ध करके रखा है । चौलुक्य एक क्षत्रियवंश है । वीसलदेव एक ऐसे राजा हुए हैं जिनकी कि प्रसक्तिमें लिखा हुआ है कि–

"आविन्ध्यादाहिमाद्रेर्विरचितविजयः तीर्थयात्राप्रसङ्गाद्,
उद्ग्रीवेषु प्रहर्षान् नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रपन्नः ।
आर्य्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छविच्छेदनाभिः,
देवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलः क्षोणिपालः ।"

जब वह तीर्थ यात्राके लिये गया तो हिमालयसे लेकर विन्ध्यतक सब राजाओंको बसने जीता तथा जब उन्होंने शिर झुकाया राजी तो हो गया । जिसने भारतसे यवनोंको मिटाकर इसका आर्य्यावर्त नाम फिर चरितार्थ कर दिया, ऐसा शाकंभरीका स्वामी वीसलदेव प्रसन्न रहे तथा जगतमें सदा जयको प्राप्त हो । इस लेखसे पता चलता है, कि कामसूत्रकी जयमङ्गलाटीका अत्यन्त प्राचीन है । इसने बड़े २ स्वाभिमानी हिन्दू राजाओंके सरस्वतीभवनोंकी शोभा बढ़ाई है ।

इति[1] श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां वैशिके षष्ठेऽधिकरणेऽर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारा वेश्याविशेषाश्च षष्ठोऽध्यायः ।

साधारणरूपसे स्त्रियोंको दो कोटियोंमें बाँटा जा सकता है, एक तो रागके कारण पुरुषके साथ प्रवृत्ति करनेवालीं तथा दूसरी वे जो रागके साथ अर्थका भी उद्देश लेकर प्रवृत्त होनेवालीं । पारदारिक जो कहा है वह मुख्यरूपसे रागकी प्रवृत्तिको लेकर कहा है, क्योंकि पराई नारी परपुरुषपर कामके वेगसे आकुल होकर ही प्रवृत्त होती है; चाहे तो वह काम उपायोंसे चेताया जाय चाहे स्वतः ही जग जाय, पर वेश्याओंका जो योग होता है वह राग और जीविका दोनोंके लिये होता है, इस कारण इस वैशिक अधिकरणमें राग और धन दोनोंके कारण प्रवृत्त होनेवाली वेश्याओंका योग भी बता दिया है । यद्यपि इस कथनपर यह शंका हो सकती है कि वसन्तसेनाने निर्धन चारुदत्तके पास क्या धन देखा था ? 'कामकंदला' किस धनकी चाहमें माधवानलके मरनेकी सुनते ही मर गई थी? इसके सिवा और भी अनेकों वेश्याएँ ऐसी ही सुनी जाती हैं फिर कैसे मान लिया जाय कि इनकी दोनों ही कारणोंसे होती है, केवल रागके लिये नहीं होती ? यह कथन सत्य है कि कहीं वेश्याओंका भी निरपेक्ष सत्य अनुराग देखा जाता है, पर इनकी वेश्यास्वभाव बने पीछे वेश्याकी प्रवृत्ति धनको लेकर ही होती है। हो सकता है कि दूसरेका त्याग उसपर रंग ला दे जिससे पीछे वेश्या भी रागिणी बन जाय; जिस तरह कि वसन्तसेनाने कहा है कि—" एवमेव मान्यन्ते भवन्तः " इसी लिये तो आप चाहे जाते हैं । पर यह नहीं हुआ कि राह चलतेपर विना विचारे गुण अवगुण देखे ही इतनी चाहने लगी हो । अतः कोई भी वेश्या हो उसकी

---

१ कामकलामें परमचतुरा सुन्दरीके विरहसे कतरायेहुए गुरुके दिये हुए इन्द्रपाद उपनामवाले श्रीयशोधरकी बनाई हुई सूत्रोंके भाष्योंको एकत्र करनेवाली 'जयमङ्गला' नामक वात्स्यायन-कामसूत्रकी टीकाका वैशिक नामक छठे अधिकरणके 'अर्थ, अनर्थ, अनुबन्ध और इनके संशयके विचारका प्रकरण तथा वेश्याविशेषप्रकरणवाला छठा अध्याय पूरा हुआ । तथा उक्त छठा अधिकरण भी पूरा हुआ । यह टीकाकारका परिचय प्रत्येक अध्यायके अन्तमें आया है पर हमने इसका कहीं अर्थ नहीं किया, इस कारण यहां कह देना उचित समझते हैं । इसके देखनेसे तो यही पता चलता है कि टीकाकारने अपनी प्रेयसीके वियोगसे अकुलाकर उसके द्वारा जो अनुभव प्राप्त किया था उसे संसारके कल्याणके लिये टीकाके रूपमें प्रकट कर दिया है । प्राप्त जयमंगला भी यहीं पूरी होती है ।

प्रवृत्तिके राग और धन दोनों ही कारण होते हैं । जो वेश्याएँ कुलाङ्गनाओंकी तरह रागसे प्रवृत्त होकर जिसपर दीवानी हुई यावज्जीवन उसीकी बनकर रहीं वे किसी पापके लेशसे वेश्याके घर पैदा हो गई हैं। वास्तवमें वे कुलल्ल-नाओंसे भी बहुत बढ़ी चढ़ी हैं, मैं उन्हें वेश्या कहनेके लिये तैयार नहीं हूं। जो परनारियाँ अर्थ और रागके कारण परपुरुषगामिनी बनती हैं उन्हें भी उत्तम समझना, कुलनारीका मान देना भूलसे ही सना हुआ है । मैं धनसे रागके पतन अधिक देखता हूं, जहां कुबेरके धन भण्डार भरे हुए हैं यह राग वहां भी अपना चमत्कार दिखाये विना नहीं रहता । इसका आवेश बड़े २ किलोंको तोडकर बाहिर पहुँचा, शाहोंको फकीरोंकी सूरतमें करके भी शान्त न हुआ । एकवार रूसके शाही घरानेकी लड़की एक परम निर्धनके साथ विवाह करके झोंपड़ियोंमें रहनेके लिये उल्लसित हुई थी। उद्वाहके बाद पिताने पूछा तो उस लड़कीने यह जवाब दिया कि–'मैं मेरे प्यारे पतिके साथ झोपड़ियोंका रहना महलसे अच्छा समझती हूं । ' यह है केवल रागकी बात । जहां राग और लाभ दोनों हों वहांका तो कहना ही क्या है ? जो धनको देखकर राग पैदा करती हैं या जिनकी धन और राग दोनोंके लिये प्रवृत्ति होती है वे वेश्याएँ हैं, क्योंकि ये धन भी लेती हैं और प्रेमपात्र भी बनती हैं तथा ये भी दोनोंको लेकर प्रवृत्त होती हैं । इन सबमें विशुद्ध धर्म व पुत्ररूप फलके लिये सहवास करना सबसे उत्तम है । वह धर्मतः पतिपत्नी बने हुए व्यक्तियोंमें ही हो सकता है अतः इनका गार्हस्थ्य जीवन उत्तम है । बाकी तो सब इनके व्यवहारोंकी नकल है। यही कारण है कि विद्वान् पुरुषोंका राग धर्मपत्नीको छोड़कर न तो परकीयामें होता है एवम् न वारवधू ही उनके हृदयको खींच सकती हैं । सौन्दर्य्यके उपासक व्यक्ति जो भी कुछ करें उन्हें सब कुछ कम है ! ये प्रेमी नहीं होते न इनमें वास्तवि-कता रहती है । यही कारण है कि पाहिले जिसकी रूपराशिपर मुग्ध होकर धूल छानते फिरते हैं अपना मतलब बने पीछे उसकी ओर देखते भी नहीं। इन्हें इस बातकी बिलकुल विस्मृति हो जाती है कि यह वही व्यक्ति है जिसके एक नजारेके लिये मैं तरसा करता था, यह वही सौन्दर्य्यकी राशि है जिसने मेरे मनपर जादू पटक रखा था । वे अपनी राजसी और और तामसी वृत्ति-योंके प्रवाहोंमें सब बातोंको वहा देते हैं। एक दुर्दशाग्रस्त सौंदर्य्य-मूर्तिकी कहानी हमने सुनी थी कि कभी उसके एक नजारेके लिये दस २ हजारके घोड़े बाँधे जाते थे, कभी वह समय आया कि धनीकी दुकानसे उसे

चार आना भी प्राप्त न हुए। ठीक प्रेमियोंकी दशा इससे उलटी है, वे किसीका सच्चा हित तथा सच्ची सेवा करनेके लिये प्रेम करते हैं। वे अपने प्रेमीको सुखदशामें उसे भले ही भूल जायँ पर दुःखकी दशामें तो वह उनका धन ही होता है। भगवान् कृष्णने कहा है कि—"मैं मेरे प्रेमियोंको कभी नहीं भूलता; सदा धनराशिकी तरह याद करता रहता हूं।" सच्चे प्रेमी वास्तवमें ऐसे ही होते हैं, वे चाम—चमक व धनपर मरनेवाले नहीं होते। वे आत्मभावसे झुकते हैं, उनका प्रेम आत्मतत्त्व तक पहुँच जाता है, वे प्रत्यक् चेतनमें आत्माको चीह्नते २ परवासुदेवतक पहुँच जाते हैं। यही अवस्था प्रेमीके विश्वप्रेमी बननेकी होती है। यही प्रेमपथ भगवच्चरणोंके पास पहुँच सर्वोच्चलाभके रूपमें परिणत होजाता है। इसकिे लिये वेदके ये अक्षर चरितार्थ होते हैं कि—

" ॐ यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र कः शोकः को मोह एकत्वमनुपश्यतः॥ "

प्रेमदेव अन्तमें अपने सच्चे उपासकको उत्तम स्थान दिलाते हैं, इस कारण रागका रूप समझकर सच्चे प्रेमस्वरूपको ही प्राप्त करना चाहिये। जो रागको छोड़ अपने इष्टमें प्रेमबुद्धि करते हैं वे सदा कल्याणके भाजन हैं॥ ५३॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म—तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके छठे
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त॥

समाप्तं चेदं वैशिकं नाम षष्ठमधिकरणम्।

औपनिषदिकं नाम सप्तममधिकरणम् ।

पुरुषार्थप्रभा भाषाटीकोपेतम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सुभगंकरण प्रकरण ।

अधिकरणके कहनेका कारण ।

जो विश्वगुरुकी कृपासे गुरुके चरणोंकी उपासना करके प्राप्त की जाय उस गुप्तविद्याका नाम 'उपनिषद्' है। जिस अधिकरणमें उन गुप्त विद्याओंका उपदेश हो उसका यह नाम है यह पहिले भी कह चुके हैं। यहां यह जिज्ञासा होती है, कि इस अधिकरणको क्यों कहा? इस प्रश्नका उत्तर स्वयम् ही सूत्रकार पूर्वपर्य्यालोचनाके साथ कहते हैं कि—

व्याख्यातं च कामसूत्रम् ॥ १ ॥

कामसूत्रका व्याख्यान कर चुके ॥ १ ॥

कामशास्त्रकी जो साधारण विधियाँ हैं उन्हें बता चुके। अब इस शास्त्रमें जो रहस्य विषय हैं; जिन्हें कि कोई २ ही जानते हैं उन्हें बताते हैं ॥ १ ॥

तन्त्रोक्तैस्तु विधिभिराभिप्रेतमर्थमनधिगच्छन्नौपनिषदिकमाचरेत ॥ २ ॥

कामसूत्रकी बताई हुई विधियोंसे जिस किसीको चाही हुई वस्तु न मिले तो वह औपानिषदिक अधिकरणके बताये हुए उपाय करे ॥ २ ॥

कामशास्त्र—तंत्र और आवाय इन दो भागोंमें विभक्त है, यह इसी ग्रन्थके पहिले अधिकरणके प्रथम अध्यायमें कह दिया गया है। यदि ऐसा अवसर आ उपस्थित हो कि उपाय आयतनसंप्रयोग और अंगसंप्रयोगोंको प्राप्त करनेमें नाकामयाब रहें तथा रति पैदा करनेके उपाय आलिङ्गन चुम्बन आदि रति न पैदा कर सकें तो वहां इस अधिकरणकी बताई हुई विधियोंका उपयोग होता है ॥ २ ॥

---

१ जो अनेकों उपायोंसे न प्राप्त हो सके उस परिस्थितिमें अलौकिक उपाय बतलाना तथा जहां यह हालत हो कि अनेकों अतिदेशोंके किये भी कार्य्यका निर्वाह न हो एवम् कालान्तरसंक्रान्ति व भावान्तरसंक्रान्ति व यंत्रोंकी कमजोरीसे मामला ठीक न बैठता हो तो वहांके लिये इस अधिकरणको समझना चाहिये। यानी महर्षि वात्स्यायनका संसारी मनुष्योंके गृहजीवनको उत्तम बनानेका यह अचूक अन्तिम उपाय है।

सौभाग्यशाली बनानेवाले ।

सबसे पहिले सौभाग्य नहीं तो कुछ नहीं इस कारण सबसे प्रथम सौभाग्य करनेके ही उपाय बताते हैं कि—

रूपं गुणो वयस्त्याग इति सुभगंकरणम् ॥ ३ ॥

रूप, गुण, आयु और त्याग ये चार बातें मनुष्यको सौभाग्यशाली बना देती हैं ॥ ३ ॥

जिन नायिका और नायकोंमें नायक और नायिकोचित सब बातें हों पर रूप, गुण, आयु और त्याग न हो तो सब कुछ फीका हो जाता है । कामसूत्रके पूर्व बताये उपाय ऐसे दम्पतियोंके जीवनको सुखमय नहीं बना सकते। यदि युवक वा युवती हों पर कुरूप व कुरूपा हो तो चाहकी वस्तु नहीं बन पाते, रूप भी हो पर अवस्था न हो तो वह भी अपना रंग नहीं दिखा पाता । ये दोनों बातें हों पर दूसरे गुण न हों तो भी कोरे ही समझे जाते हैं । यदि सब बातें हों उनमें आपसमें एकके लिये एकका त्याग न हो तो भी उनकी प्रीति नहीं बढ़ पाती, इससे उत्तम रति नहीं होती । इस कारण कामसूत्रकारने इन चारोंको सौभाग्य करनेवाला बताया है । सुन्दरता व सुघराहटका रूप नाम है। यहां रूपके ग्रहणमें लावण्यका भी ग्रहण समझना चाहिये, क्योंकि विना चमकके रूप भी उतरा हुआ ही समझा जाता है। विद्या आदि उत्तम गुण, सनसनाती युवावस्था तथा धनी होकर प्यारेके लिये धनका उपयोग व उत्तम कार्य्योंमें दान भी मनुष्यको अच्छा बना देते हैं ॥ ३ ॥

सौन्दर्य्यादिकारक ।

तगरकुष्ठतालीसपत्रकानुलेपनं सुभगंकरणम् ॥ ४ ॥

तगर,कुष्ठ (कूठ) और तालीशपत्रका लेप करना अपनेको सुभग करना है॥

तगर, कूठ और तालीसपत्र इन तीनों चीजोंको बराबर लेकर पानीमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे सौंदर्य्य बढ़ता है । ऐसे लेपोंकी यही विधि होती है, कि स्नानसे पूर्व किये जाते हैं, सूखनेसे पहिले ही उतार दिये जाते हैं । वैद्यकशास्त्रने कुष्ठको कान्तिकर बताया है तथा त्वचाके रोगोंके नष्ट करनेमें इसका अधिक उपयोग किया है । तगर और तालीशपत्रको रक्तदोषनाशक माना है । मुझे यह लेप मुखका प्रतीत होता है, क्योंकि वैद्यकशास्त्रने इन तीनों चीजोंको मुखके सौन्दर्य्यके बढ़ानेवाले लेपोंमें दिखाया है। हमने दोनों

शास्त्रोंके मुखकी सुन्दरता बढ़ानेवाले योगोंको इसमें रखा है वहां देख लेना चाहिये ॥ ४ ॥

मुखशोभा बढ़ानेवाले ।

कामशास्त्रने जो मुँहकी शोभा बढ़ानेवाले योग बताये हैं उन्हें यहीं दिखाते हैं । जौका छना साफ चून, मुलहटी, सफेद सरसों और लोध इन सबको बराबर लेकर खूब पीसकर पानी मिला, मुखपर लेप करनेसे मुख सोनेसा चमकता है । पके हुए बड़के पत्ते, कचनार, महुआ, प्रियंगु, कमल, सहदेई, हरिचन्दन, लाख, केशर और पठानीलोध इनको समभाग ले पानीमें पीसकर लेप करे तो मुँह चाँदकी तरह चमकता है । वाग्भटने कहा है, कि–हेमन्तमें बेरकी गुठलीकी मज्जा (मींगी), बांसेकी जड़का छिलका, शाबरलोध, पीली सरसों इन सबके चूर्णमें पानी मिलाकर लेपसे चहरा चमकता है । कोकजी इस मज्जाके साथ गुड, मधु और नवनीत (मक्खन) और ले रहे हैं, कि–'इनके लेपसे अंगोंका सौन्दर्य्य बढ़ता है ।' य शिशिरमें कटेरीकी जड़, काले तिल, दारुहलदीका छिलका और वितुष जौ इनको समभाग लेकर पानीमें घोटकर लेप करे । इसी तरह वसन्तमें कुशाकी जड़, सफेद चन्दन, खस, शिरीषकी छाल, सौंफ, सांठीके चावल। ग्रीष्ममें कुमुद, कमल, कह्लार, दूब, मुलैठी, सफेदचन्दन। वर्षामें अगर, तिल, खश, बालछड़, तगर, पद्मकाष्ठ। और शरदमें तालीसपत्र, गुन्द्रपटेर, पुण्डरीक, मुलहठी,काँस,तगर और अगर इन वस्तुओंको बराबर ले पानीमें घोटकर लेप करे तथा सूखे पहिले ही उतार दे । शार्ङ्गधरने रक्तचन्दन, मंजिष्ठा, लोध्र, कुष्ठ, प्रियंगु, वटके अंकुर और मसूर इनके लेपको तथा बिजोरे नींबूकी जड, मैनाशिल, घी, गोवरका रस इनके लेपको मुखकी कान्ति देनेवाला माना है ।

मुहांसे, दाग और झाई ।

अब मुहांसे, दाग और झाइके निवारणके उपाय आयुर्वेद और कामशास्त्र दोनोंसे लिखते हैं, क्योंकि इनका निवारण ही मुखकी कान्ति बढ़ानेवाला है ।

" लोध्रवचाधान्याकैर्यौवनपिटकापहो लेपः ।
गोरोचनान्वितेन च लेपो मरिचेन तादृक्षः ॥ "

लोध, धनियाँ और वच इन तीनों चीजोंको बराबर लेकर जलमें पीसकर मुखपर लेप कर अथवा काली मिरचके साथ समभाग गोरोचन ले, पानीमें पीसकर लेप करे । यह कोकने कहा है इसमें शार्ङ्गधर भी संमत है । इसके सिवा ये बड़के पीले पत्ते, चमेली, रक्त चन्दन, कूठ, दारुहलदी, इनका लेप

भी मुहांसोंपर कहते हैं। मुखके दाग अर्जुनवृक्षकी त्वचाके मक्खनके लेपसे या शहद, मँजीठ इनके मक्खनके लेपसे अथवा सफेद घोड़ाके खुरकी राखके मक्खनके लेपसे चले जाते हैं। काली झाईं आकके दूधमें हलदी पीसकर लगानेसे चली जाती हैं। मुखके दागों और झाईंको मिटानेके लिये काले तिल, काला जीरा, सिद्धार्थ (श्वेत सरसों) इन सबको बराबर लेकर पानीमें पीसकर लेप करना चाहिये।

सौन्दर्यकर उबटन।

कामसूत्रके अनुवादक श्रीकोकाने लिखा है कि—

" तिलसर्षपरजनीद्वयकुष्ठकृतोद्वर्तनानि भजमानाः।
कान्ति हसन्ति हेम्नो बिभ्रति सौरभ्यमधिकं च॥ "

तिल, श्वेत सर्षप, दोनों हलदी और कुष्ठ इनका उबटन करनेसे सोनेके रंगको भी हँसता है एवम् अधिक सौरभ प्राप्त करता है। इसमें तेल भी अवश्य रहना चाहिये।

" निम्बारग्वधदाडिमशिरीषकल्कैः सलोध्रकैः स्त्रीणाम्।
रजनीयुतमुस्तैः स्यादङ्गानां सुन्दरो भागः॥ "

नींब, अमलतास, अनार, लोध, हलदी, नागरमोथा इनका चूर्ण करके तेल मिला उबटन करनेसे स्त्रियोंका शरीर सुन्दर होजाता है। इनके साथ चनेका चून आदि भी रहने चाहियें।

एतैरेव सुपिष्टैर्वर्तिमालिप्याक्षतैलेन नरकपाले साधितमञ्जनं च॥ ५॥

इन्हें ही अच्छी तरह पीस बत्ती बनाकर उसपर लभेड कर बहेड़ेके तेलसे मनुष्यके कपालमें अंजन बना ले॥ ५॥

तेल बनानेकी जो रीति है उसी रीतिसे बहेड़ेका तेल बना ले या निकाल ले। फिर शुभनक्षत्र तथा शुभवारमें इस रीतिसे मनुष्यकी खोपड़ीमें स्याही पाड़नी चाहिये। इसका अंजन लगानेसे मनुष्यकी आंखोंमें आकर्षणशक्ति बढ़ जाती है जिससे देखनेवाला मोहित हो जाता है। कामरत्नने इस योगको इस प्रकार कहा है कि—

".तालीशकुष्ठतगरैः परिलिप्य वर्तिं, सिद्धार्थतैलसहितां दृढपट्टबद्धाम्।
पुंसः कपालफलके विनिपातितेन, तेनांजनेन वशतां किल याति लोकः॥"

रेशमके सूतकी बत्ती बनाकर उसे तगर, तालीशपत्र और कूठके चूर्णमें लभेडे तथा श्वेत सरसोंके तेलसे भिगोकर मनुष्यकी खोपड़ीमें अंजन पाड़ ले, यह लोकवशीकरण है। इन दोनोंमें तेलोंका ही अन्तर रहता है कि एकके यहां बहेड़ेका तो एकके यहां सरसोंका ॥ ५ ॥

सुभगंकारी तेल।

पुनर्नवासहदेवीसारिवाकुरण्टोत्पलपत्रैश्च सिद्धं तैल-मभ्यञ्जनम् ॥ ६ ॥

×पुनर्नवः—साठी, सहदेवीः—सहदेई, सारिवा—अनन्तमूल, कुरण्ट—(लालफूलका पियाबाँसा) और उत्पल—नीलोफर, इन सबके सिद्ध किये हुए तेलको लगाना ॥ ६ ॥

सांठी, सहदेई, अनन्तमूल, पियावाँसा, नीलोफर इन सब चीजोंकी जड़ नियत समय लेकर इनका श्वेतसरसोंका तेल बनवा ले, इससे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। ये सब ओषधियाँ वशीकरणप्रयोगोंमें तंत्रशास्त्रोंमें कही हैं। इनमेंसे जिस दिन लेनेका जिसका विधान हो उसीदिन उखाड़े, क्योंकि विना विधिके उत्तम फल नहीं होता ॥ ६ ॥

सुभगमाला।

तद्युक्ता एव स्रजश्च ॥ ७ ॥

इन सब चीजोंको मालामें लगाकर पहिनना ॥ ७ ॥

इनका यह फल होता है कि जिसका साथ चाहता है उसकी दृष्टिमें सुभग जचता है। जो उसे देखते हैं वे सब उसे सुभग ही देखते हैं ॥ ७ ॥

चटनी।

पद्मोत्पलनागकेसराणां शोषितानां चूर्णं मधुघृताभ्या-मवलिह्य सुभगो भवति ॥ ८ ॥

सूखे हुए पद्म, उत्पल और नागकेसरके चूर्णको शहद और घीके साथ चाटकर सुभग होता है ॥ ८ ॥

+ पुष्यमें पुनर्नवा, कृष्णपक्षकी चौदश वा अष्टमीको व्रत रहकर सहदेई, पुष्यको अनन्त-मूल, सिद्धको पियावांसा तथा पुष्यको नीलोफर लेनी चाहिये। वशीकरणके कार्य्य दुपहरसे पहिले सप्तमी या दशमीके दिन शनिवारके दिन विशेषके अकथनमें करे, नहीं तो उन्हीं वारोंमें करे जो जहां बताये हों। नवमी और अष्टमीमें मोहन कर्म किया जाता है।

ये सब चीजें तान्त्रिक विधिसे लाकर सुखा ली जाती हैं। पीछे चाटनेके कार्यमें आती हैं। छाया शुष्कका अधिक उपयोग होता है ॥ ८ ॥

लेप।

तान्येव तगरतालीसतमालपत्रयुक्तान्यनुलेपनम् ॥ ९ ॥

इन्हीं चीजोंमें तगर, तालीसपत्र, और तमालपत्र मिलाकर लेप करे ॥९॥

ऐसे लेप प्रायः मुखपर किये जाते हैं, इनसे मुखकी कान्ति बढ़ती है, जिससे दूसरोंको मनोहर लगता है ॥ ९ ॥

गंडा।

मयूरस्याक्षितरक्षोर्वा सुवर्णेनालिप्य दक्षिणहस्तेन धारयेदिति सुभगंकरणम् ॥ १० ॥

मयूर (मोर) वा तरक्षु-(चीते) के नेत्रको सोनेमें मँढ़वाकर दायें हाथमें धारण करे। ये सुभग करनेके प्रयोग हैं ॥ १० ॥

इन दोनोंमेंसे किसीके नेत्र शुभ दिन व नक्षत्रमें लेकर सोनेमें मँढ़ाकर हाथमें गण्डेकी तरह बाँध ले। इससे सौभाग्य बढ़ता है ॥ १० ॥

बादर और शंखमणि।

तथा बादरं मणिं शङ्खमणिं च तेषां चाथर्वणान्योगा-न्गमयेत् ॥ ११ ॥

इसी तरह बादरमणि और शंखमणि हैं पर इनके अथर्वण योगोंको जान ले॥

नीचे लिखी हुई विधिसे दक्षिणावर्त शंखको गण्डे डोरके रूपमें पहिनना अथवा बदरको इसी रूपमें पहिनना बादरमणि है ॥ ११ ॥

उदाहरणके लिये शङ्खमणिकी विधिको मयअर्थके दिखते हैं—

दक्षिणावर्त छोटे शंखको लेकर सोनेमें मढ़ा ले, फिर उसे नीचे लिखे हुए मन्त्रोंसे पंचाग्निहोत्री सच्चे श्रोत्रिय ब्राह्मणसे अभिमन्त्रित करा ले। पीछे गलेमें बाँध ले। उन मन्त्रोंको हम यहीं रखते हैं—

"वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥ "

आकाशसे, वायुसे और बिजलीसे पैदा हुआ है यह ज्योतिके ऊपर विराजमान है ऐसा यह सोनेसे सुशोभित हुआ व सोना देनेवाला शंखरूपसे वा रूपके कारण होनेवाले पापोंसे इसे बचाये ॥ .

" यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्रिणो वि षहामहे ॥ "

जो चमकीलोंसे पहिले समुद्रसे उत्पन्न होता है उस शंखसे राक्षस व राक्षसों जैसे नीचकर्म करनेवाले नरपिशाचोंको नष्ट करके अनुचित भोगोंके खानेकी इच्छावालोंको परास्त करते हैं ॥

" शङ्खेनामी वाममतिं शङ्खेनोत सदान्वा ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥ "

जिस बुरी मतिसे जीव दुर्व्यसनोंका रोगी होजाता है उस दुर्मतिको इस दक्षिणावर्त शंखसे सदाके लिये मिटाय देते हैं । सबका उपाय चाहनेवाले हमारे लिये शंख ही रूप और सोनेसे होनेवाले पापोंसे बचाये ॥

" दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्य्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः आयुष्प्रतरणो मणिः ॥ "

हे दक्षिणावर्त ! आप स्वर्गसे आये समुद्रमें प्रगटे दूसरे लोगोंने तुम्हें समुद्रसे ही लाकर रखते हैं, ऐसे सोनेसे लभेड़ हुए शंख, रूप और सोनेसे होनेवाले पापोंसे हमें बचाओ । आप तो आयुको बढ़ानेवाले तथा दुर्व्यसनोंसे आयुभर बचानेवाले हैं ॥

" समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।
सोऽस्मान् सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ॥ "

जैसे अन्धकारको चीरकर भगवान् सूर्य्य उदित होते हैं, उसी तरह समुद्रसे यह दक्षिणावर्तरूप मणि प्रकट हुआ है । यह इस बालिकाको देव और असुरोंके आयुधोंसे सब ओरसे बचाये ॥

" हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥"

आप तेजस्वियों या सोनोंमें एक हो, आप सोमसे उत्पन्न हुए हो । रथमें एक आप ही सुन्दर हैं, निषङ्गमें आप ही चमकते हैं, इसे आयु भर पापोंसे बचाना हमें दुःखोंसे पार करना ॥

" देवानामस्थि कृशनं बभूव, तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः । तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे, दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभिरक्षतु ॥ "

देवोंकी हड्डियाँ पतली की गई थीं उनका बुरादा पानीके भीतर सजीव विचरता था, उसीसे दक्षिणावर्त शंख उत्पन्न हुआ, यही मैं तेरे गलेमें बाँधता हूं, इससे दीर्घायु और तेज प्राप्त होगा। यह दक्षिणावर्त मणि तेरी रक्षा करे॥

परिचारिकाके विवाहकी विधि ।

विद्यातन्त्राच्च विद्यायोगात्प्राप्तयौवनां परिचारिकां स्वामी संवत्सरमात्रमन्यतो धारयेत् । ततो धारितां बालां मत्वा लालसीभूतेषु गम्येषु योऽस्याः संह(घ)-र्षेण बहु दद्यात्तस्मै विसृजेदिति सौभाग्यवर्धनम् ॥१२ ॥

देनेवाले स्वामीको चाहिये कि–' विद्यातन्त्र अथवा विद्यायोगोंसे युवावस्थामें प्रविष्ट हुई परिचारिकाको दूसरोंसे एकवर्ष तक बचाये । इस प्रकारसे बचाई हुई परिचारिकाको दूसरे लोग बाला मानकर अवश्य चाहेंगे । चाहनेवाले योग्य पुरुषोंमेंसे जो जिद्दाजिद्दीमें बहुतसा धन दे उसीके सुपुर्द कर दे । यह परिचारिकाके सौभाग्यके बढ़ानेकी विधि है ॥ १२ ॥

गत अधिकरणोंमें यह कहा गया था कि परिचारिकाके विवाहकी विधि औपनिषद अधिकरणमें कहेंगे। इसकारण यहां परिचारिकाके विवाहकी विधि बताते हैं । पहिले यह नियम रहा करता था कि जो परिचारिका जिस घरमें पैदा होकर वहीं युवावस्थाको प्राप्त हुई हो तो उस घरवाले उसके साथ पुत्रीभाव बरता करते थे, आज भी सुज्ञ पुरुषोंके यहां यही बात देखनेमें आती है । वह भी यहां तक कि जिन राजपूत घरानोंमें मांस चलता है वे घरके पैदा हुए बकरेका मांस न वर्तेंगे, खरीदे हुएका ही काममें आ सकेगा । कादम्बरीकी इच्छा चन्द्रापीडसे विवाह करनेकी थी पर आप तो अपनी प्रतिज्ञाके कारण नहीं कर सकी, किन्तु अपने ही घरमें युवती हुई अपनी प्यारी परिचारिकाको अपने बदलेमें अपने प्यारेके संगका आनन्द दिलवाकर अवश्य सुखी हुई थी । जो दासोंका व्यापार करते थे उनके यहां इस प्रकार लड़कियाँ परिचारिकाएँ बेची जाया करती थीं पर संसारमें यह व्यापार आज कहीं लुकेछिपे ही हुआ करता होगा । अब इसकी पूर्व जैसी दशा नहीं है हां, यह अवश्य होता है कि राजकुमारोंके भुक्तशेषको खानेवाले दासोंको राजकुमारोंकी शादीके समय राजकुमारियोंके साथ ये अवश्य दे दी जातीहैं१२

वेश्याकी बेटीके विवाहकी विधि ।

गणिका प्राप्तयौवनां स्वां दुहितरं तस्या विज्ञानशील-रूपानुरूप्येण तानभिनिमन्त्र्य सारेण योऽस्यै इदमिदं च दद्यात्स पाणिं गृह्णीयादिति संसाध्य रक्षयेदिति ॥ १३ ॥

गणिका लड़कीको युवावस्थामें प्रविष्ट होनेके बाद, जिन संपन्न छैलोंको अपनी लड़की जैसा सुचतुर, सुशील और सुन्दर देखे, उन्हें जाम पीने, गाना सुनने आदिके बहानेसे बुलाकर उनके बीचमें यह घोषित कर दे, कि—'जो कोई मेरी बेटीको इन इन वस्तुओंको देगा मैं अपनी इस लड़कीका व्याह उसीके साथ कर दूंगी, इस प्रकार करके अपनी लड़कीको चरित्रहीनतासे बचाये रहे' ॥ १३ ॥

१७१ वें पृष्ठमें वेश्याको भी नायिका बताया है। १९६ वें पृष्ठमें बताया गया है, कि—' घोटकमुख वय:प्राप्त असंसृष्ट वेश्या बालिकाको सातवीं नायिका मानते हैं,' इसपर एक टिप्पणी भी हमने दी है। ९०४ वें पृष्ठमें गमनके कारणोंमें बताया है, कि—'जिनके यहां वेश्याजीवन है वे उपमर्दोंके अभ्यासके लिये भी गुपचुप विश्वासी पुरुषोंके साथ समागम कराती हैं। इस तरह वय:प्राप्त एवम् अभ्यस्त बालिकाका विवाह, वेश्याएँ जिस रीतिसे करती हैं वह इस सूत्रमें दिखाई गई है। इस विषयको साहित्यकोंने जिस प्रकार लिया है यह ९७१ वें पृष्ठसे ९७४ तक बता चुके हैं। वास्तवमें यह 'कन्याभासा' यानी दिखावटमात्रकी कन्या होती है, कि अभीतक इसने पुरुष संग नहीं किया। यह विवाह प्राय: धनके लोभपर ही अधिक होता है जैसा कि अपहारवर्माने कर लिया था। उसकी चरित्रहीनतासे इतनी ही रक्षा रखी जाती है, कि वह उसे जाहिर नहीं होने देतीं, क्योंकि प्रसिद्ध हुए पीछे तो मामला ही दूसरा हो जाता है। अब भी यही रीति सुनी जाती है, कि वेश्याएँ अपनी बेटीके लिये पहिलेसे घोषणा कर देती हैं, कि जो कोई इतना देगा वही इसे पायेगा ॥ १३ ॥

बेटीकी कारगुजारी।

सा च मातुरविदिता नाम नागरिकपुत्रैर्धनिभिरत्यर्थं प्रीयेत ॥ १४ ॥

उस लड़कीको चाहिये कि—'अपनेको इस प्रकार दिखाती हुई कि मा जानती ही नहीं' उन रँगीले धनी छैलोंसे अत्यन्त प्रेम करे ॥ १४ ॥

आनेवाले पुरुषोंमेंसे वेश्यामाता जिसे इस योग्य समझती है कि इसके झुकानेसे इससे इच्छित रकम मिल सकती है तो उसीसे प्रेम करनेके लिये

वेश्या अपनी बेटीको इशारा कर देती है । यह मेल अर्थके लिये होता है, इस कारण 'प्रयोज्योपस्थापन' प्रकरणमें जो २ विधियाँ बताई हैं वे सब हाथोंसे गुह्याङ्गके स्पर्शतक पूरी करके उसे इतना अन्धा बनाया जाता है, कि कामान्ध होकर शीघ्र ही उसकी माकी माँग पूरी कर देता है ॥ १४ ॥

छैलोंका दर्शन ।

तेषां कलाग्रहणे गन्धर्वशालायां भिक्षुकीभवने तत्र तत्र च संदर्शनयोगाः ॥ १५ ॥

वह लड़की उन्हें जब कलाग्रहणके निमित्त अपने घर आयें उस समय अथवा गन्धर्वशाला तथा भिक्षुकीके घर या जहाँ मौका देखे वहाँ देखे ॥१५॥

वेश्याओंमें जो अनेक रंजन आदि लोकयात्राएँ रहती हैं उनका अनुभव प्राप्त करानेके लिये लोग अपने युवकोंको वेश्याओंके यहां भेजा करते थे । वे वृद्धवेश्याएँ उन्हें अपनी नीतिका पूर्ण अनुभव कराया करती थीं । जब ऐसे भले घरके लड़के अपने घर आय तो वेश्याएँ अनजानकी तरह उनसे मिलनेके लिये अपनी बेटीको मौका दे दिया करती हैं । जहां नगरके शौकीन लड़के गाना बजाना सीखते हैं वहां वेश्या बालिका भी सीखने चली जाती हैं । वहां बातेंचीतें करनेका मौका मिल जाता है । भिक्षुकी भिकारिनको कहते हैं इसे दूतियोंमें गिनाया है, इस कारण इससे दूतियोंका घर समझना चाहिये। वेश्याएँ अपनी बालिकाओंसे इस प्रकार भी कराती हैं। वेश्याग्रहणसे कुलटा, स्वैरिणी और प्रकाशविनष्टाओंका भी ग्रहण होता है, क्योंकि इनका भी यही हाल रहता है, यानी ये भी प्रायः अपनी बेटियोंका अपनी ही गद्दियाँ देना चाहती हैं। दूती भी वेश्याकी समझाई हुई ही रहती है । इन युवकोंमेंसे कारणवश भी प्रत्यक्षके लिये तयार होजाते हैं ॥ १५ ॥

पाणिग्रहण ।

तेषां यथोक्तदायिनां माता पाणिं ग्राहयेत् ॥ १६ ॥

जो जो वस्तु देनेके लिये कहते हैं वे सब चीजें देनेवाले हों तो माता उनके साथ पाणिग्रहण करा दे ॥ १६ ॥

---

१ इस मेल करानेमें वेश्या बड़े चारित्रोंके काम लेती है, उसे अपनी लडकीको प्रतिक्षण सचेत रखना पडता है, सच पूछा जाय तो इस बीचकी शिक्षा भी वेश्या-हृदय बनानेके लिये बड़े काम आती हैं।

वैदिकविधिसे मंत्रसंस्कार नहीं होता, किन्तु वेश्या अपने वेशको निमंत्रण देकर इसका उत्सव मनाती हैं यही पाणिग्रहण है। इसके सिवा दूसरा कोई नहीं है। वेश्याओंके जितने उपकरण कमरे व सजाने आदिके सामान आदि होते हैं तथा नगदी भी रहती है, यह सब वेश्याकी परिस्थितिके अनुसार होता है यानी सम्पन्न व गाने बजानेवाली वेश्या होती हैं तो ऐसे अवसरोंपर बहुत बड़ी २ रकमें ऐंठ लिया करती हैं नहीं तो साधारण ही है। इस प्रकारका गमन दूसरे वेश्यागमनोंसे अच्छा रहता है पर परिणाम अच्छा नहीं ॥ १६ ॥

विना मिले भी मिलेकी प्रसिद्धि।

तत्तावदर्थमलभमाना तु स्वेनाप्येकदेशेन दुहित्रे एतद्दत्तमनेनेति ख्यापयेत् ॥ १७ ॥

जो कुछ उसने नियत किया है यदि उतना धन न मिले तो भी अपने ही छिपे धनको दिखाकर कह दे, कि–'यह सब मेरी लड़कीको उसने दिया है'॥

जो टुचे व टुचियोंका सौदा है तो वे पहिले ही ले लेती हैं कि जहां बहुत दिनोंका कार्य्य रहता है वहां देयवस्तु भी पीछेको रह जाती है। जितना ठहरा है उतना न मिले और वेश्या इस बातको न छिपावे तो बेटीके सौभाग्यमें फरक आता है अतः बेटीके रूप, लावण्य, गुण और यौवनकी प्रशंसाके लिये वेश्याको यह झूंठा आडम्बर भी करना पड़ता है। यदि नहीं दिखावी तो वेश्याओंके लवरगुट्टे रकम बढ़ाकर अवश्य दूसरोंसे बोलते फिरते हैं। बड़ी रमकके दिखानेसे छैलोंमें 'सखीजनः श्लाघितरूपसम्पद्' यह बात अवश्य हो जाती है ॥ १७ ॥

धन ऐंठनेके लिये राजदरबार।

प्रच्छन्नं वा तैः संयोज्य स्वयमजानती भूत्वा ततो विदितेष्वेवं धर्मस्थेषु निवेदयेत् ॥ १८ ॥

---

१ किसी साहित्यकने लिखा है कि–किसी सुन्दर भव्य युवाने किसी वेश्या बालिकासे इसी प्रकार विवाह करके छः मासतक साथ किया। एक दिन वह सुन्दर युवक अचानक अपनी प्रेयसीके सामने रोने लगा। वह रोता क्या था उसके प्रत्येक आंसूके रूपमें हृदयकी अन्तर्वेदना टपक रही थी। बालिका इसे पति मानकर स्वच्छन्द बैठी थी। प्यारेके आँसू देखकर पहिले तो अधीर होकर रो उठी और पीछे रोनेका कारण पूछा तो युवकने किसी तरह हिलकियाँ थाम, मन्दे स्वरस टूटे फूटे अक्षरोंमें कहा, कि–"तुम्हारी मासे इतने दिनके बारह हजार रुपये ठहरे थे वे पन्द्रह दिनमें पूरे हो जायँगे, मेरे पास रुपया नहीं, फिर मैं तुम्हें देख भी न सकूंगा ॥"

+ छिपे तौरपर उनसे मिलाकर आप अनजानसी हो जाय, जब इस बातकी खबर अधिकारियोंतक पहुँच जाय तो आप स्वयम् उन छैलोंके विरुद्ध कोटतक चली जाय ॥ १८ ॥

जिन घरानोंको सदाचारी प्रतिष्ठित व आप्त समझा जाता है उनके घरके भोले बालकोंको गुमराह बनवाकर पहिले तो उन्हें अपनी लड़कीका दीवाना बना डालती हैं जब वे परदेसे बाहिर आ जाते हैं तो आप अपने हर्जानेके लिये कोर्टतक पहुँचनेका इरादा करती हैं । या तो उसके घरके इस हल्लेको सुनकर राजी कर ही देते हैं नहीं तो कोर्टसे वसूल कर ही लेती है । इसी कारण उसे अधिकारियोंसे मेल रखनेके लिये कहा गया है ॥ १८ ॥

प्राच्य देशकी वेश्याओंकी रीति ।

सख्यैव तु दास्या वा मोचितकन्याभावामुपगृहीतकामसूत्रामाभ्यासिकेषु योगेषु प्रतिष्ठितां प्रतिष्ठिते वयसि सौभाग्ये च दुहितरमवसृजन्ति गणिका इति प्राच्योपचाराः ॥ १९ ॥

सखी वा दासीके द्वारा कन्याभाव छुटाकर कामसूत्रके रहस्योंका अभ्यास कराती हैं । जब वह अभ्यासके योगोंमें पूर्ण प्रतिष्ठित हो जाती है एवम् युवावस्थामें पूरी प्रतिष्ठा पा जाती हैं तथा बेटीका भाग्य चमचमा जाता है तब वे अपनी लड़कीको छोड़ देती हैं । यह पूर्वकी वेश्याओंका अपनी लड़कीके साथ व्यवहार होता है ॥ १९ ॥

मासे बेटी शरमायेगी, इस कारण आप संकेत कर देती हैं । पीछे उसी वेश्याकी दासी वा सखी बाकीके सब काम पूरे कर देती हैं । पीछे शादी आदिकी रस्में पूरी करके, वेश्याचरित्रमें निपुण बनाकर स्वतंत्र छोड़ देती हैं, जब आवश्यकता पड़ती है तब बुला लिया करती हैं ॥ १९ ॥

ब्याहके साथ एकसाल ।

पाणिग्रहश्च संवत्सरमव्यभिचार्यस्ततो यथाकामिनी स्यात् ॥ २० ॥

+ यह सूत्र प्रकरणवश लिख दिया है नहीं तो इस प्रकारके कार्य्य सिवा इस बातके लिये कि फलाने फलाने भी यहां गुपचुप दीवाने रहे । दूसरा और कोई लाभ होता हो यह नहीं समझता । भलाईकी नहीं ? किन्तु रूप, लावण्य आदिकी प्रसिद्धी भले ही हो जाय ।

जिस पुरुषने अपनी लड़कीका पाणिग्रहण किया हो एक सालतक उसके साथ रहने दे, पीछे जो उसे चाहे या जिसे वह चाहे उसके साथ खेलने कूदने दे ॥ २० ॥

एक सालतकका तो नियम ही है। पीछे इस बातको बालिकाकी इच्छापर छोड़ दे, यदि वह और भी अधिक उसके पास ही चाहे तो उसकी इच्छाका व्याघात न करे। यदि न रहना चाहे तथा जिस २ से मिलना चाहे उस २ से मिलने दे। माकी ओरकी एक सालकी तो परम अवधि है, शुल्कके अनुसार कमसे कम एक रातितक पहुँच जाता है। वेश्याओंके दरबारमें इस मिलनेवालेका कुछ मान अवश्य रहा करता है ॥ २० ॥

निमन्त्रणपर अवश्य जाना।

ऊर्ध्वमपि संवत्सरात्परिणीतेन निमन्त्र्यमाणा लाभमप्युत्सृज्य तां रात्रिं तस्यागच्छेदिति वेश्यायाः पाणिग्रहणविधिः सौभाग्यवर्धनं च ॥ २१ ॥

सालके बाद भी जब व्याहा पति बुलाये तो उस समय लाभको भी छोड़कर उस रातिको उसके पास विना भी किसी लाभके रहे। यह वेश्याकी बेटीके विवाह और सौभाग्यका विषय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

होता भी ऐसा ही है यदि वह बुलाता है तो वेश्याएँ सम्मानके साथ उससे मिलती हैं तथा इसमें अपना गौरव समझती हैं ॥ २१ ॥

रंगाजीवियोंकी कन्याओंका विवाह।

एतेन रङ्गोपजीविनां कन्या व्याख्याताः ॥ २२ ॥

यही व्यवस्था रङ्गसे जीविका करनेवालोंकी लड़कियोंकी है ॥ २२ ॥

रंगकी जीविका नट किया करते हैं। जो पेसेकस हैं उनके यहां भी वेश्याओंकी ही सारी विधियाँ बरती जाती हैं। मालवेकी तरफ ऐसे नट अधिक सुने जाते हैं। पहाड़ी स्थानोंमें कहीं २ नायकोंमें भी यही ढंग देखनेमें आता है। यहां जो रंगजीवी ग्रहण किया है यह उन जातियोंकी तरफ,

---

१ होता होगा कभी ऐसा जब कि नाट्यशालाओंपर इसी जातिका अधिकार था। अब तो इनके जिम्मे बांसपर चढ़ना या दूसरे २ कार्योंसे पेट भरना है। आज तो नाट्यके स्टेजपर हर तरहके लोगोंका अधिकार है पर हिन्दूला स्वांग भरनेवालोंको इतना महत्त्व नहीं देता जितना कि नाट्यदर्शक दिया करते हैं।

संकेत कर दिया है जिनमें वेश्याजीवन रहता है और गृहस्थका रूप भी, उनके यहां भी लड़कियोंके साथ उनका वेश्याओं जैसा ही व्यवहार होता है। मुख्य मतलब यह कि जिनके यहां ऐसी व्यवस्था है उनके यहां लड़कियोंके साथ यही व्यवस्था है ॥ २२ ॥

इनके योग्य पुरुष।

तस्मै तु तां दद्युर्य एषां तूर्यविशिष्टमुपकुर्यात् । इति सुभगंकरणम् (एकोनषष्टितमं प्रकरणम्) ॥ २३ ॥

पर नट अपनी लड़कीको उसे दे जो इनके गाने बजानेमें उपकारी हो। यह सुभगंकरण नामक उनसठवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ २३ ॥

नट अपनी लड़कीका व्यावहारिक विवाह किसके साथ करें इस विषयमें कहते हैं कि–' जो इनकी लड़कीको गाना बजाना सिखा दे। ' या यह समझिये कि–' नट धनकी तरफ न देखकर गुणकी तरफ देखें एवम् जिसमें अधिक रंग विद्या देखें उसीके साथ अपनी लड़कीको छोड़ दें ' ॥ २३ ॥

वशीकरण प्रकरण।

महर्षिने अबतक जो ' सुभगंकरण ' के नामपर उपाय बताये थे वे तो इस प्रकारके थे, कि प्रयोक्ता पहिले स्वयं चाहकी चीज बन जाय; जिसके सामने आते ही प्रयोज्यपर आप ही असर पड़ जाय। अब ऐसे उपाय बताते हैं जिनसे कि प्रयत्न करके वश कर ले। यद्यपि पूर्व प्रकरण भी एक प्रकारका वशीकरण ही है, किन्तु इसमें वे विधान हैं जो अपनेको विना ही सुभग बनाये प्रयोज्यको वश किया जाता है, इसी कारण पूर्व प्रकरणसे भिन्न कहा है ॥

वशीकरण साधन लेप।

संप्रयुक्त कामिनीके यन्त्रयोगके समयका दीर्घकण्डूतिनिवारण तथा स्पर्शसुखानुभूति ही माने हुए सुखके साथ वशवर्ती रहते हैं। इनके साथ दूसरे २ विचित्र सौरभ तथा स्पर्श चमत्कार जहां मिले वहांका सुख मोहक

---

१ जिन्होंने इस कार्यको मुख्यरूप दे रखा है ऐसे हीन घराने आदिके लोग अपने बालकोंको ऐसे ही पुरुषोंके साथ रखनेमें गौरव समझते हैं जो कि स्टेजपर प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। जो आजके नाट्यसंसारसे परिचित हैं वे मेरी इस बातसे यथेष्ट समझ सकते हैं, क्योंकि जो जिस बातमें निपुण रहता है वह उसे अधिक प्रियकर होता है यह इस संसारका सहज स्वभाव है।

होजाता है, इस कारण साधनके लेपको बताते हैं जिससे पुरुषव्यंजनमें इन बातोंकी वृद्धि होनेके कारण मोहकता आ जाय। यह विचित्र वशीकरण है इसी कारण दिखाते हैं कि—

धत्तूरकमरिचपिप्पलीचूर्णैर्मधुमिश्रैर्लिप्तलिङ्गस्य प्रयोगो वशीकरणम् ॥ २४ ॥

धतूरा, कालीमिरच और छोटी पीपलके चूर्णमें शहद मिलाकर लिंगपर लेप करनेसे जो सम्प्रयोग है वह वशीकरण है ॥ २४ ॥

धतूरेका पञ्चाङ्ग पुष्यके दिन लेना चाहिये, फिर उसे कालीमिरच और पीपलके साथ कूट शहदमें मिला सहवास करनेसे दो घण्टे पहिले लेप करना चाहिये एवम् यन्त्रसंयोग लेपको कपडेस साफ करके करना चाहिये। यह बात हरएक लेपमें ध्यान रखनी चाहिये, क्योंकि पार आदि यदि भीतर चले जायँ तो सदाके लिय नुकसान कर देते हैं ॥ २४ ॥

वशीकरण बुरकी।

साधनलेपसे वशीकरण तो उसीका किया जा सकता है जिससे कि संप्रयोग प्राप्त होता हो पर जिससे यह नहीं है उसके वश करनेकी भी विधि बताते हैं कि—

वातोद्भ्रान्तपत्रं मृतकनिर्माल्यं मयूरास्थिचूर्णावचूर्णं वशीकरणम् ॥ २५ ॥

वातोद्भ्रान्तपत्र, मृतके निर्माल्य और मोरकी हड्डीके चूर्णका अवचूर्ण उत्तम वशीकरण है ॥ २५ ॥

---

१ या पुष्यमें पुष्प, भरणीमें फल, विशाखामें शाखा, हस्तमें पत्र एवम् मूल नक्षत्रमें मूल, लेना चाहिये। इस विधिका कृष्ण धत्तूर स्वयं ही मोहक है। विना भी इस विधिसे लिये कुछ गुण अवश्य दिखा जाता है। इस योगमें आई हुई छोटी पीपल और काली मिरचके साथ ब्रह्मदण्डी और ताडका फल चूर्णकर शहद मिलाकर लेप करनेसे वेश्याएँ भी तड़फती हैं। ऐसा कुचुमारने कहा है।

२ "शवमाल्यं वातोत्थं ग्राह्यं पत्रादि वामहस्तेन।
अस्थि मयूरचकोरयोरपि सर्वं विचूर्ण्य यस्य पदे।
यस्याः शिरसि च विकिरेत्।"

इस श्लोकका अर्थ और सूत्रका अर्थ एक है। इसमें मोरकी हड्डियोंके साथ चकोरकी हड्डी और ले रहे हैं। श्री कोकाजी महाराज—

मुर्देकी अस्थि या लाशके सिरानेके पड़े हुए जो पत्ते माला या दूसरी चीजें हवासे उड़कर दूसरी जगह गई हों उन्हें बाँये हाथसे उठाये तथा उसी हाथसे मोर या चकोरकी भी यथावकाश हड्डी ले । इन सब चीजोंकी बुकनी बनाकर जिसके शिरपर या पैरोंके नीचे बखेर देगा उसका अवश्य वशीकरण होगा, पर इस प्रयोगको सदाचारी मंत्र ओषधियोंका ज्ञाता करे । यह स्त्री पुरुष दोनोंका वशीकरण है इसे दोनों काममें ला सकते हैं ॥ २५ ॥

स्नान ।

अब वह स्नान बताते हैं जिसके करनेसे देखनेवाला प्रयोज्य आप ही वश हो जाय, यह उपाय उस समयका है जब कि बुकनी न डाल सके-

स्वयंमृतायाः मण्डलकारिकायाश्चूर्णं मधुसंयुक्तं सहामलकैः स्नानं वशीकरणम् ॥ २६ ॥

अपने आप मरी हुई गृध्रीके चूर्णमें शहद मिलाकर आमलोंके साथ लगाकर स्नान करना भी प्रयोज्यका वशीकरण है ॥ २६ ॥

यह कार्य्य उस दिन, उस नक्षत्र तथा उसी वारको करना चाहिये जो तांत्रिक सिद्धान्तके अनुसार अनुकूल हो । स्नान करके साध्यके पास जाना चाहिये जिससे वह देख सके, वे दिन वे ही हैं जो वशीकरणके लिये नियत हैं । दूसरे तांत्रिक वशीकरण प्रयोगमें लाल गृध्रीभी वर्तते हैं ॥ २६ ॥

दूसरा साधन लेप ।

वज्रस्नुहीगण्डकानि खण्डशः कृतानि मनःशिलागन्धपाषाणचूर्णेनाभ्यज्य सप्तकृत्वः शोषितानि चूर्णयित्वा मधुना लिप्तलिङ्गस्य संप्रयोगो वशीकरणम् ॥ २७ ॥

थोरके गड़ीलोंको टुकड़े २ करके उनमें मनःशिला (मैनशिल) और गन्धपाषाण (गन्धक) को लपेट सात बार सुखा ले । फिर उसका चूर्ण करके शहदके साथ लिंगपर लेप करके सहवास करनेसे उत्तम वशीकरण होता है २७

-" शव शिरसि स्थितमाल्यं, जीवंजीवकमयूरयोरस्थि ।
सव्यकरेण गृहीतं, वात्यावर्त्तोत्थितं पत्रम् ।
चूर्णं विकीर्णमेषां वशयति नारीनरौ शिरःपदयोः ॥ "

आँधीके उड़ाये पत्ते, सिरानेकी माला तथा जीवञ्जीवक चकोरकी जगह कहते हैं यह शब्द-जिसके दर्शन मात्रसे सर्पका विष उतर जाय उस पक्षीको कहता है तथा चकोरको भी कहता है ' वह पक्षी मिलना कठिन है तथा कुचुमारने चकोर पढ़ा है तथा जीवंजीवक शब्दका अर्थ भी चकोर ही होता है, इस कारण चकोर अर्थ करना ही ठीक है ॥

×थोरके टुकड़े जलदी नहीं सूखते जब कुछ लगे हुएको चिपटा समझे फिर कुछ ढुचलकर लिभेड़ ले । इस प्रकार सातबार करके छायामें सुखा ले, फिर दो घंटे पहिले लेप करे, पीछे पोंछकर संगम करे ॥ २७ ॥

दूसरे २ साधनलेप ।

(१) कदम्बके पत्तोंका महीन चूर्ण शहद मिलाकर लेप करे । (२) समभाग सेंधानमक, पीपलामूल, मुलहठी इनके चूर्णको कैथके रसमें मिलाकर लेप करे । (३) कौंचकी फलीके रोमोंके चूर्णमें सेंधानमक, शर्करा और शहद मिलाकर लेप करे । (४) लज्जालुके बीज, मुलहटी या महुएके फूल, कूठ इनके चूर्णका शहदमें मिलाकर लेप करे । (५) घुड़वच, जलजमनी, बाकुची, जुहीका फूल, गुलाबके फूल और वृश्चिकालीका चूर्ण शहदमें लेप करे । (६) इन्द्रजव, पठानी लोध, खस, मंजीठ, श्वेतसरसों इनके चूर्णका शहदके साथ लेप करे । (७) शहदके साथ पुनर्नवाके पत्ते अथवा वानरका शेक घीके साथ ' ओं नमः त्रिशूलिने कर्णाय ठः ठः ' इससे अभिमन्त्रित करके लेप करे । (८) मनुष्यका दाँत, सेंधानमक, रूपामाखी या सोनामक्खी शहदके साथ लेप करे । इसको ' ओं अप्सरा विमानश्च ठः ठः ' का ८०० जप करके अभिमन्त्रित करके लगाये । (९) कन्नेरका गोंद, छोटी पीपल और चाँवलका चूर्ण शहदमें मिलाकर लेप करे, ' ओं नमोनमस्स ठः ठः ' इसे ८०० वार जप, अभिमन्त्रित करके । (१०) छोटी पीपल, चावल, गोखरू, कटेरीके फल इनका चूर्ण शहदमें मिलाकर ' ओं नमस्स ठः ठः ' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके लेप करे । (११) छोटी पीपल, चावल, लोध, तगर, उत्पलगन्ध, बाँबींकी मिट्टी सब बराबर ले शहद मिलाकर लेप करे । (१२) पीली जुहीके फूल, कदम्बके फल इनके चूर्णका शहदके साथ लेप करे । (१३) सेंधानमक, मधु, कबूतरका मल लेप करके सहवास करे

× इस योगको कुचुमार इस तरह कहते हैं कि—

" गन्धकमनःशिलाभ्यां भूयः खण्डानि भावयेत् स्नुह्याः ।
पिष्ट्वा विशोष्य चैवं मधुयुक्तोऽयं ध्वजालेपः ॥
रमयन् वशयति कान्ताम् ॥ "

थोरके दण्डोंके छोटे २ टुकड़े करके उनमें गन्धक और मैनशिलकी वारबार भावना दे यानी उन्हें गन्धक और मैनशिलके चूर्णमें लपेट २ कर रख दे । जब वे उसको सुखा लें तब दुबारा फिर लगा दे, जब वह लिभड़ जाय और गीले दीखें तो फिर लगा ले, पीछे छायामें सुखाकर पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करके सहवास करनेसे स्त्री वश होती है ॥

(१४) रीछका मेढ़, कपूर और मधु इनका लेप करे । (१५) गोरोचन, कपूर, पारा, केसर, चन्दन, धतूरेके रसमें लेप करे । इन दोनों योगोंको ज्योतिरीश्वर और नित्यनाथ दोनोंने कहा है । (१६) मोरशिखा वा इन्द्रायण लज्जावन्तीके साथ वराङ्गमें रखनेसे वशीकरण होता है । (१७) भांगरेका चूर्ण, लज्जावन्ती, ईश्वरमूल और श्वेत आककी जड़का लेप करे । (१८) गोरख, चिलमिल, रुदन्तिका, घीकवारका वराङ्गमें लेप भी वशीकरण है । (१९) विष्णुक्रान्ता, श्वेत आककी जड़, लाजवन्ती और मोरशिखाका लीके किसी भी अंगपर लेप करे ॥

सोनेका चाँद ।

एतेनैव रात्रौ धूमं कृत्वा तद्धूमतिरस्कृतं सौवर्णं चन्द्रमसं दर्शयति ॥ २८ ॥

इन चीजोंके चूर्णका रातमें धूँआ करके दूसरेके धूएँसे ढका चाँद सोनेका दीखता है ॥ २८ ॥

धूँआके वल चाँदको सोनेका दिखातीवार इस वातका ध्यान रहना चाहिये, कि देखनेवालेकी आंखोंके सामने चांदसे पहिले धूआँ आना चाहिये, क्योंकि सोनेका दरसाना धुएंका ही कार्य्य होता है ॥ २८ ॥

कन्या व्याहनेकी दूसरी बुरकी ।

एतैरेव चूर्णितैर्वा नरपुरीषमिश्रितैर्या कन्यामवाकिरेत्सान्यस्मै न दीयते ॥ २९ ॥

अथवा इन्हीं चीजोंके चूर्णमें अपना या वन्दरका विष्ठा मिलाकर जिस कन्याके शिरपर डाल देगा वह दूसरेको नहीं दी जा सकेगी ॥ २९ ॥

इसी प्रकरणके २७ वें सूत्रमें जो मैनासिल और गन्धककी भावना दिये हुए थूहरके टुकड़ोंका चूर्ण बताया है उसमें अपना विष्ठा मिला जिसके शिरपर

---

१ नरस्य विष्ठायुक् । यस्याः शिरसि किरेद्वा पृष्ठं तस्यैव सा लगति ॥ यहां उसी बुकनीमें प्रयोक्ता मनुष्यके गूके साथका प्रयोग बता रहे हैं । सूत्रमें 'वानरपुरीषमिश्रितैः' यहां वा पृथक् है पूर्व सूत्रके साथ इसका पक्षान्तर बताता है । जो केवल बन्दरके गूको ही बुकनीमें मिलानेके लियेकहते हैं वे गलत हैं । इसके पहिलेका पाठ २७ वें सूत्रकी टिप्पणीमें कह चुके हैं ।

कोका-"चूर्णमिदमरुणवानरविष्ठाक्तं मूर्ध्नि कीर्य्यते यस्याः ।
तामुद्वहेत कन्यां कमनीयाङ्गीमभव्योऽपि ।"

इस चूर्णके साथ लालवन्दरकी विष्ठा मिलाकर जिस सुन्दरी कन्याके शिरपर डाल देगा वह उसे मिलेगी चाहे प्रयोक्ता कुरूप ही क्यों न हो ॥ ०

डाल देगा उस कन्याका निश्चय ही वशीकरण होजायगा वह अपनेपर आप ही आसक्त हो जायगी ॥ २९ ॥

दोनोंकी बुरकियां।

अब उन बुरकियोंको बताते हैं जो तंत्र और कामशास्त्र दोनोंमें बरती जाती हैं—

"कृष्णोत्पलं[1] मधुकरस्य च पत्रयुग्मं, मूलं तथा तगरजं सित-
काकजङ्घा। यस्याः शिरोगतमिदं विहितं तु चूर्णं दासी
भवेज्झटिति सा तरुणी न चित्रम्।"

नलोफर, भौंरेके दोनों पंख, पोहाकरमूल, तगर, श्वेत चोंटली, इन सब चीजोंका चूर्ण जिसके शिरपर डाला जाय वह दासी हो जाय तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। इसे नित्यनाथ, कल्याणमल्ल तथा ज्योतिरीश्वर तीनोंने कहा है। वेल तथा मँजीठकी किसी जड़के एक कणके भी पड़ जानेसे उसी क्षण वश हो यह नित्यनाथके वचन हैं। किसी पोहकर मूल और तगरके स्थानमें केवल तगरमूल ही रखा है।

"मृतमाल्यवात्यपत्रे मधुकर[3]पत्रे तथोर्ध्वदन्तयुगम्।
भूतदिने निशि कन्यापेष्यं सर्वं श्मशानतले॥
विकिरेद्यस्याश्चाङ्गे सा तूर्णं तद्वशं याति।
लोकजनानुग्रहतो योगोऽयं सूरिभिः कथितः॥"

मृतककी माला, मृतकके हवासे उड़े पत्ते, दो दो मधुकरके पत्ते, मनुष्यके ऊपरके दाँत, इन सब चीजोंको चतुर्दशीके दिन रातमें कन्यासे श्मशानमें पिसवा ले। इस चूर्णको जिसके शिरपर डालेगा वही वशी होगी। दूर्वा, गोरोचन, ताड़के बीज, इन तीनों चीजोंको पीसकर 'ओं क्रीं ह्रीं श्रीं ठं स्वाहा' इस मंत्रसे अभिमंत्रित करके मुखपर डाल दे तो वश हो। इसे कुचुमार और कल्याणमल्ल दोनों मानते हैं। सप्तच्छद, शिवाक्ष और शहद इनको बराबर लेकर जिसके शिरपर डाले उसका मोहन हो।

---

१ अनंगरंगमें इसके स्थानमें 'कुष्ठमुत्पलम्–कूठ और उत्पल' यह पाठ है। २ 'पक्षौ' पाठ है। दूसरे तंत्रग्रन्थोंमें रतिकरते हुए भौंरेके पंख लेना कहा है। ३ पं० भागीरथजी स्वामीने मधुकरका अर्थ भृंगराज और मीठा जंभीर किया है तो यही दूसरे स्थलोंमें भी चल सकता है जहां कि मधुकरके पर्य्यायवाचक शब्द हैं।

वशीकरण तिलक ।

(१) लज्जावन्ती, मुलहठी, कमलगट्टा इन तीनों चीजोंको पीस स्ववीर्य्य मिला तिलक करे । (२) श्वेत आककी जड़, मँजीठ, बचा, नागरमोथा, कूठ इनका रजके साथ करे । (३) तगर, पीपलामूल, मेंढासिंगी, छोटी पीपल, जटा इनके बराबर ही पंचाङ्गमूल ले एक करके शहद मिलाकर मंगलवारको तिलक करे । (४) जो स्त्री अपने ऋतुकालके रुधिरसे गोरोचनका माथेपर तिलक करे तो वह पतिको मोह ले । (५) ओंगाकी जड़को पीसकर गोरोचनके साथ माथेपर विभूतिके साथ तिलक करे । (६) श्मशानके वटकी जड़को जलमें घिसकर तिलक करे । (७) गोरोचनके साथ सहदेईका तिलक मोहक है । (८) श्वेत विष्णुक्रान्ताकी जड़ चन्द्रग्रहणमें लाये, गोरोचनके साथ तिलक करे । (९) मैनसिल, गोरोचन इनका तिलक पानके जलके साथ करे । (१०) कुंकुम, तगर, कुष्ठ, इन सबके बराबर हरिताल इनमें अनामिकाका रक्त मिलाकर तिलक करे । (११) विष्णुक्रान्ता, भांगरा, गोखरू, गोरोचन इन्हें पीसकर गोली बना ले । पीछे उन गोलियोंका तिलक करे । (१२) पुष्यनक्षत्रके उखाड़ी सफेद आककी जड़की बकरीके मूत्रमें गोली बना ले पीछे तिलक करे । (१३) कुंकुम, चन्दन, गोरोचन, कपूर इनका गौके दूधमें तिलक करे । (१४) स्त्री गोरोचन, मछलीका पीता, बाँये हाथकी छग्गोंका रक्त मिला तिलक करे पतिवश हो । (१५) गोरोचन, खश, कुंकुम इनके तिलकसे वशीकरण होता है । (१६) चिलमिल, सहदेई और लज्जावन्तीका तिलक मोहक है । (१७) भाँगरेका चूर्ण, व धतूर भी तिलकमें मोहक है । धूप–(१) देवदारु, तगर, वच, कालाकूठ, कस्तूरी और सफेद चन्दन इनके सारकी धूप मोहक है । (२) शृंगी, वचा, युवति, जुही, सर्जरस, त्रुटि (इलायची), चन्दन, इनकी धूप दे । चन्दन, कुंकुम, कटेरी, कालागुरु, सुगन्धितफूल, मुरहटी, देवदारु, इन्हें शहदमें मिलाकर धूप दे । नागपुष्प, प्रियंगु, तगर, पद्मकेशर, जटामांसी और नींवका चूर्ण ले इससे अपने शरीरको धूप देनी चाहिये । 'ओं मूली मूली महामूली सर्व संक्षोभय २ एभ्य उपद्रवेभ्यः स्वाहा ' इस मंत्रसे अभिमंत्रित करके धूप दे । चरण लेप व स्पर्श–(१) मनुष्य रतिके अन्तमें बाँये हाथसे अपना वीर्य्य लेकर सहसा स्त्रीके बाँये पाँवके तलुएमें लगा दे तो वह स्त्री दासी बन जायगी । इसे ज्योतिरीश्वर, कल्याणमल्ल और नित्यनाथ तीनों कहते हैं । (२) इसी तरह रतिके अन्तमें जो स्त्री बाँये पैरसे गुप्तरूपसे

पतिके साधनको छू देगी वह पति उस स्त्रीके वश होगा । (३) रतान्तमें अपने वीर्य्यको ले कामदेवका स्मरण करके तरुणीके हृदयपर लगा दे। नित्यनाथका पतिवशीकरण—'ओं काम काम मालिनि पतिं मे वशमानय ठः ठः' इस मंत्रसे अभिमंत्रित कर दाडिमका पंचाङ्ग और श्वेत सर्षपका योनिमें लेप करके रमण करे । पूर्वोक्त प्रकारसे कपूर, देवदारुका शहद मिलाकर लेप करे । चीतेके फूल शहद्में मिलाकर पतिको खिलाये । भोजपत्रका शहदके साथ वराङ्गमें लेप करे ।

देवकान्त अनुलेपन ।

वचागण्डकानि सहकारतैललिप्तानि शिंशपावृक्षस्कन्धमुत्कीर्य निदध्यात् । षड्भिर्मासैरपनीतानि देवकान्तमनुलेपनं वशीकरणं चेत्याचक्षते ॥ ३० ॥

बचाके टुकड़ोंको आमके तैलमें लिप्त करके शीशमकी मोटी पीड़में खोद-कर रख दे, छः मासतक रखी रहने दे, बादमें निकाले। यह देवकान्त अनुले-पन उत्तम वशीकरण है, ऐसा जाननेवाले कहा करते हैं ॥ ३० ॥

परम सुगन्धित आमकी गुठलीका तेल निकाला जाता है । पीछे बचाके टुकडोंको उसमें कई दिनके लिये डाल दिया जाता है, पीछे उन्हें निकालकर सीसमकी पीड़में रखकर सीसमसे ही जैसेका तैसा ढक दिया जाता है । वहां कुछ निशान रखा जाता है जिससे कि पहिचान बनी रहे । नहीं तो थोड़े दिनोंमें वृक्ष अपने व्रणको बराबर कर लेगा तो पता भी न चलेगा । इसका अनुलेप देवकान्त तो यों है कि यह देवसत्त्वापर भी हाथ साफ कर जाता है ॥ ३० ॥

गन्धर्वकान्त अनुलेपन ।

तथा खदिरसारजानि शकलानि तनूनि यं वृक्षमुत्कीर्य निदध्यात्तत्पुष्पगन्धानि भवन्ति । गन्धर्वकान्तमनुलेपनं वशीकरणं चेत्याचक्षते ॥ ३१ ॥

इसी तरह खैरसारके टुकड़ोंको पतला करके आमका तेल लगाकर उसी विधिसे जिस वृक्षमें रख दोगे ये उसीकी सुगन्धिवाले हो जायँगे । इनके लेपका नाम ' गन्धर्वकान्त ' है, इसे उत्तम वशीकरण बताते हैं ॥ ३१ ॥

ये इतने पतले होने चाहियें जिससे थोड़े ही दिनोंमें आमका तेल उसके भीतर भिंद जाय । फिर इन्हें वचोंके टुकड़ोंकी तरह वृक्षमें खोंतर करके रखे तथा ढक दे । इसे भी करीब छः मास उसमें रखा रहने दे, पीछे निकाले । इसके अनुलेपनसे गन्धर्वसत्त्वापर अपना असर होता है ॥ ३१ ॥

नागकान्त अनुलेपन ।

प्रियङ्गवस्तगरमिश्राः सहकारतैलादिग्धा नागकेसरवृक्षमुत्कीर्य षण्मासनिहिता नागकान्तमनुलेपनं वशीकरणमित्याचक्षते ॥ ३२ ॥

तगरसे मिश्रित हुई प्रियंगु (कांगुनी) को आमका तेल लगाकर छः मास उसी विधिसे नागकेशरके वृक्षमें खोंतर बना रख देनेसे लेप तयार करना ' नागकान्त ' लेप है, इसे वशीकरण भी कहते हैं ॥ ३२ ॥

तगर और कांगुनीको भी उसी तरह आमके तेलमें डाल दे । जब इनमें रम जाय तो नागकेशरमें रखे। इसके अनुलेपनसे नागसत्त्वापर अधिक प्रभाव पड़ता है ॥ ३२ ॥

वशीकारमें सत्त्वादिका उपयोग ।

चित्ररत प्रकरणके अन्तमें नायिकाकी प्रकृतिके अनुसार प्रयोग करनेसे स्नेहवर्धन कहा है, इस कारण स्वभावपर भी विचार करते हैं, क्योंकि स्वभावके अनुसार किये गये प्रयोग भी वशकारक हुआ करते हैं । कोकने-देवयक्ष, नरनाग, गन्धर्व, पिशाच, काक, वानर और खर सत्त्वा बताई हैं तथा कुचुमार-देव, मुनि, गन्धर्व, रक्ष, भूत, नाग और यक्ष सत्त्वा बताते हैं । ज्योतिरीश्वर-देव, गन्धर्व, यक्ष और प्रेतसत्त्वा मानते हैं । इन सबका मत लेकर लिखते हैं कि-देवसत्त्वा—पवित्र, प्रसन्न, धनवाली, अनुचितपर क्रोधिनि, कम्बुकंठी, चतुरा, शीलवती, सन्तोषिनि, पिकबैनी व चन्द्रवदनी होती हैं । रमणके समय इसका शिर प्राची दिशामें हो । इससे छोटी पीपल, कपूर, मुलहटी, सोंठ इनको पीस इसमें सोनेपाठेका रस और शहद मिला साधन पर लेपसे इसे अधिक सुख होता है। यक्षसत्त्वा—गुरुजनोंकी लाज न करनेवाली, बाग, पान, समुद्र और पर्वतकी शैर रतिके लिये चाहनेवाली और क्रोधिनि होती है । यह कोक कहते हैं पर ज्योतिरीश्वर इसे बड़े २ स्तनोंवाली गोरी, झुकी हुई, मृगनयनी, क्रोधिनि, निर्लज्ज मिठबोलिनि और मत्स्यमांसप्रिया बताते हैं । कुचुमार-श्याम, कामली, निर्लज्ज, मत्स्यमांसप्रिया और

सुगन्धिकी चाहनेवाली बताते हैं। रतिकालमें इसका शिर नैर्ऋत्यमें करे तथा कपूर, कुंकुम, कूठ, छोटी पीपल, रोचन, इनके चूर्णमें शहद मिलाकर ध्वजलेप करके इससे रमण करे। नरसत्त्वा—सरल चित्तवाली, चतुर, अतिथिप्रिय, उपवासोंसे खिन्न न होनेवाली होती है। नागसत्त्वा—कामके वेगसे दीर्घश्वासिनी, परम फुरतीली, कुवाक्य न सहनेवाली, सत्यभाषिणी, क्रोधके समय फुंकारनेवाली, श्रमशील, झँभाई लेनेवाली, व्याकुल व सदा सोनेवाली होती है। रतिके समय इसका शिर वायव्यमें करे। केतकीके फूलका चूर्ण, शराब मिलाकर साधनपर लेप करके पीछे रति करे। गन्धर्वसत्त्वा—शान्तप्रकृति, स्वच्छ रहनेवाली, माला अतर आदि लगाये रहनेवाली, संगीत लीला व कला कुशल, मिठबोलिनि, हँसमुखी, रतिक्रीडादक्ष, सुन्दरी, गानवाद्य प्रिया, चंचल और प्रेमिनि होती है। रतिकालमें इसका पश्चिमको शिर करना चाहिये, चतुःसम, मछलीका पित्ता, कालासुरमा शहदमें मिला साधनपर लेप करके मिले। पिशाचसत्त्वा—मद्य, पललप्रिय, बहुभोजिनी और मानहीन हाती ह। काकसत्त्वा—कौवेकी तरह अच्छे बुरेका ध्यान न रखनेवाली, इधर उधर झांकनेवाली, बुभुक्षिता व डरपोक हुआ करती है। वानरसत्त्वा—विकट दृष्टिवाली, दन्तनखाघातशीला व अस्थिरचित्तवृत्तिवाली होती है। खरसत्त्वा—जो दोषोंके साक्षाद् दर्शनपर भी झूठ बोले व अपने जारोंकी छूटपट्टीमें लीन रही आये। मुनिसत्त्वा—मूषापर्णीके समान उज्ज्वल मुखवाली होती है। रतिकालमें इसका मुख उत्तर रहना चाहिये। वेंगनके फलके स्वरसके साथ सेंधा नमक, मूलसे दो अंगुलतक लगा रति करनी चाहिये। प्रेतसत्त्वा—गिरिविहारोंमें चतुर, रात्रिके घूमनेमें सिद्धहस्त, मलिन व दुष्ट चित्तवाली, कुभोजनी, मैली कुचैली व दुष्टा रहती है। भूतसत्त्वा—जाँघें छोटी, पेट बेड़ा व भक्ष्य और भोज्योंको चाहती है। रतिकालमें इसका शिर ईशानकोणमें करना चाहिये, अंजन और सैंधा नमक पीसकर शहदमें मिला साधनपर लेप करके मिलना चाहिये। रक्षसत्त्वा—मद्य और मांसको अधिक चाहनेवाली, ऊर्ध्वरतिप्रिय लाल चह होती है। इसका नैर्ऋत्यको शिर करके इससे रति करे। इसे सुरा और मांस चाहिये, यह रौद्र स्वभाववाली, प्रसन्ना एवम् कठोर बोलनेवाली होती है। वराहकी चर्बी और शहद साधनके मूलमें लगाकर रमण करना चाहिये।

कफादि प्रकृतियाँ।

सत्त्वादि, मृगीत्वादिकी तरह कफादि प्रकृतियाँ भी होती हैं। ये भी उपचारमें उपयोगी है इस कारण इन्हें भी दिखातें हैं। कफप्रकृति—जिसको हड्डियाँ, गाढें और गुल्फ मांससे ढके हों, कोमलाङ्गी, मृदुमधुरभाषिणी, तत्कालसन्तान उत्पन्न करके भी गर्म अंगोंवाली, शीघ्रस्खलिता, अतिरजा, शिशिर और वसन्तमें अच्छी व शिशिर हेमन्तमें कामार्त, चिकने नाखून, सरस आंखें, दांत चमलीले, पश्चात्ताप न करनेवाली, मानिनी, स्थिरप्रेमिनि, शीतलशरीर, मांसयुक्त योनि, विलास प्रकृति व श्यामा होती है। पित्तप्रकृति—जिसकी हड्डी ग्रन्थि और घोंटू दीखें, एवम् शिशिरमें भी गर्म रहनेवाली तथा गर्भिणीकी हालतमें शरीर कुछ शीतल हो, लघुकालमें स्खलिता, ऊष्णयोनि, वर्षा और शरदमें अच्छी, वर्षामें कामार्त, मध्यमा, गोरी, मोटेस्तन, नाखून और आखें लाल, पसीनामें कटुगन्धि, क्षणमें राजी क्षणमें अप्रसन्न, शिशिरप्रिय, ऊष्णद्वेषिणी, गरम शरीरवाली और इसका मदनमंदिर शिथिल होता है। वातप्रकृति—रूखी, शीत गरम शरीरवाली, बहुत बोलनेवाली, चिरकालतक ठहरनेवाली, संकीर्ण योनि, वसन्त और ग्रीष्ममें अच्छी, वसन्तमें कामार्त, बुद्धिमती, कार्य्यकुशल, रतिकालमें कोमल स्वरूपवाली और मृदुल होती है। यह कठोर व बहुत भाषिणी, भ्रमणशीला, काली, बहुभोजिनी, कठिनाङ्गी, बिखरे हुए केशोंवाली, कठिनतासे हाथ आनेवाली, काले नाखूनोंवाली व गऊकी जीभके समान कठिन योनिवाली होती है। जिसमें दोओंके लक्षण हों वह द्वन्द्वज तथा जिसमें तीनोंके लक्षण मिलें उसे सन्निपातज समझना चाहिये॥

पुण्य अंजन।

उष्ट्रस्यास्थि भृङ्गराजरसेन भावितं दग्धमञ्जनमुष्ट्रास्थ्यञ्जनिकायां निहितमुष्ट्रास्थिशलाकयैव स्रोतोञ्जनसहितं पुण्यं चक्षुष्यं वशीकरणं चेत्याचक्षते॥ ३३॥

ऊंटकी हड्डियोंमें भृङ्गराजके रसकी भावना देकर स्रोतोऽञ्जनके साथ जला ले और घिसकर अंजन बना ले। उसे ऊँटके हाडकी अंजनदानीमें रखे, इसे ऊँटकी हड्डीकी शलाईसे ही लगा ले। यह पुण्य है, नेत्रोंको हितकारी तथा वशीकरण है॥ ३३॥

ऊँटकी हड्डी लेकर २१ वार भृंगराजके रसमें भावना दे लेनी चाहिये, पीछे शुद्ध साफ अंजन लेकर दोनोंको पुटपाककी रीतिसे फूंक देना चाहिये। फिर इसे वारीक पीसकर ऊँटकी सुरमादानीमें रखकर ऊँटकी हड्डोकी सलाईसे ही आंजना चाहिये ॥ ३३ ॥

इसी तरह दूसरे अंजन।

एतेन श्येनभासमयूरास्थिमयान्यञ्जनानि व्याख्यातानि। (इति वशीकरणम्। षष्टितमं प्रकरणम्) ॥३४॥

इसीके द्वारा हमने श्येन, भास और मोरोंकी हड्डियोंके अंजन भी कह दिये ॥ यह वशीकरण नामक ६० वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

जो विधि ऊँटकी हड्डियोंके अंजनकी है वही विधि दूसरे २ जीवोंके हड्डियोंके अंजनोंकी भी है × जो कि इस कार्यमें उपयोगी हों। इसे तन्त्रग्रन्थोंमें देखना चाहिये ॥ ३४ ॥

वशीकरण मन्त्र।

यद्यपि कामसूत्रकारने मन्त्रोंकी ओर संकेतसा ही किया है कोई प्रतिपादन नहीं किये, किन्तु उनके अनुयायी पद्मश्री आदिकोंने इस विषयमें मन्त्र भी प्रतिपादन किये हैं। इस कारण उनका सार भी यहां रखते हैं, क्योंकि हम कामसूत्रको सबका मूल मानते हैं। पिछले सब आचार्योंने इसीके आधारपर अपनी रचनाएं की हैं, यदि य न दिखाते तो इनके अनुयायी इस विषयमें अणुमात्र भी ध्यान न देते। 'ओं क्लीं नमः' इस मन्त्रका एक लाख जप करके पलाशके फूलोंकी दशांश आहुति देनी चाहिये। इससे मन्त्र सिद्ध होता है। पीछे ध्यानमें ही जिसको पाना है उसके वराङ्गमें दीपशिखासे मन्त्रको प्रविष्ट करना चाहिये। इस प्रकारके ध्यानसे जब मंत्र करते हुए काम कमलके

× कोकने कहा है कि-

"करभास्थिभृङ्गपत्रद्रवभावितमेकविंशति वारान्।
पुटदग्धं समशैलाञ्जनसहितं चूर्णितं सम्यग्।
करभास्थिनालिकायां निहितं करभास्थि शलाकया विहितम्।
इदमञ्जनमखिलजनं जनयति वाग्वश्यवद् वश्यम् ॥"

इसका अर्थ सूत्रयोजनामें ऊपर लिखा हुआ है, इस कारण नहीं लिखा।

× काले उल्लूके दोनों नेत्र लेकर शहदमें लपेट सावधानीके साथ काजल पारे, इसका अंजन लोक वशकर है। बकरीके रक्तमें पुष्यनक्षत्रमें मन्दारकी जड पीस काजल पाड़े।

शिरपर जाता है तो द्रवण वशीकरण होता है । कोकने इन सब विधियोंको कहकर केवल ' कामेश्वर ' इतना ही कहा है तथा कुचुमारने विधिके साथ मन्त्र भी कह दिया है कि—

' ओं क्लीम् एनामानय नय वशताम् ओं क्षं नमः' इसका दश हजार जप करके दशांश १०० हवन करे। हवनमें ढाक और कदम्बके फूल हों । यह उत्तम आकर्षण होता है । ' ओं ह्रीं नमः ' इसका जप प्यारीके ध्यानमें मग्न होकर करे । कोकने इसे कुण्डलिनी कहा है। पूर्वकी तरह साध्याकी योनि, हृदय और ललाट इनपर विशेष ध्यान हो तथा मन्त्र प्राविष्ट कर दे । यदि इसका सात लाख जप कर ले तो साक्षात् काम होजाय । ' ओं मद मद, मादय, मादय, ह्सौं ह्लीं रूपिणीं स्वाहा' इसे दश हजार जपे, लाल फूलोंका हवन करे । इसे कोकनेभी लिखा है तथा बायें हाथकी अनामिकासे छूकर योनिमें पढनेपर शीघ्र द्रावित करता है यह भी कहा है। ' ओं ह्लेखे मणिद्रवे कामरूपिणी स्वाहा' लक्ष जप तथा दश हजार तिलकी आहुतियाँ दे । कोकने इस आकर्षण बताया है। ' ओं चामुण्डे हुलु हुलु, चुलु चुलु, वशमानय अमुकीं स्वाहा ' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित करके पान देने चाहियें। इसे कोकने भी माना है। ' चामुण्डे जयजम्भे मोहय वशमानयामुकीं स्वाहा ' इससे अभिमंत्रित करके फूल दे । कोकने भी कहा है ' ओं क्लं नमः ' इसका बीस हजार जप तथा दश हजार पाढलके फूलोंका होम हो, इससे यह सिद्ध होता है । इसका गले, छाती, मुख और योनिमें क्रमशः पीला, काला, श्वेत और रक्तका ध्यान करे, वश करेगा ।

कामके जप व ध्यान ।

कामका विषय चल रहा है, इस कारण कामगायत्री और उसके ध्यान आदि भी लिखते हैं कि—

' ओं मनो भवाय विद्महे कन्दर्पाय धीमहि तन्नः कामः प्रचोदयात् । '

यह कामगायत्री है, इसका जप करता हुआ अपनेको काम माने, शीघ्र वश कर सकता है । इसका सवालाख जप करके इसे सिद्ध करले । पीछे चुम्बनके छलसे अपने श्वासोंको मंत्र जपते हुए प्यारीको मिलाना चाहिये बश होगी । गायत्रीके जपके समयमें कामका ध्यान भी किया जाता है, इस कारण यह भी लिखते हैं कि—

" कनकरुचिरमूर्तिः कुण्डलाकृष्टचापो,
युवतिहृदयमध्ये निश्चलारोपिताक्षः ।

इति मनसि मनोजं ध्यायेद् यो जपस्थो,
वशयति स समस्तं भूतलं मंत्रशक्त्या।"

जिसका देह चम्पकवर्ण है, जो कानोंमें कुण्डल व उनतक धनुष खींच रखा है, युवतियोंके हृदयके बीच जिसने निश्चल नेत्र लगा रखे हैं ऐसे कामदेवका जो जप कालमें ध्यान करेगा वह अवश्य समस्त भूमण्डलको वश कर सकता है।

बीजन्यास।

कामशास्त्रके तांत्रिकोंकी यह भी प्रक्रिया रही है, कि वे अंगोंपर बीज-वर्णोंका न्यास भी किया करते हैं। यहां हम उनकी इसी रीतिको दिखाते हैं। मेरा यहां दिखानेका यही मतलब है कि कामशास्त्रके कुछ लोग इन्हें कामशास्त्रका हृदय मानते हैं। अंगुष्ठ मूलमें अ, दोनों जंघाओंमें आ, दोनों ऊरुओंमें इ, योनिमें ई, नाभिमें उ, कुक्षतटमें ऊ, स्तनोंपर ऋ, हाथोंमें ॠ, कंठमें ऌ, अधरमें ॡ, कपोलपर ए, नेत्रपर ऐ, कानोंपर ओ, शिखापर औ, सर्वाङ्गदेशपर अंअःका न्यास करना चाहिये। सर्वाङ्ग देशपर 'क्लीम्' इस कामबीजका भी न्यास करना चाहिये। जो ऊपर बीज गिनाये हैं इनके साथ बिन्दु भी लगा देनी चाहिये। इन्हें सूर्य्यसम चमकते हुए देखे तथा न्यासके बाद एक एक इष्टको देखता रहे। इसका फल पद्मश्रीने यह बताया है कि—

"इति चिन्तितमात्रेण स्त्रीणां तृप्तिः प्रजायते।
विनाऽपि योनिलिङ्गाभ्यां संसर्गेण वरानने॥"

इस प्रकार चिन्तन करनेके बाद स्त्रियोंकी तृप्ति विना भी यंत्रयोगके हो सकती है पर कामबीज सिद्ध होना चाहिये। जो धनपतिसूरि आदि कहते हैं कि–१ पाद, २ गुल्फ, ३ ऊरु, ४ भग, ५ नाभि, ६ कुच, ७ हृदय, ८ काँख, ९ कंठ, १० होठ, ११ गाल, १२ नेत्र, १३ कान, १४ ललाट, १५ शिर इन स्थलोंमें कामकलाएँ–जो श्रद्धा, प्रीति, रति, धृति, कीर्ति, मनोभुवा, विमला, मोहिनी, घोरा, मदनोत्पादिनी, मोहिनी, दीपिनी, वश-करी, रञ्जनी और मदना रहती हैं। इन स्थानोंपर बीजन्यासोंकी एकता तो इस प्रकार होगी कि–अंगुष्ठसे पाद तथा जंघासे गुल्फ ले लेंगे। तीसरा ऊरु तथा चौथा वराङ्ग पांचवीं नाभि दोनोंमें है। कुक्षतटसे हृदय तथा करसे काखें भी ले लेनी चाहियें। बाकीके अंग दोनोंने ही कहे हैं। बीजन्यासवाले शिखाश्रय और सर्वाङ्ग लेते हैं तथा कलावालोंने ललाट

और शिर ले लिया है। इस तरह उनके साथ भी कोई भिन्नता नहीं है। इसबीजन्याससे कामकलाएँ ही प्रदीप्त की जाती हैं, जिससे एकबारगी ही आनन्द मिल जाय। विधिके प्रयोगोंमें बल है, यानी विधिसे प्रयोग किया जाय तो सब कुछ हो सकता है, क्योंकि शब्द ही ब्रह्म है ॥

वृष्य (वाजीकरण) योग प्रकरण।

जिनके प्रभावसे मनुष्य घोड़के समान अप्रतिहत वेगसे सहवास कर सकता है, जिनके कि–कारण स्त्रियोंका अतिप्यारा बन जाता है, जिन द्रव्योंसे वीर्य्य व ओज बढ़ता है उन चीजोंको वाजीकरण कहते हैं। यह चरक चिकित्सास्थान अ० १ श्लो० ७ व ८ में कहा गया है तथा यही बात वाग्भटने उत्तरस्थान अ० ४० में सर्वप्रथम कही है। यह सब भाव वाजीकरण शब्दकी व्युत्पत्तिसे ही निकल आता है, इस कारण महर्षि वात्स्यायनने वाजीकरणका विवरण न करके सीधे ही वाजीकरण योगोंको रख दिया है।

उच्चटा और मुरहटीके योग।

आयुर्वेदके वाजीकरण योगोंमें उच्चटा और मुलहटीने प्रधान स्थान पाया है, इस कारण सर्व प्रथम श्रीवात्स्यायन महाराज इन्हीं दोनोंके योगको कहते हैं कि—

उच्चटाकन्दश्च यष्टीमधुकं च सशर्करेण पयसा पीत्वा वृषो भवति ॥ ३५ ॥

उच्चटाके कन्द और मुरहटीको दूधके साथ पीनेसे पुरुषको पुरुषत्व प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

उटंकणके कन्द और मुरहटीका चूर्न करके आठ आना भर लेकर दूधके साथ पीये। सुश्रुत चिकित्सास्थान अ० २६ में वाजीकरण योगोंमें लिखा है कि–' उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममिष्यते ' उच्चटा–उटंकणके बीज भी धारोष्ण दूधके साथ अच्छे रहते हैं, इसी तरह–' शतावर्य्युच्चटामूलं पेयमेव बलार्थिना ' इसी तरह धारोष्ण दूधके साथ शतावरी और उटंकणकी जड़ भी बल चाहनेवालेको पीनी चाहिये। लोलिम्बराजने उच्चटाके विषयमें कहा है कि—

" भुक्त्वोच्चटां क्षीरयुतां विलासी, भुंक्ते शतं सुन्दरि सुन्दरीणाम्।
त्वं तावदेकासि मया तु साध्य भुक्ता रतौ पश्य कुतूहलं मे ॥ "

हे सुन्दरि ! विलासी पुरुष दूधके साथ उटंकणको खाकर सौ स्त्रियोंको भी भोग सकता है। वह मैंने खाली है फिर तू तो अकेली है ! इस कारण

सब भार तुझपर है तू सावधान होकर मेरा कौतुक देखना । दवाकी रोज खानेकी तोल अपनी शक्तिपर निर्भर है पर प्रारंभमें औषधिकी मात्रा थोड़ी ही रहनी चाहिये । ज्यों २ अनुकूल बैठती जाय दवा बढ़ाता चला जाय। शुरूसे ही बड़ी २ फँकिया लगाना बहुत संभव है नुकसान कर जाय। इस उटंकणके बीजोंको मूतमें पीसकर इन्द्रियपर लेप करनेसे नपुंसकता भी दूर होती है ३५

उच्चटाका निर्णय ।

चक्रदत्तके हिन्दी टीकाकार श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी वाजपेयीने वाजीकरण प्रकरणमें आये उच्चटा चूर्णका अर्थ श्वेतगुंजाके मूलका चूर्ण ऐसा अर्थ किया है । अमरकोशमें इसे चूडालाके पर्य्यायमें दिया है । उक्त कोशके संस्कृतटीकाकारने इसे मुस्ताविशेष ठहराया है । किसीने भूम्यामलकी तथा किसीने इसे लशुनका एक भेद कहा है तथा कोई उटंकण भी कह रहे हैं । इन सब अर्थोंमें राजवैद्य पं० मुरलीधरजीने लिखा है कि—' हमारी समझमें उच्चटाका अर्थ उटंगण ही ठीक है ' तथा राजवैद्य पं० रामप्रसादजी उच्चटाका अर्थ उटंगण कर भी रहे हैं, इस कारण हमने भी उच्चटासे उटंगणका ही ग्रहण किया है । इसका विवरण निघण्टुमें है ॥

मुलहटीका उपयोग ।

मुलहटी भी अति उत्तम वस्तु है, वेद और आयुर्वेद दोनोंमें इसकी अत्यन्त प्रशंसा लिखी है । चक्रदत्तजी वाजीकरणाधिकारमें लिखते हैं कि—

' कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमान्वितम् ।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ॥ '

१ तोला मुलहटीके चूर्णको घी और शहदमें मिलाकर चाट ले और ऊपरसे दूध पीले तो मनुष्य नित्य वेगवान् रहता है । यही लोलिम्बराजने भी लिखा है । यही कारण है कि चतुर्थिकाकर्ममें प्रथम सहवासमें वेदने भी इसका उपयोग किया है कि पुरुष मुलहटीका सेवन करके स्त्रीके साथ सहवास करे। इसे भी यहीं दिखाते हैं कि—

' इयं वीरुन् मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥ '

यह मुलहटी मधुसे उत्पन्न हुई है, मैं तुझे मधुसे खोदता हूं, तू मधुमें उत्पन्न हुई हो है इस कारण हमें भी मधुर ले कर दे । इसके सेवनके बाद पुरुष स्त्रीसे कहता है कि—' मामित्किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ' जैसो

माधवी अपनी प्यारी आमकी शाखापर लिपट जाती है, उसी तरह तू मुझसे लिपट जा । इससे ' लतावेष्टितक ' आलिंगन भी सिद्ध होता है ॥

सुलभचिकित्सासागर-मुलहटीका एक तोला चूर्ण रोज घी व शहद मिलाकर दूधके साथ २१ दिन तक लेनेमें उत्तम वाजीकरण होता है ।

वाजीकरणका दूध।

इन योगोंमें कैसा दूध लेना चाहिये यह भी यहीं सुश्रुतने बताया है कि—

' गृष्टीनां वृद्धवत्सानां माषपर्णभृतां गवाम् ।
यत्क्षीरं तत्प्रशंसन्ति, बलकामेषु जन्तुषु ॥ '

प्रथमबारकी व्याई गाय जिसे उड़दका भूसा खानेके लिये दिया जाता हो, जिसका कि बच्चा चार पांच महीनेसे बड़ा हो उस गऊका दूध लेना चाहिये । जहां २ वाजीकरणमें दूधका उपयोग होता है, वहां जहांतक हालका काढ़ा दूध मिल जाय तो सबसे अच्छा है कि-' धारोष्ण दुग्धं नरः पीत्वा ' धारोष्ण दूधके साथ पीकर बल पाता है । यदि ऐसा न मिले तो औटाकर ठंडा करके ही पीना चाहिये । यदि ऐसी गऊका दूध न मिले तो दूसरे दूधोंसे भी काम चलाया जा सकता है ।

मेंढा और बकरेके अण्डकोषोंका उपयोग।

जिनके यहां मांस चलता है वे लोग जिसे उत्तम समझते हैं उस योगको दिखाते हैं कि—

मेषबस्तमुष्कसिद्धस्य पयसः सशर्करस्य पानं वृषत्वयोगः ॥ ३६ ॥

÷ मेंढा और बकरेके वृषणोंसे सिद्ध किये चीनी डले दूधके पीनेसे पुरुष वृष बनता है ॥ ३६ ॥

मेंढाके दोनों अण्डकोशोंसे दूध अलग सिद्ध करना चाहिये और बकरेके अण्डकोशोंका अलग है ये दो योग हैं। दोनोंमेंसे किसीका भी प्रयोग कर ले

÷ जिनमें अपवित्र वस्तु अथवा जीवहत्याका योग है ऐसे कार्य्योंको वाजीकरणके लिये करनेकी महर्षि वात्स्यायनकी आज्ञा नहीं है । वे ऐसे प्रयोगोंको ऐसे ही पुरुषोंके लिये कहते हैं जिनके कि काममें ये चीजें आती हैं सबके लिये नहीं । यही कारण है कि इस योगको 'नपुंसकामृतार्णव' में राक्षसयोग कहा है । इसी ग्रन्थमें ग्रन्थकर्ताके परिस्फुट अक्षर हैं कि-'मद्यमांसयुता योगा म्लेच्छानां शोभनाः स्मृताः' मद्यमांसवाले योग तो केवल म्लेच्छ व उनके खानेवालोंके लिये ही अच्छे हैं दूसरोंके लिये नहीं ॥

अथवा मिलाकर भी कर सकता है पर बल होना चाहिये। एक दिनके सेवनसे नहीं निरंतर सेवनका कार्य्य है ।। ३६ ।।

यह योग वैद्यकशास्त्रमें भी किसी रूपसे आया है उसे यहीं दिखाते हैं—

चक्रदत्त—' पिप्पलीलवणावेतौ बस्ताण्डौ क्षीरसर्पिषा ।
साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत् प्रमदाशतम् ।। '

बकरेके दोनों अण्डकोषोंको दूधमें पकाकर घीमें तलकर छोटी पीपल व नमक मिलाकर सेवन करनेसे सौ स्त्रियों तकसे भी मिल सकता है । भाव मिश्र किसीके भी घीसे भूनकर विना भी दूधके कार्य्य निर्वाह कर लेता है ।।

बस्ताण्डसिद्धे पयसि साधितानसकृत्तिलान् ।
यः खादेत् स नरो गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ।।

जिस दूधमें अण्डकोष पकाये जायँ उस दूधकी काले तिलोंमें भावना देकर खानेसे भी सौ स्त्रियोंसे सहवास कर सकता है। इन योगोंको सकल योगाधिकारमें रतिरहस्यमें कोकाजीने रखा है । इस तरह बकरेके अण्डकोषोंका प्रयोग तो यहां तथा वंगसेनमें देखा जाता है पर मेंढाके अण्डकोषोंका प्रयोग भी कामशास्त्रने किया है। मेंढा भी बकरा जैसा ही है ।।

विदारीकन्द वंशलोचन और कौंच ।

ये चीजें आयुर्वेदशास्त्रमें इन योगोंमें अधिक रूपसे वर्ती जाती तथा सद्यः फलप्रद हैं, इस कारण वात्स्यायनने अपने संग्रहमें इन्हें भी लेलिया है कि—

तथा विदार्याः क्षीरिकायाः स्वयंगुप्तायाश्च क्षीरेण पानम् ।। ३७ ।।

विदारीकन्द, वंशलोचन और कौंचके बीजोंकी भी इन तीनों चीजोंके चूर्णको दूधके साथ पीना चाहिये ।। ३७ ।।

ये तीनों चीजें मिलाकर तथा अलग २ दूधके साथ काममें लाई जा सकती हैं । इन तीनों चीजोंको मिलाकर कूट लेना चाहिये । फिर चार आना भरसे लेकर एक तोला तककी मात्रा होनी चाहिये । क्षीरिकाका अर्थ—कहीं वंशलोचन, खिरनी, क्षीरकाकोली और कहीं तवाखीर ले रहे हैं। हमारी समझमें यहां क्षीरकाकोली और वंशलोचन अर्थ लेना चाहिये ।। ३७ ।।

विदारीकन्द ।

आयुर्वेदशास्त्रने किसप्रकार केवल विदारीकन्दका प्रयोग किया है ? इसका दिग्दर्शन भी कराये देते हैं कि—

सु० चिकि० अ०२६–" विदारी मूलकल्कं तु घृतेन पयसा नरः ।
उदुम्बरसमं पीत्वा वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ "

विदारीकन्दकी १ तोलाकी गोली घी दूधके साथ पीकर बूढा भी जवानकी तरह हो जाता है। लोलिम्बराजने भी अपने अनुभूतोंमें रखा है। पं० सदानन्दजी मिश्रने ' सुलभचिकित्सासागर ' के वाजीकरण प्रयोगोंमें इसे स्थान रखा है॥

" चूर्ण विदार्य्याः सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् ।
सर्पिर्मधुयुतं लीढ्वा दशस्त्रीरधिगच्छति ॥ "

विदारीकन्दके चूर्णमें इसीके रसकी भावना देकर घी और शहदके साथ चाटकर दशसे मिल सकता है । लोलिम्बराजने भी रखा है पर बहुत भावनाएं कही हैं । पं० सदानन्दजी ५१ भावनाएँ देनेके लिये कहते हैं ।

कौंचके बीच ।

आयुर्वेदने कौंचके बीजोंको वाजीकरणमें मुख्य रूपसे बरता है, इस कारण इसका दिग्दर्शन भी कराये देते हैं—

" स्वयंगुप्तागोक्षुरयोर्बीजचूर्णं सशर्करम् ।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥ "

यहां शार्ङ्गधरने कौंचके बीजोंकी वाजीकरणमें प्रथम गणना की है कि-कौंच और तालमखानेके बीजोंके चूर्णको धारोष्ण दूधके साथ पीये । सुश्रुत-' स्वयंगुप्ताफलैर्युक्तं माषयूषं पिबेन्नरः ' स्वयंगुप्ताके फलोंकी मींगी डालकर उड़दका यूष पीये । इस तरह उड़दके यूषमें केवल कौंचके बीजोंका उपयोग कर रहे हैं। कौंचपाकमें भी कौंच मुख्य है । समभाग कौंच और खशका चूर्ण धारोष्ण दूधके साथ पीना बलवर्धक है ऐसा सुलभचिकित्सा सागरका मत है ॥

वंशलोचन ।

वंशलोचनका अलग प्रयोग नहीं पाते पर लोग करते देखे जाते हैं, किन्तु इसका प्रयोग अनेक योगोंमें देखते हैं । चरकसंहितामें टीकाकारोंने वंशलोचनका ग्रहण किया है । यह खिरनीके अर्थमें भी आता है । भावमिश्रने रतिवल्लभपूगपाकमें क्षीरिकाका विवरण क्षीरीसे किया है । वाजीकरण प्रकरणमें ही पं. रामप्रसादजी इसी स्थलमें नपुंसकामृतार्णवमें इसका ' क्षीरकाकोली ' अर्थ करते हैं, निघण्टुमें वंशलोचनके पर्यायोंमें क्षीरिकाका प्रयोग देखते हैं, क्षीरी शब्दको नहीं । शालिग्रामजीने भावप्रकाशमें इसी पाकमें क्षीरिकाका तवा-

खीर अर्थ किया है । इनमें खिरनी क्षीरकाकोली और वंशलोचन ये अर्थ हमें यहां उपयुक्त जचते हैं, क्योंकि वाजीकरणमें ये हैं ।

चिरौंजी, मुहार और श्वेतविदारी ।

तथा पियालबीजानां मोरटाक्षीरविदार्योश्च क्षीरेणैव ॥ ३८ ॥

चिरौंजी, मुहार, श्वेतविदारीकन्द इनके चूर्णको दूधके साथ पीये ॥ ३८ ॥

मोरटा—मुहार, मुरहरी या चूर्णहार यह एक ही वस्तु है । इसकी बेल लगती है, फल मीठे होते हैं, घीकुआर जैसे पत्ते होते हैं । कोई २ इसकी जगह ईखकी जड़ लेते हैं, यह उनकी भूल है । ये तीनों चीजें कूट कर लेनी चाहिये । पीछे फाँकी लेकर ऊपरसे दूध पी लेना चाहिये । १० व १५ दिनके सेवनके बाद अवश्य फायदा मालूम होगा ॥ ३८ ॥

क्षीरकाकोली, सिंघाड़े, कसेरु और महुओंके साथ ।

शृङ्गाटककसेरुमधूकानि क्षीरकाकोल्या सह पिष्टानि सशर्करेण पयसा घृतेन मन्दाग्निनोत्कारिकां पक्त्वा यावदर्थं भक्षितवानन्ताः स्त्रियो गच्छतीत्याचक्षते ॥ ३९ ॥

सिंघाडे, कसेरु और महुआके फलोंको क्षीरकाकोलीके कन्दके साथ पीसकर, उसमें दूध बूरा मिलाकर, घीमें मन्दी२आगसे हलुआ बनाकर जितनी रुचि हो उतना खाकर अनन्त स्त्रियोंके साथ रमण कर सकता है ॥ ३९ ॥

क्षीरकाकोली—जीवनीय, बृंहणीय और वीर्य्यको बढ़ानेवाली है । रतिवल्लभपूगपाकमें सिंघाड़े और कसेरुका भी प्रयोग करते हैं । इन सब चीजोंको लेकर हलुआ बना लेना चाहिय पर खानेमें अति न होनी चाहिये ॥ ३९ ॥

उड़दकी दालकी खीर ।

माषकल्धौतामुष्णेन घृतेन मृदूकृत्योद्धृतां वृद्धवत्सायाः गोः पयःसिद्धं पायसं मधुसर्पिर्भ्यामाशित्वानन्ताः स्त्रियो गच्छतीत्याचक्षते ॥ ४० ॥

राजमाषोंको पानीमें भिगोकर छिलका निकाल, घीमें सेककर मृदु बना ले, फिर जिसका बच्चा बड़ा हो गया हो ऐसी गऊके दूधमें खीर बना ले । इसको खाकर अनेकों स्त्रियोंके साथ सहवास कर सकता है ऐसा कहते हैं ४०

इसमें यह ध्यान रखनेकी बात है कि घीमें भुने उड़द उसी तरह डालने चाहिये जैसे अन्दाजसे खीर बनानेके लिये दूधमें चावल डाले जाते हैं, यह बड़ा गरिष्ठ पदार्थ होता है, इसका सेवन अपनी अग्निके बलको देखकर ही करना चाहिये । यह योग मन्दाग्निवालोंके लिये हितकर नहीं है । उड़दोंका उपयोग सुश्रुतने भी किया है । उसे यहीं दिखाते हैं—

" माषाणां पलमेकं तु संयुक्तं क्षौद्रसर्पिषा ।
अवलिह्य पयः पीत्वा तेन वाजी भवेन्नरः ॥ "

एक छटांक उड़दोंको पीसकर घी और शहदके साथ चाटकर ऊपरसे दूध पीकर मनुष्य सहवासमें समर्थ होता है । इसी योगको कुचुमारने भी लिखा है । वे इसे इतना महत्त्व देते हैं कि—"वृद्धः षोडशगो भवेत् । " बूढा भी सोलह भोगे । चक्रदत्तने लिखा है कि—' घृतभृष्टो दुग्धमाषपायसो वृष्य उत्तमः ।' भीजे साफ उड़दोंको घीमें भूनकर बनाई गई खीर उत्तम वाजीकरण है । पं० सदानन्दजी तो—एक तोले उड़दोंका चून घीमें भून, शहद मिला, दूधके साथ सेवन करे तो उत्तम वाजीकरण होता है ऐसा कहते हैं । कोकजी सुगन्धित चावल, काले उड़द, गेंहूका आटा और पीपल, चीनी, मिला घीमें पूये बनाने चाहियें । ऊपरसे दूध पीना चाहिये । उड़द, पीपल, चावल, यव, गोधूम, इनकी पूड़ियाँ बनाकर, इन्हें खा, शर्करा मधु मिश्रित दूध पिये ॥४०॥

विदारीकन्द और कौंचकी पूड़ियाँ ।

विदारी स्वयंगुप्ता शर्करामधुसर्पिर्भ्यां गोधूमचूर्णेन पोलिकां कृत्वा यावदर्थं भक्षितवाननन्ताः स्त्रियो गच्छतीत्याचक्षते ॥ ४१ ॥

विदारीकन्द, कौंचके बीज इनका चूर्ण करके गेंहूका चून और शहद सक्कर मिला, घीमें पकोड़े बना, जितनी भूखको उतना खाकर अनेकों स्त्रियोंके साथ मिल सकता है, ऐसा आचार्य्य कहते हैं ॥ ४१ ॥

विदारीकन्द और कौंचके बीजोंकी मींगीको कूटकर गेंहूके चूनमें मिला उसमें शहद और शक्कर इतनी डाल देनी चाहिये जिससे कि वे मीठे लगें,

---

१ तालमखाना, गोखरू, शतावर, कौंचके बीज, गंगेरनकी छाल, कंघीकी छाल और (खिरेंटी) इन सबको समभाग लेकर चूरन कर ले । वह ६ मासे रोज दूधमें मिश्री मिला उसके साथ ले ले अत्यन्त कामोद्दीपक है यह शार्ङ्गधर कहते हैं । लोलिम्बराज तो यह कहते हैं कि—उटंकण, कौंचके बीज और पहाड़ी गोखरूके चूर्णमें मिश्री व खोआ डाल पाक बनाना—

फिर घीमें पीठे पकोड़े बना लेने चाहियें, किन्तु खातीबार अपनी शक्तिका ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि शक्तिसे अधिक खानेमें हानि ही हानि है॥४१॥

चटकाण्डरस-भावित चावलोंकी खीर ।

चटकाण्डरसभावितैस्तण्डुलैः पायसं सिद्धं मधुसर्पिर्भ्यां प्लावितं यावदर्थमिति समानं पूर्वेण ॥ ४२ ॥

चीड़ीके अण्डोंके रसकी भावना देकर तयार किये गये चावलोंकी खीर तयार करके उसमें ऊपरसे खूब घी शहद डालकर, पेट भरकर खानेसे अनन्त स्त्रियोंके साथ संगम कर सकता है ॥ ४२ ॥

चावलोंको चीड़ीके अण्डोंके रससे भिगोकर छायामें सुखा ले, इसी तरह कई वार भिगोये और सुखाता रहे, फिर इन चावलोंकी खीर तयार करके घी शहद डालकर खाये तो शक्ति बढ़ती है, पर यह योग द्विजातियोंके करनेका नहीं है ॥ ४२ ॥

चरकने-' चटकानां सहंसानाम् ' इस वाक्यसे चटकके अण्डोंका वाजीकरणमें उपयोग किया है । चरकमें जो वाजीकरण प्रकरणमें-' कुलीरकूर्मनक्राणाम् ' इस टुकड़ेमें कुलीर शब्द है । इससे कोई गृहचटकके अण्डोंको भी खानेके कार्य्यमें ला रहे हैं । पर कामसूत्रकारने अपने दिव्य अनुभवोंसे इनके उपयोगकी यह एक नई प्रक्रिया बता दी है ॥

उक्तरीतिसे भावित हुए तिलोंकी खीर ।

चटकाण्डरसभावितानपगतत्वचास्तिलान् शृङ्गाटककसेरुकस्वयंगुप्ताफलानि गोधूममाषचूर्णैः सशर्करेण पयसा सर्पिषा च पक्वं पायसं यावदर्थं प्राशितमिति समानं पूर्वेण ॥ ४३ ॥

छिलके साफ किये हुए तिलोंमें चीड़ीके अंडोंके रसकी भावना देकर तयार कर ले,फिर सिंघाड़े कसेरु और कौंचके बीजोंका चूर्ण करे । गेहूं और उड़दका चून तयार करे, पानीकी जगह दूधका उपयोग करके सक्कर और घीमें लपसी

चाहिये । मूसली कन्दका चूर्ण, गिलोयसत्त्व, कौंचके बीज, पहाड़ी गोखरू, सेमरका मूसला, मिश्री और आमले इनका चूर्ण गोदुग्धके साथ पीये । जटमांसी, विदारी और उच्टाके चूर्णमें घृत और शहद मिलाकर, मिश्री डले दूधके साथ पीकर चटककी तरह रति कर सकता है ऐसा ज्योतिरीश्वर कहते हैं ।

तयार कर ले, इसे पेट भरकर खानेसे भी अनेकों स्त्रियोंके साथ समागम कर सकता है ॥ ४३ ॥

कुचुमारने लिखा है कि—

" वस्ताण्डसाधिते दुग्धे तिलान् कृष्णान् विभावयेत् ।
शतवारं भावना स्यात् शतसंख्या व्रजेत् स्त्रियः ।
अनुपानं सितादुग्धं केवलैव सिताथवा । स्तम्भनं वृष्यकं चैतत्— "

वस्तके अण्डोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे सिद्ध किये हुए दूधकी, काले तिलोंमें सौ बार भावना दे, फिर सौ स्त्रियोंके साथ संग कर सकता है । इसका अनुपान सिता (मिश्री) दुग्ध व केवल सिता है । इसे सुश्रुतमहर्षिने भी लिखा है ।

मुरहटी आदि छः अंगोंवाला अमृत ।

सर्पिषो मधुनः शर्कराया मधुकस्य च द्वे द्वे पले मधुरसायाः कर्षः प्रस्थं पयस इति षडङ्गममृतं मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरसमित्याचक्षते ॥ ४४ ॥

घी, मधु, सक्कर और मुरहटी दो २ पल और मधुरसा—मुलहरी एक कर्ष एवम् एक प्रस्थ दूध, यह छः अंगोंवाला अमृत मेध्य है, वाजीकरण तथा आयुका बढ़ानेवाला है, इसे 'युक्तरस' ऐसा कहा करते हैं ॥ ४४ ॥

घी, मधु, सक्कर और मुरहटी आध आध पाव लेनी चाहिये । इनमें मुरहरी एक तोला हो, इनके साथ एकसेर दूध हो, यह उत्तम वाजीकरण है, किन्तु खानेके समय अपनी शक्ति अवश्य देखनी चाहिये । यदि अपनी शक्ति न हो तो घटा भी सकता है, किन्तु घटाती बार हिसाबसे ही घटाना चाहिये ॥ ४४ ॥

शतावरी और गोखरू ।

शतावरीश्वदंष्ट्रागुडकषाये पिप्पलीमधुकल्के गोक्षीरच्छागघृते पक्के तस्य पुष्यारम्भेणान्वहं प्राशनं मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरसमित्याचक्षते ॥ ४५ ॥

शतावरीकन्द, पहाड़ो गोखरू इन दोनों चीजोंके कषायमें, पिप्पली और सहदकी लुगदी देकर, गायके दूध और बकरीके घीमें सिद्ध कर ले । इसका

---

१ गोखरू और कँवाचके बीज बराबर लेकर ६ मासे रोज फाके, पीछे ऊपरसे दूधमें मिश्री मिलाकर पीये, यह कामका उद्दीपक है । शतावरका दशगुने दूधमें पाक करे, खोआ मिश्री मलाकर खाय, यह वाजीकरण है ।

पुष्यनक्षत्रसे रोजका चाटना मेध्य है, वाजीकरण है, आयुका देनेवाला है, इसे 'युक्तरस' है ऐसा वाजीकरणवेत्ता कहा करते हैं ॥ ४५ ॥

चाटनेकी मात्रा बहुत छोटे परिमाणमें शुरू करनी चाहिये, क्योंकि हाजमेसे अधिक पौष्टिकवस्तु खानेसे लाभके बदले हानि अधिक होती है ॥ ४५॥

शतावरी, गोखरू और श्रीपर्णी ।

शतावर्याः श्वदंष्ट्रायाः श्रीपर्णीफलानां च क्षुण्णानां चतुर्गुणे जले पाक आ प्रकृत्यवस्थानात् । तस्य पुष्यारम्भेण प्रातः प्राशनं मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरसमित्याचक्षते ॥ ४६ ॥

शतावरीकन्द, पहाडी गोखरू, श्रीपर्णीके फल इन्हें कूटकर चौगुने जलमें चढा दे जब जल जल जाय तो उतार ले। इसे पुष्यसे प्रातःकाल चाटना प्रारम्भ कर दे, यह बुद्धिका बढ़ानेवाला, वाजीकरण, आयुका बढ़ानेवाला और युक्तरस है, ऐसा लोग कहा करते हैं ॥ ४६ ॥

जिनके यहां मांस चलता है ऐसे लोगोंके यहां तो इसमें मांसरस चलता है, किन्तु जिनके यहां मांसरस नहीं चलता वे इसका लेह बनाकर काममें लाते हैं। उसमें शर्करा आदि भी रहते हैं। यह परम वाजीकरण है ॥४६॥

गोखरू और जौ ।

श्वदंष्ट्राचूर्णसमन्वितं तत्सममेव यवचूर्णं प्रातरुत्थाय द्विपालिकमनुदिनं प्राश्नीयान्मेध्यं वृष्यमायुष्यं युक्तरसमित्याचक्षते (इति वृष्यायोगाः । एकषष्टितमं प्रकरणम्) ॥ ४७ ॥

पहाड़ी गोखरूके चूर्णके बराबर जौका चून लेकर दोनोंको मिला प्रातः दो पल रोज खानेसे मेधा बढती है, यह वाजीकरण है, आयुका बढानेवाला है, युक्तरस है, ऐसा वाजीकरणवेत्ता कहाकरते हैं ॥ ४७ ॥

दो पलकी मात्रा बहुत होती है, आज इसका आधा पाव हो जाता है इतनी वृष्यवस्तुको पचाना कठिनताका कार्य्य है, इस कारण जितनी शक्ति हो उतना ही खाना चाहिये। जौका चून साफ होना चाहिये। इसके साथ चीनी आदि भी रहें तो खानेमें और भी अच्छा रहेगा ॥ ४७ ॥

वाकियोंको जाननेके साधन ।

आयुर्वेदाच्च वेदाच्च विद्यातन्त्रेभ्य एव च ।
आप्तेभ्यश्चावबोद्धव्या योगा ये प्रीतिकारकाः ॥ ४८ ॥

हमारे बताये हुए योगोंके सिवा दूसरे भी प्रीतिकारक योग हैं, उन्हें आयुर्वेद, वेद, विद्यातन्त्र तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके वचनोंसे जान लेना चाहिये ॥४८॥

आयुर्वेदमें वाजीकरण प्रकरण पृथक् रखा है । कामसूत्रकारने उनमेंसे जो अपने अनुभव किये हुए योग हैं उन्हीं योगोंको यहां रखा है। हमने उनके समकक्ष आयुर्वेदके भी योग यहां दिखा दिये हैं । कुछ थोड़ेसे अनुभूत नुकसे भी यहां और रख देते हैं । विधायरा और नागोरी असगन्धका चूर्ण दूधके साथ वाजीकरण है । ७ तोला नागोरी असगन्ध, ७ तोला भिदायरा और ७ तोला मिश्री इन तीनों चीजोंको कूट छानकर १ तोला रोज दूधके साथ ले, अत्यन्त वाजीकरण है । आंवलेके चूर्णको आंवलेके स्वरसकी ५१ भावनाएं देकर शहदमें मिला दूधके साथ सेवन करे तो वृद्ध मनुष्य भी तरुणके समान हो जाय । पीपल वृक्षके फल, अंकुर, जड़की छाल और पेड़की छालको दूधमें औटाकर मिश्री डालकर पीये ॥ ४८ ॥

ध्यान लायक बात ।

न प्रयुञ्जीत संदिग्धान्न शरीरात्ययावहान् ।
न जीवघातसंबद्धान्नाशुचिद्रव्यसंयुतान् ॥ ४९ ॥

जो संदिग्ध हों, जिनसे शरीरकी हानि होनेका डर हो, जिनमें जीवहत्याका सम्बन्ध हो, जिनमें अपवित्रवस्तुका मिश्रण हो, ऐसे वाजीकरण योगोंको कभी न करना चाहिये ॥ ४९ ॥

वाजीकरण सेवन करनेवाले व्यक्तियोंको यह ध्यान रखना चाहिये कि-जो मांसभोगी व जीवहत्यारे नहीं हैं, उन्हें जीवहत्या व मांसके योग न करने चाहिये । वात्स्यायनने जो योग रखे हैं वे उनके अनुभूत हैं, इसी तरह जो अनुभूत योग हों उन्हें ही करे, इसके साथ अपनी प्रकृतिके जो अनुकूल पड़े उसे करते रहना एवम् जो प्रतिकूल पड़े उसे न करना चाहिये ॥ ४९ ॥

---

१ नृसिंहचूर्ण, कामाङ्गनायकचूर्ण, मदनमोदक, कामकलारस, महाकामेश्वररस, कामेश्वररस, अनङ्गसुन्दरी वटिका, कामामृतयोग, इन्हें कामरत्नने तथा मदनमंजरीवटी, रतिवल्लभपूगपाग, कामेश्वरमोदक, महाकुष्माण्डावलेह, आम्रपाक, चन्दनादितैल, मधुपक्वहरीतकी भाव प्रकाशने बताये हैं। कामसूत्रमें जो संगृहीत हैं वे तत्काल फल दिखानेवाले हैं ।

करनेयोग्य प्रयोग ।

तथा युक्तान्प्रयुञ्जीत शिष्टैरपि न निन्दितान् ।
ब्राह्मणैश्च सुहृद्भिश्च मङ्गलैरभिनन्दितान् ॥ ५० ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे औपनिषदिके सप्तमेऽधिकरणे सुभगंकरणं वशीकरणं वृष्याश्च योगाः प्रथमोऽध्यायः ।

उन उचित योगोंका प्रयोग करे जिनकी कि सज्जन बुराई न करें एवं ब्राह्मण और मित्र जिनका मङ्गलोंसे अभिनन्दन करें ॥ ५० ॥

यहां 'ब्राह्मण' शब्दसे विद्वान् वैद्य ब्राह्मणोंको ही लेना चाहिये, क्योंकि वेदमें ऐसा ही लिखा मिलता है कि–'यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि' जिसपर विद्वान् ब्राह्मण प्रयोग करता है हम उसको पूरा कर सकते हैं। सज्जनोंसे तात्पर्य्य उनका अनुभव रखनेवालोंसे हैं, यानी इस कथनसे वात्स्यायन यह कह गये कि हमारे बताये योगोंको वैद्योंसे पूछकर व्यवहारमें लाना, क्योंकि योग सूत्ररूपमें लिखे हैं ॥ ५० ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्रके सप्तमाधिकरणके प्रथम अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

नष्टरागप्रत्यानयन प्रकरण ।

गत अधिकरणोंमें इस बातको कई जगह बता चुके हैं कि स्त्रीपुरुष जब आपसमें मिलते हैं तो रागके प्राबल्यमें ही मिलते हैं । यदि वे जिन २ भावोंकी प्रेरणासे प्रेरित होकर आपसमें मिलते हैं उन २ बातोंको सहवासके समय एक दूसरेमें अनुभव करके पालेते हैं तो उनकी आपसमें एक दूसरेसे तृप्ति हो जाती हैं एवम् वे कामी चिरकालके लिये आपसमें एक दूसरेसे बँध जाते हैं। यदि दैवयोगसे उनकी धारणाएँ भ्रान्त ठहर जाती हैं या एक दूसरेमें अपनी चाहकी वस्तु नहीं देखते तो उसी समयसे हृदयसे जुदसे हो जाते

---

१ हमने जो इस प्रकरण विशेष विचार किये हैं वे अपनी मतिके अनुसार आयुर्वेदसे विचार एवम् उचित रूपसे योग्य २ वैद्यों एवम् आयुर्वेदके उच्चग्रन्थोंके सिद्धान्तोंका मनन करके ही रखें हैं । फिर भी प्रयोक्ता यदि वैद्योंकी सम्मति लेकर प्रयोग करें तो हमारे आनन्दकी ही बात होगी, साधकको यथेष्ट लाभ होगा ।

हैं । जब वे एक दूसरेको रूप लावण्य व यौवन संपन्न देखते हैं तो आपसके हाव भावोंको देख एक दूसरेसे संयुक्त होजाते हैं पर संप्रयोगकी यदि योग्यता नहीं पाते तो उससे विरक्त हो जाते हैं। प्रायः स्त्रियाँ अपने वरांगके बराबरका साधन तथा अपनी भावप्राप्ति तक ठहरनेवाला व सबल साधनवाला युवा चाहा करती हैं, जिससे कि विना किसी कष्टके उनका संप्रयोग सानन्द हो, इसी तरह पुरुष भी रतिचातुरी व अशिथल वराङ्गादि चाहा करते हैं, यदि हैं तो ठीक है नहीं तो वे भी हट जाते हैं । स्त्रियोंके विषयको अन्यत्र कह चुके तथा कहेंगे, इसकारण यहां पुरुषोंके लिये आन्तरसंप्रयोगसे प्रसन्न करनेकी बातें बताते हैं ।

चण्डवेगको प्रसन्न करना ।

यदि स्त्री कामके प्रचण्डवेगवाली, चिरकाल तक ठहरनेवाली, अशिथिल व बड़े वराङ्गकी हो, जिसे कि आप अपने सहजवेग व स्वाभाविक काल तथा सहज साधनसे न प्रसन्न कर सके उसे क्या करना चाहिये ? इस बातके लिये सूत्र करते हैं कि—

चण्डवेगां रञ्जयितुमशक्नुवन्योगानाचरेत् ॥ १ ॥

जो प्रचण्डवेगवाली स्त्रीको अनुरक्त न कर सके वह योगोंका प्रयोग करे१ जिसके राग तीव्र हो, मदनमंदिर बड़ा हो अथवा अधिक देरतक ठहरनेवाली हो उसके मुकाबिलेकी इन तीनों बातोंमेंसे अपनेमें जिस बातकी कमी हो उसे प्रयोगोंसे पूरी करे ॥ १ ॥

द्रावण स्तम्भनपर वात्स्यायन ।

जिसे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ हो उसे दो बातोंकी आवश्यकता होती है— एक तो प्रयोगके कालके अनुसार अपना ठहरनेका समय बढाना होता है तथा दूसरे उसे यह भी सोचना होता है कि सामनेवाली मुझसे पहिले स्खलित हो । जब उसका प्रयत्न नहीं चलता तो प्रयत्न खोजता है, उसे जो करना चाहिय इसे यहां ही बताते हैं कि—

रतस्योपक्रमे संबाधस्य करेणोपमर्दनं तस्या रसप्राप्तिकाले च रतयोजनमिति रागप्रत्यानयनम् ॥ २ ॥

जो अपनेसे अधिक देरतक ठहरनेवाली हो, रमणके प्रारंभमें उसके मदनमन्दिरको उगलियाँ डालकर अच्छी तरह द्रवित करके पीछे सहवास इस प्रकार प्रारंभ करना चाहिये कि, आप उसके पीछे च्युत हो तो इससे नष्ट हुआ स्त्रीका प्रेम फिर कायम होजाता है ॥ २ ॥

४९२ व ४९३ वें पृष्ठके 'पुरुषोपसृप्त' प्रकरणमें करिकरका प्रयोग, गजहस्त और साहित्यमें करिकर ये तीन विषय दिखाये हैं । यहां मुख्यरूपसे उसका प्रयोजन भी बता रहे हैं कि इस परिस्थितिमें इस कार्य्यको करे । कामशास्त्रके आचार्य्य पद्मश्री आदिकोंने जो दूसरे २ भी हस्तप्रयोग, नामनिर्देश करके बताये हैं । उनका भी इसी परिस्थितिमें उनका उपयोग होता है ॥२॥

द्रावणके उपाय ।

गजकरसे द्रवित करके फिर यन्त्रयोग करना अपनी कमजोरीको परिस्फुट प्रतीत कर देता है, इसी कारण महर्षिगणोंने वाजीकरणयोग व द्रावणयोग रखे हैं । हमें भी उनपर प्रकाश डालना चाहिये, इस कारण हम भी उन्हें यहां दिखाते हैं:—+ (१) शहदके साथ घोषाका चूर्ण मिला जिसके मदनमाद-रपर लेप किया जाय वह जलदी ही स्खलित होती है । यह कल्याणमल्ल और ज्योतिरीश्वर दोनोंने कहा है । हिन्दीमें घोषा कडुईतोरईको कहते हैं । (२) शुद्ध शंकरबीजको जातीरससे मर्दित करे, फिर जिसके मदनमंदि-रमें उसे रखेगा वह शीघ्र ही स्खलित होती है । हिन्दीमें शंकरबाज—पारा व जातीरस जीतीके पत्तोंके रसको कहते हैं, इसे कल्याणमल्लने कहा है । (३)कोकजी मोलसरीके गोंदमें शुद्ध पारेको मिला शहदके साथ ध्वजापर लेप करे, ऐसा कहते हैं (४) शुद्ध पारा सहदेवीके रसमें प्रयुक्त करनेपर भी यही कार्य्य करता है । (५) गंगेरनके रसमें भी उसका यही हाल है । (६) कर्पूर, टंकण, शंभुबीज, इन तीनों चीजोंको बराबर लेकर शहद मिला, लिंग लेप करके रमण करे, उसे द्रवित करेगा । (७) अनंगरंगमें व्योषा और काममाची अधिक तथा कर्पूर कम है । (८) कर्पूरादि तीनों चीजोंको कुचुमार शहदके लेपमें । केवल टंकणके लेपको भी द्रावक मानता है । (९) कर्पूरादि तीनोंके योगको कोकने भी कहा है । पं० हनुमानशर्म्माजी—कर्पूक—कपूर, शंभुबीज—पारा, टङ्कण—सुहागा, (सुहागेका फूला), काकमाची—कवप्रिया, व्योषा—सोंठ, काली मिरच, पीपल, यह अर्थ करते हैं। (१०) पद्मश्रीने लिखा है कि—"पारदटङ्कणव्योषकाकमाचीमधुलिप्तं यत् । नारी स्यन्दाति सुचिरं बहुछिद्रमिव घटम् ।" शुद्धपारा, सुहागेका फूला, व्योषा

+ द्रावणके प्रत्येकयोगका प्रायः यह ढंग रहता है कि या तो उसे जिसे द्रवित करना हो उसके वराङ्गपर लेप दो या अपने साधनपर लेप करके उससे सहवास करे। इन दोनों बातोंमें लेप करके सहवासकी बात अच्छी है, क्योंकि इसमें थोड़ा अच्छा रहता है ।

और कवप्रियाके चूर्णका शहदमें लेप करे स्त्रीच्युत हो, यह सिद्ध योग है । (११) कोकने केवल शुद्ध पारेमें भी यह बताया है । (१२) भले ही पारा सुहागेके फूलोंके साथ हो । (१३) भले ही केवल कड़ुईतुरईके चूर्णके भी साथ हो । (१४) पारा और आमला शहदसे मिला हो । (१५) गुड़से मिली इमली हो । (१६) या शहद गुडसे मिली हुई हो । (१७) समभाग चिंचाफल, सिन्दूर और माक्षिक मिलाकर जिसके मदनमंदिरमें डालोगे वह जलदी ही द्रवित होगी यह ज्योतिरीश्वरने भी कहा है । चिंचाफल-इमली, सिन्दूर-सिन्दूर, माक्षिक-शहदको कहते हैं । (१८) पीपल, मधु और धतूरा, पठानी लोध और कालीमिरच ये सम भाग लेकर पीसकर लेप करे । पर यह गर्भको नुकसान पहुँचाता है । (१९) सेंधेनमकके साथ कबूतरकी बीठका लेप द्रावण द्वारा प्रीतिकर है । (२०) पुराना गुड़, चिंचिणिकाका फल, घोषारज, इन सबको बराबर ले शहद मिलाकर लेप करे पीछे रति करनेपर स्त्री जलदी द्रवित होती है । (२१) कुचुमार तो इमलीके फलके साथ पुराना गुड अथवा शहद अथवा दोनों ही चीजोंको रख इसके लेपकी बड़ी प्रशंसा करते हैं । घोषारज-कड़ुई तुरईके चूर्णका व चिंचिणिका इमलीका नाम है । (२२) कोक तो कड़ुई तुरईके चूर्णके साथ नागेश्वरी चंपाका गोंद होव इनके साथ शुद्ध पारदको घोट उसके लेपके लिये कहते हैं । (२३) काली मरिच, कनकबीज, पिप्पली और लोध्र इनके चूर्णमें शुद्ध मधु (शहद) मिलाकर ध्वजपर लप करे पीछे रमण करे । यह ज्योतिरीश्वरने भी कहा है । यह ऐसेका ऐसा कुचुमारने भी कहा है । मरिच-कालीमिर्च, कनकबीज-धतूरेके बीज, पिप्पली-छोटी पीपल, लोध्र-पठानीलोध, यह ठीक है पर यहां मधुका मुलहटी अर्थ करना ठीक नहीं किन्तु मधुका शहद ही अर्थ ठीक है, क्योंकि लेपका विषय है । (२४) मधु, आज्य और अगस्त्यके पत्तोंका रस इनका ध्वजापर मालिश करके रमण करे तो जलदी ही द्रवित कर दे । ज्योतिरीश्वर इसके साथ टंकण और कहते हैं । मधु- शहद, आज्य-घी, अगस्ति-अगस्तिया यह अर्थ है (२५)तुषजलके साथ बीजपूरकी जड़ पीस घाममें रखकर संबाधमें लेप करनेसे स्त्री शीघ्र ही स्खलित हो जाती है । यह ज्योतिरीश्वरने कहा है (२६) रक्तवानरका लिंग, शुद्धपारा, शहदमें मिलाकर लेप करना । या (२७) सेंधानमक, कबूतरकी बीठ व शहद मिलाकर लेप, शीघ्र ही द्रवित करता है । ये कुचुमारके योग अधिक हैं ॥

इसपर वैद्यक शास्त्र ।

(२८) शार्ङ्गधर—"इन्द्रवारुणिकापत्ररसैः सूतं विमर्दयेत् ।
रक्तस्य करवीरस्य काष्ठेन च मुहुर्मुहुः ।
तल्लिङ्गलिप्तसंयोगाद् योनिद्रावोऽभिजायते ॥ "

लाल कनेरके काठसे पारेको इन्द्रायणके पत्रोंका रस डालकर बारंबार घोटे, पीछे इस लेपको अपनी इन्द्रियपर करके स्त्रीसे रमण करे तो वह स्त्री जलदी स्खलित हो ॥ (२९) इस योगविधानके साथ चित्तकी तरलता भी समझनी चाहिये, क्योंकि जिसकी जितनी चित्तवृत्ति अधिक चंचल होगी व चण्ड होगा वह उतना ही अधिक द्रवित होगा । प्रमदाके चित्तको कामके लिये अत्यन्त तरल करते हुए भी अपने हृदयपर अधिकार रखना व उसका परम तरल करना ही उसका शीघ्र द्रावक योग है ॥

स्तम्भन योग ।

द्रावणके उपायोंसे तो अपनी अधिक ठहरनेकी शक्ति बढ़ा लेना ही सर्वोत्तम है, इस कारण स्तम्भनके ही उपाय बतलाते हैं । इससे सबसे पहिले कामशास्त्रके योगोंको दिखाते हैं—

कुचुमारने भी स्तम्भन प्रकरण कहा है कि—

(१) कमलकी[1] केसर और सहदेवीको घी और सहदके साथ पीसकर नाभिपर लेप करे (२) सफेद फूलके सरसोंफेकी जड़को[2] वड़के दूधमें घोटकर गोली बना ले । फिर अंकुर निकलनेवाले करंजुके पेटमें रख फिर करंजके मुखको बन्द कर दे । उसे यदि रतिकर्ता अपने मुखमें स्थापित कर ले तो स्तम्भन होता है ॥ (३) सितशर, पुंखामूल, सफेद सरसोफाकी जड़को[3] पारदके साथ घोटकर एक करंजफलके भीतर धरकर रतिकर्ता मुखमें धारण-

---

१ कल्याणमल्ल और ज्योतिरीश्वर श्वेतकाकजंघाकी जड़को इसी विधिसे प्रयोगमें लानेके लिये कहते हैं । कल्याणमल्लजी शीशमकी छाल, पारा और कपूरका शहदके साथ यही योग कह रहे हैं ।

२ ज्योतिरीश्वर जड़के स्थानमें फल कहते हैं ।

३ पद्मश्री भी एक करंजके भीतर श्वेतसरसोफा और पारा भरकर इसी तरह काममें लानेके लिये कहते हैं । कल्याणमल्लजी सफेद तालमखानेके बीजोंको बड़के दूधमें पीसकर करंजके बीजमें इसी विधिसे रखने व फिर उसे मुखमें रखनेके लिये कहते हैं । कल्याणमल्ल और ज्योतिरीश्वर दोनों ही इस श्वेत सरसोफेकी जड़को पुष्यनक्षत्रमें कारीके कते सूतसे कमरमें बाँधनेके लिये कहते हैं । क० के यहाँ श्वेत तालमखानेकी जलकी भी यही दशा है ।

करे तो स्तम्भन होता है ॥ (४) छतिवनके बीजको मुखमें रखकर रमण करनेवाला दो घड़ी ठहर सकता है ॥ (५) दंडाथूर और बकरीके दूधमें लज्जावंतीकी जड़को घोटकर पैरोंमें लगाये ॥ (६) इन्द्रायनकी जड़को बकरेके मूतमें पीस इन्द्रियपर लेप करे स्तंभन होगा ॥ (७) पुनर्नवा (साँठी) के चूर्णका तेल बनानेकी विधिसे तेल बना ले, उसका ध्वजा और पैरोंमें लेप हितकारी है । इसे इसी तरह कल्याणमल्लने भी कहा है । यद्यपि नशेसे तथा अफयून आदिसे भी स्तंभन होता है पर नशेसे दूर रहना ही अच्छा है । जितनी चीजें वीर्य्यकी तरलता मिटानेवाली हैं वे सब स्तंभन करनेवाली ही हैं । मेरी समझमें तो क्षणिक स्तंभनोंके बखेड़ेमें न पड़कर वीर्य्यको गाढा शुद्ध बनानेवाली वाजीकरण ओषधियोंका ही सेवन करना चाहिये । (८) ३ मासे अकरकरा, २ तोला तुख्मरैहा, १॥ तोला कन्द सफेद इन सबको कूट छानकर तीन मासे रोज खाये शामको बादमें दूध पीये (९) अफीम, शुद्ध सिंगरफ और मोचरस चार चार मासा लेकर पीस ले । उसमें एक मासा सुहागेका फूला डाले । काली मिरचके बराबर गोली बनाये । १ गोली एक घंटा पहिले खाके ऊपरसे दूध पी ले स्तम्भन होगा (१०) काले धतूरेकी पत्तियोंका रस निकालकर तलवोंपर मले सूखने पर मिले (११) कपूरको कटेरीके जीरेके साथ पीसकर शहदमें जीरेके बराबर गोली बना ले । एक गोली एक घड़ी पहिले इन्द्रियमें रखकर बादमें उसे निकालकर रंगरेली करे, स्तम्भन होगा (१२) कौंचकी अंगुलीके बराबर जड़ मुखमें रखकर भोग करे (१३) कंजाकी पत्तियोंका रस तलुओं और हथेलियोंमें मले (१४) सहदेई, मुरहटी, काले तिल, भैंसका घी, सफेद कमलकी जड़, चीडीके अण्डेसे मर्दनकर नाभिपर लेप करे और पैरोंके तलुओंपर भी कर ले (१५) भांगरेकी रज, घीक्वार, विष्णु॰ क्रान्ता, चमेलीका फूल इनकी गोली मुखमें रखनेसे स्तम्भन होता है ॥

इसपर वैद्यक शास्त्र ।

यह बात हम सदासे कहते चले आ रहे हैं कि कामशास्त्रने जब जिस विषयकी ओषधि ढूंढ़ी है वह आयुर्वेदशास्त्रसे चुनकर ही ढूंढ़ी है । अन्तर

---

१ कल्याणमल्ल इसे रविवारको लानेके लिये कहते हैं ।

२ ज्योतिरीश्वर जड़सहित लज्जावंतीको केवल उक्त दूधके साथ व कल्याणमल्ल गौके दूध या दण्डाथूहरके दूधके साथ पीसकर प्रयोग कर रहे हैं ।

केवल यही रहता है कि आयुर्वेदके निबन्धसंगृहीता व लेखकोंने इस विषयके थोड़ेसे ही योग रखें हैं तथा इनके यहां इस विषयके अधिक योग चलते हैं। इनमें सबसे पहिले हम चक्रदत्तका मत दिखाते हैं—

" बीजं बृहत्करञ्जस्य कृतमन्तः सुपारदम् ।
हेम्ना सुवेष्टितं न्यस्तं वदने बीजधृङ् मतम् ॥ "

लताकरंजके बीजमें शुद्ध पारद भरकर ऊपरसे सोनेके पत्रमें मढवा देना चाहिये, इसको मुखमें रखकर मैथुन करनेसे वीर्य्यपात नहीं होता ॥

अजतूष्ट्रीक्षीरं गव्यघृतं चरणयुगललेपेन ।
स्तम्भयति पुरुषबीजं योगोऽयं यामिनीं सकलाम् ॥

बकरीका दूध, ऊँटनीका दूध और गायका घी ये तीनों चीजें एकमें मिलाकर पैरोंमें लेप करनेसे वीर्यपात नहीं होता ॥

शार्ङ्गधरने लिखा है कि—"अकरकरा, सोंठ, कंकोल, केशर, पीपल, जायफल, लौंग, सफेदचन्दन इन आठों द्रव्योंको एक २ तोला ले ले, इसके साथ चार तोला अफीम होनी चाहिये। इन सबको इकट्ठा करके चूर्ण कर ले। एक मासे रोज शहदके साथ चाटे तो स्तम्भन होगा। इससे स्तम्भनके साथ ही साथ आनन्द भी प्राप्त होता है।

औपरिष्टकोंको हितकारी उपदेश ।

इसके विधि विधानोंके लिये तो एक अध्याय कही ही गई है। अब इसके शिकारोंके लिये कुछ मर्म बताते हैं जिससे वे इस पापसे छूट जायँ। वे विधियां ऐसे ढंगकी हो सकती हैं जिससे वह भी हो तथा उसका अन्यत्र उपयोग भी हो। इस कारण यही कहते हैं कि—

औपरिष्टकं मन्दवेगस्य गतवयसो व्यायतस्य श्रान्तस्य च रागप्रत्यानयनम् ॥ ३ ॥

जो मनुष्य बहुत सीरा हो, जिसकी जवानी ढल चुकी हो, बहुत मोटा हो वा थक गया हो तो सांप्रयोगिक अधिकरणमें बताई हुई औपरिष्टक विधिसे चैतन्य करनेसे फिर तयार होजाता है ॥ ३ ॥

दूसरे अधिकरणके नौवें अध्यायमें औपरिष्टकप्रकरण है। उसमें मुख्यरूपसे तृतीया प्रकृति (नपुंसिका) के लिये औपरिष्टक जीवन, मुख्यरूपसे बताया है। इनके सिवा कुलटा, स्वैरिणी, परिचारिका, संवाहिका और वेश्याओंको स्त्रियांमें 'औपरिष्टक' की भी प्रेमिनि बताया है तथा देशाचारपर भी दृष्टि दी है। पुरुषोंमें शुहद्दे छोकड़ों आदिकोंको भी इस कर्मके करनेवालोंमें

गिनाया है तथा ऐसे नचकैयोंकी तरफ भी मुख्यरूपसे दृष्टिपात किया है। इस अप्राकृत व्यभिचारके करनेवालोंमें ५२१ पृष्ठमें यशोधरने मंदरागी यानी जो स्त्रियोंके स्पर्शादि होनेपर ही साधनकी शिथिलताके कारण तयार न हो सकें, यदि तयार हों तो पूरे तयार न हों ऐसे पुरुष इस अप्राकृत व्यभिचारके भक्त होजाते हैं। जिन्हें स्त्रियाँ न प्राप्त हों वा जिनकी आयु जा चुकी हो अथवा जो अत्यंत मोटे हों इनकी भी गिनती की है। यह जो यशोधरने कहा है वह इसी सूत्रके आधारपर कहा है। महर्षिने इस कार्य्यको सर्वथा वर्जनीय कहा है। यदि इसके करनेवालोंपर सूत्रकारकी बताई हुई अडचलोंका भी प्रभाव न हो तो फिर भी इसकी सीमा निर्धारित करनेके लिये इन्हें उपदेश देते हैं कि–जबतक पूरे चैतन्य न हों तबतक ही करायं; चैतन्य होनेपर तो इस पापकर्मका अवश्य ही त्याग कर दें। वास्तवमें अतिकामीरा पुरुष जिसे कि इस अप्राकृत व्यभिचारने अपना शिकार बना लिया हो उसे चाहिये कि जब वह चैतन्य होजाय और वृत्तियाँ रंगरेलीकी तरफ झुकने लगें तो उस समय इसे छोड़ वरांगका सेवन करने लग जाय। इस प्रकार करनेसे उसकी नामर्दी बढ़ेगी नहीं; किन्तु दिनोदिन कम होती चली जायगी तथा ज्यों २ आन्तरसंप्रयोगके विचित्र स्पर्शकी अनुभूति होती चली जायगी उसका राग बढ़ता चला जायगा, पुंस्त्व प्राप्त होगा एवं उस दुर्व्यसनसे सहजमें ही स्वतः मोक्ष होजायगा। जिसकी जवानी ढल चुकी बुढ़ापा आगया हो पर मनमें विषयवासनाएँ पूर्ववत् किलोरें लगा रही हों वह अपनेको स्त्रियोंके योग्य न समझनेके कारण स्त्रियोंके साथ सहवास करनेमें शरमाकर केवल कुलटा आदिसे इस कर्मको करके ही सुखी होता है, उसके लिये भी महर्षिका उपदेश है कि चैतन्य पानेपर इससे विरत होकर यंत्रयोग करो। यह नियामित बात है कि जिनमें कुछ भी पुस्त्व होता है वे औपरिष्टकसे अवश्य चैतन्य हो जाते हैं। जो थका हुआ होता है उस रतिश्रान्तको भी इससे चैतन्य मिलता है; पर इसे वेश्या व वेश्य विशेष ही कर सकती हैं। धर्मपत्नीसे ऐसा कार्य्य करानेपर नरकका अधिकारी हो जाता है। जो अत्यन्त मोटे होकर महानिर्बल तथा अयोग्य होते हुए विषयोंसे अतृप्त रहते हैं उनकी यह दशा रहती है कि वे और नहीं तो इसी धन्देको करते हैं। उन्हें चैतन्यावधि ही रहना चाहिये यह इस सूत्रसे उन्हें ऋषिका उपदेश है॥ २॥

अपद्रव्यनिर्माण।

कामसूत्रके ८६६ वें पृष्ठमें कहा गया है कि—

"अनेकों स्त्रियोंवाले कृपालु राजा लोग विना भी रागके बनावटी साधन लगाकर अनेकों पर्देनसीन आश्रितोंको प्रसन्न कर देते हैं तथा जिसपर उनकी

इच्छा होती है इनके लिये उस कृत्रिम दण्डका उपयोग न करके अपने ही साधनसे मिलते हैं ।" इस विषयमें यह विचार हो सकता है कि क्या अनेकों स्त्रियोंवाले राजा इसी प्रकार किया करते हैं ? इसका उत्तर यही हो सकता है कि जिन्हें इस प्रकारके साधनोंके वर्तनेकी आवश्यकता होती होगी वे वर्तते होंगे । अब नहीं तो पहिले इनका रिवाज रहा होगा; तब ही तो महर्षि वात्स्यायनने लिखा नहीं तो वे कहांसे लिखते ? जिनके यहां अपद्रव्य नहीं उनके यहां इस प्रकारकी वाजीकरण ओषधियोंका उपयोग होता है जिनसे कि वे प्रसंग करते करते भी नहीं थकते । जो स्वयं अनेकोंके रंजनमें समर्थ रहते हैं उनके लिये तो अपद्रव्योंकी आवश्यकता ही क्या है तथा जिनके यहां अपद्रव्य बर्ते जाते हैं या वर्ते जाते थे उनके यहां अपद्रव्य किस प्रकार बनाये जाते (हैं) थे इसके लिये सूत्र करते हैं कि—

अपद्रव्याणि वा योजयेत ॥ ४ ॥

अथवा अपद्रव्योंका प्रयोग करे ॥ ४ ॥

जिसका साधन छोटा हो वा जो साधनसे कार्य न ले सके एवम् बड़े मदनमंदिरवाली नायिकाके साथ सहवास करना पड़े अथवा बहुतसी स्त्रियोंसे मिलना आवश्यक हो तो उनके मदनमंदिरके अनुसार बनावटी साधनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

तानि सुवर्णरजतताम्रकालायसगजदन्तगवलद्रव्यमयानि ॥ ५ ॥

ये सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, हाथीके दाँत और गौके सींगके होते हैं ॥ ५ ॥

ऊपर बताई हुई धातुओंके 'अपद्रव्य' बनाये जा सकते हैं ॥ ५ ॥

त्रापुषाणि सैसकानि च मृदूनि शीतवीर्याणि वृष्याणि कर्मसहिष्णूनि भवन्तीति बाभ्रवीया योगाः ॥ ६ ॥

राँग और सीसेके मुलायम, ढंडे, वृष्य और कामलायक होते हैं ये बाभ्रवीयोंके बताये अपद्रव्य हैं ॥ ६ ॥

सोनेसे लेकर सीसेतकके अपद्रव्योंका बाभ्रवीय प्रयोग करते हैं पर राँग और सीसेके अपद्रव्योंमें ठंडापन आदि गुण रहते हैं, यह बाभ्रवीयोंका मत है ॥ ६ ॥

दारुमयानि साम्यतश्चेति वात्स्यायनः ॥ ७ ॥

यदि अनुकूल पड़े तो काठका भी काममें लाया जाता है, ऐसा वात्स्यायन आचार्यका मत है ॥ ७ ॥

इन वस्तुओंके अपद्रव्योंमेंसे जो अनुकूल जँचे उसीका बना लेना चाहिये। यदि काठका भी अनुकूल पड़े तो काठके अपद्रव्यको प्रयोगमें लाना चाहिये यह वात्स्यायन आचार्यका मत है ॥ ७ ॥

लिङ्गप्रमाणान्तरं बिन्दुभिः कर्कशपर्यन्तं बहुलैः स्यात् ॥ ८ ॥

जितना मनुष्यका लिंग बड़ा हो सकता है यह उतना ही बड़ा होना चाहिये, इससे पशुओंकी नकल न होनी चाहिये । अग्रभागपर बहुतसी बिन्दु होनी चाहियें जिनसे खाज मिटा सके ॥ ८ ॥

एत एव द्वे संघाटी ॥ ९ ॥

जितने भी अपद्रव्य हों उनमें दो जोड व उतार चढाव रहने चाहियें ॥९॥ ये जोड़ आकृतिकी समानताके लिये किये जाते हैं दूसरा मतलब नहीं है ९

त्रिप्रभृति यावत्प्रमाणं वा चूडकः ॥ १० ॥

ससासे लेकर अश्वनायकके साधनका जितना प्रमाण हो सकता है, उतना जिसका प्रमाण हो वह 'चूडक' कहाता है ॥ १० ॥

हस्तिनीके सिवा दूसरियोंपर भी इसका प्रयोग करना हो तो उनके मदन-मंदिरके परिमाणसे अधिक न हो । पर लघ्वी स्त्रियोंपर इसका प्रयोग होना न चाहिये ॥ १० ॥

एकामेव लतिकां प्रमाणवशेन वेष्टयेदित्येकचूडकः ॥ ११ ॥

अपने प्रमाणसे एक ही लतिकाको लिभेड़ सके उसे 'एकचूडक' कहते हैं ॥ ११ ॥

उभयतोमुखच्छिद्रः स्थूलकर्कशपृषतगुटिकायुक्तः प्रमाणयोगी कट्यां बद्धः कञ्चुको जालकं वा ॥ १२ ॥

जिसके दोनों तरफ छेद हों वह स्थूल हो, कठोर हो, उसमें वृषणोंके स्थानमें वे भी लगाये हों, जितनी लम्बाई चौड़ाई चाहिये उतनीही लम्बाई चौड़ाई हो । वह कमरसे बाँधा जा सके उसे 'कंचुक व जालक' कहते हैं ॥ १२ ॥

तदभावेऽलाबूनालकं वेणुश्च तैलकषायैः सुभावितः सूत्रजंघाबद्धः श्लक्ष्णा काष्ठमाला वा ग्रथिता बहुभि-रामलकास्थिभिः संयुक्तेत्यपविद्धयोगाः ॥ १३ ॥

यदि ये न मिलें तो तूमा या बाँसको तेल और कषायोंसे ठीक करके डोरसे कमरमें बाँध ले। अथवा चिकने काठकी माला बना उस बहुतसे आमलोंकी गुठलियोंसे संयुक्त कर दे। ये अपविद्धयोग हैं ॥ १३ ॥

न त्वपविद्धस्य कस्यचिद्व्यवहतिरस्तीति ॥ १४ ॥

अपविद्धका किसीके साथ सहवास नहीं है ॥ १४ ॥

जो अपद्रव्य लगाये हुए हैं उसका सारा व्यापार अपद्रव्यसे ही होता है। अपने अंकुशसे तो होता नहीं अतः उसका सहवास भी नहीं केवल खेलसा होता है या बींधेहुए बेकारोंके ये योग हैं। आत्मीय साधनाभावमें सहवास कहां है ॥ १४ ॥

दाक्षिणात्योंके यहां अपद्रव्य ।

यद्यपि मुसलमानोंके यहां तो चर्मच्छेदन सुनते हैं परन्तु हिन्दुओंमें कहीं भी इस प्रकारकी रिवाज है कि वहां कानकी तरह बालकके साधनके भी कान बींधे जायँ यह हम नहीं सुनते। किन्तु महर्षि वात्स्यायन इसे कुचुमारके आधारपर कह रहे हैं, क्योंकि इस अधिकरणके कामशास्त्रसे विभक्त करने-वाले महात्मा कुचुमार ही हैं तब मजबूरन यह विश्वास करना पड़ता है कि दक्षिण वा भारतके भी दक्षिण किन्हीं जातियोंमें मुसलमानोंकी तरह साधन-व्यधन भी होता होगा जिसे कि देखकर यह लिखा गया। क्योंकि लोक, वेद, राजनीति आदि शास्त्रोंमें जो कुछ है वह सब लोकमें स्वतः ही प्रचलित है अतः जिन लोगोंमें इस प्रकारका कार्य्य होता है वा होता था तो वे कैसे करते हैं वा कैसे करते थे इस बातके दिखानेके लिये सूत्र करते हैं कि—

दाक्षिणात्यानां लिङ्गस्य कर्णयोरिव व्यधनं बालस्य १५॥

दक्षिणादियोंमें तो बच्चेके कानछेदनकी तरह लिङ्गका भी छेदन होता है १५

यह प्रथा मुसलमानोंमें है पर नाममात्र ही होता है। यदि सीमनकी नसको युक्तिपूर्वक योग्य डाक्टरसे कटाया जाय तो योनिरोग प्रायः कम लगते हैं तथा साधन कुछ बढ़ भी जाता है ॥ १५ ॥

युवा तु शस्त्रेण च्छेदयित्वा यावद्रुधिरस्यागमनं ताव-दुदके तिष्ठेत् ॥ १६ ॥

युवा व्यक्ति तो शस्त्रसे छेदन करके जबतक लोहू आये तबतक पानीमें उसे रखे ॥ १६ ॥

जिसे जगदीशने बल दिया है उसे छेदनक्रिया न करनी चाहिये, यदि करे तो योग्य डाक्टरसे कराये, ये कार्य्य खुदके नहीं हैं सो भी अपद्रव्य बाधनेके लिये क्लीब ऐसा करे तो डाक्टरोंसे करा ले ॥ १६ ॥

वैशद्यार्थं च तस्यां रात्रौ निर्बन्धाद्व्यवायः ॥ १७ ॥

विशद करनेके लिये उस रातिको अधिक मैथुन करे ॥ १७ ॥

जो चीजें चुराकर मुखमें रखना तथा दूसरी जगहके व्रणमें छिपा लेना इत्यादि कार्य्य करते हैं, ऐसे पुरुष अपने शरीरमें गहरात्रण रखते हुए भी उसे ओषधिविशेषोंके उपचारसे ऐसा बना लेते हैं कि फिर वह न तो व्रणीको कोई व्रणसम्बन्धी कष्ट ही देता है एवम् न उससे रुधिरादिक ही निकलता है। इसी तरह यह भी अपद्रव्योंको अपने साधनमें ही उलझानेका शौकीन युवा अपने व्रणके छिद्रको बड़ा करनेके लिये कष्टको सहता हुआ भी अतिरति करता है[1]। रक्तबन्ध होनेके बाद उपचार ऐसा अवश्य किया जाता है जिससे अधिक कष्ट प्रतीत न हो ॥ १७ ॥

शोधन ।

ततः कषायैरेकादिनान्तरितं शोधनम् ॥ १८ ॥

इसके बाद कषायोंसे एक २ दिनके आँतरे धोना चाहिये ॥ १८ ॥

शंखिनी, अंकोठ, मालती, कनेर, ब्राह्मी तथा आरग्वधादि[2] वर्गका कषाय इनसे धोना शोधन है। अजगंधा, कर्कटशृंगी, इन्द्रवारुणी, लांगली, बड़ा करंज, चित्रक, पाठा, विडंग, बडी इलायची, रेणुका, त्रिकटु, यवक्षार (पांचोंनमक, मनसिल, कसीस, रसोत, दंती, हरताल, फटकरी) ये द्रव्य शोधनी बत्तीके

---

१ कभी ऐसा होता होगा तथा यह रहस्यका विषय है कोई छोटे साधनका युवक वर्धनके योगोंसे हताश होकर कर बैठता हो पर हम तो इसे एक प्रकारका नकली जोगियोंकासा कर्म समझते हैं न तो यही ध्यानमें आता है कि कोई भगवान्की दी हुई वस्तुमें कुछ विपर्य्यास कर सकता है ?

२ अमलतास, इन्द्रजौ, पाढ, मंजीठ, निम्ब, गिलोय, मूर्वा, कंडयाई, सोनापाठा, चिरायता, पियाबांसा, पटोल, करंजवृक्ष, लताकरंज, सतोना, चित्रक, मेढासिंगी, मैनफल, कालावासा, यह हैं ।

लिये हैं अर्थात् इनका कल्क बनाकर वत्ती या फोहेपर लगाकर व्रणमें रखनेसे व्रण शुद्ध होता है । इनकी लुगदी भी व्रणोंको शुद्ध करनेवाली है ॥ १८ ॥

वेतसकुटजशङ्कुभिः क्रमेण वर्धमानस्य वर्धनैर्बन्धनम् ॥ १९

वेतस (वेत) और कुटज (कूडा) इनके शंकु (अंकुर) ओंसे क्रमसे बढ़ते हुएका वर्धनयोगोंके साथ बन्धन होना चाहिये ॥ १९ ॥

यष्टीमधुकेन मधुयुक्तेन शोधनम् ॥ २० ॥

मुरहटीमें मधु मिला इससे शोधन करना चाहिये ॥ २० ॥

इस मुरहटीको व्रणशोधक अनेकों उपचारोंम आयुर्वेदके आचार्य बरत लेते हैं, यहां महर्षि वात्स्यायन इसका केवल शहदके साथ इसी कार्य्यमें प्रयोग कर रहे हैं । इसका अत्यन्त वारीक चूर्ण इस काय्यमें आया करता है, यदि उसमें जरासा भी काठका अंश रह गया तो कर करायगा ॥ २० ॥

ततः सीसपत्रकर्णिकया वर्धयेत् ॥ २१ ॥

इसके बाद सीसपत्रकी कर्णिकासे बढ़ाये ॥ २१ ॥

म्रक्षयेद्भल्लातकतैलेनेति व्यधनयोगाः ॥ २२ ॥

भिलावेके तेलसे म्रक्षण करे, ये व्यधनके योग पूरे हुए ॥ २२ ॥

भिलावेका तेल व्रणके भरनेमें सबसे अच्छा रहता है । यह तेल जिस प्रकार बनता है वह विधि तेलनिर्माणमें है । केवल इसका भी तेल बनाया जाता है तथा भल्लातकादि तेल भी इसपर पूरा प्रभाव डालता है यही चक्रदत्तमें भी लिखा है कि—

" भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन, सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयचित्रकैश्च ।
स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं, नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणाँश्च । "

भिलावा, अंकोला, कालीमिर्च, सेंधानमक, वायविडंग, हल्दी, दारुहलदी, चीतेकी जड़, इनके कल्क तथा भांगरेके रससे सिद्ध किया हुआ तैल कफ और वातज नाडीव्रण, अपची और व्रणोंको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

तस्मिन्ननेकाकृतिविकल्पान्यपद्रव्याणि योजयेत् ॥ २३ ॥

उसमें अनेकों तरहके अपद्रव्योंको लगा दे ॥ २३ ॥

जब छेदन करके उसे बड़ा व पीडा रहित अच्छा कर लिया जाता है तो उसमें फिर अपद्रव्य लगाये जाते हैं ॥ २३ ॥

अपद्रव्योंका रूप ।

वृत्तमेकतो वृत्तमुदूखलकं कुसुमकं कंण्टकितं कङ्का-

स्थिगजप्रहारिकमष्टमण्डलिकं भ्रमरकं शृङ्गाटकमन्यानि वोपायतः कर्मतश्च बहुकर्मसहता चैषां मृदुकर्कशता यथासात्म्यमिति नष्टरागप्रत्यानयनम् । (द्वाषष्टितमं प्रकरणम्) ॥ २४ ॥

गोल, एक ओरसे गोल, ऊखल जैसा गोल, कमल जैसा, करैले जैसा काँटेदार, कंककी हड्डी, हाथीके दाँत, अठकोन, चक्करदार, सिंघाड़े जैसा, जैसा चाहे वैसा काम करने योग्य कठोर या कोमल जैसा अनुकूल पड़े वैसा अपद्रव्य बनाया जा सकता है। यह विधि नष्ट हुए प्रेमको फिर लानेकी है यह ६२ वां प्रकरण पूरा हुआ ॥ २४ ॥

जिस प्रकारके अपद्रव्य बनाये जाते हैं उन्हें इस सूत्रसे दिखा रहे हैं जो कांटेदार आदि अतिपीडाकर हों वे महाहस्तिनियोंके प्रयोगमें भले आयें अन्यत्र उनका उपयोग हो नहीं सकता। अपद्रव्य हारेका उपाय है, यही कारण है कि इसको जो है सो है, अधिकसे संप्रयोग न करना चाहिये ॥ २४ ॥

वर्धन योग प्रकरण ।
बडा करनेकी विधि या क्लीबका इलाज ।

बासठवें प्रकरणमें नष्ट हुए प्रेमको फिर लानेके उपाय बतलाये थे अब इस त्रेसठवें प्रकरणमें मदनांकुश (लिंग) बड़े करनेकी विधि बताते हैं, जिनको जान, ध्वजभङ्ग या छोटी ध्वजवाले अपने साधनको सहवासके योग्य बना सकें। जो शास्त्रकारोंकी उदारता नहीं जानते वे यह शंका कर सकते हैं कि ऐसी बातोंके कहनेका क्या प्रयोजन था, किन्तु जिन्हें शास्त्रकारोंकी दयालुताका पता है कि–' सदाचारिणी सुरूपा सौभाग्यशालिनी पतिव्रताके सच्चे प्रेमी ध्वजभंग या छोटे साधनवाले सदाचारी पतिको ध्वजके ठीक करनेके उपाय बता देना सच्चा हित करना है ' वे इस निरूपणसे आनन्द ही मानेंगे। यह बात कामसूत्रने कोई नई कही हो हम भी नहीं है किन्तु वेद भगवान्का ध्यान भी इस ओर गया है। उन मन्त्रोंको हम यहीं उद्धृत करते हैं–

अथर्व—" ओं अद्याग्ने अद्य सवितरद्यदेति सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवातानय पसः ॥ "

हे अग्ने ! हे सवितः ! हे सरस्वति ! हे ब्रह्मणस्पते ! आप लोग, अद्याद्य-हालोंहाल, धनुरिव-धनुषकी तरह, पसः-साधन-(लिंग) को, आतानय-बढा दो ॥

हे अग्नि सूर्य्य सरस्वती और ब्रह्मणस्पाति देवताओ ! आप लोग इस साधन (लिंग) को धनुषकी तरह हालोहाल बढ़ा दो । यह इस मन्त्रका भाव है । इसमें हालोहाल ही साधनके बढानेकी प्रार्थना की है कि हे देवो ! मेरे इस कार्य्यको कर दे। इन योगोंके जाननेवाले वैद्य भी इन रोगोंके रोगियोंको क्या कहा करते हैं यह भी दिखाते हैं कि-

"ओं आहं तनोमि ते पसो अधिज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहित मनवग्लायता सदा ॥"

जैसे धनुषपर शर सन्धान करती वार ज्या (डोरी) बढ़ जाती है उसी तरह मैं तेरे साधनको बढ़ाये देता हूं । अब आप हृदयको प्रसन्न करके सदा उसी तरह रमण करें जिस प्रकार जंगली हिरण अनेकों हिरणियोंसे रंगरेली करता रहता है । जब वेद भगवान् इतने खुले शब्दोंमें साधनके वर्धनको कहता है तो कामसूत्रके प्रणेता महर्षि वात्स्यायनके लिये आपत्ति करना सिवा भूलके दूसरा और हो ही क्या सकता है । इन्होंने भी इन योगोंको कहा है उन्हें सविस्तर दिखाते हैं ।

केवल शूकका या जलशूक ।

आयुर्वेद तथा कामशास्त्रके प्राचीन आचार्य्योंने इसपर बहुत विचार किया हैं, इस कारण वात्स्यायन केवल शूकका प्रयोग दिखाते हैं कि-

एवं वृक्षजानां जन्तूनां शूकैरुपलिप्तं लिङ्गं दशरात्रं तैलेन मृदितं पुनःपुनरुपलिप्तं पुनः प्रमृदितमिति जातशोफं खट्वायामधोमुखस्तदन्तरे लम्बयेत् । ततः शीतैः कषायैः कृतवेदनानिग्रहं सोपक्रमेण निष्पादयेत् । स यावज्जीवं शूकजो नाम शोफो विटानाम् ॥२५॥

इसी प्रकार वृक्षोंमें पैदा होनेवाले जन्तुओंके शूक (रोमों) का लिंगपर लेप करे, फिर तेल मसले, फिर लेप करे और तेल मसले। इस तरह दश रात करे जब साधनपर सूजन आजाय तो खाटके छेदसे उसे नीचे लटका दे और ओंधा सो जाय, इसके बाद शीत कषायोंसे तकलीफको मिटाकरउपक्रमपूर्वक निष्पादन करे । जबतक जीवन रहता है यारोंके तबतक यह मुटाई रहती है ॥ २५ ॥

इस जीवको 'कन्दलिका' के नामसे भी कहते हैं प्रयोग करती बार इसके रोमोंको अच्छी तरह घोटना चाहिये। इसके रोम विषैले प्रतीत होते हैं तब ही

तो उनसे साधनपर सूजन आती है। वैद्यक शास्त्र शूकके प्रयोगोंको खतरेसे खाली नहीं बताता, इस कारण इसका प्रयोग न करना ही अच्छा है, यदि करना हो तो बड़ी ही सावधानीकी आवश्यकता है। वैद्यकशास्त्रने इसे कितना आपत्तिजनक माना है यह नीचे लिखे विवरणसे विदित होगा। चरकसंहिता चिकित्सा स्थान अध्याय ३० के १६२ वें श्लोकमें 'शूकानां चातिसेवनात्' शूकोंका अत्यन्त सेवन, ध्वजभंग नामक नपुंसकताके रोगका कारण माना है। ध्वजभंग उस नपुंसकताका नाम है जिसमें इन्द्रिय खड़ी ही न हो, हो भी तो उसी समय मुरझा जाय। इस तरह यह शूकसेवन ध्वजभंगका कारण बनता है। जिसके बढ़ानेके लिये इसका प्रयोग किया जाता है उसे उलटा फल होता है। इसी शूकके अवैध सेवनसे अठारह तरहके शूक रोग भी पैदा होजाते हैं, यह बात भी माधवनिदान और भावप्रकाश तथा सुश्रुतके निदान स्थानमें कही है कि-'जो क्रमको छोड़ एकदम ही वृद्धि करना चाहते हैं उनकी इन्द्रियमें शूकसे १८ तरहके शूकरोग पैदा होजाते हैं, इस तरह इस शूकके सेवनसे रोग भी होजाते हैं। रोगोंके होनेका यही कारण है कि शूक अच्छी तरह ढुचिला नहीं जाता, न जलदीमें लोग उसे घोटते ही हैं, अन्तमें इन रोगोंसे यहां तक होजाता है कि उपस्थ गलकर गिर-तक जाता है। यदि तिला सेवन करतीवार इन्द्रियपर किसी भी तरहकी फुंसियाँ होजायँ तो उसी समय समझ लेना चाहिये कि किसी तरहकी खराबी हुई है अतः उसका जितना भी जलदी हो सके प्रतीकार कर देना चाहिये। तिलाको एकदम लगाना भी न चाहिये, क्योंकि जितने लाभ क्रमशः सेवन करनेसें हैं वे एकदम नहीं होते। कोई भी तिला हो मात्रासे अधिक लगानेपर उलटा नुकसान करता है। इनका व्यर्थ सेवन भी न करना चाहिये, क्योंकि विना बातके सेवन करनेसेभी ये नुकसान पैदा करते हैं॥ २५॥

अन्योंके साथ जलशूक।

दूसरी वस्तुके साथ भी इसका प्रयोग किया जाता है, इस कारण दूसरियोंके साथ भी वात्स्यायन प्रयोग दिखाते हैं कि-

अश्वगन्धासवरकन्दजलशूकबृहतीफलमाहिषनवनीत-हस्तिकर्णवज्रवल्लीरसैरेकैकेन परिमर्दनं मासिकं वर्धनम् ॥ २६ ॥

---

१ भैंसके मक्खनमें जलशूक, कूठ, गऊका गोबर और मूत्र, मिलाकर सीधे लगा लेना अवैध है।

असगन्ध, बड़े लोधका मूल, दुण्डुभादि जन्तु (गेसा), बड़ी कटेरीके पके हुए फल, भैंसका मक्खन, बड़े पत्तोंवाला ढाक, और वज्रवल्ली-हड़जोड, इसका रस इसके एक २ वारके लगानेसे एकमास तक वृद्धि रहती है ॥२६॥

असगन्धकी जड़, बड़े लोधकी जड़, गेसा, बड़ी कटेरीके पके हुए फल और हडजोड़का रस लेकर इन्हें घोट डालना चाहिये। फिर इनमें उतना ही भैंसका मक्खन मिला देना चाहिये जिससे इनका लेप हो सके। यह लेप रातिको सोतीवार करना चाहिये सुपारीको बचाकर कर लेप पुछ न जाय इसलिये पान या कोई पत्ता कच्चे सूतसे जचा देना चाहिये। यदि जलन मालूम हो तो उसी समय गरम पानीसे लेपको धो देना चाहिये तथा फुंसी आदि कोई विकार प्रतीत हो तो जबतक वह शान्त न हो ले वर्धनयोगोंका प्रयोग न करना चाहिये। तिलासेवनके दिनोंमें चारदिन पहिलेसे स्त्री सहवास करना छोड़ दे तथा अन्तमें सेवनके समाप्त होनेपर भी चार छः दिन बाद ही स्त्री प्रसंग करे। तिलासेवनके दिनोंमें साधनसे ठंडा पानी न लगाये। गेसेका बराबर ध्यान रखना चाहिये, उसकी घुटाईमें कोई कसर न रह जाय, क्योंकि साधारण वाल भी जल्दी नहीं घिसा जा सकता। इस गेसाका यदि इसमें प्रयोग न हो तो सबसे अच्छा है, क्योंकि यह गेसाके रहते खटकेकी चीज ही बना रहेगा ॥ २६ ॥

शूकयोगोंपर वैद्यकशास्त्र।

इस योगमें जो जलशूक (दुण्डुभादि जन्तु गेसा) आया है इसपर वैद्यकशास्त्रने कुछ विचार प्रकट किया है उसे हम यहीं व्यक्त करते हैं-माधवनिदान और वंगसेनने जो शूकरोगोंका कारण रखा है उसकी व्याख्या करती वार भावमिश्र लिखते हैं कि-‘ साधनके बढ़ानेके लिये जो दवा तयार की जाती है उसमें ऐसी वस्तुका उपयोग करे कि जरासी भी गलती हो तो उचित ढंगके लाभके बदले कई गुना अधिक विकार पैदा कर दे। उनमें शूक ऐसी वस्तु है जिसके उपयोगसे विकारकी संभावना रहती है। कामसूत्रमें जहां शूक आया है वहां जलशूकसे मतलब है, यह एक जहरी जलजीव है यह पानीके मलसे पैदा होता है, इसे कोई ‘ अल्पदुण्डुभ ’ कहते हैं। जिनमें शूक मुख्य है ऐसे जो वात्स्यायनादि कामशास्त्रके आचार्योंने लिंगके बढ़ानेके योग कहे हैं वे सब शूकयोग कहाते हैं। शूकयोगके उदाहरणमें भावमिश्र रखते हैं कि—

" भल्लातकास्थिजलशूकमथाब्जपत्रमन्तर्विदाह्य मतिमान् सह सैन्धवेन ।
एतद् विरूढबृहतीफलतोयपिष्टस्थूलं महद्वरतुरंगमलिंगतुल्यम् । "

भिलावेकी गुठली, गेसा, कमलका पत्ता इन तीनों चीजोंको सेंधानमक मिला निर्धूम जलाकर राखको बड़ी कटेरीके फलके रसमें मिलाकर पीस ले। इसके लेपसे पुरुषका साधन अच्छे घोड़ेके साधन जैसा मजबूत हो जाता है इसमें संदेह नहीं । भावमिश्रने इसे नित्यनाथके बनाये कामरत्नसे लेकर उदाहरणमें रखा है । जिस प्रकार कि दिखाया है । इसमें शूकका प्रयोग है, इस कारण यह ठीक नहीं, किन्तु विना शूकके डाले जो अश्वगन्धादिक तैल हैं, वे ही साधनके बढ़ानेके लिये उचित हैं ।

चक्रदत्तने कामशास्त्रसे शूकयोगोंको लिया ।

यह भाव मिश्रका मत है किन्तु चक्रदत्त तो ' लिंगवृद्धिकरा योगाः ' इस शीर्षकमें इस प्रयोगको देते हैं कि—

' भल्लातकबृहतीफलनलिनीदलसिन्धुजलशूकैः ।
माहिषनवनीतेन च कराम्बितैः सप्तदिनमुषितैः ॥
मूलेन हयगन्धाया माहिषफल मर्दितपूर्वमथ ।
लिप्तं भवति लघुकृतरासभलिंगं ध्रुवं पुंसाम् ॥ '

---

१ कोकजीने इसे इस प्रकार कहा है कि--

" अन्तर्धूमं दग्ध्वा सैन्धवजलशूककमलदलवज्रैः ।
भल्लातकया लेपो बृहतीरसभावितैस्तद्वत् । "

सैन्धानमक, गेसा, कमलदल और सेहुंड़ इनको दो सकोरोंके बीचमें रख कपरमिट्टी करके जला ले, फिर शुद्ध भिलावा मिला कटरीके फलके रसकी भावना दे लेप करे या सैन्धवादिके साथ भिलावेकी गुठली भी ले ।

" पुटदग्धपद्मिनीदलभल्लातकबालकृष्णलवणानाम्
भूत्या परिणतबृहतीफलरसपरिपिष्टया भवति ।
महिषीमलेन मिलितं लिङ्गं पश्चादनेकशो लिप्तम् ।
मुसलमित्रमदविह्वलयुवतिजनदर्पनिर्दलनम् । '

कमलपत्र, भिलावे की गुठली, सुगन्धवाला, वालछड़, खश, काला निमक इन सबको दो सकोरोंमें रख कपड़मिट्टी करके फूँक दे । इनकी राखको कटेरीके फलोंके स्वरसमें पीस भैंसके गोवर और मूतके साथ लेप करे (यह विना जलशूकका योग है) । कल्याणमल्ल इसको इस प्रकार कहते हैं कि—' महिषीगोमयैः पूर्वं घृष्टलिंगे विलेपयेत् ' इस राखको उक्त रसमें मिलाकर लगाये पहिले भैंसका गोवर पीसकर । उबटन करके पीछे ही लगाना अच्छा है ।

भिलावेकी गुठली, बड़ी कटेरीके पके फल, कमलिनीके पत्ते, सेंधानमक, जलशूक (गेसा) इनको घोट लुगदी बाँध भैंसके मक्खनमें मिला ७ दिन तक रखा रहने दे । पहिले लिंगमें भैंसेके गोबरसे उबटन करके असगन्धकी जड़से लेप करना चाहिये, इससे मनुष्योंका लिंग गधेके लिंगसे भी बड़ा हो जाता है।

वैद्योंके यहां और भी ।

कामशास्त्रके आचार्य्य श्रीवात्स्यायनने इस विषयमें केवल जलशूकोंको ही बरता है पर आजके आयुर्वेदके सभी आचार्य्य प्रायः इस रोगमें अनेकों जीवोंको बरतते हैं उनमेंसे कुछ एकोंका हम यहां नाम निर्देश करके बताते हैं, जो जीव आज इलाजोंमें बर्ते जाते हैं कि–इन्द्रगोप–वीरवधूटी, गंडूष–केंचुए, सांड़ा, सूकरकी चर्बी एवम् चमगीदड़, केंकड़ा, खरगोश, सेहल्यार, व्याघ्र, रीछ और गीधको तेल और लेपोंमें वर्ता है किन्तु जलशूकका हमने प्रयोग नहीं देखा पर आयुर्वेदाचार्य्य पं० भगीरथ स्वामीने जलशूकके अर्थमें भूनाग, केंचुआ और गेसाका प्रयोग किया है । इनमें इन्द्रगोप–वीरवधूटी, सूकरकी मेदा और कुलीरके मांसका लेपमें भी प्रयोग करते हैं एवम् इन्द्रगोप और केंचुएका सेकमें भी प्रयोग कर लेते हैं और तेलमें इन सबका प्रयोग करते देखे जाते हैं । इन योगोंमें लेपके समय गेसाका प्रयोग न करके तेलमें कर लिया जाय तो कोई दोष नहीं देखता, लेपके समय गेसेकी जगह वीर-वधूटी ले ली जा सकती है, क्योंकि–अकरकरा आदिके साथ लेपमें इनका

---

१ यह पूरेका पूरा श्लोक थोड़े पाठभेदके साथ रतिरहस्यमें मिलता है उसे यहीं उद्धृत करते हैं कि—

" सिंहीफलभल्लातकनलिनीदलसिन्धुजन्मशैवालैः ।
माहिषनवनीतेन च करम्बितैः सप्तदिनमुषितैः ।
मूलं हयगन्धाया माहिषमलमिलितपूर्वमालिप्तम् ।
भवति लघूकृतगर्दभलिङ्गं लिङ्गं ध्रुवं पुंसाम् । "

पहिले चरणमें भल्लातक पहिले तथा वृहतीफलका पर्य्यायवाचक शब्द सिंहीफल रख दिया है । इसी तरह जन्मशैवालके स्थानमें चक्रदत्तने जलशूक लिया है । बाकीका पाठ एक है । इससे विदित होता है कि चक्रदत्तने कामशास्त्रका यह अपना अनुभूत प्रयोग अपने संग्रहमें रखा है । जो चक्रदत्तका पाठ है वही रतिरहस्यमें रहा, होगा पुरानी कौपीटूकौपी या गलतीसे इधर उधर होगया होगा इसके देखनेसे तो यह इसी नतीजेपर पहुँचते हैं कि इन विषयोंमें कामशास्त्र तथा वैद्यक दोनों एक हैं । संगृहीता वैद्योंने अपने छोटे अनुभव तथा कामशास्त्रके आचार्योंने इस विषयके अपने बडे अनुभवोंको रख दिया है ।

प्रयोग देखा जाता है । यदि जलशूकका प्रयोग किया जाय तो अच्छी तरह घोटकर ही किया जाय, यानी विधिपूर्वक सावधानीसे ही किया जाय अन्यथा नहीं ।

कामशास्त्रके दूसरे आचार्य्योंके यहां जलशूकके योग ।

आयुर्वेदशास्त्रके आचार्य्योंने जिस प्रकार जलशूकका उपयोग किया है यह कामशास्त्रके प्रसिद्ध आचार्य्य महर्षि वात्स्यायनके मन्तव्यके साथ दिखा चुके हैं, अब दूसरे २ आचार्य्योंने जो शूकके योग कहे हैं उन्हें बताये देते हैं । इनमें कुचुमार मुख्य हैं, क्योंकि इस अधिकरणके संगृहीता या प्राचीन आचार्य्योंके ग्रन्थोंसे अलग करनेवाले ये ही हैं । (१) वनकरेला, राल और जलशूक इनको अत्यन्त बारीक पीसकर कटेरीके फलोंके स्वरसमें लेप करे । (२) तिल, सरसोंका चूर्ण, सप्तपर्णकी भस्म और जलशूककी बारीक बुकनी इन चारोंका क्रमशः लेप करना चाहिये । (३) इन सबको चौगुने घीमें मिला घाममें राखे, चार छः दिन घाममें रखकर पीछे लगाये । (४) भिलावे शुद्ध, प्याज, बड़े फूलवाले शाल, कुरही, कमलके पत्ते इनको महीन कर कटेरीके फलके स्वरसमें मिलाकर भैंसके गोबरमें मिलाकर लेप करना चाहिये । (५) तेजपत्र, जलशूक, इन दोनोंको भैंसके घृतमें घोटकर निरन्तर कई दिनतक लेप करे । (६) बारबार गोबरका लेप और ठंडे पानीसे धोना भी स्थूल कारक है । (७) वनकरेला छोटा, गेसा, इनका समभाग चूर्ण लेकर कटेरीके फलके रसमें लेप करे तो वृद्धि होगी ।

अश्वगन्धादि तैल ।

कामशास्त्रने इस विषयमें असगन्धको अनेक स्थलोंमें बरता है तथा वैद्यकके आचार्य्य भी इसे अपने २ ढंगोंसे इसे इस कार्य्यमें बर्तते हैं, इस कारण असगन्धके तेलको कहते हैं कि—

एतैरेव कषायैः पक्वेन तैलेन परिमर्दनं षण्मास्यम् ॥२७॥

---

१ नित्यनाथने जलशूकका योग कहकर जोंकका भी भिन्नयोग कहा है, इससे प्रतीत होता है जोंक जलशूकसे भिन्न है उसे यहीं दिखाते हैं कि-

" रोहितामत्स्यपित्तं तु जलौका लांगुली सदा,
अनेन मर्दयेल्लिङ्गं वर्द्धते मुसलोपमम् ।"

रोहू मछलीकी पित्ता, जोंक, कलिहारीकी जड़ इनके मर्दनसे साधन मोटा होजाता है ।

अश्वगन्धादिकोंके कषायोंसे सिद्ध किये हुए तेलकी मालिस करनेसे छः मास वृद्धि रहती है ॥ २७ ॥

असगन्ध मूल, बड़े लोधकी जड़, गेसा, बड़ी कटेरीके पके फल, भेंसका मक्खन, बड़े पत्तोंवाले ढाकके बीज, हडजोड़का रस ये सब चीजें बराबर ले लेनी चाहियें। पीछे घोटकर लुगदी बाँध देनी चाहिये। लुगदीसे चौगुना तेल एवम् तेलसे चौगुना दूध देना चाहिये। इस तरह तेल बनानेकी विधिसे तेल तयार कर लेना चाहिये। सूत्रमें 'कषायैः' यह बहुवचन पड़ा है, वैद्यक शास्त्रमें स्वरस (रस), कल्क (लुगदी), कथित (काढा), शीत (कूटकर छःगुने पानीमें रातभर रखा एवम् प्रातः छानकर ग्रहण किया) और फाण्ट-(चौगुने गरम पानीमें डालकर छाना) ये पांच कषाय होते हैं। इनमें सबसे ही अश्वगन्धादि तेल निकाल जा सकता है; केवल तेल निकालनेकी क्रिया दृष्टिमें होनी चाहिये। आततायी ढंगसे गेसाका प्रयोग करनेके बदले इस तरह तेल बना लेना अच्छा है पर इस तेलका सेवन भी कमसे कम इक्कीस दिन नियमके साथ होना चाहिये। रातके समय सुपारी बचाकर तेलकी मालिश करनी चाहिये तथा ब्रह्मचर्यसे रहकर तीक्ष्ण चीजोंको न खाते हुए ही समय बिताना चाहिये। हाथसे लगाती बार सुपारीकी तरफसे नीचेको जाना चाहिये ॥ २७ ॥

आयुर्वेदका असगन्ध तेल।

भावमिश्रने शूकयोगोंका खण्डन करके अपने प्रतिपाद्य विषयको पूरा करनेके लिये एक अश्वगन्धादि तेल कहा है; जिसे शूकयोगोंकी जगह वर्तनेके लिये कहता है तथा वैद्यकके अपने अनुभूतयोगोंके संग्रह करनेवाले चक्रदत्तने भी इसका संग्रह कर लिया है, इस कारण इसे भी यहां दिखाते हैं कि—

+ " अश्वगन्धावरीकुष्ठं मांसीसिंहीफलान्वितम्,
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् ।
तत्तैलं मेढ्रवक्षोजकर्णपालिविवर्धनम् ॥"

+ इसको नित्यनाथने अपने संग्रहमें कहा है कि—
" अश्वगन्धावरीकुष्ठं मांसीसिंहीफलान्वितम् ।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् ।
स्तनालङ्गं कर्णपालिवर्द्धनं भक्षणादितः । "
ये भक्षणादि कहते हैं तथा चक्रदत्त 'भक्षणादितः' इसके स्थानमें 'म्रक्षणादिदम्' ऐसा पाठ रखते हैं। यानी तेलके अधिक गुण लगानेमे होते हैं इस कारण लगाना चाहिये ।

असगन्ध, बालछड, कूठ, जटामांसी, बडी कटेरीके पके फल इन चीजोंका चौगुने तेल एवं तेलसे चौगुना दूध डालकर तेल तयार कर ले। इस तेलके लगानेसे मेढ्र स्तन और कान बढ़ते हैं।

असगन्धका उपयोग।

चक्रदत्तने इसका एक विचित्र योग लिखा है कि—

" कनकरसमसृणवर्तितहयगन्धामूलविश्वपर्य्युषितम् ।
माहिषमिह नवनीतं गतबीजे कनकफलमध्ये ।
गोमयगाढोद्वर्तितपूर्वं पश्चादनेन संलिप्तम्। भवति हयलिङ्गसदृशम्॥"

असगन्ध और सोंठको धतूरेके रसमें खूब घोटकर मक्खन मिला धतूरेके फलमें उसके बीज निकालकर भर दे, फलके बासी हो जानेपर निकाल ले, साधनमें गोबरका उबटन करके इसका लेप कुछ दिन होना चाहिये। चक्रदत्तने यह योग कामशास्त्रसे ही लिया है, क्योंकि इसे कोकाने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रतिरहस्यमें' लिखा है, उसे हम यहीं उद्धृत करते हैं कि—

" कनकरसमसृणवर्तितहयगन्धामूल 'मिश्र' पर्य्युषितम्,
माहिषमिह नवनीतं गतबीजे कनकफलमध्ये ।
गोमयगाढोद्वर्तित पूर्वं पश्चादनेन संलिप्तम्,
भवति हयलिङ्गसदृशं लिङ्गं कठिनाङ्गनादयितम् ।"

इसमें जहां 'मिश्र' लिखा हुआ है उस जगह चक्रदत्तने विश्व लिखा है जिसका हिन्दीमें सोंठ अर्थ होता है। मिश्रका कोई उपयोग नहीं मालूम होता किन्तु विश्वके लिखनेसे 'सोंठ' अधिक होजाती है, सोंठमें भी गुण हैं। तथा सोंठके केवलको भी इस प्रकार चल सकता है। असगन्ध, कूठ, जटामांसी, शबरकन्द इनको पानीमें पीसकर लेप करनेसे स्थूल होगा। असगन्ध, वच, कूठ, जटामांसी, सफेदसरसों इन्हें पानीमें पीसकर लेप करे।

जलशूक और अश्वगन्धाका स्तनवृद्धिमें उपयोग।

इन दोनों चीजोंका उपयोग साधनवर्धनके सिवा कर्ण और स्तनवर्द्धनमें भी होता है यह यहीं दिखाये देते हैं—

" सर्षपतगरं कुष्ठं तालीशं वृहतीफलम् ।
जलशूकाश्वगन्धा च समादायैकभागतः ॥
अजाक्षीरेण संपेष्य कुर्य्यादुद्वर्तनं पुनः ।
कर्णलिङ्गस्तनानां तु वृद्धिरेषा प्रशस्यते ॥"

पीली सरसों, तगर, कूठ, तालीश, दोनों कटेरियोंके फल, जलशूक और असगन्ध बराबर लेकर बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे व युक्तिसे उंगलियोंसे रिगड़े, इससे कर्ण, लिङ्ग और स्तनोंकी वृद्धि होती है ।

दोनोंका चूर्ण साधनपर ।

इन दोनोंका चूर्ण जिस तरह मुख्यरूपसे वरता गया है उसे यहीं दिखाते हैं कि—

" किमत्रचित्रं यदि वज्रवल्ली, वचाश्वगन्धा जलशूकचूर्णम् ।
हेमप्रकाशं बृहतीफलं च, क्षणेन कुर्य्यान्मुसलप्रमाणम् । "

इस बातमें अचरज ही क्या है ! यदि हडजोड, घुडवच, असगन्ध, वीरवधूटी, पीले पके कटेरीके फूल, इन्हें पीस जल मिलाकर लेप करनेसे थोड़े समयमें ही मूसल जैसा मोटा हो जाय । लेप गर्मपानी मिलाकर करना चाहिये ।

" गोशृङ्गमूलं कनकस्य बीजं, वचाश्वगन्धा जलशूकचूर्णम् ।
हेमाम्बुवर्णं वृहतीफलं च क्षणेन कुर्य्यान्मुसलप्रमाणम् ।"

बबूलकी जड़, धतूरेके बीज, वच, असगन्ध, जलशूक, कटेरीके पीले फल इन सबका बारीक चूर्ण पीसकर बकरीके दूधमें लेप करे ।

बाहु, स्तन, कर्ण और साधनवर्धक योग ।

अब हम कामशास्त्रके प्रामाण्य ग्रन्थोंके वताये हुए कुछ योगोंका संग्रह करते हैं, जिनमें कि असगन्ध वरता गया है । सफेद कनेरकी जड़, अपामार्गकी जड़, असगन्धकी जड़, कलिहारीकी जड़, कटेरीके साफ किये हुए बीज इन्हें अत्यन्त बारीक पीसकर बाहु, स्तन, कान और साधन जिसपर लेप किया जायगा उसकी वृद्धि होगी । अपामार्ग, अश्वगन्धा, कटेरीके फल, श्वेत सर्षप, कुष्ठ, तगर, पिप्पल, काली मिरच, इनको बराबर लेकर बकरीके दूधमें पीसे, इसके लेपसे साधन और पयोधर बढ़ते हैं । असगन्ध, वचा, कुष्ठ, सफेद सरसों, इनके बकरीके दूधमें लेप करनेसे स्तन बढ़ते हैं । पत्र—तेज और तालीशपत्र, प्रियंगु, जंगली चम्पा, हरद्वारी घास, असगन्ध इनका चूर्ण समभाग लेकर पीस ले, फिर शहद और तिलीका तेल मिलाकर धानमें गाड़ दे, फिर चालीस दिनके बाद पचास दिनके भीतर उसे निकाल ले, इसके लिम्पनसे स्तन बढते हैं । हाथी, घोड़ा, गधा इनके मूत्रमें तिलका तेल बना ले इसकी मालिससे स्त्रियोंके जंघा, स्तन और होठ बढ़ते या मोटे होते हैं । सरसोंके

तेलमें सरसोंके चूर्णको बनाये, इसके साथ असगन्धका लेप स्तन बढ़ानेवाला है। एरण्डके बीजकी मींगी, असगन्ध, वचा, लोध, बडी कटेरीके फलका पानी, इस सबका लेप स्तनादिपर करे। मुरहटीके चूर्णमें दूध मिला, बड़ी कटेरीके फलके पानीमें लेप करे। चव्य, श्वेतकनेरकी जडकी छाल, कलिहारी, चित्रकके मूलकी छाल, अपामार्ग, असगन्ध समभाग लेकर बारीक पीस ले, फिर तिलके तेलमें मिलाकर लेप करे। इससे कान, पयोधर, बाहें और शिश्नकी वृद्धि होती है। शहद, तगर, पीली सरसों, कटेरी, चिरचिटा, पिपली, तिल, जौ, कुष्ठ, कालीमिर्च, सेंधानमक, असगन्ध और उरद इन सब चीजोंको पीसकर लेप करे। कल्याणमल्लने कहा है कि—

" लोध्रकासीसमातङ्गबलाकल्कैस्तिलोद्भवम्,
तैलं संसाधितं लिङ्गकुचकर्णविवर्धनम्। "

लोध, कसीस, असगन्ध, गंगेरन इन्हें डाल तिलका तेल बना ले, यह इनको बढ़ाता है। इसे ज्योतिरीश्वरने भी कहा है। सेंधानमक, मरिच, कुष्ठ, बृहती, खरमंजरी (लाल ओंगा) अश्वगन्धा, यव, माष, पीपल, गौर सरसों, श्वेत तिल, इन्हें पीसकर शहदके साथ मिलाकर लेप करे।

" सकुष्ठमातङ्गबलाबलानां, वचाश्वगन्धागजपिप्पलीनाम्,
तुरङ्गशत्रोर्नवनीतयोगाल्लेपेन लिङ्गं मुसलत्वमेति ॥ "

कूठ, नागवला (गंगेरन), खिरेंटी, वचा, अश्वगन्धा, गजपीपल, सफेद कनेरकी जड इनके चूर्णका लेप मक्खनके साथ करना चाहिये। कल्याणमल्ल तो इसके माहात्म्यमें यह कहते हैं कि थोड़ी ही देर छोटा बड़ा होगा; यह उनकी अत्युक्ति है। कुछ दिन विधिसे लेपन करना चाहिये।

पर—" हयारिपत्रं नवनीतपिष्टं वचाबलानागबलाभयैश्च,
लेपेन लिङ्गं सहसैव पुंसां लोहोपमं स्यादिति दृष्टमेतत्। "

यानी सफेद कनेरके पत्ते, वचा, गंगेरन, खिरेंटी, इनको बारीक पीस मक्खनमें लेप करनेसे साधन मजबूत हो जाता है। ज्योतिरीश्वर कहते हैं कि इसका मैंने प्रयोग किया है।

अनारादि तेल।

दाडिमत्रपुसबीजानि वालुकं बृहतीफलरसश्चेति मृद्वग्निना पक्वेन तैलेन परिमर्दनं परिषेको वा ॥ २८ ॥

अनार और बालखीराके बीज, एलुआ और बड़ी कटेरीके पके फलोंका रस, इनके मन्दी आगसे बनाये गये तेलकी मालिस अथवा इनसे परिषेक (सेकने) से साधन बढ़ता है ॥ २८ ॥

इनका तेल भी इनका कषाय बनाकर ही निकाले, असगन्ध आदिके तेल बनानेकी जो विधि है वही इनकी भी है । सेकती बार प्रायः दो विधि कार्य्यमें लायी जाती हैं-एक तो इन चीजोंकी पोटलीको सूखी रखकर तथा दूसरी भिगोकर । सेक पोटलीसे ही होता है ॥ २८ ॥

अन्य योगोंकी ओर इशारा ।

तांस्तांश्च योगानाप्तेभ्यो बुध्येतेति वर्धनयोगाः ।
(त्रिषष्टितमं प्रकरणम् ॥) ॥ २९ ॥

दूसरे २ भी जो बढ़ानेके अच्छे योग हैं उन्हें भी अच्छे पुरुषोंसे जाने । ये बढानेके योग पूरे हुए, इनके साथ ६३ वाँ प्रकरण भी पूरा हुआ ॥ २९॥

आयुर्वेदने ध्वजभङ्गनिवारणके जो उपाय कहे हैं उन्हींके प्रयोगोंमें बढ़ाना तथा मोटा करना भी आजाता है । उनमें जो वैद्योंके अनुभूत योग हों उन्हें भी इस विषयमें काममें लाओ; वह भी अपने मनसे नहीं किन्तु योग्य पुरुषोंसे जानकर व्यवहार करो यह बात महर्षि वात्स्यायनने कह दिया है॥२९॥

+ क्लैब्यहर तैल ।

यहां कुछ ऐसे योगोंको लिखता हूं जिन्हें मैं अचूक उपाय समझता हूं । चोक, कुचले, असगन्ध, मालकाँगनी, दालचीनी, लौंग, जावित्री, जायफल,

---

१ चक्रदत्त-"भल्लातकबृहतीफलदाडिमफलकल्कसाधितं कुरुते ।
लिङ्गं मर्दनविधिना कटुतैलं वाजिलिङ्गाभम् ॥ "

भिलावे, बडी कटेरीके पके फल पके अनारके शुष्कदाने इनकी लुगदी बना कडुए तेलमें तेल सिद्ध करा ले । तेल बनानेकी विधिसे इस तेलकी मालिशसे ध्वजकी खराबी दूर होती है ॥

+ जिन लोगोंको प्रमादवश अप्राकृतिक अनाचारसे क्लैब्य भोगना पड़ रहा है उनके लिये वैद्यराज पं० रामप्रसादजीके बताये हुए 'नपुंसकामृतार्णव' नामक ग्रन्थके कामदेव तैल, क्लैब्यहर तैल और राक्षस तैल अमृत हैं । हमारे कामसूत्रके प्रेमी भी इन्हें किसी योग्य वैद्यसे बनवाकर उपयोगमें ला सकें इस कारण यहीं लिखे देते हैं । कामदेव तैल-जायफल, लौंग, सफेद घुंघची, जावित्री, अकरकरा, दालचीनी, सफेदकनेरकी जड़का बक्कल, मालकाँगनी इन चीजोंको तीन २ तोले ले । केंचुवे और वीरबधूटीको छः छः तोला ले । कुचले, और हाथीदाँतके बुरादेके एक २ तोले ले । इन सब चीजोंको बकरीके दूधमें घोटकर-

सफेद रत्ती, ढाकके बीज, जंगली सूकरकी विष्ठा, तेलियाविष ये सब तीन तीन तोला ले । केंचुए, वीरवधूटी, साँडा और बाघकी चरबी छः छः तोला ले । केशर, कस्तूरी और मनुष्यके कानका मैल दो दो मासे ले । इन सब चीजोंकी भैंसके दूधमें घुटाई होकर छायामें सुखाना चाहिये, फिर पातालयंत्रद्वारा तेल निकाल लेना चाहिये । इसका भी इस्तेमाल पहिलेकी तरह होना चाहिये । राक्षस तैल—असगन्ध, चोक, सफेद कनेरकी जड़, जावित्री, दालचीनी, जायफल, पलाशके बीज, कुचला, मालकांगनी, लौंग, कौंचके बीज, अकरकरा, सफेद चन्दन, देवदारु, बड़ी कटेरी, आककी जड़, एरण्ड, अफीम, धतूरा, तेलिया विष, केशर, कस्तूरी ये सब चीजें चार २ तोला ले । चमगीदड़, साण्डा, वीरवधूटी, केंकड़ा, खरगोश, सेह, स्यार, गोधा, शेर, व्याघ्र, रीछ, कबूतर, केंचुए, गीध, जंगली सूकर, इनमेंसे जिसका मांस मिले ले ले । जिसकी चरबी मिल सके चरबी ले ले तीन २ तोला । फिर भेड़के दूधकी भावना देकर पातालयंत्रसे तेल खींच ले । इसके भी लगानेकी वही विधि है । पानीनाशक तैल—एक पाव मालकांगनी, आधपाव जमालगोटेकी गिरी, जायफल, जावित्री, दालचीनी और लौंग ये सब चीजें एक २ छटांक लेकर सबका विधिपूर्वक तेल खिंचवा ले । इसको उसी विधिसे मालिससे इन्द्रियकी नशोंका पानी निकल जाता है । ये योग अपनी दुरुस्ती करनेमें अच्छे हैं ॥

कुप्रयोग अथवा व्यतिक्रमके क्लीबका उपाय ।

जितने भी तिलाआदि हमने बताये हैं यदि ये उचित मात्रामें नियमपूर्वक व्यवहारमें लाये जायँ तो अवश्यमेव कथित लाभको पहुँचा देते हैं । यदि इनका अधिक मात्रामें व्यवहार वा अनियमित होजाता है तो ये उलटे नुकसान पहुँचाते हैं, इसकारण इनके प्रयोगोंमें मात्रा और नियमका सदा ध्यान रखना चाहिये । हम यहाँ इस विषयके इलाज भी लिखे देते हैं कि—

" समतिलगोक्षुरचूर्ण छागीक्षीरेण साधितं समधु ।
भुक्तं क्षपयति षाण्ढयं यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥

—छायामें सुखा ले । पीछे पातालयंत्रसे विधिपूर्वक तेल निकाल ले । इस तेलकी २१ दिन सोतीवार मालिश सुपारी व सीमन बचाकर करके ऊपरसे नागरपान कच्चे धागेसे लपेट दे । इससे नपुंसकता नष्ट होगी ॥

योगजवराङ्गबद्ध मथितेन खा।लित्यं हरति ।
उन्मुखगोशृङ्गोद्भवलेपो योगजध्वजभङ्गहरः । ”

काले तिल और गोखरूका चूर्ण बकरीके दूधमें सिद्ध करके शहद मिलाकर खाय, इससे कुप्रयोगोंसे उत्पन्न हुई क्लीबता नष्ट होजायगी । यदि योगोंके कारण ध्वजभंग हुआ हो तो ऊपर उठे हुए गोशृंगका लेप मर्द्देनें करनेसे अच्छा होजाता है । नित्यनाथने भी यही कहा है कि—

“ तिलगोक्षुरयोश्चूर्णं छागदुग्धेन प।चितम् ।
शीतलं मधुना युक्तं पिबेत् षण्ढत्वशान्तये । ”

छन्दोभेद है, दोनोंका अथ एक है । दूसरा योग भी नित्यनाथने इस प्रकार किया है कि—

“ अत्युन्नतं चापरगोविषाणं घृष्ट्वा पुनस्तेन विलिप्य लिङ्गम् ।
प्रयाति भूयः प्रकृतिं तदङ्ग दृष्टा नरैरेष सदा प्रयोगः । ”

अति ऊँचे दूसरे गोविषाणको घिसकर साधनपर लेप करनेसे फिर ठीक होजाता है । मनुष्योंने इसे करके देखा है । चक्रदत्त मठासे घिसने कहते हैं । यदि तिलाके सेवनमें सूजन आदि होगई हो तो इसके लिये वंगसेनने लिखा है कि—

“ रसाञ्जनाभाह्वयमेतदेव प्रलेपमात्रेण नयेत् प्रशान्तिम् ।
सपूतिपूयव्रणशोथकण्डूशूलान्वितं सर्वमनङ्गरोगम् ॥ ”

इस श्लोकको भावमिश्रजी पहिले चरणमें “ रसाञ्जनं साह्वयमेकमेव ” इस प्रकार परिवर्तन करके रखते हैं । फिर इसका विवरण करतीवार लिखते हैं कि—

“ साह्वयमितिं अनङ्गरोगस्य विशेषणम्,
अनङ्गरोगस्य नाम अपि दूरीकरोति । ”

इस सबका मिश्र अर्थ तो यह होता है कि—“ एक रसौतके ही लेपसे सब तरहके लिंगरोग नष्ट होजाते हैं उनमेंसे किसीका नामतक भी नहीं रहता। तथा यही लेप दुर्गन्धित रावका निकलना एवम् व्रण, सूजन और खुजली इन सबको नष्ट कर देता है । वंगसेन इसके लिये दार्वीतैल कहते हैं कि—

“ दार्वीसुरसयष्ट्याह्वैर्गृहधूमनिशायुतैः ।
तैलमभ्यंजने पाने मेढ्ररोगं विनाशयेत् ”

हलदी, दारुहलदी, तुलसी, मुलैटी, धमासा, इनके कल्कका पकाया हुआ तेल अभ्यंजन और पानसे मेढ्र रोगोंका नष्ट करता है । इसी योगको

आवमिश्रने रखा है किन्तु वे इसका अर्थ इस प्रकार कहते हैं कि-
" संपक्कं तैलमभ्यङ्गान्मेढ्ररोगं हि नाशयेत् । " इसका अच्छी तरह सिद्ध किया तेल लगानेसे साधनके रोगोंको नष्ट करता है। यही ठीक है तेल पानमें न लाना चाहिये ।

चित्रयोग प्रकरण ।

अनेक तरहको चित्र कहते हैं जिसमें अनेकों कामोंके करनेवाले योग हों, वह योग प्रकरण चित्रोंका ही कहलाता है। कामसूत्रकारने पीछे जो प्रकरण कहे थे वे तो एक २ विषयको लेकर ही कहे थे किन्तु इसमें अनेकों उपयोगी विषयोंका संग्रह होगा, यह प्रकरणके नामसे ही विदित होता है ।

कन्यामोहन ।

अबतक तो जिन वशीकरणोंका उपदेश दिया है वे दाम्पत्य जीवनको प्राप्त हुए स्त्री पुरुषोंके विषयको लेकर दिया है किन्तु अब उन आपसके उम्मेद॰ वारोंके ऊपर कृपा करके महर्षि एक मोहनका उपदेश देते हैं जो कि व्याह करके अपने जीवनको सफल बनाना चाहें। इस हालतमें जब कि एक दूस॰ रोंका आभ्यन्तर व बाह्य किसी प्रकारका संप्रयोग न हो, सिवा चलते फिरते शिरपर कुछ वशकारी वस्तुके डाल देनेके दूसरा हो नहीं सकता, इस कारण एक ऐसा ही योग कहते हैं कि-

स्नुहीकण्टकचूर्णैः पुनर्नवावानरपुरीषलाङ्गलिकामूलमिश्रैर्यामवकिरेत्सा नान्यं कामयेत ॥ ३० ॥

स्नुही (थूहर) के काँटोंका चूर्ण, वानरपुरीष (लालबंदरका गू), लाङ्ग॰ लिका (कलिहारी) की जड़, इन सबको साथ मिलाकर जिसके सिरपर डाले वह दूसरेको नहीं चाहती ॥ ३० ॥

साधनलेपों द्वारा वशीकरणमें स्नुहीका उपयोग१०९६ व दससौ सत्तानवे व अठानवेके पृष्ठमें दिखा चुके हैं। इसका कुचुमारने किस प्रकार प्रयोग किया है इस बातको वहीं टिप्पणियोंमें दिखा चुके हैं। यहां केवल कन्यापर ही प्रयुक्त होने॰ वाली बुरकी दिखाते हैं कि, दण्डाथूहरके काठोंका चूर्ण व लालमुखके बन्द॰ रका गू और कलिहारी इन सबका चूर्ण साथ मिलाकर डाले तो वह कन्या उसे

---

१ हमने वशीकरण प्रकरणके २९ वें सूत्रमें ' तैर्वानरपुरीषमिश्रितैः ' यहां ' वा नर, ' ऐसा पदच्छेद किया वैसा यहां नहीं होसकता, क्योंकि यह अपने प्रकरणका पहिला सूत्र है तो पक्षान्तर किससे करेगा? मनुष्यको अपने मलके प्रयोग करनेसे तो बन्दरका ही सूखा ले लेना अच्छा है । द्रव्य और काल इन दोनोंमें सब प्रकारके बल हैं, जिस प्रकार द्रव्ययोग अन्यका॰ मोंको कर सकता है सम्भव है वह इन कामोंको भी कर सके ।

इतना चाहने लगेगी कि लड़कीके वारिस अकुताकर जिसे लड़की चाहती है उसेही देदेंगे । यद्यपि १०९८ में पृष्ठकी कही बुकनी भी कन्याओंपर ही प्रयुक्त होती है किन्तु यह योगान्तर है तथा विषयान्तरमें प्रयुक्त होता है, क्योंकि इसमें लांगलीका योग है उसमें मैनशिलका योग है, वहां टुकड़े तथा काँटे हैं तथा वहां देना रोकना तथा कन्याके चाह पैदा करना है ॥ ३० ॥

वशीकरणकी अन्य बुरकियाँ ।

कन्यावशीकरणकी बुरकीके प्रसंगके वश होकर यहां कुछ एक बुरकियोंको और लिखे देते हैं कि–

" कुष्ठोत्पलदलमधुकरपक्षतगरमूलकाकजङ्घानाम् ।
चूर्ण शिरसि विकीर्णमनामिकारक्तमिश्रमपि तादृक् ॥ "

कूठ, कमलपत्र, भौंरोंके पंख, तगर, कमलगट्टा और काकजंघा इनका चूर्ण अपनी अनामिका उँगलीका रक्त लगाकर जिसके शिरपर डाले वह वश होगी । इस योगको विना अनामिका रक्तके १०९९ वें पृष्ठमें दिखा चुके हैं ।

" मृतमाल्यमारुतोत्थितदलमधुकरपक्षयुगलमिलितेन ।
ध्रुवमनुधावति कीर्णा राजरदनयुग्मचूर्णेन ॥ "

मृतककी मालाके भभूरेसे उड़े पत्ते, भौंरेकी दो पंख, बड़े हाथीके दाँतोंका बुरादा ये तीनों चीज जिसके शिरपर डाले वशीकरण हो । इसी ढंगका योग १०९९ वे पृष्ठमें भी दिखा चुके हैं । जहां २ बारोद्भ्रान्त वा इन पत्तोंका ग्रहण है वहां भबूरेके उड़ाये ही पत्तोंको लेना चाहिये । यदि माला हाथ लगे तो अनेकों ही योगोंको होगी । हमने जो ऐसे स्थलोंपर दवा लिखी है उसे साधारण न समझना चाहिये ।

" नाडीं च ताडबीजं च सरोचनं कन्यया च परिपिष्टम् ,
वशयति मूर्ध्नि विकीर्णा सप्ताक्षरमन्त्रितं झटिति ।"

'ओं क्रीं ह्रीं श्रीं ठं स्वाहा,' यह मंत्रराज है, क्योंकि कुचुमार इस प्रयोगका इसे ही मंत्रराज बताते हैं । इसीमें भगीरथस्वामी एक जगह दूध और एक जगह नाडीशाक अर्थ नाडीका करते हैं यह ठीक नहीं, क्योंकि दो जगह आये हुए एक ही प्रयोगका अर्थ–भेद नहीं किया जा सकता । अतः एक ही अर्थ रहना चाहिये । नहीं तो कांचीनाथका नाडीशाक हो तो यहां भी ले लेना चाहिये । अथवा तांत्रिक नाडीका जो अर्थ करें वही लेना चाहिये । नाडी, गोरोचन, ताडके बीज इन्हें कन्यासे पिसाकर सप्ताक्षर मंत्रसे अभिमंत्रित करके डालना चाहिये ।

कुछ वशीकरण खानपान आदि ।

हम कुछ वशीकरण खान पानोंको और बताये देते हैं जिनके दियेसे मनुष्य अपना प्रेम पैदा कर सकते हैं कि—

" नन्दिकीटमथ चूर्णयेद् बुधः, तत्र बीजमपि पातयेन्निजम् । "

विद्वान्‌को चाहिये कि—नन्दी कीड़ाको लेकर चूर्ण करे, पीछे अपने वीर्य्यमें मिला प्रयुक्त करे । यह कुचुमार कहते हैं किन्तु इसके अनुवादक कोक तो केवल नन्दिके चूर्णको ही वश करनेवाला मानते हैं । नन्दिकीट कहां होता है इसके विषयमें श्रीभ० स्वामी कहते हैं कि पुरानी काकजंघाकी गांठोंमें जो कीड़े पड़ते हैं उनका नाम नन्दी है । काकजंघा गुंजासे भिन्न एक प्रसिद्ध दवा है । काकजंघाका चूर्ण भी वश करनेवाला है । अगस्त्यवृक्षके पत्तोंके रसमें मिला हुआ सुहागेका फूला भी मोहक है । इसका अंगमलोंके साथ भी प्रयोग होता है । सोनामाखी रूपामाखीके चूर्णके साथ काली कुतियाके हृदयका चूर्ण भी यही करता है । ये अलग २ योग कहे हैं परन्तु कुचुमारने इनका एक ही योग कहा है कि—

" गुंजिकामथविपिष्य योजयेत् तेन तां वशमुपानयेद्ध्रुवम्,
भोजयेच्च यदि वापि पाययेत् मस्तकेऽथ यदि वापि पानयेत् ।
अद्भुतेन विधिना नरः परां मोहयेदपि वशिष्ठकामिनीम् । "

निज बीज मिले नन्दिके चूर्णमें गुंजा मिलाये । इस चूर्णको खिला पिला न सके तो शिरपर ही डाल दे । निजबीजके खिलानेसे शिरपर डालना अच्छा ।

" मातङ्ग निहितनरनयननासिकाहृदयलिङ्गजिह्वाभिः,
पुष्यर्क्षयुक्तरात्रौ भव भवने साधितं तैलम् ।
मदनांकुश इति नाम्ना महावशीकरणमेतदिति मुनयः,
भक्षणपानस्पर्शनविधिना विश्वं वशं नयति । "

हाथीके मारे मनुष्यकी आखें, नाक, हृदय, साधन, इनका किसी शिवमंदिरमें पुष्यनक्षत्रके दिन गुपचुप तेल निकाल ले । यह तेल जिसके लगा दे खिला दे ५ छुवा दे उसका वशीकरण होता है । कुचुमार इनके मांसका मनुष्यकी खोपड़ीमें काजल भी डालता है इसके भी ये ही काम होते हैं ।

" सहदेवीपद्मदलं पुनर्नवासारिसंयुक्तम् ।
साधितकल्कैः सिद्धं नयनाञ्जनमद्भुतं वशकृत् ॥ "

सहदेवी, कमलके पत्ते, साठी, अनन्तमूल इनका बना हुआ अंजन वशकारी है । यह कुचुमारका मन्तव्य हैं पर १०८५ वें पृष्ठमें कामसूत्रकारने इसे

तेलमें प्रयुक्त किया है तथा उनके श्लोकानुवादक कोकने भी इसे अंजनमें लिया है कि—

" उत्पलदलदण्डोत्पलपुनर्नवासारिवोत्थ कल्कसंसिद्धम् ।
तैलं नयनाभ्यञ्जनमाहुः परमवशीकरणम् ॥ "

कमलके पत्ते, सांठी, अनन्तमूल और दण्डोत्पल इनका विधिसे सिद्ध किया हुआ तेल आखोंमें लगा लेनेसे वशीकरण है । हमारी समझमें तो ' दण्डोत्पल ' इस शब्दके स्थानमें 'कुरण्डपुष्प' यह पाठ होना चाहिये, क्योंकि मूलसे टीकाको भिन्न लगाना अमर्मज्ञोंका कार्य्य है। इसे वशीकरणमें रखा है। इन तन्त्र मन्त्रोंके सिवा अनेकों ही वशीकरणकी विधियाँ हैं वे तन्त्रशास्त्रोंमें विधिपूर्वक प्रतिपादित हैं, यहां हमने कामसूत्र व कामशास्त्रसम्बन्धी ही विधियोंका संग्रह किया है जिन्हें कि कामशास्त्रके भिन्न आचार्य्योंने अपने २ संग्रहोंमें रखा ह एवम् अपने २ अनुभवोंकी सबने उनके ऊपर छाप लगा दी है । यह बात नहीं ह कि कामशास्त्रके आचार्य्योंने ही वशीकरण रखा हो किन्तु वैद्यकके आचार्य्यभी इससे बरी नहीं रह सके हैं । शार्ङ्गधरजीने एक वशीकरण लिखा है कि—

" वचा सौवर्चलं कुष्ठं रजन्यो मरिचानि च ।
एतल्लेपप्रभावेण वशीकरणमुत्तमम् ॥ "

वच, संचरनमक, कूठ, हल्दी, दारुहली, काली मिरच इन्हें बराबर लेकर लेप करे वशीकरण होगा । इसे देखनेसे तो हम इसी निश्चयपर पहुँचे हैं कि, दम्पतियोंका आपसमें एक दूसरेका आसक्त बना रहना वैद्यकके ग्रन्थोंमें भी है तथा आयुर्वेदके आचार्य्योंको भी उसी प्रकार अभीष्ट है जिस प्रकार कि कामशास्त्रके आचार्य्य इसे चाहते हैं ।

रागनाशक लेप ।

धन आदि खींचनेकी इच्छासे जिसे वेश्याने संप्रयोगकी चातुरियोंको दिखा एवम् वैचित्र्य पैदा करनेवाले अनेकों उपायोंको करके उसका हृदय अपने आन्तर संप्रयोगका मधुप बना लिया हो, यदि वह धन खींच उसे अपनेसे गुपचुप हटाना चाहे तथा किसी वेश्या विशेष सपातिकाने किसी रँगीन छैलेको वशकर लिया हो फिर वह उसे दूर करना चाहती हो, तथा कोई किसीको अपनेसे हटा देना चाहती हो एवम् कलह भी न करना चाहती हो हो तो उसके करनेका जो गोप्य उपाय है उसे महर्षिवात्स्यायन बता रहे हैं कि—

तथा सोमलतावल्गुजभृङ्गलोहोपजिह्विकाचूर्णैर्व्याधिघातकजम्बूफलरसनिर्यासेन घनीकृतेन लिप्तसंबाधां गच्छतो रागो नश्यति ॥ ३१ ॥

इसी तरह सोमलता (सोमवल्ली) अवल्गुजा (बाकूची) भृङ्ग (भांगरा) लोह (लोहभस्म) उपजिह्विका, इन चीजोंका चूर्ण, व्याधिघातक (अमलतास) और जम्बू फलके निर्यासको घन करके योनिपर लेप कर ले फिर जो मिलेगा उसका राग नष्ट हो जायगा ॥ ३१ ॥

आन्तर संप्रयोगमें जो रस सहजमें ही प्रतीत हुआ करता है, इन चीजोंका लेप करके उसे कुछ देरतक लगा रहनेके बाद फिर पोंछकर पुरुषसे संप्रयुक्त होती है तो इस दशामें उस रसका भंग होजाता है जिससे थोडे दिनोंमें उस स्त्रीसे आप ही अरुचि होजाती है ॥ ३१ ॥

गोपालिकाबहुपादिकाजिह्विकाचूर्णैर्माहिषतक्रयुक्तैः स्नातायां गच्छतो रागो नश्यति ॥ ३२ ॥

गोपालिका, बहुपादिका (पोदीना) और जिह्विका (गोजिया) के चूर्णमें भैंसका मठा मिला करके स्नान करनेवालीके साथ सहवास करनेवालेका राग नष्ट होजाता है ॥ ३२ ॥

जो स्त्री इनसे स्नानकर लेती है इससे उसके गन्ध आदिमें सौमनस्य नहीं रहता जिससे संप्रयोग करनेवालेकी तबीयत आप ही हट जाती है। इस तरह आप ही बन्द होजाता है। उसके हटनेमें अधिक दिन नहीं लगते दो चार दिनमें ही हो लेता है ॥ ३२ ॥

दौर्भाग्यकरण ।

ब्रह्मदर्शीऋषि महर्षियोंके चरणप्रसादको सभी चाहा करते थे, राजे, महाराजे, वीर, महावीर सभी उनके चरणोंके ही किंकर थे, व थे विश्वके सम्राट्, संसार उनके ही इशारोंपर चला करता था । उनकी यह गति स्त्रियोंमें भी अप्रतिहत थी, उनकी प्रत्येक आज्ञाएँ प्रत्येक समयमें पालनीय थीं, वे अपनी धर्मपत्नीकी अवहेलना भी नहीं सह सकते थे, उनके इसी जीवनका थोड़ासा आभास बृहदारण्य उपानिषदमें मिलता है कि—

“ सा चेदस्मै न दद्यात् काममेनामवक्रीणीयात्
सा चेदस्मै नैव दद्यात् काममेनां यष्ट्या वा-

प्राणिना चोपहृत्य अतिक्रमेत्--' इन्द्रियेण
ते यशसा यश आददे इति ' अयशा एव भवति ।"

यदि स्त्री आज्ञा पालन न करे तो उससे पूछ ले तू क्या चाहती है, जो तू चाहे वही तेरा कार्य्यकर दिया जाय । यदि इतनेपर भी आज्ञा न माने तो उसे शाप दे दे कि--" तेरे शरीरमें मुख्य जो यह इन्द्रिय है इसके साथ मैं तेरा यश खींचे लेता हूं । " इससे वह दुर्भगा हो जायगी । क्योंकि स्त्रियोंका दुर्भगा होना ही उनका परम अपयश है यह उनका जीवित नरक है । इस प्रकार ये ऋषि स्त्रियोंपर रुष्ट होते थे तो उन्हें भी ठिकाने कर दिया करते थे । इस कांममें महात्मा आथर्वण भी क्यों पीछे रहनेवाले थे, इन्होंने भी अथर्ववेदमें मन्त्र कर डाले कि--

" भगमस्या वर्च आदिषि अधिवृक्षादिव स्रजम्,
मदावुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् । "

जिस प्रकार फूलोंसे लहलहाये हुए परम शोभायमान सुगन्धित गुलाबके बूंटेके सारे फूलोंको चुनकर उसे हतश्री कर दिया जाता है उसी तरह मैं तेरी शोभा, बडप्पन, पुरुषार्थ, प्रयत्न कीर्ति तथा तेजको खींचे लेता हूं । अब तू जा, जिस प्रकार बड़ी जड़का पर्वत चिरकालतक अपनी ही जगह पर बना रहता है हटाया नहीं हटता उसी तरह तू भी मा बापोंके यहां चिरकालतक बनी रहे हटाई न हटे। जब वेद और उपनिषदोंका ही इस विषयपर यह हाल है तो फिर दूसरे २ शास्त्रोंके आचार्य्य भी क्यों पीछे रहनेवाले थे उन्होंने भी इस विषयको अपने यहां स्थान दिया । कामशास्त्रके आचार्य्य महर्षि वात्स्यायनने भी इसका योग लिखा है उस भी यहीं दिखाते हैं कि—

नीपाम्रातकजम्बूकुसुमयुक्तमनुलेपनं दौर्भाग्यकरं स्रजश्च॥

नीप (कदम्ब) आम्रातक (अँवाड़ा) और जम्बू (जामुन) के फूलोंको डालकर चन्दन लगाना या इनके फूलोंकी माला पहिनना दुर्भाग्य करनेवाली है ॥ ३३ ॥

नीप शब्दको कोशकारोंने कदम्ब, वन्धूक, नीलाशोक वृक्षोंके पर्य्यायोंमें रख दिया है । निघण्टु इसे धाराकदम्बके पर्य्यायोंमें ग्रहण करता है । इन तीनों वृक्षोंके पुष्प शृङ्गारवर्धक समझ कर पहिले जाते हैं एवम् तान्त्रिक लोगोंके यहां नींबकी वन्दाको इस काममें बरता जाता है, इस कारण

नीबके फूल लेने अधिक उपयुक्त जँचते हैं, किन्तु जो फूलोंका प्रयोग किया जा रहा है वे प्रायः साधारण वर्तनमें नहीं आते, इस कारण नीव लिया हो तो चल सकता है। दो वस्तुओंके योगसे तीसरी वस्तु भी विपरीत फल देनेवाली हो सकती है ॥ ३३ ॥

योनि संकोचन विधि ।

कामशास्त्रके आचार्य्योंने अन्य २ रत्युपयोगी योगोंके साथ योनिकी सिकोड़नेकी विधियाँ भी कही हैं वे इस कथनका कारण यह बताते हैं कि—

"प्रौढाङ्गनाया नवसूतिकायाः, श्लथं वराङ्गं न सुखाय यूनाम्,
तस्मान्नरैर्भेषजतो विधेया, गाढक्रिया मन्मथमन्दिरस्य ।"

जिसे थोड़े ही दिन बच्चा पैदा किये हुआ हो, ऐसी प्रौढा स्त्रीका वराङ्ग युवकपुरुषोंके लिये सुखकारक नहीं होता, इस कारण पुरुषोंको चाहिये कि उनके मदनमंदिरके सिकोड़नेकी क्रिया करें। इस श्लोकमें प्रौढा और नवसूतिका इन दोनोंको अलग २ समझना चाहिये, क्योंकि कल्याणमल्ल कहते है कि—'प्रौढा नवप्रसूतानाम्' रंगो प्रौढा और नवप्रसूता इन दोनोंकीही ढीली होजाती है इस कारण नवयुवकोंको अच्छी नहीं लगती। वे चाहते हैं कि किसी तरह कड़ी हो जाय। यह बात केवल कामशास्त्रके आचार्य्योंने ही कही हो यह नहीं है किन्तु उद्धृत वचनोंसे ज्ञात होगा कि आयुर्वेदके आचार्य्योंने भी इन बातोंको अपनी भिन्न २ संहिताओंमें कहा है फिर कामसूत्रके संपादक श्रीवात्स्यायन ही इसमें क्यों पीछे रह जानेवाले थे उन्होंने भी कहा है कि—

कोकिलाक्षफलप्रलेपो हस्तिन्याः संहतमेकरात्रं करोति ३४

ताल मखानेके फलको पानीमें पीस लेप करनेसे हस्तिनीका मदन मंदिर भी एक दिनमें सिकुड़ जाता है ॥ ३४ ॥

यह बूटा प्रायः वर्षाऋतुमें ताल तलैयोंमें उत्पन्न होता है, इसके पत्ते लम्बे तथा जिनमेंसे तालमखाना निकलता है वे इसके जोड़ पर गूँमेके समान गाठें होती हैं। ये उन गाठोंके बीजोंकाही प्रयोग कर रहें हैं इसको पानीमें पीसकर लेपकरे यहां फलका मतलब बीजसे ही है, क्योंकि इससे अनुवादक तथा

---

१ श्री नित्यनाथजी इसमें नींबके वन्दाको बताते हैं कि—
"ज्येष्ठानक्षत्रे निम्बवन्दाकं यस्या अङ्गे दीयते सा दुर्भगा भवति।"
ज्येष्ठानक्षत्रमें नींबका बन्दा जिसके अङ्गमें डाला जायगा वह दुर्भगा होती है। यह तांत्रिकोंका पारिभाषिक शब्द है मेरे ध्यानसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह वेलमें प्रयुक्त होता हो-

कामशास्त्रके विश्वविदित आचार्य्य श्रीकोकने लिखा है कि–" पिकनयनबीज-लेपः कुरुते संकोचमेकदिनम् । " तालमखानेके बीजोंका लेप एकदिनमें कर देता है यह तो कहा है किन्तु हस्तिनीका भी कर देता है यह सूत्रके साथ एकवाक्यता करके समझना चाहिये । किसी रतिके संस्कृत टीकाकारने पिकसे कोयल जीव अर्थ कामशास्त्रका मर्म विना ही समझे कर दिया है, क्योंकि सूत्रार्थको सूत्रके साथ अवश्य ही मिलाना चाहिये । कोकाजी तो कामशास्त्रके एक प्रकारके निबन्धके रूपमें टीकाकार हैं । श्रीज्योतिरीश्वरने भी इसे अपने यहाँ विशेषताके साथ रखा है कि—

" पिकाक्षिबीजेन मनोजगेहं विलिप्य योषा नियमं चरन्ती ।
हठेन गाढं लभते वराङ्गं दृष्टो नरैरेष सदैव योगः ॥ "

लोगोंने इस प्रयोगको करके देखा है । जो स्त्री तालमखानेके बीजसे अपने वराङ्गको लीपकर नियम पालन करेगी वह नहीं चाहे तो भी उसे पर्य्याप्त सिकुड़ा हुआ वराङ्ग मिलेगा । इसके साथ इसके टीकाकार श्रीराजधरझा काव्यतीर्थ एक सप्ताह नियमसे रहनेके लिये कहते हैं । पर ' नियमं चरन्ती ' का यह तात्पर्य्य नहीं किन्तु यह है कि–' लगाकर चाहे पीछे भले ही रोजके मिलनेवालोंसे मिले पर कड़ी होगी ही ' । इसका पानीमें लेप करनेका विधान कल्याणमल्ल करते हैं कि—

" लिप्त्वा पिकाख्यबीजैश्च वारिपिष्टैः स्मरालयम् ।
नियमेन परं गाढं वराङ्गं लभतेऽङ्गना । "

यह बात निश्चित है कि पानीमें पीसकर तालमखानेका लेप करके वराङ्ग दृढ होता है । इनका सार पहिले ही लिख चुके हैं ॥ ३४ ॥

कुचुमारके तालमखाने मिश्रित योग ।

कामसूत्रके कहे तालमखानेके योगका तीन आचार्य्योंकी संमतिके साथ उसका अर्थ किया था अब हम इस अधिकरणके विशेषज्ञ कुचुमार मुनिके कहे हुए तालमखानेके दो योग कहते हैं कि–मनासिल, सफेद मिरच, कडुआकूट, मछलीका पित्ता, कुन्दुरुका गोंद, सफेद जीरा, तालमखानेके बीज और कैथकी जड़की छाल ये सब चीजें बराबर लेकर कूट छान ले, इनमें सहद मिलाकर मदनमन्दिरमें लेप करनेसे अत्यन्त छोटा हो जाता है । दूसरा योग–पठाणी लोध और सोनामाखीके साथ तालमखानेकी बत्ती बना सुखा पानीमें धिसकर लेप करनेका है ॥

कुचुमारके कहे तेल व तिल ।

कुचुमारने जिस तेल व तिलेका विधान किया है उसे विमर्शके साथ दिखाते हैं कि—

"कृष्णनिर्गुण्डिपुष्पानामम्बुतैलेन बुद्धिमान् ।
श्वेतलाक्षारसंग्राह्यं चतुःप्रस्थं सुशोभितम ॥
काथयेन् मतिमान् सम्यक् प्रस्थं निर्गुण्डिसम्भवम् ।
चतुर्भागावशिष्टं तु कषायपरिमाणतः ॥
सुविशोष्य तिलान् कृष्णान् विद्वानत्र प्रयोजयेत् ।
प्रतिगृह्य तिला भक्ष्या त्रिदिनेनैव भक्षयेन् ॥०
कपिलाघृतसमं तैलं पूर्वोक्तेनैवभावितम् ।
योनिमध्ये च दातव्यं सममेकातिलीकृतम् ।
कन्याकरणमत्यन्तं योनिशोचमनामयम् ॥ "

मुनिने पहिले तो काले फूलवाले संभालूके फूलोंका रस ऐसा कह दिया तथा नीचे उसे यह कह दिया कि एक सेर हो। पीपलकी लाख चार सेर बता दी तथा इसका काथ करनेके लिय कहा, इस कारण यह काथ्य कषाय होगया । चार सेरका सोलह गुना ६४ सेर पानीमें काथ कर ले जब चतुर्थांश बाकी रह जाय तो उतार ले। एक सेर स्वरस लेनेके लिये कहा है इसे ले ले तथा 'मानानुक्ते घृते तैलं प्रस्थमाहुश्चिकित्सकाः ' जहां घृत और तैलके विषयमें मान न कहा गया हो वहां एक प्रस्थ ले। इस हिसाबसे तेल बनानेकी विधिसे तेल बना लगा ले । नीले फूलके संभालूके पत्तोंका स्वरस एक सेर, पीपलकी लाख एक सेर, पानी सोलह सेर, सुहागा चौकिया एक छटांक, यानी एक सेर, पीपलकी लाखका चूर्ण करके उसे १६ सेर पानी तथा एक सेर नीले फूलके संभालूके रसको डाल दे । थोड़ा २ सुहागा बुरकता जाय । चार सेर पानी बाकी रहजाय तो उतार ले, इस सबको क्रमशः तिलोंमें लयकर दे। इन तिलोंमेंसे रोज पांच तोला तीन दिनतक स्त्रीको खिलाना चाहिये ।

दूसरे योग ।

अब हम इसी विषयके दूसरे योगोंको दिखाते हैं जिन्हें कामशास्त्रके आचार्य्य अपने २ अनुभवोंकी विशेष छाप देते हुए अपने २ ग्रन्थोंमें लिखते हैं। इसे लिखती वार यह हमने ध्यान रक्खा है कि जिसके योग खतम हुए हैं उन्हींके अन्तमें उसका नाम दे दिया है, जहां जिसके साथ एकवाक्यता है वहां उसका

नाम भी देदिया है । इन योगोंपर हमने भिन्नबोधके लिये नंबर भी दे दिये हैं । (१) बबूलकी फली, मेंढासिंगी और मनसिलका चूर्ण हलदीके साथ पानीमें मिलाकर लेप करे । (२) या पठाणी लोध, कपासके पत्ते, हलदी और बेरकी मींगी इन सबको बराबर ले सहदमें मिलाकर लेप करे (३) माजूफल, फिटकिड़ी, अनारके फलका छिलका और हरड बराबर लेकर चूरन कर ले, फिर मदनमंदिरमें लगाये । (४) सोंठ (शहरके), कबूतरकी बीठ, कहुआकूठ, काला सुरमा, तवाकिया हरताल और सेंधानमक सम भाग ले चूरन कर सहदमें मिलाकर लेप करनेसे भी ठीक होजाता है । ये कुचुमारके कहे योग हैं विस्तारके भयसे मूल न रखकर भाषा ही रखदी है । (५) हलदी, दारुहलदी, कमलकेशर इनके बराबर देवद्रुम लेकर मदनमंदिरपर लेप कराये इसे कोकने भी कहा है । (६) धायके फूल, त्रिफला, जामुनकी छाल, जेठी मधु इन्हें पीस शहदमें मिलाकर वराङ्गपर लेप करे । पांचवें व छठेको कल्याणमल्ल भी रखते हैं । (७) शक्रगोप—वीरवधूटीको पीसकर (ऋतुके समय) मदनमंदिरपर लगानेसे अत्यन्त संकुचित होजाता है । (८) नीलकमल, कूठ, वच, छोटी पीपल, अश्वगन्धा, दोनों हलदियाँ, इनके लेपसे संकुचित होता है । इसीको पानीमें पीसकर लगानेको कल्याणमल्ल भी कहते हैं(९) मैनफल, कपूर और मधु इनके लगानेसे दृढ होता है । ये पूर्वोक्त ज्योतिरीश्वरके कहे योग हैं । (१०) वीरवधूटी और शंखपुष्पी इन दोनोंका चूर्ण बनाकर जो मनुष्य जिस स्त्रीकी योनिपर लगा दे वह बहुत कड़ी होजाय ।

(११) " गगनसमागतवल्गुलिविष्ठालिप्तध्वजेन यो भजते ।
सकृदपि सा तदितरतो वाञ्छां दूरेण परिहरति ॥ "

आकाशमें उड़ती हुई चिमगीदड़की बीठ लेकर उसका साधनपर लेप करके सहवास करे तो वह स्त्री एकबार भी किसी दूसरोंसे नहीं मिलती ।

" तां विष्ठां पुटपाके दग्ध्वा सह कांजिकेन भगलेपात् ।
भवति कृशभक्तातिस्था रमणी रमणीयताभूमिः । "

उस बीठको संपुटमें जला राखको कांजीके साथ मिला लेप करनेसे वराङ्गकी उत्तमस्थिति होजाती है । (१२) शुद्धपारा, भूपीलुका मूल, पीपली और चावल समभाग ले कन्याकीसी हो जाती है ॥

(१३) " पित्तं तु काकविष्ठा च श्वानशेफस्तथैव च ।
स्वयंगुप्ताफलं चैव मूलं तत्तरुतस्त्वचः ॥
त्रिफला नागरं चैव लोध्रं च समभागशः ।
किंचित् कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत् ॥ "

पित्त-हलदी, काकविष्ठा-कौवेकी विष्ठा, कुत्तेका शेफ, लज्जालूका फल, उसीके मूलकी त्वचा, त्रिफला, सोंठ, लोध और कुटकीका चूर्ण इन सबके चूर्णको शहदमें मिलाकर लेप करे । (१४) नालसहित कमलको पानीमें पीसकर वटी बना ले, थोड़ी देरतक एक वटीको भीतर रख दे तो वृद्धा भी कारीसी होजाय । इसमें कल्याणमल्ल भी संमत हैं ।

वैद्यक शास्त्रके आचार्य्य ।

इस विषयको आयुर्वेदके आचार्य्योंने भी संगृहीत किया है उसका भी कुछ नमूना यहां दिखाते हैं कि—

÷ चक्रदत्त—" वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरिचानि तथैव च ।
अश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणमुत्तमम् ॥
मदनफलमधुकर्पूरपूरितं भवति कामिनीजनस्य ।
विगलितयौवनस्य च वराङ्गमतिगाढं सुकुमारम् ॥"

वचा, नीलोफर, कूठ, मिर्च, असगन्ध, हलदी इनको बराबर लेकर लेप करनेसे वराङ्ग सिकुड़ जाता है । मैनफल, शहद और कपूर मिलाकर लेप करनेसे पूर्ण वृद्धा स्त्रीका भी मदनमंदिर बहुत कड़ा और चिकना हो जाता है ।

शार्ङ्गधर—" पलाशोदुम्बरफलैस्तिलतैलसमन्वितैः ।
मधुना योनिमालिम्पेद् गाढीकरणमुत्तमम् ॥
माकन्दफलसंयुक्तमधुकर्पूरलेपनाद् ।
गतेऽपि यौवने स्त्रीणां योनिर्गाढाभिजायते ॥"

पलाश और गूलरके फलोंका समभाग चूर्ण ले, तिलका तेल मिला शहदके साथ लेप करे । या आमकी मज्जा और कपूर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे गतवया स्त्रियोंकी भी योनि दृढ हो जाती है ।

प्रसूताका संकोचन ।

कोकने प्रसूताका योनिसंकोचन बताया है, इस कारण इसे भी यहां देते हैं कि—

" सुरगोपकीटं चूर्णमिलितं मूलेन कारवेल्लस्य ।
स्मरमन्दिरमभ्यङ्गात् संकोचयति प्रसूतायाः ॥ "

÷ यदि इसकी गहरी तहपर विचार करते हैं तो इसके विषयमें भी वैद्यकके आचार्य्य कामशास्त्रके अनुयायी ही रहे हैं । विना जड़के मूल कहांसे आये । आयुर्वेदके महापुरुषोंको यदि संसारीजीवनके उपदेश देनेकी शिक्षा मिली है तो कामशास्त्रके आचार्य्योंसे ही मिली है ।

वीरवधूटीके चूर्णमें करेलेकी जड़को मिला घोटकर लेप करनेसे प्रसूता स्त्रीका योनिसंकोचन होता है ।

प्रसूताका योनिकष्टनिवारण ।

जिसने हालमें ही बालबच्चे दिये हों एवम् कष्टसे व्याकुल हो उसके कष्ट-निवारणके लिये भी कामशास्त्रने कुछ योग बताये हैं उन्हें हम यहीं रखते हैं—

" पिष्ट्वा क्षिप्तं योनौ मूलं खरमञ्जरीपुनर्नवयोः ।
नवप्रसूतायाः सकलं योनिगतं शूलमपनयति ॥ "

सफेद चिरचिटा और साँठकी जड़को पीसकर योनिमें लेप लगानेसे प्रसूतकाका बढ़ा हुआ दर्द भी मिट जाता है ।

" कार्पासबीजसाधितघृतमुन्दुरुमांससिद्धतैलं वा ।
भगभरणेन तदीयं सूतायाः शूलमपनयति ॥ "

विनोलोंसे सिद्ध किये घृतको अथवा चूहेके मांससे सिद्ध किये तैलको वराङ्गमें भर देनेसे प्रसूताकी पीडा कम हो जाती है ।

" गोमयरसगोमूत्रैः पेषणपूर्वं घृतेन सह लेपात् ।
हन्ति कृमीन् कामौकसि पत्रं वरुणस्य सूतायाः ॥ "

वरुणवृक्षके पत्ते, गौके मूतमें खूब पीसकर घीके साथ लगानेसे प्रसूताके योनिकृमि मिट जाते हैं ।

सौभाग्यदायक वराङ्गलेप ।

अब हम सौभाग्यजनक वराङ्गलेपोंको बताते हैं कि—

" दलकुंकुमकुनटीभिर्गजदलतालीसतगरपादैर्वा,
दलकरिकेसरमांसीरोहितशैलेयकुसुम्भतगरैर्वा ।
लोहितपित्तकणाघृतविमलाञ्जनसैन्धवैरथवा,
भगलेपः सौभाग्यं जनयति भूयो न सन्देहः ॥"

दल–तेजपात, कुंकुम–केसर, कुनटी–मैनशिल, या गज–गजपिप्पली, दल–तेजपत्र, तालिश–तालीशपत्र, तगरपाद–चौथाईतगर, या दल–तेजपात, करिकेसर–नागकेसर, मांसी–जटामांसी, या रोहित–कुसुम्भके फूल, शैलेय–शिलारस, कुसुम्भ, तगर, या लोहित–रक्तचन्दन, पित्त–गोरोचन, कणा–पीपल, घृतविमला–रूपामाखी, अंजन–कालासुरमा, सैंधव–सैंधानमक, इनके योनिलेपसे सौभाग्य प्राप्त होता है ।

" दाडिमपञ्चाङ्गैर्वा सिद्धं सिद्धार्थतैलमातनुते ।
मालतिकाकुसुमैर्वा गुह्याभ्यङ्गेन सौभाग्यम् ।"

अनारके पंचाङ्गसे श्वेतसरसोंका तेल बना ले अथवा चमेलीके फूलोंसे सिद्ध किये गये तैल गुह्यस्थानमें लगानेसे सौभाग्य प्राप्त होता है ।

लोमशातन ।

मानवदेहमें अनेकों हीं ऐसी जगहें हैं जहां कि केशोंका न होना बडा ही खटकता है तथा इसमें अनेकों ही ऐसी जगहें हैं जहां कि प्रकृतिके नियमके अनुसार केश आते हैं । मनुष्य हजार चाहता है कि यहां केश न आयें पर मनुष्यका चीता कुछ भी नहीं होता वहाँ बाल आही जाते हैं । कोई कोई तो इस बखेड़ेसे अकुताकर प्रकृतिसे लड़ाई लड़ना प्रारंभ करता है कि यहां केश आने ही न दूं । जो इन भावोंके भक्त हैं उनके लिये हम लोमोंके मिटानेकी विधि लिखते हैं कि—

लोम उड़ाना ।

+" हरितालतालबीजं सिन्धुरघननादकन्दलीक्षारः,
इक्ष्वाकुबीजकुनटीवचास्नुहीमूलमञ्जिष्ठाः ।
वरुणगिरिकर्णिके च स्नुह्याः क्षीरेण सप्तधा सिक्ते,
सिक्तेक्ष्वाकुरसैरथ सम्पिष्ट्वा कल्पयेत् कल्कम् ।
तत्कल्कार्द्धं तैलं कन्दलिका बहुलवारिणा पक्त्वा,
रोमोत्पाटनपूर्वं कुरु लेपं तेन तैलेन । "

हरिताल, तालबीज, सिन्धुर, घननाद, कँदलीक्षार, कडुई तुरईके बीज, हरिताल, वच, स्नुहीमूल, मँजीठा, वरुण, गिरिकर्णी, इनके चूर्णमें स्नुहीके दूधकी सात भावना देनी चाहियें । इसके बाद कडुई तुरईके रसमें भिगोकर लुगदी बना ले, इससे दूना तेल उस पानीके योगसे सिद्धकर ले जिसमें कन्दलिका ज्यादा हो, बारोंको बनाकर इसका लेप कर दो ।

" यदि मस्तकमपि नेतुं तव कौतुकमस्ति हस्ततालतुलाम्,
द्वित्राणामपि चैषामेष विधिः स हरितालानाम् । "

+ कुचुमार यह कहते हैं कि--

" प्रथमं दूरतः कुर्य्याल्लोमानि तु यथा तथा ।
ततोऽनुमर्दयेत्तत्र तैलं वटरसंज्ञकम् ॥
वटक्षीरं पुनस्तत्र लेपयेत् सुविचक्षणः ।
आजन्म तत्र लोमानि न रोहन्ति कदाचन ॥ "

यानी पहिले बालोंको मूँड ले फिर वटरसंज्ञक तेलको लगाये फिर बड़का दूध लगा दे, तो वहां जीवनभर बाल न आयें । ऊपर जो कहा है वह भी यही तेल हो सकता है ।

यदि आप यह चाहते हो कि अपने मस्तकको भी हतेलीके समान साफ हो, तो जो हमने लेप बताया है इसे हरतालके साथ करो तो फिर वैसा ही होगा।

" शातयति शङ्खचूर्णं लोमानि पलाशभस्म हरितालम् ।
कौसुम्भतैलमप्युत्पाटनपूर्वं विलेपनात्तद्वत् ॥ "

शंखभस्म, पलाश (ढाक) की भस्म, हरताल, ये रोमोंका नाश करती हैं । कुसुमका तेल भी बाल नोंचकर लगा देनेसे फिर बालोंको नहीं जमने देता ।

" षड् भागात् हरितालादेको भागश्च किंशुकक्षारात् ।
तद्वच्च शङ्खचूर्णादिति शातनमुत्तमं लोम्नाम् ॥ "

६ भाग हरतालसे पांच भाग तो हड़ताल तथा १ भाग पलाश भस्म अथवा शंखचूर्णके लेपसे बालोंका उत्तम शातन होता है । ज्योतिरीश्वर कहते हैं कि—

" भुजङ्ग[1]चूर्ण कटुतैलमध्ये, सप्ताहमादित्यकरे निधेयम् ।
तत्तैलयोगेन विलासिनीनां नश्यन्ति रोमाणि समूलमेव । "

भुजंगके चूर्णको कडुये तेलके बीचमें डालकर एक सप्ताह धूपमें छोड़ देना चाहिये, पीछे उसके लगानेसे बाल साफ हो जाते हैं । भगीरथ स्वामीने रतिवल्लभकी टीकामें यही नामका अर्थ वत्सनाग विष किया है, पाठक निश्चय करें । जोतिरीश्वर और नित्यनाथ कहते हैं कि—

" पलाशभस्मान्विततालचूर्णैः, रम्भाम्बुमिश्रैरुपलिप्य भूयः ।
कन्दर्पगेहे मृगलोचनानां रोमाणि रोहन्ति कदापि नैव ॥[2] "

---

१ अनङ्गरंग इसके स्थानमें ' नागचूर्ण ' कहता है । नागका अर्थ—"नागो मतङ्गजे सर्पे पुन्नागे नागकेसरे । क्रूराचारे नागदन्ते मुस्तक वारिदेऽपि च ॥" मतंगज, सूर्य, पुंनाग, नाग-केसर, क्रूराचार, नागदन्त, मुस्तक और वारिद हैं ।

२ यही बात कल्याणमल्ल दूसरे छन्दमें कहते हैं कि--

"हरितालं पलाशस्य भस्म रम्भाजलान्वितम् ।
एतस्य लेपाल्लोमानि न रोहन्ति कदाचन ॥ "

इसका भी वही अर्थ है, फिर बाल नहीं आते इतनी बात ये अधिक कहते हैं । कुचुमार कहते हैं कि—

" पलाशभस्म तालश्च रम्भारसविभावितम् ।
लेपाल्लोमानि नश्यन्ति, स्थानं याति घृतोपमम् ॥ "

पलाशकी भस्म केलाकी जडके रसमें लगाई जाय तो इससे रोम नष्ट होते हैं तथा वह जगह घीकी तरह चीकनी होजाती है ।

पलाशकी भस्म और तालका चूर्ण इनको केलेके जडकी रसमें बारीक पीस ले, मदनमंदिरपर इसका लेप करनेसे उसके बाल उड़ जाते हैं ।

ज्योतिरीश्वर और नित्यनाथ कहते हैं कि—

×"रम्भाजलैस्सप्तदिनं विभाव्य, भस्मानि कम्बोर्मसृणानि पश्चात् ।
नलेन युक्तानि विलेपनेन; रोमाणि निर्मूलयति क्षणेन ।"

जिसमें एक भी कण बाकी न हो ऐसे पिसी हुई शंखकी भस्ममें सात दिन तक केलाके पानीकी भावना दे, पीछे खसके साथ इसके लेपसे उसी समय लोम झड़ जाते हैं ।

वराङ्गका बढ़ाना ।

जिस प्रकार बड़े वराङ्गवाली स्त्रियोंके लिये बड़े साधनकी आवश्यकता है उसी तरह बड़े साधनके पुरुषके लिये बड़े मदनमन्दिरकी आवश्यकता है । यद्यपि 'संवेशनप्रकार' प्रकारणमें ऐसी स्त्रियोंके लिये कुछ ऐसे आसन बताके दिये गये हैं कि जिनसे वे चाहें तो शरीरको शिथिल करके अपने मदनमन्दिरको बढ़ा सकती हैं किन्तु जो दुर्बल हों या आसन प्रक्रियामें निपुण न हों उनके साथ बड़े साधनके पुरुषका संप्रयोग होते ही उन्हें कष्टका अनुभव अवश्य होगा इससे समरस रत न बन सकेगा, क्योंकि—" मानतन्त्रो हि मन्मथः " काम मानके अधीन है, कष्टसे संप्रयोगसे द्वेष हो जायगा इस कारण मदनमन्दिरके बढ़ानेके उपाय कहते हैं कि—

× इस योगको कुचुमारने भी प्रकारान्तरसे कहा है उसे भी यहाँ दिखाते हैं कि—

"शंखभस्म समादाय सप्ताहं कदलीरसैः ।
भावयित्वा समं तत्र हरितालं ततः क्षिपेत ॥
लोमापहारकं चैतन्मुनिराजेन कीर्तितम् ।
अत्र क्रियान्या लुप्ता च तस्मान्नैव भवेद्ध्रुवम् ॥ "

वही अर्थ है जो ऊपर किया जाचुका है अन्तर केवल इतना ही है कि—" ये खसकी जगह हरताल वरतते हैं । कल्याणमल्लतो खस और हरतालकी जगह ताल वर्तते हैं । उनके भी वचनको यहां दिखाते हैं कि—

" सप्ताहं भावितं शंखभस्म रम्भांभसा सह ।
तालेन युक्तं प्रभवेत योनिलोमापहारकम् ॥ "

बाकी अर्थ एक ही है । महात्मा कुचुमार न जाने लोम शातनका उपदेश देते हुए भी किस क्रियाको गुप्त कहकर छोड़ दिया है ।

पद्मोत्पलकन्दसर्जकसुगन्धचूर्णानि मधुना पिष्टानि लेपो मृग्या विशालीकरणम् ॥ ३५ ॥

पद्म (कमल) और उत्पल (निशिपुष्प) का कन्द, सर्जक (विजयसार) और सुगन्ध (नेत्रवाला) के चूर्णको मधुके साथ पीसकर लेप करनेसे मृगीका मदनमन्दिर भी बड़ा होजाता है ॥ ३५ ॥

कमलगट्टा, नीलोफरका कन्द, विजयसार और नेत्रवाला इन तीनों चीजोंको बराबर ग्रहण करना चाहिये, इन सबको बारीक पीस लेना चाहिये। इनको छोटे मदनमन्दिरवालीके वराङ्गपर लेप करे। एक सप्ताहके लगानेसे छोटे वराङ्गकी भी बड़ी होजाती है ॥ ३५ ॥

गर्भनाशक ।

जो इतनी अयोग्य हों कि सन्तान पैदा न कर सकें एवम् गर्भ रहने व रहेका अँदेशा हो उस समय यह क्रिया वैद्यलोग किया करते हैं गर्भिणीके प्राण बचानेके लिये, कि—

" अमलामलाञ्जनयुता पीता शीताम्बुना हरति ।
गर्भमृतौ भगनिहितं घृतमधुयुक्तं पलाशबीजं वा ॥ "

अमला, अमला, अंजन ये तीनों ठंडे पानीके साथ पीये जायँ अथवा ऋतुकालमें घृत और मधुके साथ पलाशके बीज रख दिये जायँ ।

जब गर्भके भीतर गर्भ विकृत हो जाता है तो गर्भिणीके बचानेके लिये जो योग किया जाता है उसे लिखते हैं कि—

" तण्डुलजलेन पीतं मूलं ज्वलनस्य वा जयन्त्या वा ।
गर्भघ्नं भगनिहितं लवणं कटुतैलयुक्तं वा ॥ "

चीतेकी जड अथवा जयन्तीकी जड़ या श्वेत संभालूकी जड़को नोन और तेलसे युक्त करके भगमें रखनेसे गर्भ नष्ट होता है । अथवा इन दोनों जड़ोंको चावलोंके पानीके साथ पी जाय तो यही कार्य्य होगा ।

"शैवलकेसरबीजं मूलं वा चम्पकस्य वा कणया ।
गर्भं रुणद्धि पीतं कटुतैलं वा जरत्सुधया ॥ "

---

१ कोका—"घृतमधुसैन्धवलेपादपि हरिणीनां च तरुणीनाम् ।
बालानामबलानां विशालतां व्रजति रतिनिलयः ॥
घृत, शहद और सेंधानोन मिला मदनमंदिरके भीतर लेप करनेसे छोटी हरिणीसंज्ञक स्त्रियों तथा कमजोर बालिकाओंका भी वराङ्ग बड़ा हो जाता है ।

नागरमोथाके बीज, चम्पाके बीज और जड़ इनको पीपलके साथ देनेसे गर्भ नष्ट होता तथा सेहुंड़में मिला कटु तैलके साथ पान करनेसे भी गर्भ नष्ट होता है।

"सेहुण्डदुग्धमादाय भालदेशे विलेपयेत् ।
अपूर्णमथवा पूर्णं क्षणाद्गर्भं विमुञ्चति ॥
न क्लेशो नापि सम्मोहो न रोगादि भयं क्वचित् ।
न वा प्रसवदुःखादि न वा हानिविधायकम् ॥
गृहस्थानां सुखकरो योगोऽयमिति दुर्लभः ।
कुचुमारेण मुनिना कृपया परिकीर्तितः ॥ "[1]

सेहुण्ड-थूहरका दूध लेकर माथेमें लगानेसे कैसा भी गर्भ हो उसी समय गिर जाता है। न तो इसमें कोई कष्ट होता है एवं न बेहोशी ही होती है, न कोई क्लेश ही होता है। यह योग गृहस्थोंको परम सुखकारी है, यह कठिनतासे प्राप्त होनेवाला योग महात्मा कुचुमारने सबपर कृपा करके कह दिया है॥

"वास्तुकस्य तु बीजानि कर्षमात्रं प्रमाणतः ।
गृहीत्वा सेटकार्द्धेन जलेन सह संपचेत् ॥
अर्द्धावशेषन्तु पिबेद् गर्भपातो भवेद्ध्रुवम् ।
अयं योगो न देयः स्याद् दुष्टानां प्रीतये कदा ॥ "

बथुआके बीज एक तोला लेकर आध सेर पानीमें चढ़ाये, आधा बाकी रह जानेपर पिलाये तो गर्भ गिरे, इस योगको दुष्टोंको कभी न दे।

" कटुतुम्बी बीजयुतां नीरेण सह पेपयेत् ।
योनौ प्रलेपमात्रेण क्षणाद् गर्भं विमुञ्चति ॥ "

---

१ गर्भके उखाड़नेमें इन विधानोंको वैद्यकशास्त्रमें भी बरता जाता है, यही बात यहां देखते हैं कि-

" वेण्याः स्पर्शस्तालुकण्ठमूर्ध्निस्नुक्क्षीरलेपनम् ।
भूर्जलाङ्गलिकी तुम्बी सर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः ।
पृथक् द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिधूपनलेपनम् ॥ "

वेणीको छूए तथा दण्डा थूहरका दूध कण्ठ, तालु और माथेमें लगाये, भोजपत्र, कलिहारी, तुम्बी, काले साँपकी कांचली, कूठ, सरसों इनमेंसे दो दो वा सबका योनिमें लेप करे व इन सबको धूनी दे।

बीजोंसहित कड़ुई तोमड़ीको पानीमें पीसकर मदनमन्दिरपर लेप कर देनेसे गर्भ क्षणभरमें गिर जाता है।

" उष्ट्रकण्टकमूलं तु उदरे परिलेपयेत्।
घोटकस्य च विष्ठाया धूमाद् गर्भं विमुञ्चति।"

ऊँटकटेराकी जड़को पानीमें पीस पेटपर लेप करनेसे गर्भ गिरता है। घोड़ेकी लीदके धूँयेसे भी गर्भ बाहर होजाता है।

व्यर्थमें करनेसे महापाप है।

गर्भनाशका कार्य्य महापापका है इसे सज्जनोंको तो कभी मुखसे निकालना भी न चाहिये। महात्मा शंकराचार्य्यजीने कहा है कि–" भ्रूणहत्याके बराबर कोई पाप नहीं तथा अश्वमेधके बराबर कोई पुण्य नहीं है।" सब पापोंका यह शिरताज पाप है इससे परे दूसरा कोई भी पाप नहीं है। किन्तु, वैद्य, महावैद्य, चरक, सुश्रुत, वाग्भट तथा कामशास्त्रके आचार्य्य इसका विधान केवल गर्भिणीके बचानेके लिये करते हैं कि–' बालकके न निकलने एवम् गर्भके भीतर ही मर जानेसे उसकी माता भी मर जायगी यदि मृत गर्भ न निकाला जायगा।' इस कारण इसका प्रयोग है, इसी लिये यह कहा है, सिवा इसके और कोई दूसरा प्रयोजन नहीं है। जो इस जीवरक्षक कार्य्यको भी जीवहत्याके कार्य्यमें बर्तते हैं वे महारौरवके अधिकारी होंगे, एक एक पातकके पीछे उन्हें अनन्तकल्प नरक ही भोगना पड़ेगा। महात्मा श्रीशंकराचार्य्यके वाक्य कभी अन्यथा होनेवाले नहीं हैं, वास्तवमें इससे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है इसी कारण आजकी सब जगहकी सरकारोंने उक्त कारणोंके अभावमें इस पापकर्मकी अत्यन्त कड़ी सजा रखी है।

कामीको खींचना।

" खररेतोमिलतारुणमुखकपिरेतोविलिप्तरतिनिलयाम्।
गत्वा न जातु कामी कामयते कामिनीमन्याम्॥"

गधेका वीर्य्य, ललमुँहा बन्दरका वीर्य्य, इन दोनोंको मिला वराङ्गपर लेप करके जिस कामीसे मिलेगी वह कभी किसी दूसरीके पास न जायगा॥

यह उपाय कामियोंको अपनी ओर खींचनेका है। इस कामको वे वेश्याएँ करती हैं जो अपने प्रेमीको किसी दूसरी मुकाबिलेकी वेश्याके यहाँ जाने देना नहीं चाहतीं, नहीं तो बन्दर और गधेके इन पदार्थोंको दूसरा कौन लगा सकता है। साध्वी स्त्रियाँ तो पति राजी हो या नाराज हो पर दूसरेका शुक्र

अपने ऐसे स्थानपर कभी नहीं छूने देतीं, फिर महा अपवित्र गदहा और बन्दरका वहां अवकाश ही क्या है ॥

बाल सफेद करना ।

स्नुहीसोमार्कक्षीरैर्वल्गुजाफलैर्भावितान्यामलकानि केशानां श्वेतीकरणम् ॥ ३६ ॥

स्नुही (थूहर) सोम, (एक तरहकी थूहर) और अर्क (आक) क दूधसे एवम् वल्गुजा (वाकुची) के फलोंसे आमलकों (आवलों) को भावित करके बालोंपर लगानेसे बाल सफेद होजाते हैं ॥ ३६ ॥

स्नुही, सोम और आक ये तीनों दूधके उद्भिज विशेष हैं, इस कारण इनके दूधको ले ले । वाकुचीके काले फल होते हैं, उन्हें पीस ले, इन दोनोंकी आँवलोंमें अनेक भावनाएँ देकर उन आँवलोंको स्नानके समय बालोंपर लगानेसे बाल सफेद होजाते हैं । यह क्रिया उतने समयतक रोज करनी चाहिये जबतक कि कुछ सफेद न होजायँ । इस क्रियाको भी ध्वाजे २ वर्णिलिङ्गी कर गुजरते हैं-जो अपनी वृद्धावस्था दिखाकर दूसरेको ठगना चाहते हैं ॥३६ ॥

इसपर दूसरे आचार्य्य ।

इस विषयपर नित्यनाथजीने भी कुछ कहा है पर वे कामसूत्रकी बताई हुई चीजोंसे कम ही रहे हैं आगे नहीं बढ़ सके हैं, इसे भी यहीं दिखाते हैं कि-

" वज्रीक्षीरेण सप्ताहं तच्छेपं भावयेत्तिलम् ।
तत्तैललिप्ताः केशाश्च शुक्लाः स्युर्नात्र संशयः ॥ "

दण्डा थूहरके दूधमें तिलोंको सात दिनतक भावित करना चाहिये फिर उनका तेल निकलवाकर उसे बालोंमें लगाये तो इससे भी काले बाल सफेद होजाते हैं ।

" रोगामलकचूर्णं तु वज्रीक्षीरेण सप्तधा ।
भावयेत्तस्य लेपेन शुक्लतां यान्ति मूर्द्धजाः ॥ "

कूठ और आमलेके चूर्णको थूहरके दूधसे सात बार भावित करे, इन दोनोंके लेपसे भी काले बाल सफेद होजाते हैं ।

" अजाक्षीरेण सप्ताहं भावयेदभयाफलम् ।
तच्चूर्णं सह तैलेन लेपाच्छुक्ला भवन्ति हि ॥ "

---

१ तथा किसीके यहां वन, उपवनोंकी श्रीवृद्धि करनेवाले हरश्रृङ्गारके फूल ही आवलोंके रससे भावित किये हुए चलते हैं ।

हरड़ोंको सात दिनतक बकरीके दूधमें भावित करना चाहिये, पीछे उन हरडोंका चूर्ण तेलके साथ लगाना चाहिये, इसके लेपसे बाल सफेद होजाते हैं।

बाल काले ।

मदयन्तिकाकुटजकवञ्जनिकागिरिकर्णिकाश्लक्ष्णपर्णी-
मूलैः स्नानं केशप्रत्यानयनम् ॥ ३७ ॥

मदयन्तिका (मँहदी), कुटज (कूडा), कवञ्जिका, गिरिकर्णिका (पर्वती चमेली) और श्लक्ष्णपर्णी (माषपर्णी) की जड़के चूर्णको बालोंपर मलकर स्नान करनेसे फिर बाल जैसेके तैसे हो जाते हैं ॥ ३७ ॥

मदयन्तिका, कूडा, कवांजिका, पर्वती चमेली, माषपर्णी ये पांचों चीजें ऐसी हैं जो एक २ भी विधिके साथ उपयोगमें लानेपर बालोंको रँग सकती हैं। इस सबको मिलाकर कार्य्यमें लानेकी तो बातही क्या है। ये सब मिला-कर इनको शिरपर आँवलेकी तरह मसले, फिर कुछ कालके बाद स्नान करे तो यथेष्ट फल प्राप्त होगा ॥ ३७ ॥

इस विषयपर नित्यनाथने कहा है कि—

" स्रगन्धधूपाम्बरभूषणानां, न शोभते शुक्लशिरोरुहाणाम् ।
यस्मादतो मूर्द्धजरागसेवां कुर्य्याद्यथैवाञ्जनभूषणानाम् ॥ "

जिसके शिरके बाल पूरे सफेद हो गये हों वह चाहे परम सुगन्धितफू-लोंकी मालाएँ गलेमें डाले फिरे, कानोंमें भले सुरभिके फोहे रखे हों। कानोंमें कुण्डल, हाथोंमें कटक एवम् कण्ठमें बड़ी २ कण्ठमालाएँ धार रखी हों किन्तु बाल सफेद हैं तो कुछ नहीं है, इस कारण बालोंकी इतनी सेवा करे कि वे अंजन और भौंरेके समान काले हो जायँ ।

" आम्राण्डेनोत्थितं तैलं कान्तपाषाणसन्निभम् ।
काकतुण्डीफलं कृष्णं चूर्णयित्वा प्रयत्नतः ॥
धान्यराशौ विनिक्षिप्य मासोर्द्ध्वं शिरसि क्षिपेत् ।

---

१ नित्यनाथ एक प्रकारकी चमेलीके ही रसको इस कार्य्यमें बता रहे हैं, इस बातको भी हम यहीं दिखाते हैं कि—

" मदन्तिकाया रसकल्कसिद्धं, तिलोद्भवं तैलमिदं नराणाम् ।
अकालजातं पलितं सरौक्ष्यं केशस्य कारुण्यमलं निहन्ति ॥ "

चमेलीका रस निकाल उसकी जड़का कल्क भी कर ले, इस रस और कल्कसे सिद्ध किया गया तिलोंका तेल अकालमें श्वेत हुए बालोंको काला कर देता है ।

न्यस्तं दिनत्रयं तेन केशरञ्जनकं भवेत् ।
वर्षार्द्धं तिष्ठत कृष्णभ्रमराञ्जनसन्निभम् ॥ "

आमकी गुठलीका तेल, कान्त पाषाणका चूर्ण, काकादनीके फलोंका चूर्ण, लोहचूर्ण, अंकोलका तेल, इन सब चीजोंको मिलाकर धान्यराशिमें किसी मिट्टीके वर्तनमें भरकर उसका मुँह बन्द करके धान्यराशिमें एक मासतक दबा रहने दे, पीछे निकाले एवं तीन दिन लगाये तो इससे ६ मासतक बाल काले रहते हैं ।

" त्रिफलालोहचूर्णं तु कुष्ठैलादेवदारुकम् ।
तुल्यांशं भावयेच्चूर्णं दिनैकं भृङ्गजद्रवे ॥
चूर्णाच्चतुर्गुणं तैले पाचयेन्मृदुवह्निना ।
तेनाभ्यङ्गाद्घनाः केशा रञ्जनं भ्रमरोपमम् ॥ "

गुंजाबीज, कुष्ठ, एला, देवदारु, इन चीजोंको बराबर लेकर चूर्ण करे व इसे एकदिन भाँगरेके रसमें भावित करे, चूर्णसे चौगुने तेलमें तेल बनानेकी प्रक्रियासे तेल बना ले। इसके लगानेसे बाल भौंरोंकी तरह काले होजाते हैं ।

"हस्तिदन्तस्य दग्धस्य समांशेन रसं समम् ।
अजाक्षीरेण तं पिष्ट्वा लेपनात् केशरञ्जनम् ॥ "

हाथीदाँतकी भस्म और भांगरेका रस लेकर बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे तो भी बाल काले होंगे ।

" मुस्तं च सर्षपं चैव ह्युशीरं च तथैव च ।
हरीतक्याश्च क्राथेन आमलक्यास्समं ततः ।
केशमूलं समालेप्य मेघतुल्यो भवेत्कचः ॥"

मोथा, सरसों, उसीर, हरीतकी, आमलकी और हरीतकी, इनके क्राथसे केशमूलपर लेप करनेसे बाल मेघके समान होजाते हैं ।

" सनीलिका सैन्धवपिप्पलीभिर्घृतानुयुक्तैरुपलिप्य देहम् ।
क्रमेण शङ्खोपममाशु कृष्णं शिरोरुहं मेचकतामुपैति ॥"

नीलकी जड, सधानमक, छोटी पीपल, इनका अत्यन्त बारीक चूर्ण करके फिर घी मिलाकर लेप करे, इससे शंखकी तरह सफेदबाल भी काले हो जाते हैं ।

"गोघृतं भृङ्गजद्रावं मयूरशिखया सह ।
अग्निना मृदुना पाच्यं तं न्यसेत्केशरञ्जनम् ॥ "

गोकी घी, भाँगरेका रस और मोरशिखा, इन तीनों चीजोंको लेकर मन्दी २ आगसे सिद्ध कर ले फिर उसको बालोंपर लगाये तो बाल काले होजाते हैं ।

"काकमाचीयबीजानि, समं कृष्णतिलाँस्ततः ।
जपापुष्परसं क्षौद्रं कर्षैकं न्यस्यमाचरेत् ।
सप्ताहं रञ्जयेत् केशान् सर्वन्यस्येत्ययं विधिः ।"

काकमाचीके बीजोंके समान काले तिल ले, उनमें गुड़ हलके फूलोंका रस और शहद एक कर्ष डाले इस सबको इकट्ठा करके सात दिनतक लगावे तो सफेद बाल काले हो जाते हैं ॥

"त्रिफलालोहचूर्णं तु इक्षुभृङ्गरसस्तथा ।
कृष्णमृत्तिकया सार्धं भाण्डे मासं निरोधयेत् ।
तल्लेपाद् रञ्जयेत् केशाँश्चतुर्मासं स्थिरी भवेत् ।"

त्रिफला, लोहचूर्ण, नीली और भृङ्गी जड़ समेत इन सबका चूर्ण, बकरीके मूतकी एकदिन भावना देकर लगानेसे बालोंको भौंरोंके समान काले कर देता है ।

वैसाही तेल।

एतैरेव सुपक्केन तैलेनाभ्यङ्गात्कृष्णीकरणं क्रमेणास्य प्रत्यानयनम् ॥ ३८ ॥

इनके ही सिद्ध किये हुए तेलको लगानेसे बाल काले हो जाते हैं फिर धीरे २ अपने रंगपर आजाते हैं ॥ ३८ ॥

महंदी, कूडा, कवंजिका, पर्वतीचमेली और माषपर्णी इन सब चीजोंकी जड़को लेकर तेल बनानेकी प्रक्रियासे तेल बनाले यानी इनकी जड़ोंका जितना कल्क हो उससे चौगुना तेल व सोलह गुना पानी ले तथा इस सबको आगपर चढाकर विधिसे तेल निकाल ले ॥ ३८ ॥

"महाकालस्य बीजानि वाकुची बीज तत्समम्
चूर्णं द्रवैश्च निर्गुण्डया भावयेत्तु चतुर्दिनम् ।
जपापुष्पद्रवैरेवं ततः पातालयन्त्रके
तैलं ग्राह्यं तु तल्लेपे पत्रैरेरण्डजैः शिरः
वेष्टयेत् क्षीरभोजी स्याद वातातपविवर्जितः
एवं सप्तदिनं लेप्यं तण्डुलान् धारयेन्मुखे
कृष्णवर्णाः प्रजायन्ते तथा भवति प्रत्यहम् ।"

महाकाल और वाकुचीके बीज समभाग लेकर दोनोंको पीस डाले, इस चूर्णको निर्गुण्डीके रसमें चार दिनतक भावित करे फिर जपा पुष्पमें भी चार दिनतक भावित करता रहे फिर इनका पातालयंत्रसे तेल निकाल ले, इस तेलको शिरपर लगाकर शिरसे एरण्डके पत्ते बाँध ले, हवा व घाम लगने न दे तथा क्षीरान्नका भोजन करे मुखमें तण्डुल धारण करे इस प्रकार सात दिनतक करनेसे काले बाल हो जाते हैं।

" त्रिफलालोहचूर्णं तु वारिणा पेषयेत्समम्
द्वयोस्तुल्येन तैलेन पचेन्मृद्वग्निना क्षणम् ।
तैलतुल्यं भृङ्गरसं यावत्तैलं च पाचयेत्
स्निग्धं भाण्डगतं भूमौ स्थितं मासात्समुद्धरेत्
सप्ताहं लेहयेद्दृष्टा कदल्याश्च दले शिरः । "
निवाते क्षीरभोजी स्यात् क्षालयेत्त्रिफलाजलैः ।
नित्यमेव हि कर्तव्यं सप्ताहे रञ्जनं भवेत्—
यावज्जीवं न सन्देहः केशाः स्युर्भ्रमरोपमाः । "

त्रिफला और लोह चूर्ण समभाग लेकर पानीसे पीसे, इन दोनोंके बराबर तेल लेकर उसमें उतना ही भांगरेका रस डालकर मन्दी आगसे पकावे, जब रस जलजाय तथा तेल मात्र रह जाय तब उतार ले पीछे उसे चिकने मिट्टीके बर्तनमें रखकर जमीनमें गाड़ दे, एक मासके बाद उसे निकलवाकर शिरपर लगा केलेका पत्ता बाँध ले, इस प्रकार सात दिनतक करे, ऐसी जगहमें रहे जहां हवा और घाम न आये। शिरको त्रिफलाके पानीसे धोये। इन सात दिनोंमें उसके बाल इतने काले होजायंगे, कि यावज्जीवन कभी सफेद न होंगे।

होठ सफेद ।

श्वेताश्वस्य मुष्कस्वेदैः सप्तकृत्वो भावितेनालक्तकेन रक्तोऽधरः श्वेतो भवति ॥ ३९ ॥

श्वेत अश्वके मुष्क (अण्डकोश) के पसीनाकी, सातबार भावना दिये हुए महावरके लगानेसे लाल होठ सफेद हो जाता है ॥ ३९ ॥

---

१ होठोंको रोगन आदि लगाकर लाल तो करते देख जाते हैं, किन्तु सफेद रँगतेहुए तो नहीं देखे। भारतमें प्रायः होठ लाल करनेके लिये भी जो वस्तु काममें आती है उसे नागरोंके घरके उपकरणमें कह चुके हैं। पानसे भी लाल होते हैं। भारतमें जो पाश्चात्य रहते हैं, वे किसी रोगन आदिको लगाकर लाल रखा करते हैं। पर सफेद करनेवाले हमने कभी नहीं-

यह स्थान घोड़ाके शरीरमें ऐसा है जिससे कि थोड़ीसी श्रान्ततामें भी पसीना आजाता है । महँदी पीसकर किसी कोचवानको दे दे, ऐसे समयमें वही उसमें भावनाएँ दिलवा सकता है दूसरेके वशका यह कार्य्य नहीं है३९॥

केशोंके यूकाप्रादिकोंको मिटाना ।

बड़े वालोंमें थोड़ेसे भी व्यतिक्रमसे डीगर आदिक पड़ जाते हैं जिनसे शिरमें खाज आनेके सिवा शोभाका भी सत्यानाश होजाता है, क्योंकि वे यूकाएँ बालोंपर चिपटकर चमकती हुई अभव्यता पैदा करती रहती हैं । इस कारण कामशास्त्रके आचार्य्योंने यूकाओंके मिटानेकी विधियोंका भी संग्रह किया है, उसे हम भी यहीं दिखाते हैं कि—

" विडङ्गगन्धोत्पलकल्कयोगाद्, गोमूत्रसिद्धं कटुतैलमेतत् ।
अभ्यङ्गयोगेन शिरोरुहाणां यूकादिलिक्षाप्रचयं निहन्ति ॥ "

वायविडंग, गन्धक, उत्पल इनको पीस गोमूत्रमें मिलाकर कड़ुए तेलमें सिद्ध कर ले, इसके लगानेसे डीगर और लीखें मर जाती हैं । गोमूत्रके साथ अनन्तमूलका चूर्ण लेप करनेसे उक्त कार्य्य करता है । काले धतूरेके रसमें एक निष्क पारेको मलकर लगानेसे उक्त कार्य्य होता है । नागवल्लीके द्रवमें कपड़ेके टुकड़ेको तर कर ले, उसे सिरपर लपेटे,इसे तीन याम रखनेसे निःसन्देह सब डीगर और लीख सिरसे गिर जाती हैं । दोनों हलदियोंके चूर्णको मक्खनमें शिरपर लगानेसे सिरकी खाज मिट जाती है । नील कमल, तिल, मुलैठी,, सरसों, नागकेशर, इन सब चीजोंको आँवलेके साथ पीसकर लगानेसे यूकाएँ मिटती हैं । हलदी, गन्धक, गोमूत्र,वायविडंग, कडुआ तेल, पारेके साथ पीसकर लेप करनेसे लीखें मिटती हैं । लाख शुद्ध, भिलावा, नागरमोथा, कूट, गूगल, सरसों, वायविडंग इनके चूर्णमें पानी मिला लेप करनेसे यूकाओंका निवारण होता है ।

मदनमंदिर-संस्कार ।

अब हम कुछ ऐसे विधानोंको बताते हैं जिनसे मदनमंदिरकी दुर्गन्ध नष्ट हो जाय—

–देखे पर जब सोचते हैं तो इतनी बात अवश्य ध्यानमें आती है कि कोई अत्यन्त गोरे भी होंगे जो होठोंकी सहज लालीको अपने लिये घातक समझकर सफेद किया करते होंगे । प्रायः इस तरहकी वस्तुओंका उपयोग स्टेजके खिलाडियोंमें हो सकता है ।

प्रक्षालयेन्निम्बकषायतोयैर्निशाज्यकृष्णागुरुगुग्गुलूनाम् ।
धूपेन योनिं निशि धूपयित्वा नारी प्रमोदं विदधाति भर्तुः ॥ ”

नींबका काढ़ा बनाकर उसके पानीसे योनिको धोना चाहिये तथा दोनों हलदियाँ, आज्य (घी), काला अगर और गूगल इनकी धूप रातको देनी चाहिये । जिस मदनमंदिरके ये संस्कार होंगे उससे उसके पतिको अवश्य प्रसन्नता प्राप्त होगी ॥

“ प्रक्षाल्य निम्बस्य जलेन भूयस्तस्यैव वल्केन विलेपयेच्च ।
त्यजेच्च रत्याश्चिरकालभूतं गन्धं वराङ्गस्य न संशयोऽत्र ॥ ”

नीमके जलसे बारबार धोये, उसीकी छालका लेप करे । इससे बहुत दिनोंकी बदबू भी चली जाती है इसमें सन्देह नहीं है । इन दोनों वाक्योंमेंसे पहिलेको ज्योतिरीश्वरने भी अपने यहां इसी रूपमें रखा है कि–

“ कुष्ठकमलबालोत्पलसाधिततैलेन पूरणं योनेः ।
अभयागुडधूपनमथ निम्बक्वाथेन धौतायाम् ॥
पिष्ट्वा जातीकुसुमं ज्येष्ठीमधु पञ्चपल्लवानथवा ।
तैलेन योनिपूरणमातपतप्तेन गन्धघ्नम् ॥ ”

कूठ, कमल, इलायची, सुगन्धितकमल, इनका विधिपूर्वक तेल सिद्ध किया जाय, गुड़ मिलाकर हरड़ोंकी धूप बनाई जाय । पहिले नींबके काथसे धो दे फिर धूप दे दे, पीछे वह तेल भर दे । इससे योनिकी दुर्गन्ध नष्ट होजाती है । चमेलीके फूल, मुरहटी, एवम्–आम, जामुन, कैथ, बिजौरा व बेलके

---

१ इन विधानोंसे योनिरोग भी दूर होजाते हैं यह भी किसीका मत है । इसे भी हम यहीं दिखाते हैं कि–

“ निम्बकषायक्षालनममलाञ्जननिम्बसारधूपो वा ।
जीवच्छम्बूकाम्बुक्षालनमह्ना त्रिसप्तकं तद्वत् ॥ ”

नींबके पत्तोंके काढ़ेसे धोना, अमलाञ्जन–सफेदसुरमा, निम्बसार, नींबका गोंद, इनका धूप अथवा जीवितकीडेवाले छोटे शंखके पानीसे इक्कीस दिनतक धोना योनिदोषनाशक है ।

“ समभागैर्गदपद्मककर्पूरोशीरपुष्कराम्बुधरैः ।
सिद्धसर्षपजं तैलं समस्तभगदोषमपनयति ॥ ”

कूठ, पद्माख, कपूर, खस, पुष्करमूल, नागरमोथा इन समस्त चीजोंको समभाग डालकर सरसोंका तेल बना ले, इस तेलकी मालिससे योनिरोग दूर होते हैं ।

पत्ते, इन सब चीजोंको बारीक पीसकर आयुर्वेदके नियमके अनुसार लिये गये तेलमें मिलाकर विधिके साथ घाममें रख दे, इस तेलके भरनेसे योनिकी दुर्गन्ध नष्ट होजाती है ।

" जातीप्रसूनैः सितसर्षपस्य, तैलं पचेन्मृदनले प्रकामम् ।
अभ्यङ्गयोगेन सदैव योनौ, सौभाग्यमाप्नोति रते पुरन्ध्री ॥ "

चमेलीके फूल, श्वेत सरसों इनका तेल बना ले । यह तेल मन्दी आगसे बनाना चाहिये । बाकी सब विधियाँ वे ही हैं जो कि दूसरे तेलोंमें बरती जाती हैं, इस तेलको योनिपर सदा लगानेसे बदबू चली जाती है । ये ज्योतिरीश्वरके वचन हैं ।

योनियोंकी दुर्गन्ध नष्ट करनेके लिये वंगसेनने लिखा है कि—

" दुर्गन्धानां कषायः स्यात्तैलं कल्कस्तथैव च ।
चूर्णो वा सर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणम् ॥ "

जिन योनियोंमें किसी भी प्रकारकी बदबू आती हो उन सबकी यह औषध है कि—" जितनी सुगन्धित वस्तुएँ हैं उनके तेल क्वाथ कल्क व चूर्णोंका योनिपर प्रयोग करे । " फिर कभी भी बदबू नहीं रह सकती । इस विषयमें भावमिश्रने तो यह कहा है कि—

" दुर्गन्धां पिच्छिलां वापि चूर्णैः पञ्चकषायकैः । "

यह वाक्य लिखकर वे ही स्वयं पञ्चकषायका विवरण करते हैं कि—" वचावासापटोलप्रियंगुनिम्बाः, राजवृक्षादिर्यथा धनवहेरा इति लोके । " इस सबका मिलाकर अर्थ करें तो यह होता है कि—" जिसकी योनिमें बदबू आये व पिच्छिल हो तो वह वच, अडूसा, कडवे परवल, फूलप्रियंगु, निम्ब इनके काढ़ेसे धोये या इनके चूर्णको भीतर रखे तो योनिका बदबू मिट जाती है । " टीकाकारन इसमें धनबहेरे आदिको भी लिया है कि राजवृक्षादि भी इसमें काममें लाये जाते हैं ।

महात्मा चरक (पतञ्जलिजी) ने तो इस विषयमें यह कहा है कि—

" दुर्गन्धानां कषायः स्यात्तौवरः कल्क एव वा ।
चूर्णं वा सर्वगन्धानां पूतिगन्धापहारकम् ॥ "

---

१ इन तेलोंको किसी ऐसे वैद्यके पास बनवाना चाहिये जो ओषधियोंके घी तेल बनाता रहता है, क्योंकि दूसरी तरह होनेसे वैगुण्यका सदा भय रहता है ।

योनिकी दुर्गन्धिको नष्ट करनेके लिये सुगन्धित वस्तुओंके काढ़से उसे धोना चाहिये । तुवरके कल्कका प्रयोग करना चाहिये । अथवा दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, कंकोल, लौंग, अगर, छारछबीला इन चीजोंका बारीक चूर्ण करके उसमें डालना चाहिये। फिर कभी बदबू नहीं आती । जहां चरकमें ' तौवर ' पाठ है उसकी जगह हमें तो 'तैल' का पाठ ही अच्छा जचता है । इस प्रकार माननेमें यह लाभ दृष्टि आता है कि अबतककी जितनी भी क्रियाएँ योनिदुर्गन्ध नाशक कही हैं उनका सीधा महर्षिके वाक्यसे सम्बन्ध होजाता है । दूसरे चरकके एक २ अक्षरको अपना प्राण माननेवाले वाग्भटने भी इस श्लोकको रखा है पर ' तौवर ' की जगह ' तैलं वा ' इतना पाठ भेद हुआ है कि—

" दुर्गन्धानां कषायः स्यात् तैलं वा कल्क एव वा ।
चूर्णं वा सर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणः ॥ "

इसे बंगसेन भी रखा है, अर्थ वहां कर चुके हैं । महर्षिके साथ एकवाक्यता करनेके लिये यहां रखा है । वाग्भट इतना ही कहकर चुप नहीं रहे हैं; उन्होंने दुर्गन्धिनाशक एक योग भी कहा है कि—

" पलाशधातकीजम्बूसमङ्गामोचसर्जजः ।
दुर्गन्धे पिच्छिले क्लेदे स्तम्भनश्चूर्ण इष्यते ॥ "

पलाशके फूल, धायके फूल, जामुनकी छाल, मंजीठ, मोचरस और राल इनके चूर्णको योनिमें रखनेसे योनिकी बदबू और मलीनपना ये दोनों दोष मिट जाते हैं । इस प्रकार हमने इसपर आयुर्वेदके ऋषि और आचार्य्य दोनोंका मत दिखा दिया है । जो भावप्रकाशका मत दिखाया है वह उन्होंने सुश्रुत महर्षिके वचन ही लिये हैं, क्योंकि उक्त महर्षिने लिखा है कि—

" दुर्गन्धां पिच्छिलां वापि चूर्णैः पञ्चकषायजैः ।
पूरयेद्राजवृक्षादिकषायैश्चापि धावनम् ॥ "

इसका राजवैद्य पं० मुरलीधरजीने अर्थ किया है कि–' जो योनि दुर्गन्धित हो या पिच्छिल (मलीन) हो (तो) उसे पंचकषाय (वट, गूलर, पिलखन, बकुल, गर्धभाण्डवृक्ष) इनके चूरनसे पूर्ण करे तथा राजवृक्षादिके काथसे धुलाता रहे । राजवृक्षादिका विवरण इस श्लोकके आधे टुकड़ेकी विवृतिमें भावप्रकाशमें है । मैंने कामशास्त्रकी पूर्णताके लिये ही इन सबको एकत्र किया है कि जो इस रोगके रोगी इससे यथोक्त लाभ उठा लेंगे तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूँगा ।

योनिके रोगोंका इलाज।

हमने कई जगह योनिव्यापद् रोगका नाम लिया है तथा पुरुषोंके उपायोंकी तरह स्त्रियोंके उपायोंको भी कहना चाहिये, इससे उनके योनिरोगोंका इलाज भी कहे देते हैं कि—

"मञ्जिष्ठाकुष्ठतगरत्रिफलाशर्करावचाः।
द्वे निशे मधुकं मेदा दीप्यकः कटुरोहिणी॥
पयस्याहिंगुकाकोलीवाजिगन्धाशतावरीः।
पिष्ट्वाक्षांशैर्घृतप्रस्थं पचेत्क्षीराच्चतुर्गुणम्॥
योनिशुक्रप्रदोषेषु तत्सर्वेषु च शस्यते।
आयुष्यं पौष्टिकं मेध्यं धन्यं पुंसवनं परम्॥
फलसर्पिरिति ख्यातं पुष्ये पीतं फलाय यत्।
म्रियमाणप्रजानां च गर्भिणीनां च पूजितम्॥
एतत् परं च बालानां ग्रहघ्नं देहवर्धनम्॥"

मंजीठ, कूठ, तगर, हरड, बहेड़ा, आँवला, खांड, वच, हलदी, दारुहलदी, मुलहटी, मेदा, अजवायन, कटुकी, क्षीरकाकोली, हींग, काकोली, अश्वगन्धा, शतावरी, ये प्रत्येक चीज एक २ तोला लेकर इनका कल्क (चूर्ण) बनाये, इसे एक सेर गोघृत और चार सेर दूध मिलाकर इसका वैद्यककी विधिके अनुसार घृत सिद्ध करे। यह घृत योनिरोगोंको और सब प्रकारके वीर्य्यदोषोंको नष्ट करता है। यह घी आयुका बढ़ानेवाला, पौष्टिक, बुद्धिवर्द्धक, धन्य और पुंसवनकारक है। इस घृतको उत्तम सन्तानके लिये पुष्य नक्षत्रमें पीये। यह वन्ध्याको पुत्रदाता है, इस घृतको मृतवत्सा स्त्री पीये तो उत्तम पुत्र पैदा करे जो कि चिरजीवी रहे। यदि यह घी छोटे बालकको दिया जाय तो बालग्रहोंकी पीडा मिट जाती है। इसे वाग्भटजीने कहा है तथा भावमिश्रजीने भी अपने संग्रहमें लिखा है। यह अवश्य ही कहे हुए लाभोंको करनेवाला है इसके विषयमें वंगसेनजीका भी यही मत है।

---

१ यद्यपि इस घृतको सबोंने योनिरोगोंके अधिकारमें ही दिया है किन्तु यह इस रोगपर जिसप्रकार चलता है उसी तरह वीर्य्यरोग तथा बालग्रहोंपर एवं वन्ध्यात्वके निवारणपर भी चलता है, इस कारण इसे इन पर भी प्रयुक्त कर लेना चाहिये। हमारे भी लिखनेका यही यही कारण है जो कि वैद्यकके आचार्य्योंका है।

जो काम 'फलघृत' करता है वही शतावरीघृत करता है इस कारण इस घृतको भी यहीं लिखते हैं । वाग्भटने अपने ग्रन्थमें लिखा है कि—

"शतावरीमूलतुलाचतुष्कात्क्षुण्णपीडितात् ।
रसेन क्षीरतुल्येन पाचयेत घृताढकम् ॥
जीवनीयैः शतावर्य्या मृद्वीकाभिः परूषकैः ।
पिष्टैः प्रियालैश्चाक्षांशैर्मधुकद्विपलान्वितैः ॥
सिद्धशीते तु मधुनः पिप्पल्याश्च पलाष्टकम् ।
शर्कराया दशपलं क्षिपेल्लिह्यात्पिचुं ततः ॥
योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनं परम् ।
क्षतं क्षयमसृक् पित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ॥
कामलां वातरुधिरं विसर्पं हृच्छिरोग्रहम् ।
अपस्मारार्दितायाममदोन्मादांश्च नाशयेत् ॥"

शतावरीकी बीस सेर जड़ोंको निकालकर उसी समय कूटकर उनका स्वरस निकाल ले । इस स्वरसके बराबर ही उसमें उसी समयका निकाला गोदुग्ध मिलायें । इसमें चार सेर गोघृत भी मिला दे । जीवनीयगणके[1] द्रव्य, शतावरी, द्राक्षा, फालसे, चिरोंजी, मुलहटी, बला, अतिबला ये सब एक २ तोले लेने चाहियें एवं चूर्ण करके इन्हें भी उसमें मिला दे । इनका घृतपाक विधिसे घृत सिद्ध करना चाहिये । इस घृतको शीतल करके इसमें आठ पल मधु, आठ फल पीपल, दशफल मिश्री मिलानी चाहिये । इसमेंसे रोज एक तोला चाटनेसे योनिरोग, मासिक रजोविकार और वीर्य्यदोष नष्ट होते हैं । यह घृत—वीर्य्यवर्द्धक, पुत्रजनक है, रोजके सेवन करनेसे क्षत, क्षय, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्रोग, शिरोग्रह, अपस्मार, अर्दितवात, अन्त्रायाम, बाह्यायाम, मद और उन्मादको नष्ट करता है ।

---

१ जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मधुक इन दशोंको महर्षि चरकने जीवनीय द्रव्य माना है । यह जीवनीयगण अकेला भी योनिरोगोंको मिटा सकता है, यही बात वाग्भट कह रहे हैं कि—

"एवमेव पयःसर्पिर्जीवनीयोपसाधितम् ।
गर्भदं पित्तजानां च रोगाणां परमं हितम् ॥"

इस गणसे सिद्ध किया हुआ दूध गर्भदायक तथा योनिरोगोंको मिटानेवाला है । यही बात उसकी है जो कि केवल इन्हींसे घृत सिद्ध किया जाय । पित्तके रोगोंको दूर करनेमें तो परम सहायक है ॥

प्राय: योनि वायुके कारण ही अधिक रुग्ण होती है। जो भी कुछ योनिको दूषित करनेके कारण बताते हैं वे भी आखिरकार वायुको भी कुपित करते हैं, इस कारण इसका एक वातनाशक घृत भी कहते हैं कि—

" काश्मर्य्यत्रिफलाद्राक्षाकासमर्दनिशाद्वयैः ।
गुडूचीसैर्य्यकाभीरुशुकनासापुनर्नवैः ॥
परुषकैश्च विपचेत् प्रस्थमक्षसमैर्घृतात् ।
योनिवातविकारघ्नं तत्पीतं गर्भदं परम् ॥ "

काश्मरी, हरड, आँवला, द्राक्षा, कसोंदी, हलदी, दारुहलदी, गिलोय, कालावांसा, शतावरी, सोनापाठा, पुनर्नवा, परुषकादिगणके[1] द्रव्य एक एक प्रस्थ लेकर इनका घत बनानेकी विधसे घृत बनवा ले। इस घृतके पीनेसे योनिविस्रंसन आदि सभी वातविकार नष्ट होजाते हैं । इसमे यह भी बल है कि यह गर्भाशयको निर्दोष करके पुत्रकी प्राप्ति भी करा देता है ॥

यह हमने इस विषयका ऐसा घृत बताया है जो कि दूसरे रोगोंमें भी कार्य्य आता है। अब इस विषयमें एक चूर्ण लिखते हैं, क्योंकि घृतोंके बनानेमें परेशानी अधिक है जिस प्रकार कि लाभ अधिक है; पर चूर्णमें परेशानी कम है तथा लाभ भी है, ही इस कारण मुख्यचूर्ण पुष्यानुगको लिखे देते हैं कि—

" पाठाजम्ब्वाम्रयोरस्थि शिलोद्भेदं रसाञ्जनम् ।
अम्बष्ठां शाल्मलीं पिच्छां समङ्गां वत्सकत्वचम् ॥
वाह्लीकबिल्वातिविषारोध्रतोयदगैरिकम् ।
शुण्ठीमधूकमार्चीकरक्तचन्दनकट्फलम् ॥
कटवङ्गवत्सकानन्ताधातकमिधुकार्जनम् ।
पुष्ये गृहीत्वा संचूर्ण्य सक्षौद्रं तन्दुलाम्भसा ॥
पिबेदर्शःस्वतीसारे रक्तं यश्चोपवेश्यते ।
दोषा जन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ॥
योनिदोषं रजोदोषं श्यावश्वेतारुणासितम् ।
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ "

पाठा, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, पाषाणभेद, रसौत, अम्बष्ठा, शाल्मलकि फूलों या छालका लबाब, मजीठ, कुडाकी छाल, बिल्व, अतीस,

---

१ फालसा, त्रिफला, द्राक्षा, कायफल, कतकफल, खिरनी, दाडिम, शाक यह परुषकादिगणकी वस्तुएँ हैं।

लोध, नागरमोथा, गेरू, सोंठ, महुआ, मांई (फ्रांसके एक वृक्षका फल) लालचन्दन, कायफल, सोनापाठा, इन्द्रजौ, सारिवा (अनन्तमूल) धावेके फूल, मुलहटी, अर्जुनकी छाल, इन सब चीजोंको पुष्यनक्षत्रमें इकट्ठा करके चूर्ण करनी चाहिये। इसमें शहद मिलाकर तंडुलजलके साथ पीवे तो इससे अर्श, अतिसार, रक्तातिसार, एवं बालकोंके पेटके कृमिजन्य विकार सब नष्ट होजाते हैं। यह योनिदोष, रजदोष, योनिसे होनेवाले काले, श्वेत, लाल व नीले रक्तस्राव आदिको नष्ट करता है। इसे भगवान् आत्रेयने इसी रूपमें माना है।

रजश्चिकित्सा।

हम योनिरोगोंके विषयको लेकर चले हैं, क्योंकि पुरुषोंके साधनकी चिकित्साकी तरह उनके वराङ्गकी भी चिकित्सा आवश्यक थी। अब हम स्त्रियोंके रजके विषयको लेकर चलते हैं। महात्मा भावमिश्रजी बंगाली वंगसेनजीके पीछे अधिक चले हैं। इस कारण सबसे पहिले उन्होंने मछलियोंका ही योग रखा है कि—

" आर्तवादर्शने नारी मत्स्यान् सेवत नित्यशः।
काञ्जिकं च तिलान माषानुदश्विच्च तथा दधि ॥ "

जो स्त्री रजस्वला न होती हो एवम् जिसके यहां मांस चलता हो उसे चाहिये कि—'रोज मत्स्योंका सेवन करे।' इन चीजोंके सिवा कांजी, तिल, उड़द, उदश्वित् (छाछ) और दहीका सेवन करे।

" इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनकिण्वयवशूकैः।
सास्नुक् क्षीरैर्वर्त्तिर्योनिगता कुसुमसजनना ॥ "

कडुई तुम्बीके बीज,दन्ती (जमालगोटा), पीपल, गुड़, मैनफल, सुराबीज, जवाखार, इन सबको थूहरके दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर योनिमें रखवा दे तो ऋतुमती हो।

" पीतं ज्योतिष्मतीपत्रं स्वर्जिकोग्रासनं त्र्यहम।
शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद्ध्रुवम् ॥"

मालकांगनीके पत्ते, सज्जीखार, वच, और विजयसार इन सबको शीतल दूधमें पीसकर डालने व पीनेसे रजोदर्शन होता है।

अबतक जो मैंने कहा था वैद्यकशास्त्रके आचार्योंको लेकर कहा था। अब इस विषयपर कामशास्त्रके आचार्योंके भी विधान बतलाता हूं कि—

" ज्योतिष्मतीकोमलपत्रमग्नौ भृष्टं जपायाः कुसुमेन पिष्टम् ।
गृहाम्बुना पीतमिदं युवत्याः करोति पुष्प स्मरमन्दिरस्य ॥"

मालकांगनीके कोमल पत्ते आगपर भून ले, उनको गुडहलके फूलके साथ पीस ले, फिर वर्षाके पानीमें जो कि घरकी टांकी आदिकोंमें भरा हो उसके साथ उचित मात्रामें पिला दे । इससे जा स्त्री अपन समयपर ऋतुमती न होती हो वह अवश्य ही होजायगी इसमें सन्देह नहीं है ।

यह मालकांगनी यही करती हो कि अपुष्पाको ही पुष्पवती करती हो ऐसी बात नहीं है, किन्तु नष्टपुष्पाको भी पुष्पवती करती है । इस योगको श्रीकल्याणमल्लजीने कहा है कि-

" भृष्टं ज्योतिष्मतीपत्रं जपापुष्पं च वारिणा ।
पिष्ट्वा पिबति सा भूयो नष्टपुष्पं प्रविन्दाति ॥"

भूने हुए मालकांगनीके पत्ते गुड़हलक पत्तोंके साथ पीसकर पीये तो नष्ट हुआ भी पुष्प फिर प्राप्त होता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि वर्षाके पानीमें अपूर्वाको तथा साधारण पानीम घोटकर देनेपर पूर्वाका भी पुष्पवती कर देती है ।

" तण्डुला देवकाष्ठं च दूर्वापत्रं समंत्रकम् ।
जलैः पिष्ट्वा पिबेद्या च नष्टपुष्पं लभेत सा ॥"

चावल, दूबके पत्ते, देवदारु, इन तीनों चीजोंको बराबर लेकर पानीमें पीवे तो नष्ट हुआ पुष्प फिर प्राप्त होगा । श्रीनित्यनाथजी इस विषयपर कहते हैं कि-

" लाङ्गलीकन्दचूर्णं वा अपामार्गस्य मूलकम् ।
इन्द्रवारुणिकामूलं योनिस्थं पुष्पबन्धनुत् ॥
पारावतपुरीषं च मधुना संपिबेत्तु या ।
रजस्वला भवेन्नारी मूलदेवेन भाषितम् ॥
तिलमूलकषायं तु ब्रह्मदण्डीयमूलकम् ।
यष्टीत्रिकुटक चूण क्वाथयुक्तं च पाययेत् ॥
पुष्परोधे रक्तगुल्मे स्त्रीणां सद्यः प्रशस्यते ॥ "

कलिहारीकी जड़का चूण, ओंगाकी जड, इन्द्रवारुणीकी जड़, इनको योनिमें रखे तो रजस्वला हो । कबूतरकी बीठको जो शहदके साथ पीती है वह अवश्य

---

१ वैद्यक शास्त्रका जो हमने अन्तिम मन्तव्य लिखा है उसमें ज्योतिष्मतीके साथ और भी अनेकोंका प्रयोग किया है किन्तु ज्योतिरीश्वर उक्त पानीके अनुपानके साथ मालकांगनीके केवल पत्रोंका गुण बता रहे हैं ।

रजस्वला होती है यह मूलदेवके अक्षर हैं। तिलकी जड़के काथके साथ ब्रह्मदण्डीकी जड़, मुलहटी और त्रिकटुका चूर्ण लेना चाहिये। इससे पुष्प आरंभ होता और रक्तगुल्म नष्ट होता है।

" तिलकाथे गुडं त्र्यूषं तिलभागयुतं पिबेत्।
काथ रक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पे च योजयेत्॥ "

तिलके काथमें गुड़, सोंठ, मिरच, पपिल और तिल पीये या इनका काढ़ा पीवे तो गुल्म और पुष्प न होना ये दोनों मिट जाते हैं।

" दूर्वादलं तन्दुलतुल्यभागं निष्पिष्य पिष्टं परिपाचितं च।
तद भक्षयित्वा वनिता प्रनष्टं पुष्प लभेत स्वबलानुरूपम्॥ "

दूबका दल और चावल बराबर पीसकर भून। इसके खानेसे स्त्रीका नष्ट हुआ पुष्प फिर प्राप्त हो जाता है इसमें सन्देह ही नहीं है।

" कृते जारे क्षिपेद्योनौ तिलतैलाक्तसैन्धवम्।
द्रवते तत्क्षणादेव शुक्रपुष्पं स्रवत्यपि॥ "

तिलके तेलसे सेंधेनमकको भिगोकर योनिमें रखे तो गर्भ रहकर भी रजस्वला होगी, इस कारण ऐसे योगोंको करती वार देख ले कि गर्भ रहनेके कारण तो कहीं रज नहीं रुका है।

शरीरादिकी दुर्गन्धिका दूर करना।

अब व उपाय बतलाते ह जिनसे शरीर, कांख, मुखकी दुर्गन्धि दूर की जा सके, क्योंकि यहाँकी दुर्गन्धियाँ भी संप्रयोगमें वैरस्य पैदा करती हैं, इसी कारण आचार्य्योंने इन प्रयोगोंका संग्रह किया है। हम भी उन्हें यहाँ रखते हैं कि—

" मलयजकाश्मीरजलघुलोध्रतगरबालकैश्च समभागैः।
सकृदपि कृतमुद्वर्तनमतनुं तनुगन्धमपनयति॥
रोध्रोशीरशिरीषकपद्मचूर्णेन मिलितदेहस्य।
ग्रीष्मेऽपि त्वग्दोषाः स्वेदप्रभवा न जायन्ते॥ "

---

१ " प्रागङ्गरागाः पुरुषेण कार्य्याः, स्त्रिया च सम्भोगसुखाय गात्रे।
तस्मादहं गन्धविधानमादौ विलासिनः सर्वमुदीरयन्ति॥ "

ज्योतिरीश्वर कहते हैं कि यदि स्त्री पुरुष दोनों यह चाहते हों कि हमें संभोगसुख मिले तो वे पहिले स्नान करके तथा अंगराग आदि लगाकर अपने शरीरको अच्छा सुगन्धित कर ले, इसी कारण मैं उनके लिये गन्धविधान कहता हूं।

सफेदचन्दन, काश्मीरी केशरज, पुष्करमूल, छोटा लोध, तगर, बालछड़, खससफेद, मिरच इन सबको समभाग लेकर बारीक पीसकर, इसमें तेल, बेसन मिला उबटन करना चाहिये। यह शरीरकी बुरीसे भी बुरी बदबूको नष्ट कर देता है। लोधकी छाल, खश, शिरीष, कमलके गट्टे इनको अत्यन्त बारीक पीस ले, इन्हें बेसनमें मिलाकर उसमें तेल छोड़ मालिश करनेसे पसीने आदिकी बदबू नहीं रहती।

" ककुभकुसुमजम्बूदललोध्रैरुद्वर्तनं च समभागैः।
हरति विदाघे निहितं घर्मादिजदेहदौर्गन्ध्यम् ॥ "

ककुभ (अर्जुनवृक्ष) के फूल, जामुनके पत्ते और लोध, समभाग लेकर अत्यन्त बारीक पीस ले। फिर इसका उबटन करनेसे पसीना आदिकी बदबू नष्ट होजाती है।

" हरीतकी लोध्रमरिष्टपत्रं सप्तच्छदो दाडिककल्ककं च।
एषोऽङ्गनायाः कथितः कवीन्द्रैः शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रलेपः ॥ "

हरड, लोध, रीठेके पत्ते, छतिवन और अनारके छिलकोंका चूर्ण, इसे उबटनमें डालकर उबटन करे तो शरीरकी बदबू चली जाती है।

" हरीतकीचन्दनमुस्तनागैरुशीरलोध्रामयरात्रितुल्यैः।
स्त्रीपुंसयोर्घर्मजगात्रगन्धं विनाशयत्याशु विलेपनं च ॥ "

हरड, सफेदचन्दन, नागरमोथा, खश, लोध, हलदी इनको उबटनमें लगानेसे स्त्री पुरुष दोनोंके पसीनेकी बदबू मिट जाती है।

" सचन्दनोशीरकाबिल्वपत्रैः कोलाक्षमज्जागुरुनागपुष्पैः।
लिप्त्वा शरीरं प्रमदा जवेन, चिरप्ररूढं विनिहन्ति गन्धम् ॥ "

सफेदचंदन, खश, बिल्वपत्र, बरकी और बहेडेकी मींगी, अगर, नागकेशर इनका लेप करनेसे युवती अपने शरीरका बहुत पुरानी दुर्गंधिको नष्ट कर देती है।

इलायची, कचूर, तेजपात, चन्दन, मोथा, हरड़, कपूर, कूठ, इनकी उत्तम सुगन्धि है। कस्तूरी, केसर, नागरमोथा, भद्रमोथा, कपूर, खस इन चीजोंको बराबर २ लेकर पीस ले, इसके लेपसे अत्यन्त सुगन्धि आती है। खस, कालागुरु, श्वेतचन्दन, इन चारों चीजोंको बराबर लेकर पानीके साथ पीस ले। इसके लेपसे चन्दनके समान शरीरसे सुगन्धि आती है। जावित्री, काकड़ासिंगी, लालचन्दन, नागरमोथा, सफेद चन्दन, शिलारस, कस्तूरी, नागकेशर,

सोनजुही, कपूर इन सबका अच्छी तरह चूर्ण करके पानके या महुएके रसके साथ पीस ले, फिर लगाये तो अच्छा अंगराग होगा। चारभाग हरड़, एकभाग नागरमोथा, चारभाग कूठ, चारभाग कपूर, दो भाग गठिवन, पांच भाग मैनसिल, एकभाग नख आर कस्तूरी यह सर्वोत्तम सुगन्धि है । चार भाग हरड़, एकभाग नागरमोथा, तीनभाग श्रीखण्ड, अगरु, जावित्री और कस्तूरी तथा इसके साथ जटामांसी, पद्माख, पोहकरमूल और बालछड़ इनको अच्छी तरह पीसकर लेप करनेसे सुगन्धि आने लगती है ।

"बिल्वशिवासमभागैर्लेपाद्भुजमूलगन्धमपनयति ।
परिणततिन्तिडिकान्वितपूतिकरञ्जोत्थबीजं वा ॥ १"

बेलका फल, हरड, आंवला, इन तीनों चीजोंको बराबर लेकर लेप करे तो काँखकी बदबू चली जायगी। पकी हुई इमली और करंजुआके बीजोंके लेप करनेसे भी बगलकी बदबू मिट जाती है ।

"हरीतकीश्रीफलमुस्तयुक्तैर्बिम्बीफलैः पूतकरञ्जबीजैः ।
कक्षादिदौर्गन्ध्यमतिप्रभूतं विनाशयत्याशु हठेन योगः ।"

हरड, बेल, नागरमोथा, श्रीफल, नागरमोथा, इनके साथ पूतकरंज और बिम्बीफल और होना चाहिये। इससे काँखोंकी कैसी भी बदबू हो मिट जाती है ।

"सदाडिमत्वङ्मधुलोध्रपद्मैः, पिष्टैः समानैः पिचुमर्दपत्रैः ।
विलिप्य गात्रं तरुणी निदाघे, दौर्गन्ध्यकं घर्मभवं निहन्ति ॥ "

अनारसहित अनारकी छाल, महुएकी छाल, लोध, कमलगट्टे, इनके ही बराबर नीमके पत्ते ले इन्हें पीसकर देहमें लगानेसे पसीनोंकी बदबू मिट जाती है ।

"सकेशरोशीरशिरीषलोध्रैश्चूर्णीकृतैरङ्गविलेपनेन ।
ग्रीष्मे नराणां न कदाचिदेव, घर्मस्रुतिः स्यादिति भोजराजः ॥ "

नागकेसर, खस, सिरस, लोध, इनका चूर्ण करके शरीरपर लगाये इससे ग्रीष्म कालमें भी कभी पसीना नहीं आते ।

" आस्वादिता च सकृदपि मुखगन्धं सकलमपनयति ।
स्वगूवीजपूरकफलजायवनमवाच्यं च नाशयति ॥ "

---

१ " हरीतकी तोयदतुल्यभागौ, वनेचरस्यापि चतुर्थभागः ।
तदर्धभागः कथितो नखस्य स्यादेष गन्धो मदनप्रकाशः ॥ "
ज्योतिरीश्वरजी हरड़ और नागरमोथाको ऊंटकटेरा और नखोंके साथ मिला देहको सुगन्धित बनानेके कार्य्यमें कह रहे हैं ।

बिजोरानींबूके फलका छिलका यदि एकबार भी मुखमें डाल लिया जाय तो उसी समय मुखकी बदबू नष्ट कर देता है तथा इसका यह भी एक फल है कि पाद भी नहीं आते इस बातको जयमङ्गलाकारने नागरके घरकी सजावटमें कहा है ।

" कुष्ठैलावालुकैलायष्टीमधुमुस्तधान्यकृतकवलः ।
हरति मुखगन्धं क्षिपति रसोनादिकं गन्धम् ॥ "

कूठ, ऐलेय, एला, मुरहटी, नागरमोथा, धनियाँ, इनको चबानेसे मुखकी बदबू मिट जाती है । चाहे वह लहसन आदि ही क्यों न खाये हो ।

" जातिफलजातिपत्रीफणिज्जवाह्लीककुष्ठसंचलिता ।
अपहरति पूतिगन्धं मुखविवरपरिस्थिता गुटिका ॥ "

जायफल, जावित्री, दोना मरुआ, केशर या (हींग) कूठ, गन्धतुलसी, वनतुलसी पीसकर गोली बना ले, फिर मुखमें रख ले । इससे मुखकी सड़याद जैसी बदबू भी मिट जाती है ।

" विघटयति पूतिगन्धं मुखगन्धं खाद्यमानमनुदिवसम् ।
कटुतिक्तकषायरसं तैलयुक्त दन्तधावनं पुंसाम् ॥ "

कड़ुई, तीखीन, कसैले रसोंवाली दाँतन तेलमें मिलाकर करनेसे भी मुखकी बदबू मिट जाती है ।

" गुडत्वगेलानखजातिकाह्वैः, स्वर्णान्वितैः क्षुद्रवटी विधेया ।
ताम्बूलगर्भा दिवसे च रात्रौ, करोति पुंसां मुखवासमिष्टम् ॥ "

दालचीनी, इलायची, नख-एक सुगन्धित वस्तु, जावित्री, स्वर्णमालती, इनकी छोटी २ वटी बनाकर पानके साथ खानेसे दिन या रात दोनों ही समय मुखके लिये सुगन्धिकारक है ।

" यः कुष्ठचूर्णं मधुना घृतेन, पिकाक्षबीजान्वितमत्ति नित्यम् ।
मासैकमात्रेण मुखं तदीयं गन्धायते केतकिपुष्पतुल्यम् ॥ "

जो तालमखानेके बीज और कूठ, इन दोनोंका चूर्ण शहद और घीके साथ खाता है उसका मुँह कवड़े फूलके समान सुगन्धित रहता है ।

---

१ यहां इन्होंने कह दिया है कि इस त्वचाको अवश्य राखे, क्योंकि इसके सेवनसे दोनों द्वारोंकी बदबू मिट जाती है । यह उन लोगोंके बड़े ही कामकी वस्तु है जिन्हें कि राजसभाओंमें जाना होता है वे इसे खाकर दोनों बदबुओंकी चिन्तासे मुक्त रहकर राजसभाओंको सुशोभित करते रहेंगे ।

" रसालजम्बूफलगर्भसारः सकर्कटो माक्षिकसंयुतश्च ।
स्थितो मुखान्तः पुरुषस्य रात्रौ करोति सौरभ्यसुखं मुखस्य ॥ "

आम और जामुनकी गुठलीका सार, कर्कट और मधु इन सब चीजोंको मिलाकर चाटकर सोये तो मुख सदा ही सुगन्धित रहा आयेगा ।

" आदौ बिल्वदलं ततो मरुबकं पुष्पाण्यशोकस्य तु ।
प्रत्यादित्यमजस्रमेव तिलजे तैले घटे निःक्षिपेत् ॥
केतक्याः कुसुमानि चेह मुहुशः शेष क्षिपेदादरा-
दित्थं कार्य्यमिदं महापारिमलं तैलं नरैः सिद्धये । "

पहिले बिल्वके पत्ते, पीछे मरुबक, फिर अशोकके फूल व केतकीके फूल, इन चीजोंको तिलके तेलमें डालकर उसे रोज घाममें रख दे । इस प्रकार इस महासुगन्धित तैलको मनुष्य सिद्धिके लिये बनाये ।

" स्वर्णाम्बुदोशीरमिसीयुतानां, पथ्यान्वितानां च विलेपनेन ।
स्नात्वा नरः सौरभमेव मासात्, चैकात्समाप्नोति शिरोरुहाणाम् ॥"

पीला नागरमोथा, खस, जटामांसी और हरड इनको समभाग ले, कूट छान ले, पानीमें घोल शरीरपर लगाकर पीछे स्नान करे, एक मास ऐसा करनेसे बाल बहुत चिकने व सुगधित हो जाते हैं । छोटी इलायची, कस्तूरी, कूठ, तगर-पत्र, श्रीखण्ड इनसे पानी सुगंन्धित किया जाता है । कूठ, तगर, जातीफल, कर्पूर, लवंग, इलायची इससे सुपारी सुगन्धित की जाती है । त्वग् , अगरु, मुस्त, तगर, चौर, शठी, ग्रन्थपर्णी, पत्र, नख, कस्तूरी इससे पानी सुगन्धित किया जाता है । जातिफल, कस्तूरी, कर्पूर इनको आमके पत्ते या फलके रसमें पीस ले । इसमें अगरु, शिह्लक, शर्करा, गुड यह धूमपान है । १ कस्तूरी, दूना कपूर, ३ भाग कुंकुम, ४ भाग नख, ५ भाग मांसी, ६ भाग लालचन्दन, ७ भाग अगरु, ८ भाग श्रीखण्ड, ९ भाग गुड़, इनको चूर्ण कर ले, यह घरकी धूप तैयार हो जायगी ।

गर्भ रहनेके उपाय ।

जिन स्त्रियोंका सहवास पुत्रके लिये किया जाता है, जिनसे मनुष्यको औरसपुत्रकी प्राप्ति होती है, जो कि पुत्रके लिये विवाही गई हैं, जिनसे कि अपनेको सन्तानकी इच्छा है, या जो दम्पति सन्तानके लिये ही लालायित हैं उन्हें कुछ कामशास्त्रने भी उपाय बताय ह कि वीर्य्य और रक्तकी शुद्धि करनेके बाद यदि उन उपायोंको किया जाय तो अवश्य ही पुत्रकी प्राप्ति हा ।

" ऋतुदिवसे घृतसहितं पीत्वा नवनागकेशरस्य रजः ।
दुग्धमनुपीय रमणी रमणगता गर्भिणी भवति ॥
मूलमपि लक्ष्मणायाः प्राज्येनाज्येन नासिकापीतम् ।
तण्डुलजलेन पीता ददाति पुत्रं जटामांसी ॥ "

ऋतुदिवसमें घीके साथ नवीन नागकेशरके बारीक चूर्णको मिलाकर पीनेसे रमणी रमणसे संगत होनेके पीछे अवश्य गर्भ धारण करेगी । कल्याणमल्ल इसे स्नानके अन्तमें तीन दिन पीनेके लिये कहते हैं । यदि लक्ष्मणाकी जड़ बहुतसे घीके साथ नाकसे पी ली जाय तो गर्भ दे । जटामांसीको चावलोंके पानीके साथ पिये तो गर्भवती हो ।

" गोरेकवर्णभाजः पयसा वन्ध्याऽपि धारयेद् गर्भम् ।
पीत्वा केकिशिखायाः पुत्रञ्जीवस्य वा मूलम् ॥
पीत्वामुनैव पयसा रजसि स्नाता च लक्ष्मणामूलम् ।
सम्प्रक्षालितशालीभक्तं भुक्त्वा सुतं लभते ॥ "

एक रंगकी गऊके दूधके साथ, मोरशिखा वा जियापोताकी जड पीनेसे स्त्री अवश्य गर्भवती होती है । जो ऋतुस्नानके पीछे रातमें इसी दूधके साथ सफेद कँटहरीकी जड़ पीती है वह अवश्य ही गर्भवती होजाती है । ज्योतिरीश्वर कहते हैं कि—

---

१ नित्यनाथ तो इसे गायके दूधके साथ सात दिन पीने व घृतयुक्त भोजन करनेके लिये कहते हैं । कल्याणमल्लका खीर खानेका पथ्य है ।

२ श्वेतकण्टकारीका ही नस्य दिया जाता है, लक्ष्मणाका कन्द तो खाया जाता है, ऐसा वैद्यकके आचार्य्योंका सिद्धान्त है । श्वेतकटेरीको रसायनोंमें वर्तते सुनते हैं यह एक परम उत्तम वस्तु है पर दुष्प्राप्य है ऐसा लोग कहा करते हैं ।

३ नित्यनाथ—" पुत्रजीवकपत्रैकं पिबेत् क्षीरे ऋतौ च या ।
पतिसङ्गाच्च सा नारी सत्यं पुत्रवती भवेत् ॥
तस्य मूलं चैकवर्णाक्षीरैः पीत्वा च पुत्रिणी ॥ "
कहते हैं कि—'जियापोतेका एक पत्ता एकरंगकी गौके दूधमें पी लिया जाय तो गर्भवती होगी । मूलकी भी यही बात है ।

४ " काकोल्यौ लक्ष्मणामूलं षष्टिकस्य च तन्दुलम् ।
नार्य्यैकवर्णापयसा पीत्वा गर्भवती ऋतौ ॥ "
काकोली, क्षीरकाकोली और लक्ष्मणाकी जड़को एकवर्णकी गौके दूधके साथ पीये और साठीके चावल खाय तो गर्भवती हो ।

" तुरङ्गगन्धाश्रृतवारिसिद्धमाजं पयः स्नानदिने निपीय ।
प्राप्नोति गर्भं नियमं चरन्ती वन्ध्याऽपि नूनं पुरुषप्रसङ्गात् ॥
पुष्योद्धृतं लाक्ष्मणमेव मूलं भर्त्रा निपिष्टं सघृतं च पीतम् ।
क्षीरोदनं प्राश्य पतिप्रसङ्गाद् गर्भं विधत्ते तरुणी न चित्रम् ॥ "

असगंन्धको औटाके तयार किये हुए जलको स्त्री ऋतुमती होनेके दिन पीये नियमपूर्वक रहे तो वन्ध्या स्त्री भी गर्भवती होजाती है । पुष्यके दिन पति लक्ष्मणाकी जड़ उखाड़ लावे, घी और भात खाय, पीछे पतिसंग करे तो स्त्री गर्भवती हो ।

" या बीजपूरद्रुममूलमेकं क्षीरेण सिद्धं हविषा विमिश्रम् ।
ऋतौ निपीय स्वपति प्रयाति दीर्घायुषं सा तनयं प्रसूते ॥"

जो स्त्री बिजोरेकी जड़को दूधमें प काकर घी मिला पान करेगी, पीछे सहवास करेगी ता उसके गर्भसे दीर्घायु पुत्र प्राप्त होगा । बिजोरे नींबूकी जड़को घीमें मिला चाट ले ऊपरसे दूध पीये तो गर्भ रहेगा । पुष्यनक्षत्रमें श्वेतब लाकी जड एक तोला, मुलहटीका चूर्ण एक तोला, इन दोनों चीजोंको लेकर एक छटांक मिश्री मिलाये । इसमें एकरंगकी बछेड़वाली गऊके दूधमें पी जाय, उस दिन और कुछ न खाय एवम् रातको पतिका संग करे और क्षीरोदनको खाय तो अवश्य गर्भवती होगी ।

"रुक्मकाञ्चनताम्राणां भस्म क्षौद्रान्वितं त्र्यहात् ।
लीढं पुष्पान्तिके स्त्रीभिः क्षेत्रशुद्धिं परां दिशेत् ॥ "

विधिपूर्वक बनाई हुई सोने, चांदी और ताँबेकी भस्म, शहदके साथ तीन दिन ऋतुस्नानके बाद चाटे, इसके चाटनेसे स्त्रीके क्षेत्रकी शुद्धि होजाती है ।

बांझ बननेकी दवा ।

स्त्रियोंको तीन वर्षसे पुराना घी कभी न खाना चाहिये, क्योंकि इसे जो १५ दिनतक खा लेगी वह जीवन भरके लिये वन्ध्या होजायगी । तीन दिन जो चीतेकी लकड़ीका काढा तुषजलमें करके पीलेगी वह भी बांझ होजायगी । चन्दन और सरसोंका कूट बराबरकी सक्कर डालकर तण्डुलके पानीमें

---

१ कल्याणमल्ल इसके साथ अदरख और हरड डालनेके लिये और भी कहते हैं ।

२ इसे कल्याणमल्ल भी मानते हैं । जिन योगोंमें लक्ष्मणाकी जड़का प्रयोग होता है उनमें भी लक्ष्मणाकी जड़ इसी विधिसे लेनी चाहिये, क्योंकि नक्षत्रयोग भी वस्तुमें उत्कृष्टता पैदा करनेवाला होता है ।

पीनेसे रजोधर्म होना बन्द होजायगा । रक्षोभूरुहके बीज आधी छटांक तण्डुल जलके साथ एक सप्ताह पीनेसे वन्ध्या होजाती है । पलाश और खिरनीके फल, सेमरका फूल इन तीनोंके चूर्णको मधुके साथ १५ दिनतक पीनेसे वन्ध्या होती है । स्नानके बाद कदम्बका फल और मधु भुसीके साथ तीन दिनतक पीये तो स्त्री वन्ध्या हो जाय । दो ताले राक्षसवृक्षके बीजोंको एक सप्ताह अखा चावलोंके साथ पिये तो स्त्री अवश्य ही वन्ध्या हो ऐसी चीजें मासिक धर्मके बाद ही प्रयोगमें लाई जाती है । दण्डाथूरके टुकड़े छायामें सुखाकर आग लगाकर काली भस्म करके १ तोला शहदके साथ २१ दिनतक खाय, सदाके लिये वन्ध्या हो जायगी । हाथीकी लीदके १ तोला पानीके पीनेसे सात दिनतक बाँझ रहती है । हलदीकी गांठ रजोधर्मके समय ६ दिन खाय वन्ध्या होगी । कालीजीरी, कर्चूर, नागकेशर, हरीतकी, कलौंजी, कायफल इन सबको महीन पीसकर बेरके बराबर गोली बनाले । १ गोली प्रतिदिन ७ दिनतक खाके स्त्री वन्ध्या होती है। पीली सरसों, सक्कर लेकर दूध चावलोंके साथ खानेसे स्त्रीका पुष्प नष्ट होजाता है। ये वन्ध्या बननेके योग हैं,इन्हें कोई भी ऐसी स्त्री नहीं करती जिसे कि सन्तान प्यारी होती है पर जो सन्तानके भारको नहीं सहन कर सकतीं अथवा जिनके लिये सन्तान पैदा करना अच्छा नहीं जचता, उन स्त्रियोंके करनेके ये उपाय हैं। बहुत अच्छा जो गर्भ रहनेपर भ्रूणहत्या करनेसे नहीं डरते या जिन दम्पतियोंको सन्तान सहन न हो वे इन योगोंको करके गर्भाधान ही न होने दे ।

फिर जैसेका तैसा ।

मदयन्तिकादीन्येव प्रत्यानयनम् ॥ ४० ॥

येही मदयान्तिका आदिक ही उसके वापिस लानेके उपाय हैं ।। ४० ।।

यदि फिर यह इच्छा हो कि मैं अपने सफेद होठको पहिले जैसा ही लाल कर लूं तो उसे चाहिये कि जो महँदी, कूडा, कवंजिका, गिरिकर्णिका और मासपर्णीके मूलोंको पीसकर पानी मिला कर होठ पर मालिश करे । फिर जैसेका तैसा हो जायगा । इन बातोंपर यदि गहरी दृष्टिसे विचार करते हैं तो हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि—

जो२उपाय सफेद बालोंको काले करनेके लिये कहे हैं उन उपायोंके दो कार्य्य होते हैं—एक तो व शरीरकी प्रकृतियोंके विपर्य्यासके कारण जो बाल आदि सफेद हुए हों उनको काले करते है तथा दूसरा उन तेल लेप आदिकोंका यह भी कार्य्य रहता है कि जिस किसीने किसो प्रकारके अज्ञानसे प्रेरित होकर अपने बाल सफेद कर लिये हों यदि फिर वह काले करना चाहे तो उसके अभीष्टको

भी सिद्ध कर देते हैं । यही इस सूत्रका आशय है । इसका गहरा तात्पर्य्य तो यह है कि खिजाव सबका हो सकता है ॥ ४० ॥

मोहन वंशी ।

बहुपादिकाकुष्ठतगरतालीसदेवदारुवज्रकन्दकैरुपलिप्तं । वंशं वादयतो या शब्दं शृणोति सा वश्या भवति ॥ ४१ ॥

बहुपादिका, कुष्ठ (कूठ) तगर (तगर) तालीश (तालीशपत्र) देवदारु और वज्रकन्दक इनका लेप बाँस पर करके उस वंशीको बजानेवालेकी बंशीका जो शब्द सुनेगी वह उसके वश हो जायगी ॥ ४१ ॥

ऐसी वंशीकी बातें बहुत सुननेमें आती हैं, इस वंशीमें यह शक्ति बताया करते हैं कि यदि बजानेवाला यह चाहे कि मेरे पास इस वंशीके सुननेवाले पशु[1] ही आ उपस्थित हों तो इसके पास पशुसमाज ही आ उपस्थित होगा । ये सब चीजें इन २ के प्रभव स्थानोंने तान्त्रिक विधिके साथ लेनी चाहियें विना विधि और समयके नियमके इनका यथोक्त फल नहीं हो सकता । ऐसे विधान जैसेके तैसे तंत्रशास्त्रके शास्त्रियोंके ही हाथसे हो सकते हैं दूसरोंको करनेमें कठिन रहते हैं ॥ ४१ ॥

पागल करना ।

धत्तूरफलयुक्तोऽभ्यवहार उन्मादकरः ॥ ४२ ॥

खानेकी चीजमें धतूरा मिलाकर खिला देनेसे मनुष्य पगला बन जाता है ४२

जो वस्तु नशा लानेवाली हुआ करती हैं वे भी यदि अधिक मात्रामें कार्य्यमें लायी जाय तो अवश्य ही हक्काबक्का व बेहोश बना देंगी । जो नशेमें मूर्च्छित होकर तन्द्राकी हालतमें पड़े रहते हैं उनके लिये लोग कह देते हैं कि ' बेहोश है ' किन्तु जब उसके प्रमादकी दशा होती है तो लोग उसे उन्माद कहा करते हैं । इस धतूरेका भी ऐसी प्रकृति है, कि इसके बीज अल्पमात्रामें भी नशेके द्वारा उन्मत्त कर देते हैं । भंगके दीवाने कभी ऐसा कर बैठते हैं यही कारण है कि पहिले लोग, अविश्वस्तके हाथकी किसी वस्तुका भी प्रयोग नहीं करते थे ॥ ४२ ॥

---

१ पहिले स्कूलोंकी किताबोंमें कहीं २ पढाया जाया करता था कि किसी जादूगरने गामवालोंकी प्रार्थनापर बंशी बजाकर पहिले तो उस गामके मूसे बुला लिये पर जब गामवालोंने उसे जो देना कहा था वह नहीं दिया तो फिर उसने वहांके बैल भी सदाके लिये बुला लिये जो कि फिर गामवालोंके यहां न गये ।

२ नित्यनाथ इसके साथ ताल और मोथाका प्रयोग और करता है इसी तरह वे दूसरे २ भी योग कहते हैं ।

अच्छा करना ।

गुडो जीर्णितश्च प्रत्यानयनम् ॥ ४३ ॥

पुराना गुड़ खिला देनेसे उसका पागलपना हट जाता है ॥ ४३ ॥

उन्माद करनेवाली जितनी भी वस्तु हैं, घी उनकी परम औषधि है इसके पीनेसे विषतककी गर्मी शान्त हो जाती है । जिस वस्तुने नशा किया हो उसे वमन आदिके द्वारा निकाल देना ही अच्छा रहता है । जिस प्रकार कामसूत्रकार इस उन्मादके निवारणके लिये पुराना गुड खिलानेके लिये कहते हैं, उसी तरह नित्यनाथ सक्कर डालकर दूध पिला दे तो फिर सुखी हो ऐसा कहते हैं ॥ ४३ ॥

अदृश्यकरण ।

हरितालमनःशिलाभक्षिणो मयूरस्य पुरीषेण लिप्तहस्तो यद्द्रव्यं स्पृशति तन्न दृश्यते ॥ ४४ ॥

हरताल और मनःशिला (मैनासिल) खानेवाले मोरके बीठको हाथमें लगाकर जिस चीजको छू दोगे वह जबतक अपने हाथमें रहेगी न दीखेगी ॥४४॥

इस योगके सिद्ध करनेवाले घरमें मोर पाल लेते हैं वे घीके साथ अति थोडी मात्रामें हरताल और मैनसिल मिला खिलाना प्रारंभ करते हैं, धीरे २ मोर इन दोनों चीजोंको बड़ी मात्रामें खाने लग जाता है, क्योंकि यह बड़ी तीव्र उदराग्निका हुआ करता है । यहां तक कि योगिराजोंको विष हजम करनेके लिये इसके आसनका अभ्यास करना पड़ता है । प्रकृतिने इसकी स्वाभाविक बैठक ही ऐसी बनाई है जिससे जो कुछ इसके पेटमें जाय वह स्वाहा हो जाय । इस कारण इन चीजोंका खाना भी उसे अधिक समयके लिये नहीं होता, जलदी ही हजम हो जाता है। जब कितने ही दिन इस प्रकार बीत जाते हैं तो उसके पेटसे ये निकलने लगती हैं । इसको हाथमें लगाकर किसी भी चीजको छू दो वह न दीखेगी इसके सिवा और भी अदृश्य

---

१ इन्होंने जितनेभी ऐसे योग लिये हैं उनमें दूध, घी, सक्कर, सौंफ तथा अन्य पौष्टिक वस्तुओंको ही प्रयोगमें लानेके लिये कहा है । सच पूछा जाय तो तर चीजें ही वस्तुकी ऊष्मा व मदसे होनेवाले उन्मादको निवृत्त करता हैं । यह तो मैंने कईवार प्रयोग किया है कि जिसे भाँगका अत्यन्त नशा हुआ हो उसे दूधमें असली खोआके पड़े डालकर पिला दो तो वमन और नशेकी शान्ति दोनों बातें अत्यन्त शीघ्र होजाती हैं । संखियामें घी बड़ा कार्य्य करता है । अफीमके नशेमें भी जितने वमन दिलाये जाँय और सोने न दिया जाय बारंबार चहरेपर पानी डाला जाय उतना ही अच्छा रहता है ।

विद्याएँ हैं, पाहिले इन्ह लोग सिद्ध रखा करते थे। आज भी यह नहीं कहा जा सकता कि इनके प्रयोक्ता संसारमें नहीं हैं। योगशास्त्रमें अन्य सिद्धियोंके साथ इस प्रकारकी सिद्धिका भी प्रकरण आया है। जो योगसे इस प्रकारकी सिद्धि प्राप्त की जाती है वह सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि उसका प्रयोग मनके आधारपर रहा करता है। वह अपनी आत्म ताकत है जिसके द्वारा अपने दर्शन योगी उन व्यक्तियोंको नहीं होने देता जिन्हें कि वह अपने दर्शन देना नहीं चाहता। बाकीके जितने भी उपाय हैं वे सब दूसरेपर निर्भर रहते हैं। तांत्रिक ग्रन्थोंमें इसके बड़े २ विधान आये हैं, नित्यनाथने इस विषयपर कितने ही कालम रँगे हैं पर देव मुखसे जो ऐसी विद्याओंका उपदेश हो जाता है वह सबसे अच्छा रहता है यही कारण है कि जिनपर देवताओंकी कृपा होती है वे इस तिरस्करणी विद्याको जलदी ही पा जाते हैं ॥ ४४ ॥

जिस प्रकारका अदृशी करण महात्मा वात्स्यायनने कहा है इन्द्रजालमें भी उसी प्रकार रखा है। उसे यहीं दिखाते हैं, कि—

" जंगलसे एक मोरला दो दिन खान न देय,
फिर कीजै ऐसो यतन तब अचरज लख लेय।
मनसिल और हरतालकूं गोघृतमें ले सान,
गोली बाँध चुगाइये रती रती परमान।
इहि विधि बीते सातदिन तब यह करे उपाय,
बींट करै दिन सातवें रखिये निज ढिंग लाय।
जबै दिखावै खेल तव लीप हाथमें लेय,
करमें राखै जो कछू फिर न दिखाई देय। "

किसी मोरको जंगलसे लाये या पालतू मोरको दो दिन भोजन न कराये, हरताल और मनसिलकी गोघृतमें गोली बांध ले. इन गोलियोंको मोरको चुगाता रहे जितना कि वह चुग जाय। इस तरह सात दिनतक चुगाये, सात दिनके बादकी उसकी बीठको इकट्ठा करता जाय इस बीठका अपने हाथमें लेप करके उस हाथसे जिस वस्तुको छू देगा वह चाहें कितनी भी बड़ी हो

१ कामसूत्रने भी राजमहलोंमें प्रवेश बताती बार एक अंजन कहा है। हमें वात्स्यायनके एक २ अक्षरपर विश्वास है। उन्होंने कोई वस्तु ऐसी नहीं कही जो असत्य हो। हाँ, यह बात हो सकती है कि कालक्रमसे कुछ अन्तर पड़गया हो जिससे पाठ बिगड़गया हो या साधककी कमी रहजाय। अघोरियोंमें इन सिद्धियोंको अधिक रूपमें सुनते है। महात्मा बंशीधरजी सरस्वतीमें भी ये ही बातें थीं तथा योगकी और भी अनेकों सिद्धियाँ थी पर आजकल यह हतभाग्य भारत ऐसे महात्माओंसे भी बंचित ही होता चला जा रहा है।

दीख न सकेगी । यह कामसूत्रका ही योग है, इतना बढाकर लिखा है । सच पूछा जाय तो यह उसीकी विधि है वात्स्यायनके सिद्ध योग हैं यह भी कभी असिद्ध नहीं हो सकता ।

पानीका दूध ।

अङ्गारतृणभस्मना तैलेन विमिश्रमुदकं क्षीरवर्णं भवति॥४५

अङ्गार (खस) तृणकी भस्मको तेलमें मिला फिर पानीमें डालनेसे पानी सफेद दूध जैसा होजाता है ॥ ४५ ॥

खसकी पहिले तो भस्म करलेते हैं फिर उसकी राखमें तेल मिला देते हैं फिर इसे पानीमें डाल देते हैं इसके डालनेसे पानी सफेद हो जाता है । यह उपलक्षक है । इससे भानुमतीकी पिटारी, इन्द्रजाल, आदिक सभी इसके भीतर ही समझना चाहिये । एरण्डकी मींगियोंको पीसकर किसी घडेके भीतर लगा दो जबतक उसका असर रहेगा सफेद होगा । इसी तरह गूलर, बरगद, और आकके दूधको मिलाकर वर्तनके भीतर लेप करके सुखा ले, जल मँगाकर वर्तनमें भर दे तो इनके असरसे वह भी दूधसा धोला हो जाताहै । इसी तरह दूसरे २ भी योग समझने चाहियें । ये इन्द्रजाल, वृहद् इन्द्रजाल आदि पुस्तकोंमें भरे पढ़े हैं । इनके जानने वाले बाजीगर[1] अब भी कहीं २ देखनेमें आजाते हैं॥४५

लोहेका तांबा ।

हरीतक्याम्रातकयोः श्रवणप्रियङ्गुकाभिश्च पिष्टाभिर्लिप्तानि लोहभाण्डानि ताम्रीभवन्ति ॥ ४६ ॥

हरीतकी (हर्ड) और आम्रातक (आँवड़ा) को, श्रवणप्रियंगुका (मालकांगुनी) ओंके साथ पीस लोहके वर्तनोंपर लेप करनेसे वे ताँबेके रंगके हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

इन चीजोंको इतना पीसना चाहिये कि ये आपसमें मिलकर एक हो जायँ पीछे चीजपर लप किया जायगा तो उसके सूखकर गिरनेके पीछे लोहेका रंग तांबे जैसा हो जायगा, जब वह रंग धुल जायगा उसी समय लोहेकी चमक निकल आयगी । ऐसे योग कौतुक दिखानेमें अधिक कार्य्यमें आते हैं । नीलेथोथेमें भी यह गुण है कि इसको पानीमें घोलकर लोहेपर मलदो तो लोहेपर

---

१ कबीर मंशूरमें शहजहांके समयके एक बाजीगरकी बात कही है कि वह कचे सूतकी कुकरीको ऊपर फेंककर उसपर चढ जाया करता था । वहांसे उसके अंग कट कटकर गिरते थे फिर उनके साथ उसकी स्त्री सती होजाती थी । पीछे वह जीवतउतरता तथा लोगोंसे अपनी स्त्री मांगता था । पीछे जिसके यहां चाहता उसीके घर उसकी स्त्री मिलती थी ।

ताँबेकी रंगत आ जायगी । मट्टी और गन्धकको केलाके रसमें घोलकर ताँबेके पत्तेपर लेप करो तो चाँदीकी रंगत हो जायगी । मेरिनएडिस नामकी एक चीज होती है इसमें पारेको मिला उसमें लोहेके टुकड़ोंको पटकनेसे चांदीके रंगके समान चमकने लगते हैं ॥ ४६ ॥

सॉंप दिखाना ।

श्रवणप्रियङ्गुकातैलेन दुकूलसर्पनिर्मोकेण वर्त्या दीपं प्रज्वाल्य पार्श्वे दीर्घीकृतानि काष्ठानि सर्पवद्दृश्यन्ते ४७

श्रवण प्रियंगुका (मालकांगनी) के तेलसे, साँपकी काँचली लिभेडी, सफेद कपडेकी बत्ती बनाकर दीपकमें डाल जलाये उसकी बगलमें पडे हुए बडे २ लंबे काठ साँपकी तरह दीखेंगे ॥ ४७ ॥

मालकांगुनीका तेल दीपकमें भर देना चाहिये उसमें ऐसी कपडेकी बत्ती डालना चाहिये जिसके भीतर साँपकी काँचली रखकर लभेड़ दी हो । इस दीपकके प्रकाशमें काठके टुकड़े सर्प दीख पडेंगे । दूसरे तांत्रिकोंने इस बातके लिये दूसरी २ विधियोंको बताया है । किसीने लिखा है कि–' कहीं मरा हुआ सांप मिल जाय तो ले आये उसका मुखभाग काट लेना चाहिये । इसके सिद्ध किये पीछे सभामें फेंकनेसे सर्प दीखते हैं । यदि इस मुखमें बिनोले उपजाले इससे तयार हुई कपासकी बत्ती बनाकर जलाये फिर बिनोला मुखमें रखकर जहां जाय वहां सांप ही सांप दीखें । इसी प्रकार अनेकों तरहकी मायाएँ हैं जो अपने सरूपसे रहित होकर भी अनजानके लिये सब कुछ दिखा रही हैं । जो जानते हैं उनपर इसका असर नहीं चलता, किन्तु भूले भटके हैं वे उसके चमत्कारमें डूब जाते हैं । मायाओंका यही हाल है चाहें कैसी भी माया हो बन्धनका ही कारण होती है ॥ ४७ ॥

आयुका बढाना ।

श्वेतायाः श्वेतवत्साया गोः क्षीरस्य पानं यशस्यमायुष्यम् ॥ ४८ ॥

सफेद बछड़ेवाली सफेद गऊका दूध पीना यश और आयुका बढानेवाला है ॥ ४८ ॥

---

१ ये उपाय तो रंगत लानेके हैं किन्तु जो लोग इटबल व योगके अभ्यासी होते हैं वे ऐसे प्रयोगोंके जानकार रहते हैं कि तांबेका सोना व रांगेकी चांदी बनादें । इन ओषधियोंमें सब कुछ ताकत है ये चाहें जो कर सकती हैं पर इनका प्रयोक्ता चाहिये । आकाशमें चमकनेवाले तारोंमें भी कोई २ ऐसे हैं जिनकी छाया ढलवा देनेसे ये वस्तुएँ तयार हो जायँ । जाननेवालेके लिये सर्वत्र सब कुछ है ।

महर्षिचरकने गोघृतके बारेमें लिखा है कि—

"स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्,
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः ।
तदेवं गुणमेवौजः सामान्यादभिवर्द्धयेत,
प्रवरं जीवनीयानां क्षीरयुक्तं रसायनम् ।

गौका दूध–स्वादु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, घन, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु, मन्द, पवित्र इन दशगुणोंवाला होता है, इसी कारण यह ओजकी वृद्धि करता है। यह जीवन देनेवालोंमें सर्व श्रेष्ठ है, उत्तम रसायन है। इस वचनसे यह परिस्फुट सिद्ध होता है कि गोदुग्ध जीवनका बढानेवाला है। कैसा दूध लेना चाहिये १११० पृष्ठ तथा १११३ वें पृष्ठमें बता चुके हैं । दूध उसी विधिसे लेना चाहिये। कपिलाके घृतको युक्त तथा जो कपिला नहीं है उसके दूधके कपिलासे अच्छा समझा जाता है तथा अन्य रंगकी गऊओंसे सफेद गायका दूध श्रेष्ठ मानते हैं। ये विधान धर्मशास्त्रोंमेंभी देखने आते हैं ॥ ४८ ॥

आशीर्वादोंमें भी यह बल है ।

ब्राह्मणानां प्रशस्तानामाशिषः । (इति चित्रा योगाः । चतुःषष्टितमं प्रकरणम्) ॥ ४९ ॥

योग्य तपस्वी ब्राह्मणोंकी आशिषें ही आयुको बढाती हैं । ये चित्रयोग पूरे हुए । इसीके साथ ६४ वां प्रकरण भी पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

योगदर्शनपर भाष्य करते हुए श्रीव्यासदेवजीने बताया हैं कि–" जो अत्यन्त उग्र पुण्य होते हैं उनका फल इसी शरीरसे उसी समय मिलजाता है। जिस प्रकार कि ऋषिकुमार नन्दिकेश्वरने शिवकी कृपासे उसी समय दिव्य देह पा लिया था। यदि अति उग्र पाप बन जाय तो उसका फल भी उसी समय प्राप्त हो जाता है जैसे कि नहुषको उसी समय सर्प बनना पड़ा था " उनके इन अक्षरोंसे सिद्ध होता है कि महापुरुषोंकी कृपा और अकृपा उसी समय अपना फल दिखा जाती हैं। जो तपस्वी हैं जिन्होंने संसारकी झूठी बातोंको छोड़ दिया है जो शरीर, मन और वाणी इन तीनोंको सदा संयमसे रखते हैं जो कि सदाचारी विद्वान् हैं यदि वे प्रसन्न होंगे तो अपनेको अवश्य ही आयु मिलेगी। इनके वाक्योंमें सब कुछ शक्ति है ये संसारके स्तम्भ हैं ईश्वरके प्यारे हैं। ये सदा मालिकका ध्यान रखते हैं तो मालिक इन्हें भी कभी नहीं विसारता। यदि ये किसीपर राजी होते हैं तो मालिककी कृपा भी उस पर हो जाती है। ये अपने मुँहसे उसका भला निकाल देते हैं। तो मालिकको अपने प्यारोंका महत्त्व रखनेके लिये उनके वाक्योंको सत्य

करना पड़ता ह । संसारका नियम है कि पूंजी जोड़ी हो तो काम आती है इन महापुरुषोंके पास तो वही पूंजी है जिसने इस जगको रचा है, जब ये उससे काम लेना चाहेंगे परमेश्वरको इनका कार्य्य करना पड़ेगा । गोपियोंसे भगवान्ने यही तो कहा था कि जो मेरे हो चुके हैं मैं उनका सदाके लिये हो चुका हूं । यह हो सकता है कि ये मुझे भूलजायँ पर मैं इन्हें नहीं भूलता । यही देखते हैं कि भक्तोंके प्रमादके समय सर्वज्ञ प्रभु बड़े ध्यानके साथ अपने भक्तोंको संभालते जाते हैं, उस समय भी हरि उनके मानका ध्यान रखते हैं । वे जिसे आशीर्वाद देते हैं हरि उनकी आशिषें पूरी करते हैं वे जिसे जो करना चाहते हैं उसे वही बना देना भगवान्का कार्य्य होजाता है । जो ब्राह्मण सदाही स्वाध्याय करते रहते हैं जिन द्विजराजोंके यहां सदा ही वेदपाठ होता रहता है जिनका अधिक समय जपत और हवन करते ही बीतता है वे महापुरुष जिसे आशीर्वाद देंगे उसकी आयुके बढनेमें क्या सन्देह हो सकता है ? यही हाल आत्माचिन्तकोंका है। वे जिसपर प्रसन्न होते हैं उसपर परब्रह्म परमात्मा प्रसन्न हो जाते हैं । कहीं २ तो ऐसा देखते हैं कि भगवान् अपने उपासकोंकी मर्य्यादा अपनेसे भी अधिक बढा देते हैं । जीवितकी आयु बढा देना तो एक साधारण बात है। वे गत प्राणोंको भी सप्राण कर देते हैं । पुराणोंमें ऐसी बहुतसी कथाएँ आती हैं । गान्धारीको भगवान् व्यासदेवने सब पुत्रोंको दिखा दिया था । महात्मा कबीरकी आवाजपर भक्त बालकके शिरधड़ दोनों जुड़ गये थे। महात्मा राघवानन्दजीके आशीर्वादसे रामानन्दजी कई सौ वर्षतक जीवित रहे । गोरखनाथजीके आशीर्वादसे भर्तृहरि आदि कल्पजीवी हैं। सतियोंके आशीर्वादोंमें भी यही शक्ति है । ये भी जिसे प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे देंगी उसके दीर्घजीवी होनेमें सन्देह ही क्या है । यही कारण है कि वृद्ध, तपस्वी, महात्मा, भगवद्भक्त, स्वाध्यायी, बृहत्तपा आदि पुरुषोंके आशीर्वाद लिये जाया करते हैं ॥ ४९ ॥

---

१ अरबके एक प्रसिद्ध ज्ञानी घूमते हुए एक स्थानपर आ निकले, वहांके राजाका पुत्र मरा हुआ पड़ा था, राजाने आपसे प्रार्थना की कि मेरे इस पुत्रको जीवित कर दीजिये, उन्होंने कहा कि उससे कह दो कि– 'खड़ा होजा परमात्माकी आज्ञासे ' उन लोगोंने इसी प्रकार कहा पर वह गत प्राण सप्राण होकर खड़ा न हुआ । यह देख फिर वे महात्माके पास वापिस आये और बोले कि महाराज ! हमने उससे बहुतेरा कहा पर वह खड़ा न हुआ । महात्मा बोले कि अबकीबार मेरे नामसे खड़े करो वह खड़ा हो जायगा । यह सुनकर लोगोंने वैसा ही किया महात्माकी आज्ञासे वह सप्राण हो गया ।

वात्स्यायनका तात्पर्य्य ।

महर्षि वात्स्यायनने जो अन्तमें आयुको बढानेके उपाय बताये हैं, इस कथनका कुछ गहरा तात्पर्य्य होता है । पहिला तो उनका आशय यह है कि जिस प्रकार आदिमें धर्मादि त्रिदेवोंको याद करके उन्होंने आदिका मंगलाचरण किया है उसी प्रकार आयुवर्द्धनके स्मरणसे यह उनका प्रकरणोंके अन्तका मांगलिक सूत्र होता है । दूसरा उनका आशय यह है कि अन्तके इस आयुष्यवर्द्धनके उपदेशसे अपने शास्त्रके पढनेवालोंसे यह कह रहे हैं कि मैंने जितना भी उपदेश अपने कामशास्त्रद्वारा मानव समाजको दिया है वह आयुष्यके बढानेके लिये ही दिया है । मेरे उपदेशका तात्पर्य्य मानवजीवनको दीर्घजीवी बनानेका है अतः मेरे उपदेशोंकी उसप्रकार योजना समझना जिस तरहस कि इसके अधिकारीकी आयु बढे । अब यह स्पष्ट होगया कि तंत्र और आवाप इन दोनोंमें जितने भी अधिकरण गये हैं वे सब आयुके बढानेके लिये ही व्यवहार्य्य हैं यानी उनको इस रीतिसे काममें लाना चाहिये जिससे जीवन सुखमय बने एवं दीर्घजीवी बनकर सब पुरुषार्थ प्राप्त किये जा सकें ।

श्रीमहर्षि वात्स्यायनके उपदेश।

जो कि आदर्श ग्रन्थकार रहे हैं जिन्होंने परोपकारके लिये ही संसारी जीवनको सर्वोत्तम समझा है जो मत्सरसे कोसों दूर रहे हैं, उन्होंने उस विषयके पूर्व प्रयत्न करनेवालोंका अवश्य ही आभार माना हैं । उन्हे अवश्य ही अपने आदरणीय भावोंके साथ आदर दिया है । महात्मा वात्स्यायनने सबसे पहिले तो कामशास्त्रकी परंपरा कहकर उनका गुण गान कर दिया था अब अपने प्रयोगोंपर भी उन्हींकी छाप लगा रहे हैं कि–'कामशास्त्रमें जो विधि विधान आये हैं उन्हें जिस २ तरह सिद्ध करनेके लिये कहा गया है वह सब इन्हीं ऋषियोंकी रीतिको लेकर कहा गया है मैं तो केवल उनके आधारपर सूत्रोंका निर्माणमात्र ही करनेवाला हूं।' यही बात निम्नवचनसे कह रहे हैं—

पूर्वशास्त्राणि संहृत्य प्रयोगानुपसृत्य च ।
कामसूत्रमिदं यत्नात्संक्षेपेण निवेशितम् ॥ ५० ॥

---

१ ऋषि आजके लेखकों जैसे नहीं थे कि दूसरे ग्रन्थोंसे अपने निर्माणमें जो लाभ उठाया हो उसे मिटाये । इसके सिवा अपने कथनमें प्रामाणिकता भी रहती है यह बातभी सत्य है। श्रीवात्स्यायन महर्षिने इन्हींके कहे योगोंको सूत्रके रूपमें रखकर अपनी सम्मति भले ही दी हो किसीके भी साथ पर, नया कुछ भी नहीं कहा है ।

श्वेतकेतु बाभ्रव्य आदिके बनाये हुए शास्त्रोंको इकट्ठा करके उनके प्रयोगोंके ही अनुसार उनका शब्दसे संक्षेप करके प्रयत्नके साथ इस कामसूत्रका निर्माण किया गया है ॥ ५० ॥

कामशास्त्रकी गुरुपरंपरामें यह रहा है कि–' इस विषयको अपने अनुभवमें लानेवाले शिव तथा पृथक् करनेवाले सिद्धेश्वर नन्दिकेश्वर ही रहे हैं । उनके बाद इसपर वेदान्ती श्वेतकेतुका नम्बर आया है । फिर बाभ्रव्य पाञ्चालने भी इसमें मुख्यरूपसे हाथ बढाया है । स्त्री और पुरुष दोनोंके भावोंको देवकृपासे यथावत् जाननेवाल श्रीदत्तकाचार्य्यने इससे विभाग किया है फिर चारायण, सुवर्णनाभ, घोटकमुख, गोनर्दीय, गोणिकापुत्र और कुचुमार० आचार्य्यने भी कामशास्त्रको पल्लवित किया है । महर्षि वात्स्यायन कहते हैं, कि इन्हीं श्रद्धेय पुरुषोंके बताये विधि विधानोंको मैंने अपनी संमति विशेषोंके साथ रख दिया है । मेरे घरका मैंने एक अक्षर भी नहीं रखा है, अतः कामसूत्रका एक २ अक्षर सभीके लिये प्रामाण्य है । इसमें अप्रामाण्यकी शंका करना अपनी आत्माको स्वयं ही अप्रामाण्यके गड्ढमें पटकना है । कामशास्त्रके भक्तोंको चाहिये कि–महर्षि वात्स्यायनके अक्षरोंके भीतर ही पिछिले आचार्य्योंके अक्षर गतार्थ समझकर प्रत्येक अक्षरमें नन्दिकेश्वरसे लेकर कुचुमार तकके आचार्य्योंके मुखारविन्दके अक्षर आगये हैं, यह श्रद्धा रखें ॥ ५० ॥

कामशास्त्रके सच्चे ज्ञाता ही ज्ञानी होते हैं ।

कामशास्त्रमें यह सिद्धान्त बताया है कि पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान अवश्यही होना चाहिये । वैशेषिक शास्त्रने भी सर्व प्रथम ही कह दिया है कि–"पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे ही मोक्ष होता है । सांख्यका भी यही ढंग रहा है कि–"सति संसर्गेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य" जब पुरुषको पूर्ण विवेक होजाता है तो प्राकृतिक पदार्थोंके साथ वह भले ही टकराता रहे फिर वे दुनियावी पदार्थ उसपर अपना रंग नहीं जमा पाते । यह एक नियमकी बात है कि मनुष्य ईश्वरकी ईश्वरताका भी पूरा भेद पा जाय तो ईश्वरकी बँधनीमें न बँधे । कहीं भी देख लो बन्धनका कारण अविवेक ही है । यही सब कुछ कराता है । यही कभी हँसाता तथा कभी रुलाता है । इसीकी बड़ी भारी महिमा है । ईश्वरकृष्णने अपने मंगलाचरणमें लिखा है कि–" जहत्येनां भुक्तभोगान् नुमस्तान् " हैं दोनों ही अज पर एक ऐसे ह जो अविवेकके कारण प्रकृतिके तत्त्वोंमें वेहोश हैं । दूसरे वे हैं जिन्होंने विवेक

---

१ महादेव गिरिजाके साथ अनुभव ले रहे थे तथा द्वारपर बैठा नन्दिकेश्वर कामशास्त्र जुदा कर रहा था ।

शक्तिके द्वारा यथावत् देख लिया है मैं उन्हें भी प्रणाम करता हूं जो प्रकृतिके तत्त्वको यथावत् समझ गये हैं समझकर उसके प्रपंचसे हटना तो समझनेका एक साधारण फल है। और मायाएँ इतना प्रभाव नहीं रखतीं जितना कि यह रखती है। स्त्रीरूपीमायाके भरमे हुए राजकुमारोंने अपने तख्तोताजको कौडियोंकी वस्तुकी तरह ठुकरा दिया। जिसमें कि वैसी अनेकों स्त्रियाँ रातदिन पैदा होती रहती हैं। अजका तो इन्दुमतीकी मायाने उसके मरनेपर भी पीछा नहीं छोडा, आखिरकार सप्तस्रोतपर प्राण ही लेकर मानी। विश्वामित्र जैसे परम तपोधनको कितनी ही बार लक्ष्यसे गिराया बडे २ त्यागियोंने इस मायामें फंसकर अपना सर्वस्व ही गमा दिया। बडे २ फकीर कबरोंकी चारों ओर कबर खोदनेके लिये फिर बडे २ ओलिया मुर्दोंको कुटि-योंमें दीवारके सहारे खडा करके गतप्राण शरीरको ही अपने जीवन सर्वस्वकी तरह देखते फिरे। किसीको अपने ध्येयकी चिन्तामें वहीं वन जाना पडा। किसीको, उसीको अपनी अचूक दवा समझकर कहना पड़ा कि—

"मैं फौरन जी उठूंगा ओ मसीहा दम तेरे सदके,
मेरे लाशेको हाँ ठोकर लगाकर देखते जाओ।"

जो तुम मेरी लाशेको पैरकी एक ठोकर भी लगा दोगे तो मैं जी जाऊँगा। यह सब इस स्त्री रूपिणी मायाका ही कार्य्य है जो कि यह सब उथल पुथल मची हुई है। दूसरे शास्त्रोंने हेय कहकर इससे अलग रहनेके लिये तो कह दिया परन्तु यह है क्या चीज जो इस प्रकार मायामें फँसा लेती है कि इनके सिवा फिर कुछ नहीं सूझता। तथा क्यों ये इतनी मायाविनि बताई गई हैं कि प्रत्येक शास्त्रने इनको इसी दृष्टिसे देखा है? यदि इसका उत्तर चाहो तो यही शास्त्र दे सकता है कि—"बाह्यवृत्तिके समय यंत्रयोग करनेसे किसी विचित्र स्पर्श सुखकी अनुभूति होती है तथा इसके साथ माना हुआ सुख भी रहता है, इस तीसरे पुरुषार्थका ये कारण हैं।" इस लिये मनुष्य इनसे सुखी तथा कामशास्त्रने जो इनकी माया बताई है उसमें भरमा फिरता है। इनमें

१ महात्मा अद्धमके लिये ऐसा कहते हैं कि वे इस हालतमें कुछ दिन रहे बादमें इससे मुक्त हुए। २ लुधियानेकी तरफ एक महात्मा थे वे एक स्त्रीपर इतने आसक्त हुए कि उसके पीछे पंछारेकी तरह फिरा करते थे। एक दिन उनकी प्रेमिका नदीमें स्नानकरने गई तो आप भी उसके साथ गये एवम् साथ ही गोता लगाया पानीसे जो बाहिर निकले तो उस स्त्रीके रूपमें ही निकले आखिरको दुनियाँमें इस स्मृतिको छोड़कर कि "जब एक स्त्रीका सच्चा दीवाना स्त्रीरूप हो सकता है तो फिर परब्रह्मके सच्चे प्रेमी क्यों न वैसेही हो जायँगे।" यह अदृश्य हो गये।

जो २ अनृत कामशास्त्रने बताये हैं। वे ही इसकी निन्दाके कारण हैं। भाव प्राप्तिका सुख अपने ही खूनका स्वाद है जब यह हृदयमें पक्का भाव जम जाता है तो मनुष्य इसकी फिर मायामें नहीं आता, इसी आशयको हृदयमें अवकाश देकर महात्मा वात्स्यायन कह रहे हैं कि—

धर्ममर्थं च कामं च प्रत्ययं लोकमेव च।
पश्यत्येतस्य तत्त्वज्ञो न च रागात्प्रवर्तते ॥५१॥

इस कामशास्त्रके सच्चे ज्ञातालोग धर्म, अर्थ, काम, अपना विश्वास और दुनियाँके आचारको देखकर प्रवृत्त होते हैं। यह नहीं होता कि वे रागसे दीवाने होकर ही कुछ कर डाले ॥ ५१ ॥

सबसे पहिले अपना धर्म देखते हैं, कि इसके करनेसे अधर्म तो नहीं होगा। कहीं ऐसा न हो कि मैं पापके गड्ढेमें गिर जाऊँ। यदि धर्म समझते हैं प्रवृत्त होते हैं यदि अधर्म समझते हैं तो नहीं प्रवृत्त होते। केवल धर्म ही देखें यह भी बात नहीं है,वे अर्थपर भी पूरी दृष्टि रखते हैं। उनके यहां इसके बाद कामका नम्बर आता है यानी जिस कामके सेवन करनेमें धर्म नहीं बिगड़ता न अर्थ ही नष्ट होता है उस कामका सेवन करते हैं जिसमें धर्म व धन जाय ऐसे कार्य्योंको नहीं करते। इन तीनों बातोंके साथ वे दुनियाँकी रीति देखते हैं। ये चारों बातोंको देखकर प्रवृत्त होते हैं। रागसे दीवाने होकर प्रवृत्त नहीं होते पर जो कामशास्त्रके तत्त्वसे वंचित हैं वे धर्म, अर्थ, काम, विश्वास और लोकाचार किसीको भी नहीं देखते, केवल रागके दीवाने होकर ही सब करते धरते रहते हैं। यह इस शास्त्रके ज्ञाताओंका दूसरोंसे भेद है ॥ ५१ ॥

रागवृद्धिका उपदेश वैसोंके कल्याणके लिये है।

जब कामशास्त्रकी प्रवृत्ति धर्म, अर्थ, आत्मविश्वास और लोकाचारके अनुसार ही काम सिद्ध करनेके लिये है, यह अधर्मके लेशसे भी अलग रहना चाहता है तो फिर क्यों राग बढानेके कारणोंका उपदेश दिया है कि—

"यूनो मिथोऽनुरागाभरणं कामोऽधिवसति रतिकेलिम्।
सहजाधेयविभागादनुरागश्च द्विधा भवति ॥
वेगादीनि तदङ्गान्यप्यङ्गीकुर्वते द्विधा वृद्धाः।
तस्य तदङ्गानामिति मन्त्रौषधिविधय उच्यन्ते ॥"

युवक युवतियोंके परस्परके अनुरागका ही जेवर पहिननेवाली रतिकी किलोलोंमें कामका निवास रहता है। वह अनुराग सहज और कृत्रिम भेदसे दो तरहका होता है। अनुभवी लोग अनुरागके वेग आदि अंग भी मानते हैं उसकी और उसके अंगोंकी वृद्धिके लिये प्रयोग कहे हैं। यही कामसूत्रकार कहते हैं कि—

अधिकारवशादुक्ता ये चित्रा रागवर्धनाः ।
तदनन्तरमत्रैव ते यत्नाद्विनिवारिताः ॥ ५२ ॥

जिन्हें राग बढाना परमावश्यक हैं बिना बढाये उनका कल्याण नहीं, उन लोगोंके लिये रागके बढानेवाले जो विचित्र योग कहे हैं एवम् कहनेके बाद अनधिकारियोंके लिये जो सावधानीके साथ प्रयत्न पूर्वक उनका निवारण भी कर दिया गया है इससे मर्य्यादा अक्षुण्ण रखी है ॥ ५२ ॥

जिन दोनों स्त्री पुरुषोंमें निर्दोष सहज राज कामकी पूरी दशाओंपर नहीं पहुँचा अथवा जिन दम्पतियोंको अपना जीवन सुखमय बनानेके लिये आपसमें अवश्य अनुराग पैदा कर लेना है उनके लिये योग बताये हैं जिनसे कि वे अपना जीवन आनन्दसे बिता सकें। अतः रागवर्द्धनके लिये भी जो २ प्रयोग बताये हैं, वे भी कल्याणके लिये ही बताते हैं । जो उनके अधिकारी नहीं एवम् जिन्हें जो योग न करने चाहियें ऐसे पुरुषोंको न करनेके लिये वहीं कह दिया गया है । यानी इसका तात्पर्य्य यह हुआ कि सहज और कृत्रिम रागसे विभिन्न जो रतिभद किये हैं उनका प्रयत्नोंसे इतना एकीकरण होजाय कि कृत्रिम भी थोड़े दिनोंमें सहज बनजाय जिसस उनकी रति भी रसवद् बनजाय । जो सहज बनानेके अधिकारी नहीं या जो जो योग बताये हैं उनके करनेके पात्र नहीं उनके लिये उन योगोंको न समझना चाहिये । जो जिसका अधिकारी है वह उसे करे एवम् जो जिसका अधिकारी नहीं है उसे उन योगोंको न करना चाहिये ॥ ५२ ॥

यथाधिकार प्रयोग ।

आपन जो कुछ कामसूत्रमें कहा है वह क्या सबके लिय कहा है अथवा वह खास विषय है ? इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये श्रीवात्स्यायन कहते हैं कि—

न शास्त्रमस्तीत्येतेन प्रयोगो हि समीक्ष्यते ।
शास्त्रार्थान्व्यापिनो विद्यात्प्रयोगांस्त्वेकदेशिकान् ॥ ५३ ॥

यह बात नहीं है कि जिस प्रयोगका शास्त्रमें विधान है उसे सब कोई कर डाले, क्योंकि शास्त्रके प्रयोजन सबके लिये होते हैं किन्तु जो जिन प्रयोगोंका अधिकारी होता है प्रयोग उसीके लिये होते हैं ॥ ५३ ॥

शास्त्रके उपदेश बड़े होते हैं वे सबका लक्ष्य रखा करते हैं । उनके लक्ष्यसे कोई बाकी नहीं रहता । वे सबकी सब बातोंको मनमें लेकर प्रयोग कहने बैठते हैं । यह समझनेवालोंका कार्य्य रहता है कि जो जिस प्रयोगका अधिकारी रहता है जिसके लिये जिसके करनेमें लौकिक और शास्त्रीय

कोई भी बाधा न हो उन प्रयोगोंको करना चाहिये । इसका गहरा तात्पर्य्य यह है कि कामशास्त्रमें जिन २ अधिकरणोंमें जो २ बातें कहीं हैं तथा जहां कहीं उचित अनुचित वस्तुके खाने आदिके लिये कहा है वहां उनके खाने पीनेवालोंके ही लिये कहा है, दूसरोंके लिये नहीं कहा । जो परदारसे किसी भी कारणसे प्रेरित होकर कोई भी प्रयोजन नहीं रखता उसके लिये पारदारिक नहीं है । जो मांसभक्षणको परम पापका कृत्य समझता है उसके लिये मांसभक्षणका विधान कदापि नहीं है । जो वेश्या रत नहीं उनके लिये वैशिकका भी कोई प्रयोजन नहीं रहता ॥ ५३ ॥

यह भी आर्ष है ।

ऋषि लोग तीनों कालोंकी जाननेवाले होते हैं, उन्हें पूर्णज्ञान रहता है, उनके हृदयमें परमात्माका पूर्ण प्रकाश रहता है, उन्हें यथार्थका अधिगम रहा आता है, वे जो कुछ कहते हैं यथार्थमें ही कहते हैं उनके कथनमें एक अक्षर भी झूठ नहीं हुआ करता, यह कामसूत्र भी ऐसाही है ऐसा आचार्य्य कहते हैं, इसी बातको नीचेके श्लोकसे दिखाते हैं कि—

बाभ्रवीयांश्च सूत्रार्थानागमं सुविमृश्य च ।
वात्स्यायनश्चकारेदं कामसूत्रं यथाविधि ॥ ५४ ॥

बाभ्रवीयके सूत्रोंका अर्थ तथा कामशास्त्रका विचार करके, महर्षि वात्स्यायनने इस कामसूत्रको आर्ष विधिके साथ बनाया है ॥ ५४ ॥

हाथास कुशा ले पवित्रताके साथ बैठ सच्ची आत्माको शुद्ध भावोंसे बाभ्रवीयके सूत्रोंका अर्थ तथा कामशास्त्रका विचार करके महर्षि वात्स्यायनने सूत्रोंका निर्माण किया है । फिर इसमें एक भी अक्षर व्यर्थ नहीं है तथा एक भी विधान अभव्य नहीं है ॥ ५४ ॥

वात्स्यायनने इसके योगोंको कैसे देखा ।

अब यह विचार होता है कि कामशास्त्रमें तो प्रायः ऐसे विषय हैं जिनके अनुभवोंसे प्रायः ऋषिलोग अलग ही रहा करते हैं, कोई भी ऋषि किसी परनारीके पीछे मारा मारा नहीं फिरा, न किसीकी यही दशा देखी गई है कि कोई किसीकी कन्या पानेके लिये ही ललचाया फिरा हो, न किसीकी यही दशा हुई है कि आसन या प्रणय कलहमें ही बेहोश रहा हो फिर महर्षि वात्स्यायनने ही इसे कैसे जाना, इस प्रश्नके उत्तरमें श्लोक करते हैं कि—

तदेतद्ब्रह्मचर्येण परेण च समाधिना ।
विहितं लोकयात्रार्थं न रागार्थोऽस्य संविधिः ॥ ५५ ॥

इसको उत्कट कोटिके ब्रह्मचर्य्य और निर्विकल्प समाधिके द्वारा महर्षि श्रीवात्स्यायनने लोक यात्राके लिये कहा है इसका विधान रागके लिये नहीं है ॥५५

महात्मा वात्स्यायनने इसे दुनियावी साधनोंसे साक्षात्कार नहीं किया, किन्तु लोकोत्तर ब्रह्मचर्य्यसे जो निर्विकल्प समाधिकी सिद्धि होती है उसी निर्विकल्प समाधिसे इसके सब विधि विधानोंका यथार्थरूपसे साक्षात्कार करके उन्हें सूत्रके रूपमें निर्नाण किया है। इससे यह बात सिद्ध होगई कि जो कुछ पूर्वाचार्य्योंने लिखा था उसकी यथार्थताका निर्विकल्प समाधिसे वात्स्यायनने अनुभव किया। यानी जिसमें सब वस्तु जैसीकी तैसी दीखा करती हैं उसे निर्विकल्प समाधि कहा करते हैं। इससे जाच करके पीछे महर्षि वात्स्यायनने इसे रखा है। अनुभव दोनों ही करते हैं जिन्होंने अलौकिक प्रत्यक्षसे अनुभव कर लिया उन्होंने भी कर लिया तथा जिन्होंने लौकिक साक्षात्कारसे अनुभव किया उन्होंने भी कर किया। लौकिक साक्षात्कारमें तो भ्रम भी हो सकता है परन्तु अलौकिकमें तो भ्रमका अवकास ही नहीं है, अतः निर्विकल्पके द्वारा जो कुछ अनुभवमें लाया जाता है वह भी निर्विकल्प ही होता है। वात्स्यायनका अनुभव लौकिकसे भी उत्तम है। इसमें किसी अंशमें भी कमी नहीं है यह इसका तात्पर्य्य है ॥ ५५ ॥

मुख्य प्रयोजन ।

संसारी जीव विषयोंके तत्त्वोंको विना समझे उन्हें सुखदायी समझकर फँस जाते हैं, अनेकों दुखोंके भाजन बन जाते हैं, संसारी जीवनको बिगाड़ बैठते हैं, नरकद कर्मोंकी गठरी अपने शिरपर लाद लेते ह उनको धर्मपर लाने विषयोंसे हटाने व सच्ची आत्माका पुरुप बनानेका साधन इस कामसूत्रका यथार्थ ज्ञान ही है यही बात नीचेके श्लोकसे कहते हैं कि—

रक्षन्धर्मार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्तिनीम् ।
अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥

धर्म, अर्थ और कामकी स्थिति व अपना दुनियाँदारीकी स्थितिकी रक्षा करता हुआ इस शास्त्रके तत्त्वका जाननेवाला जितेन्द्रिय ही होता है ॥ ५६ ॥

इस शास्त्रके सब तत्त्वका जाननेवाला सबसे पहिले तो अपनी स्थितिपर विचार करता है फिर धर्मको देखता है कि ऐसा करनेसे कहीं पापके गहरे गड्ढेमें न गिर जाऊं। फिर उसका ध्यान अर्थपर जाता है पीछे कामपर दृष्टि होती है इतने विचार उस संयमी बना देते हैं, इस कारण इससे जाननेवाले जितेन्द्रिय होते हैं, व्यभिचारी नहीं होते ॥ ५६ ॥

तदेतत्कुशलो विद्वान्धर्मार्थाववलोकयन् ।
नातिरागात्मकः कामी प्रयुञ्जानः प्रसिध्यति ॥ ५७ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे औपनिषदिके सप्तमेऽधिकरणे नष्टराग-
प्रत्यानयनं वृद्धिविधयश्चित्राश्च योगा द्वितीयोऽध्यायः ।

जो मनुष्य अत्यन्त रागी हो वह इस शास्त्रका ज्ञाता होकर भी परिपूर्ण सिद्धिको नहीं पाता । पर जो विद्वान् काम शास्त्रमें परिपूर्ण कुशल होकर धर्म और अर्थकी ओर पूरी दृष्टि रख उचित काममें इसका प्रयोग करता है उसे अवश्य सिद्धि होती है ॥ ५७ ॥

कामशास्त्र अत्यन्त रागियोंके लिये नहीं किन्तु जोकर्तव्यपालनकी दृष्टिसे इसका प्रयोग करता है उसके लिये धर्म, अर्थ और कामका अचलकोश है । धर्म प्राणोंके लिये अपना संसारी जीवन उत्तम बनानेके लिये कहा गया है ५७॥

वर्षे विक्रमभूपतेर्विधुनवाङ्कोर्वीमिते चैत्रिके,
शुक्ले धातृतिथौ समाप्तिमगमच्छ्रीपूरुषार्थप्रभा ।
सेयं तत्त्वजुषां पदार्थमखिलं प्रद्योतयन्ती भृशं,
राधामाधवपादपद्मयुगलाऽऽलोकैः समं राजताम् ॥ १ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म—तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्रके सप्तमाधिकरणके द्वितीय
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

समाप्तं चेदमौपनिषदिकं नाम सप्तममधिकरणम् ।

ग्रन्थश्च समाप्तः ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई - ४